प्रकाशक | श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-सस्थान,
मथुरा–२८१ ००१ (उ० प्र०)

प्रकाशन-तिथि | प्रथमावृत्ति—सन् १६७६
द्वितीयावृत्ति–गङ्गा दशहरा
स० २०३६ वि०
५ जून, १६७६

सस्करण | प्रथम—२,०००
द्वितीय–३,२००

मुद्रक | राष्ट्रीय प्रेस,
डैम्पियर नगर,
मथुरा–२८१ ००१

BHAGAWAN VASUDEVA : Sudarshan Singh 'Chakra'

भगवान वासुदेव

पूरे रैक्सीनकी गत्तेकी जिल्द ...
पूरे रैक्सीनकी बिना गत्तेकी ....



कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनम ॥

अनुक्रमणिका

●





श्रीकृष्णावतार



भगवान वासुदेव

कृष्ण ! तुम्हारे गुण चरितोंकी कहाँ कही कुछ मिति है ।
किन्तु—बुद्धिकी, मनकी, करकी शक्ति सदा सीमित है ।।
नन्हा मत्स्य अनन्त सिन्धुकी सीमा क्या पायेगा ।
किन्तु सिन्धुका अङ्क त्यागकर भला कहाँ जायेगा ।।
मौन रहें मन-बुद्धि तुम्हारे चरित-गुणोंके रसके ।
इनका पार भला क्या पाना—ये वाणीके बसके ?
रस सागर ब्रजराज-तनय तुम सदा सदाके जनके—
रहे, रहो प्रिय प्राण प्राणके—जन तव, तुम निज जनके ।।
सानुकूल तुम रहो, शारदा सानुकूल कल्याणी ।
सानुकूल गणनाथ सफल हो साङ्गपूर्ण यह वाणी ।।
आओ ! स्वयं आवरण तोड़ो, चरित कौमुदी छाये ।
शब्द, वाक्य-रस रूप धरो—अन्तर उज्ज्वल हो जाये ।।
मेरे श्याम ! समग्र तुम्हीं—तुम क्रीडामय अविनाशी ।
वाङ्मय मूर्ति तुम्हारी मंगल, मेरे घट-घट बासी ।।

अपनी बात

नही जानता, कृष्णचन्द्र जीवनमे कब आया, किन्तु यह भली प्रकार जानता हूँ कि नन्द-तनयने मेरे साथ भरपूर पक्षपात किया है।

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥ रा च. मा ४ २/८

सनातन धर्मने कर्मका निर्णय– न्याय करनेका काम यमराजको दे दिया है। ईश्वरका काम न्याय करना नही है। कोई पिता अपने पुत्रोंका न्याय क्या करेगा। ईश्वर तो अनन्त करुणा-वरुणालय है, दयासिन्धु है—सबके लिए। वह किसीके कभी अपराध देखता ही नही। उसके विधानमे एक ही बात है—जीवका मङ्गल। ये रोग-शोक, संयोग-वियोग, मरण और धन-हरण आदि दण्ड है कर्म-नियन्ताके, यह बात भी बच्चोको है। ये सब जीवके अपने लपेटे मलको शुद्ध करनेके साधन हैं।

यह सर्वसामान्य जीवनकी बात—लेकिन भगवान् सर्वसामान्यके लिए जैसा है, भक्तोंके लिए भी वैसा ही नही है। वह 'सेवकप्रिय' भक्तवत्सल, भक्तपक्षपाती है, भक्त सामने हो तो उसे फिर सम्पूर्ण सृष्टि भूल जाती है।

बात इतनी ही नही है। ब्रजराजकुमार कब किसके गलेमे हाथ डालकर कह देगा 'तू मेरा'—कोई नियम नही है। वह प्रलम्ब और व्योम जैसोको भी सखा स्वीकार करनेमें हिचकता नही।

मुझमे धर्म, सयम, साधना कुछ कभी नही रही और श्याम इतनेपर भी बलात् सदा मेरा पक्षधर रहा। मैं बन्धनमे पता नही कितनी बार कूदनेको आतुर हुआ और यह पाश-छेत्ता सदा सजग रहा।

अब इस प्रकार जो अपना बने, वह अन्तरमे कब आया—यह कैसे कहा जाय; किन्तु जब मैंने लेखनके क्षेत्रमें प्रवेश किया तो गोस्वामी तुलसीदासजीकी श्रीकृष्ण-गीतावली का अनुवाद पहिली पुस्तक थी। वह बहुत पीछे 'मानस-मणि' मे क्रमश निकली।

सन् १९३६ मे वृन्दावन आया तो पहिली मौलिक पुस्तक लिखी गयी—'त्रिभुवन सुन्दर'। यह 'संकीर्तन' मासिक-पत्र (मेरठ) के विशेषाक

'श्रीकृष्ण चरिताङ्क' के रूपमे निकली। लेकिन इस विशेषाङ्कके साथ ही 'संकीर्तन' वन्द हो गया—अत उस चरितका प्रचार नही हुआ।

वृन्दावनमें ही एक रचना और प्रारम्भ की थी—'सखाओका कन्हैया' लेकिन वह अपूर्ण रह गयी और पाण्डुलिपि भी सुरक्षित नही रही।

'कल्याण' का 'उपनिपद् अङ्क' निकलने वाला था, जब मैं कल्याण-परिवारका सदस्य वनकर गीतावाटिका पहुँचा। वही 'श्रीकृष्ण चरित' का पूर्वार्ध लिखा गया और वहाँसे रामवन आनेपर उसका उत्तरार्ध पूर्ण हुआ। उत्तरार्ध तो प्रकाशकके पास ही पडा रहा—अब भी पडा है। पूर्वार्ध वहुत रुचा था श्रीस्वामी चक्रधरजी महाराजको, और उनके द्वारा प्रेरित भाई श्रीशिवनाथजी दुबेके प्रयत्नसे मोतीलाल वनारसीदासने उसे प्रकाशित किया था। अव उनके यहाँ वह अनुपलब्ध हो गया है। वैसे भाई देवधरजी शास्त्री उसे मासिक-पत्र 'श्रीकृष्ण-सन्देश' (श्रीकृष्ण-जन्मभूमि, मथुरा) मे एक-एक अध्याय प्रतिमास देते रहे हैं।

इनके अतिरिक्त 'कल्याण' के 'हिन्दू-संस्कृति' अङ्कमे सक्षिप्त 'श्रीकृष्ण-चरित', 'वालकाङ्क' मे 'श्रीकृष्ण बाल-चरित', गीताप्रेससे वालकोंके लिए छपा, 'भगवान् श्रीकृष्ण' आदि छोटे रूपोमे कई श्रीकृष्ण-चरित लिखनेका अवसर आया है। लेकिन 'श्रीकृष्ण-चरित' जो मोतीलाल बनारसीदासने छापा, उसे दूसरोने चाहे जितना पसन्द किया हो, उसे पूरा करते ही मुझे लगा कि यह तो कुछ भी नही हुआ। तभी सङ्कल्प वना था कि एक श्रीकृष्ण-चरित और लिखना है।

वचपनमे कविता पुस्तके पढता था तो एक विचार मनमे आता था—काव्योंके सर्वोत्तम पद्योका ऐसा सङ्कलन किया जाय कि उससे एक श्रीकृष्ण-चरित बन जाय। लेकिन पीछे लगा—ऐसा करना मूल रचनाकारोके साथ कदाचित् अन्याय होगा, क्योकि कुछ परिवर्तन तो करना ही पडता।

अव जव हाथमे कम्पन आरम्भ हो गया, दूसरे सव लेखन-सम्पादन छोड़ दिये, श्रीकृष्ण-चरितको लेखनीकी अन्तिम कृति वनानेका प्रयत्न करने वैठा हूँ। यह लेखनी मुझे जिससे मिली है, जिसके चरितसे लेखन प्रारम्भ किया है, उसीके चरितसे समाप्त करनेकी साध स्वाभाविक ही है। लेकिन जानता हूँ कि अब तक जिसने लिखवाया है, वह पूरे मनसे साथ देगा, तभी यह चरित कुछ बन पावेगा।

प्रारम्भसे पूर्व ही जानता हूँ कि यह चरित भी हृदयको सन्तुष्ट नही कर पावेगा ; क्योकि चरितके सौष्ठवका क्षुद्रतम अंश तो हृदयमें ही आ पाता है और जो हृदयमे आता है, उसका वहुत ही छोटा अंश लेखनी शब्दोंमे उतार पाती है।

अनन्तका दोष ही यह है कि वह भी अपना अन्त नही पा सकता। कन्हाई अपना है, यह साथ देगा ही ; किन्तु यह चाहे तब भी तो इसका चरित शब्दोमे पूरा व्यक्त नही हो सकता। जो शब्दातीत है, शब्दोमें वह कितना आवेगा ?

दूसरी वात—श्रीकृष्ण पूर्णपुरुष हैं। लीला-पुरुषोत्तम है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके चरितको तो मर्यादामें रहना था, किन्तु लीला-पुरुषोत्तमकी लीला तो कोई वन्धन नही मानती। वे पूर्णपुरुष हैं—इसका अर्थ ही है कि जिस किसी दृष्टिसे देखा जाय, उनका चरित उसी ओर सर्वोपरि दीखेगा। श्रीकृष्ण परमात्मा-सर्वेश्वरेश्वर, श्रीकृष्ण अवतार-नारायणाश, श्रीकृष्ण योगेश्वर, श्रीकृष्ण आदर्श राष्ट्रनायक, श्रीकृष्ण परमज्ञानी, श्रीकृष्ण उत्तम गृहस्थ यही नही, श्रीकृष्ण पूरे कूटनीतिज्ञ, श्रीकृष्ण पूरे विलासी आदि चाहे जो दृष्टिकोण आप वनाले, श्रीकृष्ण उसीमे सिरमौर दीखेंगे। उनके चरितमें वही दृष्टि पूर्णता प्राप्त कर लेगी। ऐसी अवस्थामें श्रीकृष्णका चरित सम्यक् कैसे लिखा जायगा ? चरित तो कोई लेखक एक ही दृष्टिकोणसे लिखेगा।

अव इस चरितकी वात। इसे मैं चार भागो में लिख रहा हूँ। यह खण्ड 'भगवान वासुदेव' श्रीकृष्णका मथुरा-चरित है। दूसरा खण्ड 'श्रीद्वारिकाधीश', तीसरा 'पार्थ-सारथि' और अन्तमें चौथा खण्ड 'नन्दनन्दन'।

इस प्रकार विभाजनका कारण है। श्रीकृष्णके दो मुख्य रूप हैं—१ लोकनायक रूप, २ भक्तसर्वस्व रूप। श्रीमद्भागवतको ध्यानसे पढनेपर लगता है कि शारीरिक दृष्टिसे भी श्रीकृष्णके दो रूप हैं—१ चतुर्भुज रूप, २ द्विभुज रूप।

मथुरामें नन्दवावाके रहने तक ही श्रीकृष्ण द्विभुज रहे है। देवर्षि नारदने कालयवनको श्रीकृष्णका जो रूप वतलाया, वह चतुर्भुज रूप है, और किसीकी हुलिया वह वतलायी जाती है, जो रूप उसका सदा रहता हो। वासुदेव सदा चतुर्भुज न रहते तो उनकी नकल करनेके लिए पौण्ड्रक तथा शृगाल अपने दो कृत्रिम भुजाएँ न लगाये रहते।

मथुरासे द्वारिका और हस्तिनापुर तक श्रीकृष्ण चतुर्भुज है। वे वासुदेव हैं, लोकनायक हैं और पुराण-महाभारतमे ऋषियोकी वाणीमे नारायणके अंश (नर-नारायणमे-से नारायण) है। वे भगवान् हैं। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये छ. भग उनमे सम्यक् पूर्ण है। इसलिए 'भगवान वासुदेव' से प्रारम्भ करके 'श्रीद्वारिकाधीश' के क्रमसे 'पार्थ-सारथि' पर यह चरित पूरा हो जायगा।

श्रीकृष्ण नन्दनन्दन है। वे नित्य द्विभुज है। इस रूपमे वे परात्पर परिपूर्णतम परमात्मा है। यह रूप भक्तोका सर्वस्व है। यह भक्त-हृदय-धन है। ध्यान-चिन्तन-आराधनासे—भक्तिसे प्राप्त होता है। भक्तोका कहना है—

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।'

सृष्टिकी नियामकता, लोकनायकत्व आदिसे इस रूपका कोई सम्बन्ध नही। यह तो प्रेमपरवश प्रकट होता है, प्रेमपरवश नाना लीलाएँ करता है, और—

नाय सुखापो भगवान् देहिना गोपिकासुत।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथाभक्तिमतामिह॥ श्रीमद्भा १०९२१

श्यामका सौहार्द तो इसी रूपमे सुलभ हो सकता है। यह व्रजराज-तनय ही अपना है। अत सबसे अन्तमे—'नन्दनन्दन'।

श्रीमद्भागवत तो मूलाधार है ही, महाभारत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त-पुराण, गर्गसहिता, पद्मपुराण, नारदीय-पुराण आदिमे आये चरितोको भी समन्वित करते—जो समन्वित हो सके—लेते चलनेका विचार है।

अपने लिए—शुद्ध रूपसे अपने अन्तरमे श्यामका रूप, गुण, लीला आवे, इसलिए इसे प्रारम्भ कर रहा हूँ। अत कहना तो इतना ही है—

श्रीव्रजराजकुमार, अपनोको अपनाइये।
अरुण चपलपद चारु, अन्तस्तलमें आइये॥

अमृतसर
बुधवार,
चैत्र कृष्ण ५, २०३० वि०
१३-३-१९७४

—सुदर्शन सिंह 'चक्र'

द्वितीय संस्करणके सम्बन्धमें

अपना सोचा कहाँ किसीका पूरा होता है । 'श्रीकृष्ण-चरित' लिखने बैठा था, तब लगता था कि यह जीवनका अन्तिम प्रयास है । लेखनीकी यह अन्तिम कृति है । किन्तु कन्हाईको कब क्या रुचेगा, कैसे कोई जाने । हाथमे कम्पन रहते भी मेरे इस नन्द-तनयने मुझसे लगभग इतना ही बडा चार खण्डोका श्रीरामचरित लिखवाया । 'शिवचरित' 'आञ्जनेयकी आत्मकथा', 'उन्मादिनी यशोदा', 'व्रजका एक दिन' और 'वे मिलेगे' इस प्रकार छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थ लिखवाये ।

'श्रीकृष्ण-चरित' लिखना प्रारम्भ किया था, तब कल्पना भी नही थी कि यह छप भी सकेगा । वृन्दावनमे जब भाई श्रीजयदयाल डालमिया मिले थे, तब मैं इसका 'पार्थ-सारथि' लिख रहा था । 'यह कब छपेगा ?' उनके इस प्रश्नका उत्तर यही मैंने दिया था—'कभी नही ।'

'दो हजार पृष्ठसे भी बड़े ग्रन्थको कोई प्रकाशक छापेगा, यह आशा मुझे नही है ।' मेरा यह उत्तर उस समय मेरे पिछले अनुभवोपर आधारित था ।

भाई जयदयालजीने भी केवल पढना चाहा था और मैंने उन्हे तीन खण्डोकी पाण्डुलिपि तभी भेज दी । कुछ पृष्ठ पढकर उन्होने टाइप करानेकी अनुमति माँगी और फिर तो उनका आग्रह बन गया कि यह छपे ही ।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' मे यह चरित क्रमशः छपा, साथ ही पुस्तकाकार हुआ । जुलाई १९७५ से यह क्रम प्रारम्भ हुआ था । जुलाई सन् १९७६ तक यह खण्ड 'भगवान वासुदेव' पुस्तकका रूप ले सका । उस समय कल्पना भी नही थी कि पाठक इसे इतने प्रेमसे अपना लेगे । अभी इस चरितका चौथा खण्ड 'नन्दनन्दन' प्रेस में ही गया है, पर यह खण्ड 'भगवान् वासुदेव' पुनर्मुद्रणको देना पड रहा है । 'नन्दनन्दन' प्रकाशित होनेसे पर्याप्त पूर्व इस प्रथम खण्डका द्वितीय सस्करण छपना इसका प्रमाण है कि पाठकोको ग्रन्थ प्रिय लगा । इस नवीन सस्करणमे कोई परिवर्तन नही है, केवल यत्र-तत्र छपाईकी भूलोको सुधारा मात्र गया है ।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरा
१९-१२-१९७८

—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

उपक्रम

वसुदेवजीके सगे भाई देवभागके पुत्र बृहद्बलका ही दूसरा नाम है उद्धव। देवगुरु बृहस्पतिको प्रसन्न करके इन्होने उनसे नीतिशास्त्रका अध्ययन किया। श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तरङ्ग सखा और यादव प्रशासनके प्रमुख मन्त्री रहे, किन्तु ससारमे—प्रकृतिके साम्राज्यमे तो कुछ नित्य नही है। द्वारिका समुद्रके गर्भसे जैसे निकली थी, वैसे ही समुद्रने उसे उदरस्थ कर लिया। यदुवशका नाम लेनेवाला एक शिशुमात्र बचा—प्रद्युम्नका पौत्र वज्रनाभ। स्वय भगवान वासुदेव स्वधाम चले गये। बच गये उद्धवजी उस महासहारसे। सम्पूर्ण स्ववश अपने सामने नष्ट हो जाय और कोई अकेला बच जाय—क्या अवस्था होगी उसकी ?

ऐसा कुछ नही हुआ था। श्रीकृष्ण सर्वेश्वरेश्वर, सर्वसमर्थ—साथ ही अनन्त करुणासागर। उन्होने यदि उद्धवको बचा दिया तो अपनी अमृतवाणीसे—अपने अन्तिम उपदेशसे शोक-मोहसे ऊपर भी उठा दिया। उद्धवको वह परमज्ञान मिल गया था जिससे लौकिक प्रध्वसकी छाया उनके चित्तको नही छूती थी, किन्तु श्रीकृष्णका वियोग—यह वियोग भी क्या सहने योग्य है ? श्रीकृष्ण कभी वियुक्त नही होते। वे अन्तर्यामी नित्यप्राप्त रहते हैं—उद्धवके हृदयमे वे चतुर्भुज वनमाली नित्य प्रकट—किन्तु जो जीवन भर उन आनन्दघनके साथ लगा रहा हो, उनके ही पहिने वस्त्र पहिनने और उनके ही उच्छिष्ट थालका प्रसाद लेनेका व्रती रहा हो, जिसे उन्होने स्वय रात-दिन पलकोपर रखा हो, उसे क्या अन्तरमे अन्तर्यामीकी उपस्थिति तुष्ट कर पाती है ?

अपने स्वामी—अपने परम स्नेहमय स्वामी—अपने भाई ? नही, उद्धवने कभी श्रीकृष्णको भाई नही माना। यह तो उन सर्वेश्वर स्वामीका औदार्य था कि वे उद्धवको सदा छोटे भाईके रूपमे लेते रहे—वात्सल्य देते रहे। आज उन्ही वात्सल्यधाम स्वामीका आदेश—अन्तिम आदेश पालन करने जाना है उद्धवको। उस आदेशके पालनकी शक्ति उन सर्वसमर्थने दे दी है।

आदेश भी क्या ? स्वय उद्धवके परम कल्याणके लिए आदेश है—' वदरिकाश्रममे जाकर भगवान नर-नारायणकी कृपा प्राप्त करो तप करते हुए ।'

उद्धवको अपना कल्याण नही दीखता। अपनापन श्रीकृष्णके उपदेशके पश्चात् भी कहीं रह सकता है ? उद्धवको तो दीखता है केवल अपना वह परमोदार स्वामी , और उसका आदेश है , अत. उसे टाला नही जा सकता। वे चल पड़े हैं और द्वारिकासे चलते हुए मथुराके पास यमुना तट पहुँच गये हैं।

यह मथुरा—यह कालिन्दी , यही समीप ही व्रज है। किन्तु नही—श्रीकृष्ण नही है तो इन सबपर किसकी दृष्टि जाती है। उद्धवको यह स्थान और अधिक व्याकुल करता है। यमुना-स्नान हो गया। व्रजधराके दर्शन कर लिये—इस पावन रजको मस्तकसे लगा लिया , किन्तु यहाँ रुका नही जा सकता। स्वामीका आदेश—वदरिकाश्रम जैसे पुकार रहा है उद्धवको। सायकाल हो चुका है , अन्यथा उद्धव यहाँ रुकनेका नाम नही लेते।

' पितृव्य आप !' अचानक एक अवधूतप्राय व्यक्तिने जैसे दौडते आकर उद्धवको भुजाओमे भर लिया। विखरे रूखे केश , मलिन वसन , क्षीणकाय , वढे श्मश्रु , किन्तु यह तेजोमय भव्य श्रीमुख , ये वृहद्‌वाहु , यह प्रलम्ब गौर शरीर और ये परम सौम्य सुदीर्घ लोचन—भले अवधूतप्राय वेश हो , इन्हे भी क्या पहचाननेमें उद्धव भूल कर सकते हैं ? इन पाण्डव-परित्राता , कौरवकुल महामणि , श्रीकृष्णैकप्राण विदुरको उद्धव नही पहिचानेगे , ऐसा भी कभी सम्भव हो सकता है ?

वड़ी देर तक विदुरने उद्धवको अपने आलिगनसे छूटने ही नही दिया। छूटनेपर उद्धवने चरण-वन्दना की और फिर विदुरने हृदयसे लगा लिया।

दो समान व्यक्ति मिले—कुशल यही कि दोनो महाप्राण , दोनो परम नीतिज्ञ , दोनो सहज विरक्त एव भगवद्‌भक्त , दोनो परमतत्त्वज्ञ। अन्यथा विधिकी विडम्बना तो यह कि दोनोका प्राय सम्पूर्ण वश समाप्त हो चुका—परस्पर ही सघर्ष करके नष्ट हो चुका। कुशल प्रश्न कौन किससे करे ?

विदुरने यदुवंश और अपने वंशकी परिसमाप्ति भी सुनी उद्धवसे ;

किन्तु उन महामतिने चित्तको शीघ्र स्थिर कर लिया। उन स्थितप्रज्ञने पूछा—'उद्धव ! तुम श्रीकृष्णके परमान्तरङ्ग सुहृद् हो। उन्होने तुम्हे तत्त्वोपदेश किया है अन्तिम समयमे और तुमने उनके दिव्य चरित देखे है। तुम उस तत्वज्ञानके श्रवणका और भगवान वासुदेवके मगलमय चरितोके श्रवणका भी यदि मुझे अधिकारी समझो ······'

'आप यह क्या कहते है ?' विदुरके चरण पकड लिये उद्धवने—'भगवान वासुदेवने महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनके परम सखा मैत्रेयकी उपस्थितिमे ही मुझे उपदेश किया और अन्तमे – अपने स्वधाम गमनके उस पूर्वक्षणमे—आपका स्मरण किया।'

'भगवान वासुदेवने अन्तिम क्षणोमे मेरा स्मरण किया ?' विदुर विह्वल हो गये।

'प्रभुने महर्षि मैत्रेयसे उपदेशका उपसंहार करके कहा' उद्धवने बतलाया—'मैत्रेयजी ! उद्धव छोटा है और तत्वज्ञानकी मर्यादा है कि उपदेष्टामे श्रद्धा न हो तो श्रवण होनेपर भी वह अन्तरमे प्रकाशित होगा—इसमे सन्देह रहता है। विदुरजी परम विनम्र है, शुद्धान्त करण हैं, सम्यक् श्रद्धावान है, किन्तु अकारण मर्यादाके विपरीत कोई परम्परा क्यो स्थापित हो। विदुरको इस तत्वज्ञानका उपदेश आप कर देना।'

'करुणासिन्धु !' विदुरके नेत्र झरने लगे और उद्धव तो अपने आराध्यका नाम आते ही विह्वल हो गये थे।

कुछ समय लगा दोनोको उस आवेगसे स्थिर होनेमे। अन्तमे दोनोने ही अपने नेत्र पोछे। विदुरने कहा—'तात ! मैने सुना है कि महर्षि मैत्रेय इन दिनो गङ्गाद्वार (हरिद्वार) मे निवास करते हैं। तुमको भी नर-नारायणाश्रम जानेके लिए वहीसे जाना है। इस थोड़े कालका साहचर्य प्राप्त हो जायगा मुझे और भगवान वासुदेवके मङ्गल-चरित तुमसे अधिक जाननेवाला मुझे अब कोई कहाँ मिलेगा ! तुम उन चरितोको मुझे सुनाओ ! तुम्हे आपत्ति न हो तो गङ्गाद्वार तकको यात्रा मैं तुम्हारे साथ कर लूँ।'

'मेरा अहोभाग्य !' उद्धवने मस्तक झुकाया—'सुर भी आपकी सन्निधि पाकर कृतार्थ ही होते हैं। प्रजाके परम प्रशासक, परम भागवताचार्य भगवान धर्मराज भले इस मानव विग्रहमे रहे, किन्तु पितृव्य ! आपको

पहिचानकर भी कोई ऐसा श्रेयस्कामी मिलेगा जो आपकी सन्निधिका सौभाग्य छोड दे ?'

'मुझे भी आप अनधिकारी तो नही मानेंगे।' उद्धवने तनिक रुककर कहा—'भगवच्चरित मैंने जो देखा है, सुना है—सुनाऊँगा, किन्तु पितृव्य! आप कृपा करे। कर्म एव भक्तिके परम रहस्यज्ञोके आप शिरोमणि हैं। आप ही सगुण तत्त्व और अवतारका ठीक कारण जानते हैं। भगवच्चरितोको समझनेमे मैं सफल हो जाऊँगा यदि आप अनुग्रह करेंगे।'

'उद्धव! तुमको कुछ जानना-समझना शेष है, ऐसा शक्य नही है, किन्तु तुम मुझे गौरव देना चाहते हो। श्रीकृष्णके अनुग्रह-भाजनका यह शील स्वाभाविक है।' विदुरने गद्गदकण्ठ कहा—'तुमसे कोई चर्चा करके वाणी और हृदय परिपूत ही होता है।'

यमुना तटपर मथुराके समीप दोनो महाभागवत सम्पूर्ण रात्रि इस प्रकार चर्चामे सलग्न रहे। यह चर्चा उसी दिन समाप्त नही हो गयी। दोनो वहाँसे साथ-साथ हरिद्वार तक आये। दोनोको भूल ही गया कि शरीरको आहार एव निद्राकी भी आवश्यकता होती है। दोनोके दिव्य देह—अत देहने इन्हे अपनी ओर आकर्षित नही किया।

स्नान, सध्या, नित्योपासना—यह ऐसा कार्य था जो प्रात ब्राह्म-मुहूर्तमे प्रारम्भ होता, मध्याह्नमे और सायकाल भी चलता। इसके अतिरिक्त यात्रा—लगभग एक योजन (सात मील) प्रतिदिन और वह बहुत धीर पदोसे, क्योकि दोनो महाभाग भगवच्चिन्तन करते चलते थे।

'यह अच्छा सघन वृक्ष है और जलका सान्निध्य भी है।' दोनोमे-से कोई कह देता। दिनमे विश्रामको तो जलका सान्निध्य भी आवश्यक नही था। दिनमे बैठ जाँय अथवा रात्रिमे, दोनोका एक ही कार्य, एक ही व्यसन—उनकी चर्चा चल पडती।

उनकी चर्चा—कहते हैं कि जब वे परस्पर चर्चा करने लगते थे, वायुके पद भी मन्द हो जाते थे। दिशाएँ शान्त हो जाती थी। आसपासके पशु-पक्षी समीप घिर आते थे और शान्त श्रवण करने लगते थे।

वे चलते थे—दोनो उस समय परिव्राजक थे। वे जब दिनमे चलते थे—मेघ ही नहीं, सुरोंके विमान भी उनपर छाया करते चलते थे। तरु-लताएँ उनके पथको पुष्पवर्षासे प्रशस्त बनाये रखती थी। उनके कही

बैठनेका संकल्प करते ही कपि-समूह कोमल किसलयका आस्तरण प्रस्तुत कर देता था ; किन्तु उनमें किसीकी दृष्टि इस सतत चलते आयोजनपर पड़ी ही नहीं। उन्होंने तो स्नानोपासनाके अनन्तर रीछोंके लाये कन्द-फलोंका उपहार भी यदा-कदा ही स्वीकार किया और वह भी लानेवालेके स्नेहको मात्र सत्कृत करनेके लिए।

वे भगवन्मय, भगवत्प्राण—अहर्निशि वे तन्मय रहे और उनकी चर्चासे दिशाएँ परिपूत होती रहीं। उनकी चर्चा विरमित हुई गङ्गाद्वार पहुँचकर। वहाँ उद्धवने विदुरसे अनुमति ली—दोनों भुजा फैलाकर मिले। विदुरजी चले गये मैत्रेयाश्रमकी ओर और उद्धवने बदरीवनको प्रस्थान किया।

वह नित्यवाणी—वह अन्तरालको अब भी पावन बना रही है। आप एकाग्र हों—श्रीकृष्ण कृपा करें तो असम्भव नहीं कि आप उसे आज भी सुन सकें।



सगुण तत्त्व

जगत और जीवन सदासे धर्म एवं दर्शनकी समस्या है। यह जो कुछ संसार दीखता है, क्या है ? क्यों है ? इसका आधार, कर्ता, प्रेरक कौन है ? कैसा है ? साथ ही हमारा अपना जीवन—हम स्वयं क्या है ? क्या उद्देश्य है इस जीवनका ?

जगतको हम अपनी ज्ञानेन्द्रियोंसे जैसा देखते है, वह वैसा ही है या नहीं—कोई उपाय यह जाननेका नहीं है। सब प्राणी जगतको ऐसा ही नहीं देखते। जन्मान्धके लिए रूपका—रंगोंका अस्तित्व ही नहीं है। ऐसे ही जिन प्राणियोंमें घ्राणेन्द्रिय या श्रवणेन्द्रिय नहीं है, उनके लिए गन्ध अथवा शब्द नहीं है। इन्द्रियोंकी शक्ति बाह्य साधनोंसे अथवा योगसे बढ़ायी जा सकती है, किन्तु अन्ततः जगतके देखनेका माध्यम इन्द्रियाँ ही रहेंगी।

इन्द्रियाँ एक ही वस्तुको पाँच प्रकारसे दिखलाती हैं। एक ही वस्तुमे नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, रसना, नासिका—रूप, शब्द, स्पर्श, रस और गन्ध पृथक्-पृथक् वतलाती हैं। साथ ही यह भी कि इन्द्रियोकी सूचना परिवर्तनशील है। जो पुष्प आज सुन्दर, सुरङ्ग, सुकुमार दीखता है—वही कल सौन्दर्य, रग, सौकुमार्य खोया दीखता है। अर्थात् दृश्य जगत परिवर्तन-शील है, अथ च अनित्य है।

जो एक रूप नही है, जो वदलता रहता है, उसकी खोज वहाँ करके किसी परिणामपर पहुँचा नही जा सकता। हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। उनसे हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका अनुभव करते हैं, अत इनके आधार रूपमे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीसे वना जगतको मानते हैं। पञ्चेन्द्रिय-सम्पन्न प्राणी जहाँ जायगा, उसे पञ्चतत्त्व ही उपलब्ध होंगे।

पृथ्वी जलमे घुल जाती है, जल उष्णतासे सूख जाता है, उष्णता वायुमे लीन हो जाती है और वायु गति खो दे तो शून्यसे एक हो जाता है। इस प्रकार आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी वनी होगी—यह अनुमान सहज किया जा सकता है।

यह सव चिन्तन करता है मन। मन समाहित हो, या लय हो तो कुछ पता नही लगता। साथ ही प्रवल संकल्प-शक्ति-सम्पन्न योगीका मन पदार्थोंमे—जगतमे यथेच्छ परिवर्तन कर लेता है। वह एक पदार्थको दूसरेमे वदल सकता है अथवा नवीन पदार्थका आविर्भाव कर सकता है, यही वात कहती है कि पदार्थकी मूल स्वतन्त्र सत्ता नही है। पदार्थ मानस है। जगत मानस-सृष्टि है।

जगत किसकी मानस-सृष्टि है? प्रश्न सहज है और यह स्पष्ट है कि हमारी, तुम्हारी अथवा व्यक्तियोकी यह मानस-सृष्टि नही है। योगीका प्रवल सकल्प भी थोडे पदार्थोंमे ही परिवर्तन कर सकता है। सम्पूर्ण सृष्टि कर देना या सृष्टिको मिटा देना व्यक्तिके लिए सम्भव नही है। अत सोचना ही पड़ता है कि कोई सृष्टि, स्थिति एवं संहारका सकल्प करने-वाला है और जो कर्ता है वह सगुण तो होगा ही।

व्यक्तिमें अपना क्या है? पृथ्वी, जल, उष्णता, गति और अवकाश—ये व्यष्टिके नहीं हैं। ये समष्टिके हैं। तव मन व्यक्तिका कैसे हो सकता

है। समष्टि मानसमें वैसे ही व्यष्टि मनका भ्रम हो रहा है, जैसे समष्टि पृथ्वीमें एक-एक देहके पार्थक्यका भ्रम हो रहा है।

यदि व्यक्तिका पृथक् मन नही है तो व्यक्ति पाप-पुण्यका कर्ता ही कैसे हो सकता है ?

भगवान वासुदेवने जो रणभूमिमें तत्त्वोपदेश किया, उसमे उन्होंने कहा था—

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥
शरीरवाड्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नर ।
न्याय्य वा विपरीत वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ गीता १८. १४, १५

पृथ्वी समष्टिरूपसे एक ही है। शरीर परमाणुओकी प्रवाह-धारामे प्रतीति मात्र है और इन शरीरोमें जो वायु है, वह तो प्रत्यक्ष क्षण-क्षण वदल रहा है, लेकिन इतना होनेपर भी विभिन्न शरीरोमे विभिन्न रोग होते हैं। किसी शरीरमें वायु विकृत होता है, किसीमें शुद्ध। ऐसे ही समष्टि मन एक होकर भी प्रति शरीर भिन्न प्रतीत होता है और भिन्न-भिन्न सकल्प-विकल्पोका माध्यम रहता है।

मन ही अन्तिम तत्त्व नही है। मनका नियत्रण करती है बुद्धि। समष्टि-बुद्धिका भी अनुमान तुम कर सकते हो और बुद्धिका आधार है अह, किन्तु अह तत्त्व भी अपरिवर्तनीय नही है। निद्रामे जैसे मन-बुद्धिका लय हो जाता है; समाविमे अहकार भी निरोध हो जाता है।

नामका सस्कार, सुख-दु ख, मानापमान अह ग्रहण करता है। सुपुप्तिमे भी अहं जाग्रत रहता है और इसलिए नाम लेकर पुकारनेपर व्यक्ति जाग जाता है। सुपुप्तिमे श्वासकी गति, रुधिराभिसरण, अन्न-पाचन, केशादि वृद्धि, स्वेदादि मलाभिसरणका सचालन अह करता है और यह अह ही है जो मेरा मन, मेरी बुद्धि मानता है। इस अहंका निरोध समाविमे हो जाता है और तव अहके कार्य रुधिराभिसरणादि अवरुद्ध हो जाते हैं। जव पृथ्वी ही व्यष्टि नहीं बनती तो सवसे सूक्ष्म अह व्यष्टि कैसे वनेगा।

अह भी परिवर्तनशील है। नाम वदल जाता है और नये नाममें अहं स्थापित हो जाता है। आश्रम वदलता है तो अहं नया आश्रमी बन जाता है। यह अहकी प्रकृति है। अत अहं भी प्रकृतिका ही पुत्र है।

एक है जो नही बदलता। उसे शब्दसे समझाया नही जा सकता ; किन्तु तुम जानते हो कि शैशवसे अन्त तक तुम बदले नही हो। नाम बदल जाय, आश्रम बदल जाय; किन्तु तुम बदलते नही हो। समाधिमे अहंका निरोध भले ही हो जाय; किन्तु समाधिमे तुम रहते हो। तुम निर्विकार हो। यही अनिर्वचनीय निर्विकार परमतत्त्व है।

समाधिमे अहकारका निरोध हो जानेपर भी शरीर सडता नही—मरता नही। किन्तु यह चेतन जव शरीरको छोड़ देता है तो शरीर तत्काल सडने लगता है। इससे यह चेतन प्रति शरीर भिन्न हुआ और आवागमन जब इसमे है तो इसकी निर्विकारिता ?

मन, बुद्धि, चित्त, अहकार और पञ्चकर्मेन्द्रिय तथा पञ्चज्ञानेन्द्रिय समन्वित सूक्ष्म शरीर न हो—चेतन कुछ ग्रहण करेगा ? मिट्टीका घडा बन गया तो उसमे भरे आकाशमे आने-जानेका भ्रम भी बना रहेगा और घड़ेमें धुआँ भरकर मुख बन्द कर लो तो घडा चाहे जहाँ ले जाओ—घटाकाश धुएँसे युक्त रहेगा ही। सूक्ष्म शरीरमे चेतनके आभासको ग्रहण करनेकी क्षमता है और उस आभासयुक्त सूक्ष्म शरीरका आवागमन अपने कर्म-सस्कारोके अनुसार होता रहता है। घडेके जलमे सूर्यका प्रतिबिम्ब पड रहा है। घड़ा जहाँ ले जाओगे, प्रतिबिम्ब साथ जाता लगता है, किन्तु जा केवल जल रहा है। प्रतिबिम्ब तो जहाँ भी घडेमें जल भरोगे, वही गृहीत हो जायगा।

तन-मन, बुद्धि-अहंकार कुछ व्यष्टिके नही और कर्म भी व्यष्टिके नही, तव व्यक्तिको अपने शुभाशुभ कर्मका फल भोगनेका विधान क्यो ?

यही अविद्या है। जीवका—आभासयुक्त सूक्ष्म शरीरका कह लो—ससरण अविद्याजन्य है—यह शास्त्र, सन्त सब कहते हैं। समष्टिका एक सचालक है और सृष्टिका प्रत्येक कर्म उसके द्वारा सचालित है—पूर्व-निश्चित है। ऐसा न हो तो ईश्वर भी सर्वज्ञ नही कहा जा सकेगा और ज्योतिष-शास्त्रका भी कुछ अर्थ नहीं रहेगा। उस प्रकृतिके परम प्रेरकके अतिरिक्त दूसरा कोई कर्ता नही है। कर्म होते हैं प्रकृतिके गुणोंसे और प्रकृति तो किसीकी होती है।

तब जो कर्ता ही नहीं है, उसके लिए सयमिनी पुरी और उसका दण्ड विधान ?

सृष्टिका नियन्ता-सचालक अनन्त करुणावरुणालय है। दण्ड उसके विधानमे है ही नही। जीवके शुभाशुभ कर्मोका ठीक-ठीक लेखा-जोखा वही नही करता तो उसका अनुचर सयमिनीका स्वामी क्या करेगा। सयमिनी पुरी और उसके अत्यन्त दारुण नरक भी केवल शोधन स्थान हैं। धर्मराज भागवताचार्य है और भक्तिधर्ममें न कठोरता है, न उग्रता। केवल वात्सल्य है वहाँ।

अविद्याके कारण—अज्ञानवश जीव अपने तन-मनसे होनेवाले कर्मोको अपना मान लेता है। 'मैं कर्ता हूँ' यह माननेपर उसके सूक्ष्म शरीरमे—चित्तमे उन कर्मोके सस्कार पडते है। कर्मोके प्रवाहमे जब वह 'मैं कर्ता' करके खडा होता है, कर्ममल लगने लगता है उसे। जैसे गदे नालेके प्रवाहमें कोई हाथसे जलको गति देने लगे तो उसके हाथ गन्दे हो ही जाँयगे। इस कर्म-मलसे उसकी अपनी स्वच्छता ढक जाती है। फलत उसमे अशान्ति, दु ख आता है और यदि कर्ममल छुड़ाया न जाय—दु ख बढ़ता जायगा।

करुणावरुणालयको यह सह्य नही कि जीव दु खी रहे; मलिन रहे। अत वार-वार उसके प्रक्षालनकी—शुद्धिकी योजना उन्होने कर रखी है। सयमिनीके स्वामीका कर्तव्य जीवपर जो मल उसने स्वय लपेट लिया है, उसे देखकर उसको प्रक्षालित करनेका विधान करना है। कम-से-कम पीडा पहुँचे प्राणीको और वह इतना शुद्ध हो जाय कि कर्मभूमिमे जाकर अपने शेप मलोको स्वय शुद्ध कर ले और अपने अधीश्वरकी असीम अनुकम्पाका लाभ उठाकर अनादि अविद्याके अन्धकारसे निकल सके, सयमिनीमे केवल यह प्रयत्न होता है।

समाधिमे अहंकारका निरोध हो जानेपर भी जो रहता है, वह निर्विकार है। आवागमन सूक्ष्म शरीर समन्वित उस चेतनके आभासका ही होता है और अज्ञानसे होता है। अहकार ही व्यष्टिका भिन्न नही तो चेतन कैसे भिन्न होगा और एक अखण्ड निर्विकार चेतन है तो यह सृष्टिका सचालन ? यह करुणावरुणालय ? ये उसके विधान ?

श्रुति-पुराण सृष्टिमे त्रिविध पुरुपका वर्णन करते हैं। एक यह आध्यात्मिक पुरुष है जो सूक्ष्मग्राहिणी सूक्ष्म बुद्धिसे जाना जाता है।[1]

१. दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि । कठोपनिषत् १ ३ १२

यह अद्वय, निर्गुण, निराकार, निर्विकार परमब्रह्म ही ज्ञान गम्य है। श्रुति 'नेति-नेति' के द्वारा इसीका वर्णन करती है। जिज्ञासु-इसीको जानकर मृत्युको पार कर जाते हैं। 'तत्त्वमसि' 'अह ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यो द्वारा यही ब्रह्मात्मैक्य बोध सूचित है, क्योकि जब एक ही अद्वयतत्त्व है तो उसे 'अह' के अतिरिक्त दूसरे किसी रूपमे समझा नही जा सकता। समझनेवाला स्वय ही वह नही होगा तो तत्त्व एक नही रह सकेगा।

लेकिन यह जो आध्यात्मिक पुरुष है, वही आधिदैविक भी है। यह तो आधिभौतिक प्रपञ्च एव देहका व्यवधान इसकी यवनिका है जो दोनोको पृथक् करती है।[1]

आध्यात्मिक पुरुष तो सूक्ष्मग्राहिणी विशुद्ध बुद्धिसे ग्रहीत होता है किन्तु आधिदैविक पुरुष श्रद्धैकगम्य है और इसके अनुग्रहके बिना अध्यात्मतत्त्वका अनुभव भी नही होता।

जिसे तुम अपना आपा कहते हो, उसमे करुणा, दया आदि अनन्त गुण है। ये गुण देह एव मनके सन्निकर्षसे विकृत हुए रहते हैं, किन्तु ये हैं ही नही, ऐसा नही कह सकते।

प्रकृति अर्थात् स्वभाव और स्वभाव स्वयमे तो कोई तथ्य वस्तु नही है। स्वभाव किसीका होगा और जिसका होगा, वह निर्गुण कैसे होगा। अत वह निर्गुण-सगुण उभयरूप है। प्रकृतियुक्त-प्रपञ्च सचालक महेश्वर रूपमे सगुण, और प्रपञ्चातीत निर्गुण।

सृष्टिमे कभी कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जिसे कभी-न-कभी सङ्कट-की घडीमे यह अनुभव न हुआ हो कि उसे किसी अज्ञात शक्तिने सहायता करके बचाया है। इस प्रकार जो सदा, सर्वत्र, सबकी सहायता करता है, वह अकारण करुणासागर है, यह समझा जा सकता है।

पशु कैसे सोचता है, यह भले न जाना जा सकता हो, किन्तु उसका सोचना भी किन्ही संकेतोंके माध्यमसे ही सम्भव है और बाह्य चेष्टाके

---

१ योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुष सोऽसावेवाधिदैविक ।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय ॥ श्रीमद्भा २.१०.८ ९

विना मनमे जो सकेतोंके द्वारा चिन्तन होता है, उन्ही सकेतोका नाम शब्द है। इस शब्दके विना चिन्तन सम्भव नही और शब्दकी सृष्टि व्यक्ति नही कर सकता। शब्दको अर्थके सहित सृष्टिके आदिमे वह महेश्वर ही व्यष्टिके हृदयमे प्रकाशित करता है। [1]

भाषा-शास्त्रके मर्मज्ञ स्वीकार करते हैं—'भापा एक आन्तरिक साधन है जो अपने अर्थके साथ प्राप्त हुई।'

आनुपूर्वीसे—श्रवण-परम्परासे ही शब्दज्ञान प्राप्त होता है। पदार्थज्ञान—तत्त्वज्ञान भी ध्यान, समाधिसे प्राप्त होता है—हो सकता है; किन्तु शब्दज्ञान तो किसीसे पाना ही पडता है।

एक भी शब्दकी मौलिक सृष्टि सम्भव नही है और शब्दोके विना विचार-व्यवहार कुछ नही चल सकता। एक शब्द वोला जाय तो सुनने-वालेको या तो पहलेसे उसका अर्थ-वोध हो अथवा उसे पहलेसे जिन शब्दोका अर्थ-वोध है, उन शब्दोमें इस नवीन शब्दका अर्थ समझाया जा सके। यदि दोमें कोई ज्ञात न हो तो पदार्थ या क्रिया दिखलानी पडेगी जिसका वोधक वह शब्द है अन्यथा वह शब्द निरर्थक होगा।

सृष्टिके आदिमे आदिपुरुषको शब्दज्ञान कैसे हुआ? उसकी सन्ततिने क्या पदार्थ एव क्रिया दिखा-दिखाकर शब्द-सृष्टि की?—यह शक्य नही है। इतना शब्दविस्तार इस पद्धतिसे असम्भव है। पहिलेसे अन्य शब्द तव थे नही। मानसिक भाव सुख, दु ख, अहकार, स्नेह, घृणादिका इस प्रकार क्रिया दिखाकर नामकरण अशक्य है। एक सगुण सर्वसमर्थ परमप्रकाशक ही था जिसने उस आदि-मानवके हृदयमे एक साथ शब्द एव अर्थका प्रकाश किया और उस मानवसे सृष्टिमे शब्द तथा शब्दार्थ ज्ञानकी परम्परा आयी। आज भी शब्दज्ञान परम्परासे ही पाया जाता है। सृष्टिके मूलमे सगुण पर-मात्माको स्वीकार किये विना शब्दज्ञानकी परम्परा समझनेका कोई दूसरा मार्ग नही है।

ईश्वरकी कृपाका अनुभव है, शब्दज्ञानकी परम्परा है जो सगुण ईश्वरके विना नही मिल सकती और सृष्टिका वैविध्य है—यह सव कहता है कि वह अचिन्त्य, अनिर्वचनीय तत्त्व सगुण है और उसका निर्गुण रूप तो अनुभवगम्य है ही।

---

१ तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये (भागवत १ १ १)

सृष्टिमे इतना वैविध्य क्यो है ? परमब्रह्म परमात्मासे आत्माको पृथक् मानना—यह भेद भ्रम है, अज्ञान है और ज्ञानसे इसकी निवृत्ति हो जाती है, किन्तु ज्ञानसे भी प्रपञ्चके विविध रूपोकी प्रतीति नही मिटती। घट-मरावादि सब एक ही मिट्टीसे बने है, यह ठीक—किन्तु इनके आकारमे अनेकरूपता इसलिए तो है कि इनके निर्माता कुम्भकारमे अनेक सस्कार हैं।

अज्ञानमे वस्तुको विपरीत दिखलानेकी क्षमता तो है, किन्तु एक वस्तुको अनेक रूप दिखलानेकी क्षमता नही है। अज्ञानसे रस्सी सर्प, हार, दण्ड आदि जान पड सकती है, किन्तु एक ही रस्सी एक ही व्यक्तिको एक ही समय सर्प, दण्ड, माला आदि कई रूपमे नही दीख सकती। प्रपञ्चका आधार एक अद्वय परमब्रह्म है- और उससे अभिन्न आत्मा स्वय प्रकाश होनेसे प्रपञ्चको प्रकाशित करता है। अनन्तको सम्पूर्ण देखा नही जा सकता, इससे सान्त देखता है, यह ठीक, किन्तु विविधरूपता कहाँसे आती है ? इस विविधरूपताके मूलमे सगुण ईश्वर, उसके नित्यधामको माने विना उपाय नही है और श्रुति-शास्त्र इस सगुणतत्त्वका प्रतिपादन करते है।

सगुणतत्त्व—आधिदैविक पुरुष श्रद्धैकगम्य है। शास्त्रपर श्रद्धा करके ही उसे मानना पडता है और भक्तिके द्वारा उसकी उपलब्धि होती है।

भगवान वासुदेव मर्त्यशरीरी प्रतीत होनेपर भी सच्चिदानन्दघन विग्रह थे। श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमे न पञ्चमहाभूतोका लेश था, न उनमें स्थूल, सूक्ष्म, कारणदेहका भेद था। लोकमे लौकिक देह एव देह-व्यवहारकी प्रतीति उन लीलामयने अनुग्रहके कारण करायी। वे अनुग्रहवश लोकमे आविर्भूत हुए और अन्तमे लीला-सवरण कर ली उन्होने।



साकार तत्त्व

श्रीकृष्ण तो नित्य हैं। इस दृश्य जगतमे अपनी इच्छानुसार व्यक्त होते है और फिर स्वधाम पधारते हैं। भगवद्धामोकी सख्या कर पाना कठिन है। उन अनन्तके अनन्त धाम। शास्त्रोमें प्रमुख धामोका वर्णन है। धाम मायातीत है, चिन्मय है। वे अनेक होकर भी एक हैं, अभिन्न हैं। उनमे परमप्रभु अपने विभिन्न रूपोमे उन-उन रूपोके अनुरूप पार्षदो—परिकरोंके साथ विराजते और नाना क्रीडा करते हैं।

सत्ता है—यह सबपर प्रकट है और यह सत्ताका ही स्थूलरूप है जो प्रकृतिका तमोगुण कहा जाता है। प्रकृतिका अर्थ ही है स्वभाव। उस परमतत्त्वका स्वभाव है कि उसकी सत्ता स्थूलत्व ग्रहण करती है—पदार्थ वनती है। सत्ताका घनीभाव है पदार्थ। वह सत्ता जड नही है—चेतन है, उसका स्वभाव है प्रकाशित होना। वह प्रकाशित न हो तो पता ही कैसे लगे कि सत्ता है। प्रकाश, गति, उष्णता, जीवन, ज्ञान—ये एक चित्ताके ही अनेक रूप-विवर्त हैं। सत्ता जव स्थूल होती है तो पदार्थ बनती है और चित् तत्त्व तव उसमे गति, उष्णता, प्रकाश, जीवनके रूपमे व्यक्त होता है। सत्-चित् पृथक्-पृथक् हो नही सकते, क्योकि चित् यदि सत् नही होगा तो होगा ही नही। इस अभिन्नत्वके कारण सत्के घनीभाव पदार्थमे जडत्वकी भ्रान्ति होती है और तव लगता है कि गतिसे उष्णता, प्रकाश, जीवनादि व्यक्त हुए है। वस्तुत ये गतिके ही दूसरे रूप है और गति स्वयमे चित् है—ज्ञान है।

केवल अभिन्न सत्-चित् नही—वह आनन्द भी है। लेकिन सत्ता घनीभूत हुई तो वह आनन्दका आवरण वन गयी। आवरण ही जीव देख पाता है। उसे लगता है कि सत्ता ही अनावरित है। सत्ता ही सत्य है। इसी भ्रमसे जडवाद उत्पन्न होता है। वह भूल ही जाता है कि सत्ता ज्ञान से अभिन्न न होती तो अपना ही रहस्य-ज्ञान कैसे कराती। लेकिन ज्ञान अल्पावरित है और आनन्द प्राय पूर्णावरित है। इसका परिणाम है कि प्राय प्रत्येक मनुष्य अपनी समझको सर्वश्रेष्ठ मानता है—अपनेमे ज्ञान देखता है, किन्तु महापुरुषोको छोड दे जो अविद्याके आवरणसे बाहर हो चुके, तो शेष सब अपनेको सुखसे सदा दूर पाते है। अपने सुख, अपने भोग,

अपने आनन्दसे सब असन्तुष्ट है और सब आनन्दकी प्राप्तिके लिए अपने-अपने ढगमे व्यस्त है। यदि आनन्द हो ही नही तो सबकी व्यस्तताका अर्थ ? सुख पानेकी कल्पना—आशा सबको भ्रान्त किये है और वह सुख—आनन्द कहाँ है, इसके दिशा-निर्णयमें सब भटक गये हैं।

परमतत्त्व सच्चिदानन्द है और उसका यह स्वभाव है—यह प्रकृति है कि सत्ता तमस होकर, चित् रज होकर और आनन्द सत्त्व होकर जगतके रूपमे प्रतीत होते है। यही सत्त्व, रज, तम जब साम्यावस्थामे होते है तो प्रलयकाल रहता है और जब विषम होते है तो सृष्टि हो जाती है। यह अनादि परम्परा है।

वस्तुत सत्त्व, रज, तम घटते-बढते नही। घटकर जायँगे कहाँ और बढे गे तो आवेंगे कहाँसे ? रजस–चित्-प्रकाश जब शान्त, स्थिर हो जाता है तो सत्ता तम और सत्त्व—सुख शान्ति बनकर एकरस स्थिर हो जाता है। इससे क्रिया और रूप विलीन हो जाते है, इसीका नाम प्रलय है।

जब अचिन्त्य कारणसे कलात्माकी प्रेरणा पाकर चित् गति बनता है तो उसकी क्रियाके कारण सत्ता और सुखमे भी हलचल होती है। उनकी एकरूपता भंग हो जाती है। वे कही अधिक सघन और कही कम सघन होने लगते है। यह सघनता गतिके कारण स्थानान्तरित होती रहती है। सत्ता अधिक सघन हुई तो जड द्रव्य व्यक्त हो गये। सत्त्व-सुख आनन्द सघन हुआ तो देवलोकादि बने, मन, बुद्धि व्यक्त हुए, देव शरीर व्यक्त हुए चित्का सयोग लेकर। इस प्रकार सृष्टिमे नाना रूप एव क्रिया होने लगी।

यह नाना रूप और क्रिया निराधार नही है और न निराधार बन सकती। ऐसा होता तो सृष्टि सदा अनिश्चित रहती और इसमे साकारता, कर्म तथा कर्मभोगका कुछ अर्थ नही रहता। जैसे उस सर्वेश्वरकी प्रकृति है कि उसका स्वरूप सच्चिदानन्द ही सत्त्व, रज, तमके रूपमे व्यक्त होता है, वैसे ही उस त्रिगुणमयी प्रकृतिमे उसके अनन्तधाम, वहाँके रूप प्रतिबिम्बित होने लगते हैं और प्रतिबिम्ब सर्वथा बिम्बके अनुरूप हो, यह आवश्यक तो नही है। त्रिगुणोकी गति प्रतिबिम्बको गतिशील एव विकृत करती रहती है।

बिम्ब, बिम्बसे किरणे, किरणोमे प्रतिबिम्ब और जहाँ प्रतिबिम्ब पड़ा है, उस आधारकी गतिसे प्रतिबिम्बमें गति और प्रतिबिम्बके प्रकाश-से आधारका प्रकाशित होना, यह नियम जगतमे स्पष्ट है। मूल बिम्ब है भगवद्धाम, उनमे परमतत्त्वका सगुण-साकार स्वरूप, उनके परिकर,

पार्षद आदि। उनके प्रकाशकी किरणे है भावनाके स्तर; क्योकि धाम चिन्मय है। मनमे—प्रत्येक मनमे ये भाव गृहीत होते है। मन केवल उन भावोको व्यक्त मात्र करता है, जिस भावस्तरमे जब पहुँचता है। अतिशय चचल होनेके कारण वह विविध भावस्तरोमे घूमता रहता है।

स्थिर मानस अर्थात् एक भावस्तरमे स्थित मानस। तुम जानते हो कि किसी भावमे मन स्थिर हो जाय तो उसी भावके अनुरूप भगवदुपलब्धि हो जाती है। भगवानके रूप नित्य हैं, तो वे भावके अनुसार वनते नही। भाव—प्रत्येक भाव ही उन रूपोकी किरण है और जब मन एक भावमे स्थिर होता हे, उस भावका रूप व्यक्त हो उठता है।

जगतमे कोई कर्ता हो, नवीन कर्म करे, यह सम्भव कैसे हो सकता है। यहाँ जो भी रूप दीखते है, जो भी क्रिया होती है, वे तो नित्यधामकी प्रतिविम्व मात्र हैं—वहाँकी लीलाओका प्रतिविम्व मात्र—अवश्य ही इनमे प्रतिविम्वमें आधारकी गतिसे विकृति आयी है—विकृति आती रहती है।

नित्यधाम अनन्त हैं, अत दृश्यजगतमे उनमे-से कभी किसीका प्रतिविम्व आविर्भूत होता है, कभी किसीका तिरोभूत होता है। इससे कल्प-कल्पमे सृष्टिमे कुछ वैभिन्य रहता है और एक कल्पमे भी युगोंके परिवर्तन होते रहते है, लेकिन तुम जानते ही हो कि श्रुति कहती है—

धाता यथापूर्वमकल्पयत्।। (ऋग्वेद मं १०. सू १९० म ३)

सृष्टि अधिकाशमे पूर्व कल्पके समान ही रहती है और युगोमे, मन्वन्तरोमे, इनके प्रधान सचालकोमे ही नही, उनकी आकृतियो, गुणो, क्रियाओमे भी प्राय पूर्व कल्पका सादृश्य वर्तमान रहता है।

जो निर्गुण, निराकार, अवाड् मनसगोचर, अद्वयतत्त्व है—वही अपनी अचिन्त्यशक्तिसे विविध सगुण साकार चिन्मय धामो, उनके अधिष्ठाता, परिकर, पार्षदादि रूपोमे व्यक्त हो रहा है। यह उसकी प्रकृति है कि वही अपने सच्चिदानन्द रूपको सत्त्व, रज, तम रूपसे व्यक्त किये है और इसमे कालरूपसे स्थित होकर कभी गुणोकी साम्यावस्था प्रलय प्रकट करता है और कभी वैपम्यावस्था सृष्टि प्रकट करता है। सृष्टिकालमे वे चिन्मय अनन्त धाम इसमे प्रतिविम्बित होकर नाना रूपोमे दीखने लगते हैं। यही जगतका आधिभौतिक रूप है। इनमे जो प्रतिविम्व है, वह अधिदैव है और दिव्य धाम अध्यात्म है। विम्वसे प्रतिबिम्व अभिन्न

है, अत जो अध्यात्मपुरुष है, वही अधिदैव पुरुष है। दोनोमे पार्थक्य तो स्थूल जगत—स्थूल जगतकी आसक्तिने उपस्थित किया है।

केवल अविद्यासे—अज्ञानसे हुए भ्रममे—विवर्तमे इतनी अनेकरूपता सम्भव नही है और न अज्ञानजन्य विवर्त कल्प-कल्पमे सृष्टिमे सादृश्य रख सकता है।

कर्म तो स्वत हो रहे है। कह सकते हो कि अपने नित्यधामोमे विविध रूपोसे वह लीलामय जो लीलाएँ कर रहा है, वही इस प्रकृतिमे प्रतिविम्बित हो रही है और यहाँ जो विकृति उन रूपो और लीलाओमे आ जाती है, वह भी अकस्मात् या अनिश्चित नही है। उसका भी सुनिश्चित क्रम है, क्योकि प्रकृति भी तो उसीकी है। वही तो इसका सचालक-नियन्ता है। अत कल्प-कल्पमे सृष्टिमें प्राय सादृश्य रहता है।

'मैं कर रहा हूँ' इस अज्ञानजन्य अहताके कारण जीव कर्ममलसे युक्त हो जाता है और यही उसके इस ससार-चक्रमे भटकनेका कारण है। अविद्या अनादि है, अत जीवका यह भटकना भी अनादि है, किन्तु इसका अन्त है। अज्ञानका स्वभाव ही है कि वह अनादि होता है और ज्ञान होनेपर मिट जाता है।

इस अनादि अविद्याको दूर कर देनेके उपायोका नाम है साधन। सच यह है कि वह लीलामय सर्वेश्वर ही अनुग्रह करता है—किसीको अपनाना चाहता है तो उसकी प्रवृत्ति साधनकी ओर होती है।

'मैं कर्ता हूँ' इस अहकारसे जीव अशुभ कर्मोसे ही लिप्त नही होता, शुभ कर्मोसे भी लिप्त होता है और शुभ कर्मोके उपलेप या पुरस्कार है सुख-भोग, किन्तु जब यह शुभ कर्मोका उपलेप बहुत अधिक हो जाता है, सत्त्वगुण बहुत आ जाता है, स्वभावत उसमे शान्ति, सयम, प्रकाश आ जाता है और तब सर्वेश्वर अनुग्रह करके उसे साधनकी ओर उन्मुख कर देता है।

प्रत्येक जीव परमात्माका अश है। अन्त करण समन्वित आभास जीव है और आभास तो उस परम प्रकाशकका ही है। अन्त करण और देह भी प्रतिविम्ब है किसी नित्यधाम स्थित स्वरूप विशेषका। अत अपने मूल विम्बको पहिचान लेना ही जीवका परम पुरुषार्थ है। यह ज्ञान ही उसे इस आवागमनके कर्तव्यके भ्रमसे मुक्त कर देता है।[1]

---

१ ऋते ज्ञानान्न मुक्ति। (शाङ्कर सम्प्रदायमे यह बहुत प्रामाणिक श्रुति मानी जाती है, किन्तु मन्त्र-सहिताओंमे तथा प्राप्त आरण्यको एवं उपनिषदोंमे कहीं मिलती नहीं।)

नित्यधाम असख्य हैं और असख्य रूपोंमें वही एक चिन्मय तत्त्व क्रीडा कर रहा है। अत अपने उस मूल बिम्ब तक पहुँचनेके साधन भी असख्य हैं। अवश्य ही इन साधनोका वर्गीकरण है। देह, भावना और ज्ञान—ये तीन मूलाधार मनुष्यके पास हैं और इन तीनोके माध्यमसे—तीनमे-से किसी एक को माध्यम बनाकर मनुष्य अपना प्राप्तव्य पा सकता है।

देहको माध्यम बनाकर योग होता है। निष्काम कर्मयोग, अष्टागयोग, लययोग आदिमे प्रमुख माध्यम है शरीर और भावना तथा बुद्धि उसके सहायक बने रहते हैं। वृत्ति-निरोध—मन सर्वथा कर्तृत्व-शून्य होकर स्थिर हो जाय। अन्त करणमे गति और प्रतिबिम्ब कुछ न रहे। अब हुआ यह कि जीव तो स्वरूपसे ही परमब्रह्म था। वृत्तियोंसे आयी विकृति नष्ट हुई तो वह स्वरूपसे स्थित हो गया। उसका निर्वाण हो गया। उसका प्रतिबिम्बत्व भग हो गया। वह निर्गुण, निराकार तत्त्वसे एक हो गया।[1]

बुद्धिको—विवेकको माध्यम बनाकर बुद्धिप्रधान साधक चलता है। यह ज्ञानयोग भी राजयोग कहा जाता है, क्योकि इसमे शम-दम, उपरति-तितीक्षा, श्रद्धा-समाधान परमावश्यक हैं और इनके साथ विवेक, वैराग्य अनिवार्य रूपसे सहचर हो तब मुमुक्षा श्रवण किये तत्त्वके मननमे प्रवृत्त करके सशयको और उसमे स्थित होकर निदिध्यासन बनकर विपर्ययको मिटाती है। चित्त लय एव विक्षेपसे रहित होता है। ऐसी अवस्थामे ब्रह्माकार वृत्तिका उदय होकर अविद्या-निवृत्त होती है।

जिनमे बहुत सुदृढ वैराग्य है और बुद्धिकी प्रधानता है, स्वरूपत. जो त्यागपरायण हैं, वे ज्ञानके अधिकारी हैं, किन्तु जो कर्मासक्त है—कर्म किये बिना, सग्रह किये बिना रह नही सकते, उन्हे योगका मार्ग अपनाना चाहिए। क्रियाका प्राधान्य उन्हे मुक्त करेगा।

जो दुर्बल है, किन्तु छूटना चाहते हैं—आसक्ति कम है, पर भोगो-को, विषयोको छोड नही पाते हैं, वे भक्तिके अधिकारी हैं। दुर्बल असमर्थको ही तो समर्थ सहायककी आवश्यकता है। ऐसे लोग अभागे हैं यदि उनमे भावना नही है। वे न योगके अधिकारी हैं, न ज्ञानके, क्योकि उनमे स्वय चलनेकी शक्ति नही और बिना श्रद्धाके, बिना विश्वास और

१ यदा न लीयते चित्त न च विक्षिप्यते पुन ।
अनिङ्गनमनाभास निष्पन्न ब्रह्म तत्तदा ॥
(श्रीगौड़पादाचार्य माण्डूक्यकारिका अद्वैत प्रकरण ४६)

भावना के दूसरे समर्थ-अदृश्यका करावलम्ब उन्हे कैसे मिल सकता है। भटकते रहना ही उनकी नियति है।

मुख्य वात है देहासक्ति—परिच्छिन्न देहमे ममत्वका उच्छेद। साधन मात्रका यही परमप्राप्य है। योगके द्वारा वृत्ति-निरोध होकर स्वरूपावस्थान तभी होगा जब यम-नियम सम्यक् पूर्ण हुए हो और तव धारणा ध्यानमे वदली हो। ज्ञान ब्रह्मात्मैक्यवोधमे तभी समर्थ होता है जब पहले प्रवल वैराग्यने सम्यक् त्यागका रूप ले लिया हो। तभी देहासक्तिका पाश कटता है।

जो स्वय पाश-छेदनमे समर्थ नही है—उन्हे पाशछेत्ताकी सहायता चाहिए।[1] वह अनन्त करुणावरुणालय सदा प्रस्तुत है सहायता देनेको; किन्तु उसकी भी एक प्रकृति है। वह परायेका पाश-छेदन नही करता। केवल अपनोका पाश-छेदन करता है।

यह ठीक है कि उस सर्वरूपमय, सर्वेश्वरका पराया कोई नही है। सव उसके अपने है। सव वह स्वय है, किन्तु वह स्वरूपत तो निर्गुण है। उसमें तो तुम्हारे दिये गुण प्रतिफलित होते हैं। वह सगुण अपने गुण तुम्हे देता है और स्वय निर्गुण वन गया है। तुम उसे जो गुण दो—वह गुण लेकर वह पुन तुम्हारे लिए वैसा सगुण वन जायगा।

जीवमें भावना होती है तो उसकी दुर्वलता भी धन्य हो जाती है। भावनासे वह भगवानको अपना वनाता है और भगवान तो उसके अपने हैं ही। वे भावनाको स्वीकृति देते है।

भावना कहाँ की जाती है। भावस्तर हैं और मन जिस भावस्तरमे होता है, उसके अनुसार भाव उठते हैं। वस्तुत जो प्रतिविम्व नित्यधाममे जिस रूपमे है, उस भावमे जव उसका मानस पहुँचता है—उस भावका जागरण अन्तरमे होता है तो वही मन स्थिर होता—दृढ होता है। अपने नित्य स्वरूप, नित्य सम्वन्धका वोध होता है उसे।

ऐसे भावप्राणजनोके साथ क्रीडाका आनन्द लेने, उनकी भावनाको सफल करने वह लीलामय नित्यधामसे धरापर अवतीर्ण होता है। वार-वार युग-युगमे अवतीर्ण होता है। भगवद्भक्तोकी भावना उसे यहाँ आनेको विवश करती है।

—×—

१. घृणा लज्जा भय शोको जुगुप्सा चेति पञ्चमम्।
कुल शील तथा जातिरष्टौ पाशा प्रकीर्तिता॥
पाशबद्ध पशुर्ज्ञेय पाशमुक्तो महेश्वर.॥
(कुलार्णवतन्त्र १३, ६६-७०)

अवतार तत्त्व

अवतार किसका होता है ? किस भगवद्धामसे होता है ? जब जीव और जगत-प्रकृति भी परमात्मा ही बना है—ये दोनो भी उसीके रूप—स्वभाव हैं तो सभी तो अवतार हैं। इसमे विशिष्ट ही अवतारका क्या अर्थ ?

सम्पूर्ण दृश्य सच्चिदानन्दघन भगवत्स्वरूप ही है, यह सत्य होनेपर भी जैसे व्यवहारमे जड़-चेतनका, पशु-पक्षी, कीट-पतग और मनुष्यका तथा मनुष्योमे सत्-असत्का, ज्ञानी-अज्ञानीका भेद होता है, ऐसे ही सामान्य जीवका और अवतारका भेद होता है और अवतारोमे भी अन्तर होता है।

जब सत्ता घनीभूत होकर तमोगुणी बनी और सृष्टि कालमे प्रकृतिमे गुणोके वैषम्यसे जड-चेतनका भेद हुआ तो कहाँ-कितनी चेतना अभिव्यक्त हो रही है, इस तारतम्यको देखना ही पड़ेगा। जहाँ चेतनाके व्यक्त होनेका कोई चिह्न नही है, उसे जड द्रव्य कहते हैं। सम्पूर्ण विशुद्ध चेतनको षोडश कलापूर्ण कहा जाता है। यह कलाकी कल्पना चेतनमे उसके व्यक्त होनेके तारतम्यको सूचित करनेके लिए की गयी है। वस्तुत. तो चेतन निष्कल है उस अद्वय परमतत्त्वमे कलाकी कल्पना जगतको लेकर ही की जाती है।

तृणसे तरु पर्यन्त उद्भिज पदार्थोमे चेतनकी एक कलाका जागरण है। अत ये अन्तश्चेतन कहे जाते है। वैसे इनमे भी आहार-ग्रहण, निद्रा तथा स्नेह-द्वेषके प्रभावको ग्रहण करनेकी क्षमता होती है।

जहाँ केवल अन्नमय कोशका विकास है वे उद्भिज एक कलायुक्त है। दो कलायुक्त वे प्राणी हैं जिनमे प्राणमय कोशका भी विकास है, वे स्वेदज जीव सक्रिय होते है। तीन कलाका विकास उनमें है, जिनमे मनोमय कोश जागरण पा चुका है, ये अण्डज प्राणी सकल्प-विकल्प भी करते हैं। पिण्डजोमे विज्ञानमय कोश भी प्रकट हो जाता है, अत इनमे चार कलाका विकास कहा जाता है, ये प्राणी बुद्धिका उपयोग करते देखे जाते हैं।

जरायुज—केवल मनुष्य है जिसमे आनन्दमय कोश भी विकसित है। केवल मनुष्य ही अपना आनन्द हास्यके द्वारा व्यक्त कर सकता है और विना दैहिक चेष्टाके आनन्दानुभव कर सकता है। दूसरे प्राणी शान्त रहेगे अथवा दैहिक चेष्टासे अपना आनन्द व्यक्त करेगे। सामान्य मनुष्यो—वन्यमानवो तथा निम्नवर्गमे चेतनका पाँच कला विकसित रहती है। पशु-प्राय होनेपर भी वे पशुसे कुछ अधिक तो होते ही हैं।

मनुष्य ही कर्मयोनि है। दूसरे सव प्राणी भोगयोनिके प्राणी हैं। वे करते हैं—भोगते हैं। किन्तु 'मैंने यह किया' इस सस्कारका भार नही ढोते। मनुष्य ही इस कर्तृत्वके अहकारको ग्रहण करके सस्कार-भार सग्रह करता रहता है।

मनुष्योमे वुद्धिका, भावनाका, प्रतिभाका तारतम्य तुम देखते ही हो। यह इसलिए है कि मानवमे पाँचसे आठ कला तक चेतनकी अभिव्यक्ति हो सकती है। छ कला सामान्यत सुसस्कृत मानव समाजमे होती है। सात कलाका विकास होनेपर मनुष्यमे विशेष प्रतिभादि दीखती है।[1] ये समाजमें सर्वसामान्यकी अपेक्षा विशिष्ट पुरुप होते हैं और आठ कला विकास प्राप्त करनेवाले लोकोत्तर महापुरुप कहे जाते है। ये धरापर यदा-कदा दीखते हैं।[2]

पार्थिव देह आठ कलासे अधिकका प्राकट्य सह नही सकता। वैसे आठ कला के प्राकट्यसे ही पार्थिव देहमे दिव्यता आ जाती है और नौ कलाका विकास कारक पुरुपोमे होता है।

सप्तर्पिगण, मनु, मनुपुत्र, अधिदेवतावर्ग, प्रजापतिगण, लोकपाल प्रभृति या कल्पस्थायी दिव्यदेह, सामान्य पार्थिव देहसे पार्थक्य रखते हैं।

धर्म, तप, योगकी शक्ति अनन्त हे और ऐसा कोई नियम नही है कि मकाम या तामस प्रकृति व्यक्ति काल-विशेपमे धर्माचरण, तप या योग नही कर मकेगा। फलत सृष्टिमे वार-वार यह होता है कि असुर तपसे अतिशय शक्ति सम्पन्न हो जाते है, अथवा कोई मानव तपमे, धर्मंमे, आराधनामे

१ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ गीता १०—४१

२. ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजस.।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥ भागवत—१.३.२७

लग जाता है और अपनी रक्षासे भी उदासीन हो जाता है। अथवा कोई विशुद्ध तत्त्व भाग्यवान परमतत्त्वके प्रत्यक्ष साकार दर्शनका आग्रह कर लेता है।

सृष्टिकी मर्यादाका अतिशय अतिक्रमण होने लगे तो व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए, किसी धर्मात्मा, तपस्वीपर सकट आया हो और उसके निवारणका अन्य मार्ग न हो तो उसके रक्षणके लिए और भक्तिप्राणजनोकी भावनाको सार्थक करनेके लिए अवतार होता है।

अनेक बार ऐसा होता है कि तप अथवा वरदानके प्रभावसे कोई असुर देव-शक्तिके लिए अदम्य हो जाता है। जब भौतिक एव आधिदैवत शक्तियाँ असमर्थ हो जायँ, सृष्टिकी रक्षाका जिनपर दायित्व है, उन भगवान् विष्णुको अवतार लेना पडता है।

अनेक बार ऐसा होता है कि किसी तपस्वी, धर्मात्मा या आराधकपर आये संकटको सकल्प करके या देवशक्तियोंके माध्यमसे दूर करना सम्भव भी हो तो भी अतिशय वात्सल्यवश परमप्रभु स्वय प्रकट होकर सकट-निवारण करते हैं।

जब कोई भावप्राण हठ कर लेता है—'मुझे तो सर्वेश्वरको पुत्र, पिता, सखा या पति बनाना है और यही इसी जगतीमे बनाना है'-सर्वेश्वर-के पास यहाँ आनेके अतिरिक्त और क्या उपाय रह जाता है? भक्तिका-प्रेमके पाशका बन्धन उन सर्वशक्तिमानके लिए भी उपेक्षणीय नही है।

धरा एक साथ ऐसे बहुत अधिक भक्तोके पावन-पदोसे कृतार्थ होती है। एक ही प्रेमी-प्राण पुकारे तो जो दौडा आनेको विवश हो जाता है, उसका आविर्भाव रुक कैसे सकता है जब धरापर एक साथ भक्तोका समुदाय ही कभी आविर्भूत हो जाय।

आकस्मिक अवसरोंपर प्राय दस या ग्यारह कलाका आविर्भाव होता है। ऐसे अवतार सहसा प्रकट हो जाते है और जिस कार्यके लिए प्रकट हुए--उसको सम्पन्न करके तिरोहित हो जाते है। मत्स्य, कूर्म, वाराह नृसिंहादि तथा भक्तोको दर्शन देनेके लिए प्रकट रूप ऐसे ही होते हैं।

नौ कलाका विकास ही दिव्य देहमे हो पाता है और दस या ग्यारह कला जहाँ प्रकट हो, वहाँ तो पचभूतका लेश भी नही रह जाता। वहाँ सूक्ष्म-स्थूल देहका भेद नही होता। वह चिन्मय वपु होता है, अत उसका

आकार चाहे जब जैसा बदल सकता है। जैसे भगवान वामन विराट हो गये। इन दिव्य देहोमे वस्त्राभरण, आयुधादि भी दिव्य होते है।

ग्यारह कलासे ऊपर प्रकट होती हो तो प्रभ फिर सम्पूर्ण मानव-चरित प्रकट करते हैं। वे शिशुलीलासे प्रारम्भ करते है और दीर्घकाल तक धरा उनके चरणस्पर्शसे धन्य होती है। पूर्णावतार—श्रीराम और श्रीकृष्णके पूर्णावतार ऐसे ही हुए।

अशाश अवतार मरीचि आदि ऋषि-प्रजापति, अशावतार ब्रह्मा, नारदादि, आवेशावतार परशुराम, पृथु आदि, कलावतार कपिल, वामन, वाराह प्रभृति और पूर्णावतार श्रीराम, श्रीकृष्ण। इनमे कुछ नित्यावतार है, प्रत्येक युगमे, कल्पमे वे होते ही है, जैसे ब्रह्माजी, सृष्टि जब होगी प्रारम्भमे प्रकट होंगे और सृष्टि पर्यन्त रहेगे। कुछ युगावतार हैं; जो निश्चित युगोमे होते ही हैं, क्योकि सृष्टिका विधान ही ऐसा है कि वह कल्प-कल्पमे प्राय समान चलती है, अत युग-युगमे प्रायः समान समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं और यह सुनिश्चित है कि उनका समाधान श्रीहरि कब किस रूपमे अवतरित होकर करेंगे।

परिपूर्णतम परमेश्वर तो परम स्वतन्त्र है। सृष्टि और सृष्टिके विधान उसे परवश नही करते। वह केवल तब प्रगट होता है, जब भावुक भक्तोका प्रेमाग्रह उसे विवश करता है।

जैसे श्रीकृष्णावतार वर्तमान कल्पमे सत्ताइस चतुर्युगी व्यतीत हो जानेपर अट्ठाइसवें द्वापरके अन्तमे हुआ।

नौ कलाके कारक पुरुषोमे तो शक्तिका तारतम्य होता है, किन्तु दस कलासे पूर्णावतार तक चिन्मय वपु है। उनमे कोई तारतम्य नही हैं। उनमे कलाकी तारतम्यकी कल्पना केवल इसीलिए की जाती है कि प्रयोजनानुसार जगतमे शक्तिका प्राकट्य उनमे दीखा। अन्यथा वे एक-ही के प्रादुर्भाव हैं।

सृष्टिके पालनका दायित्व भगवान् विष्णुका है—ब्रह्माण्डाधीश, क्षीराब्धिशायी का। अत अधिकाश अवतार उनके ही अश माने जाते हैं।

चिन्मय वपु अनित्य नहीं हो सकता। अनन्त दिव्यधाम है और वहाँ एक ही तत्त्व विविध रूपोमे क्रीडा कर रहा है। ब्रह्माण्डमे उन धामोमेसे कुछ प्रतिफलित होते है। ये वाराह, नृसिंह, मत्स्य, कूर्मादिके लोक है और उन-उन लोकोसे ये अवतार होते हैं, किन्तु इनमे ब्रह्माण्डनायक श्रीनारायणका ही तेज है, अतः ये उनके ही अंग कहे जाते हैं।

भक्त समूहको या किसी भक्त विशेषको कृतार्थं करने—उसकी भावनाके अनुरूप दिव्यधामसे स्वयं परात्पर प्रभु भी प्रेम-परवश पधारते हैं। वे दर्शन देकर अन्तर्हित हो जायेंगे या सम्पूर्ण लीला व्यक्त करेंगे, यह तो वे जिनके प्रेम-परवश पधारे हैं, उनकी भावना पर निर्भर है, किन्तु वे कब आवेंगे, कब तक रहेंगे धरापर व्यक्ति रूपमे, इसका कोई नियम नही बन सकता। अनेक बार उनके आविर्भावके समय भगवान्‌विष्णु उनमे एक होकर प्रकट होते है और धर्म-स्थापन, असुरदमनका कार्य वे उनसे एक रहकर या यहाँ पृथक् होकर भी सम्पन्न करते है।

केवल एक बात और इस सम्बन्ध मे यह कि सर्वेश्वर वस्तुतः भौतिक धरापर आते नही। वे केवल यहाँ अपने को व्यक्त करते हैं और तब उनका नित्यधाम उनके परिकरादि भी व्यक्त हो जाते हैं।

वस्तुत तो यह धरा है ही सृष्टिकर्ताके मानसमे ओर सृष्टिकर्ता स्वय भगवान् नारायणकी नाभि कमलपर स्थित है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड सगुण परमेश्वरके सकल्पमे ही उदय-विलय होते हैं। अपने सकल्पके इस जगतमे अपनेको, अपने नित्यधामको परिकरो सहित कभी वह लीलामय व्यक्त कर देता है और कभी तिरोहित कर लेता है।



दसावतार

वैसे तो असख्य अवतार है परमप्रभुके , किन्तु उनमे चौबीस मुख्य गिने जाते है और उनमे भी दस प्रमुख हैं। ये दस न युगावतार हैं और न कल्पावतार। ये किमी-किसी कल्पमे होते हैं। जैसे ब्राह्मकल्पसे अब तक वाराहावतार दो बार हुआ--नीलवाराह पाद्मकल्पके प्रारम्भमे और श्वेतवाराह वर्तमान कल्पके प्रारम्भमे। मत्स्यावतार चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमे प्राय होता है। नृसिंहावतार भी अव तक केवल एक वार हुआ है।

इन प्रमुख दसावतारोमे प्रथम वाराहावतार है। जलमग्न पृथ्वीका उद्धार करनेके लिए यह अवतार हुआ , क्योकि मनुकी सन्तान-परम्परा पृथ्वीपर ही बढ सकती थी।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनो सगे भाई हैं। स्वर्णपर इनमेसे एककी दृष्टि लगी रहती है और दूसरा स्वर्णकी शैय्या वनाकर सोता है। लोभके ये दो रूप--एक 'हाय धन ! हाय धन !' करता सग्रहको भटकता फिर रहा है। सर्वत्र सघर्ष करता है। समुद्र तकको मथता है और पूरी पृथ्वीको छीनकर अपनी वनानेको आतुर है। यह हिरण्याक्ष है। हिरण्यकशिपु है कि त्रिलोकीके भोग-ऐश्वर्यको दवाये वैठा है। 'जो कुछ कही है, मेरा है। जो कोई उपार्जन करे--उसमे मुझे भाग न दे तो दण्डनीय। मुझे व्यय नही करना है।'

हिरण्याक्ष--धनपर ही दृष्टि रखनेवाला और धनके लोभमे सवसे सघर्ष करनेवाला अन्तत श्रीहरिसे टकरायेगा ही , क्योकि उसे तो युद्ध चाहिए। युद्ध-पिपासु है वह। युद्धके विना उसकी असीम स्वर्ण-सग्रहकी भूख कैसे मिट सकती है।

वाराह भगवान यज्ञपुरुष हैं 'यज्ञो वै विष्णु ', वे यज्ञमूर्ति ही हिरण्याक्षको मार सकते हैं। वे ही धराका उद्धार कर सकते हैं। जलमग्न-रग , भोगमग्न लोभ जव भूल ही जाते है कि पृथ्वीकी चिन्ता किये विना उनकी स्वयकी सत्ता नही रहेगी , धन लोलुप युद्धोन्माद उत्पन्न करते घूमते हैं--धरित्रीकी सत्ता ही सन्दिग्ध हो जाती है तो भगवान यज्ञपुरुष यज्ञमूर्ति वाराह वनकर धराका उद्धार करते हैं।

यज्ञ--सर्वजनहितैपिता हृदयमे आवे तो लोभ अथवा सघर्ष टिकेगा ? सघर्ष तथा लोभकी शत्रुता है सर्वहितसे।

सर्वहित रूप यज्ञ तो वाराह है। उसे मच मलिनता ओढनी

पडती है। उसे सम्पूर्ण मल स्वच्छ करना है और सबकी निन्दा, सबके आपेक्षको अपना लेना है बिना प्रतिकार किये। वह सम्पूर्ण धरित्रीका उद्धारक है और वस्तुत वही धराका स्वामी है।

लेकिन वाराहका पृथ्वीसे संयोग होनेपर दो पुत्र होते है--मगल और नरक। मगल--कल्याण, किन्तु वह युद्धका देवता है। देवता है, असुर नही। सवर्प-आन्तर एव वाह्य असत् तत्त्वसे सघर्प किये विना मगल कैसा ?

नरक--भगवत्पुत्र नरक ? नरक धरापुत्र है। पृथ्वीपर किये कर्मोंसे ही नरककी भी सृष्टि होती है। भगवान वाराहकी दाढोंपर स्थित धरादेवी जब भगवानको न देखकर अपना पीछा करते दैत्यको भयभीत होकर देखती है तो भगवत्सगमे होनेवाला पुत्र भी नरक होता है। भगवानकी ओरसे दृष्टि हटाकर भौतिक भयो पर ही दृष्टि रहेगी तो धरा नरकको उत्पन्न करेगी।

सम्पूर्ण ऐश्वर्य--प्रभुत्वपर शासन स्थापित करके जो स्वय सबका सेव्य बन गया है, उसका दमन सामान्य नर तो नही कर सकता ! उसका दमन तो नरसिंह ही करेगा।

सत्पुरुपोकी उपेक्षा ही नही--स्वजनो, प्रियजनोको पीडा देनेका व्यसन होता है लोभमें। जो मेरी न माने, वह मेरा शत्रु--धनमदका यह उन्मत्त रूप है और जव यह इतना उन्मद हो जाय, सज्जन-सत्पुरुष तो चुपचाप सहन ही कर सकते हैं, किन्तु नृशस मदमत्तका हृदय-परिवर्तन सत्याग्रह नही कर पाता। उसका तो दमन करना पड़ता है और दमनमे स्वय कुछ पशुत्वकी स्वीकृति तो है ही, भले उसमे सम्यक् सद्भाव--मनुष्यत्व भी हो।

तृतीय प्रमुख अवतार है कच्छप। क्षीरोदधि मन्थन करके अमृत निकालना था देवता और असुरोको मिलकर और मन्दराचलको धारण किया श्रीहरिने इस कच्छप रूपसे।[1] कच्छप दीखते नही, वे जलमे अदृश्य रहते है। दीखता था उनकी पीठपर स्थित जलसे ऊपर उठा मन्दराचल और समुद्र-मन्थनसे हलाहल तथा अमृत दोनो निकलते है।

१--हिरण्याक्ष-वध वाराहने किया तब प्रह्लाद पैदा नहीं हुए थे। प्रह्लादकी रक्षाके लिए नृसिंहावतार हुआ। समुद्र-मन्थनके समय असुरोके अग्रणी दैत्यराज बलि थे। ये प्रहलादके पौत्र थे। समुद्र-मन्थनके पश्चात देवासुर संग्राम हुआ। उसके बाद--बहुत बाद बलिसे वामनने भूमि-दान लिया। यह क्रम है अवतारोका।

सर्वाधार प्रभु दीखते कहाँ हैं। समस्त प्रयत्नोके वही आधार हैं ; किन्तु दीखता है प्रयत्न अथवा प्रयत्नका माध्यम यह देह रूप महामन्दर जो श्वासके सर्पसे बँधा घूम रहा है। देव और आसुर वृत्तियाँ इसे घुमाकर मन्थन कर रही हैं कि अमृत-आनन्द निकलेगा ! निकलता है विष— दुःख और मृत्यु। भगवान शिव—कल्याणकी कामना, वैराग्य इस विषको पीले और स्वयं श्रीहरि मन्थन करें—वे ही हृदयमे बैठकर अपना आश्रय दे तो अमृत निकले और वे ही कृपा करे तो सुखसे आसुरता पुष्ट न हो, सद्वृत्तियाँ अमृत पावें।

यह कथा मूल रूपमे भी आधिदैवत जगतकी है। इस धरापर घटनेवाली यह घटना नही है। अमृत-मन्थनमे दैत्योंके जो अग्रणी थे, उन बलिके स्वर्गाधिपत्यको समाप्त करनेके लिए वामनावतार हुआ।

बलि यज्ञ कर रहे थे, धर्मात्मा थे और ब्राह्मणो—सत्पुरुषोंके भक्त थे। उनमे संयम, श्रद्धा, उदारता—सब सद्‌गुण थे। उन्हे छलसे पदच्युत किया स्वयं श्रीहरिने !

उन करुणावरुणालयकी कृपाकी सीमा नही है। वे इतनी महान कृपा भी करते हैं।

बलिमे सब सद्‌गुण थे, किन्तु दो महान दोष थे—एक उनका संग असुरोका था। वे असुरोंके पोषक, समर्थक थे और असुरोंके अपकर्मोको उनमे प्रोत्साहन मिल रहा था। दूसरे उन्होंने अपने बलसे (भले वह धर्म-बल हो) असमयमे दूसरेका स्वत्व—इन्द्रका पद बलपूर्वक छीन लिया था। समर्थ होते हुए भी सौ अश्वमेध करके उसके फलकी प्राप्तिके लिए समयकी प्रतीक्षा करनेको प्रस्तुत नही थे।

इन्द्रका स्वत्व था स्वर्ग। इन्द्र शतक्रतु थे और उनके कर्मके फलोदयका काल था। उनसे उनका अधिकार बलिने बलपूर्वक छीना था और यज्ञ करके उस छीने अधिकारपर जमे रहना चाहते थे। बलिमे अहं प्रबल था और धर्मका अभिमान भी तो स्वयंमे बड़ा दोष है।

कितना भी बड़ा धर्मात्मा हो, उसमें अहं बढ़ेगा तो उसका पतन होगा। धर्माभिमान बढ़नेपर धर्म भी आसुरताका आश्रय बन जाता है और उसमे परस्वापहरण होने लगता है। तब सृष्टिके संचालकको हस्तक्षेप करना पड़ता है।

बलि धर्मात्मा थे, दानी थे, विनयी थे। धर्मपर स्थित व्यक्तिके साथ

ईश्वर भी बलप्रयोग नही करता । भगवान भी उनके सामने वामन बनकर आता है और याचना ही करता है। बलिके अहने उन्हे बन्धनका पात्र बनाया और वामनने विराट बनकर सूचित किया कि धर्मका-धर्मात्माका सम्मान वामनको विराट बना देता है ।

बालक खिलौनोसे खेल रहा था और वह भी भाईके बलपूर्वक छीने खिलौनोसे । माताने उसे पुचकारा, बहलाकर खिलौने लेकर धर दिये— भाईको खेल लेने दे ! तुझे कुछ देर बाद दे दूँगी । और बच्चेको गोदमे बैठा लिया । मातामे यह वात्सल्य जगा था या निष्ठुरता ?

बलिका कोई धर्म उन्हे न भगवद्भक्ति दे सकता था, न श्रीहरिका सान्निध्य । धर्मका फल भगवान नही है । उन करुणासिन्धुने बलिका दोष— उनका अह नष्ट किया, भक्ति दी । बलिके द्वारपाल बने और लिया क्या ? जो स्वर्ग बलिसे लिया—वह तो बलि को अगले मन्वन्तरमे स्वय देने वाले हैं ।

इस वैवस्वत मन्वन्तरसे पूर्व चाक्षुप मन्वन्तरके अन्तमे जल-प्रलय होनेपर मत्स्यावतार हुआ । यह अवतार सृष्टिके प्राणि-पदार्थोका बीज तथा मनु एव सप्तर्षियोको सुरक्षित रखनेके लिए तथा वेदोद्धारके लिए हुआ था । इतनी ही कथा है सक्षिप्त रूपमे ।

यह कथा अधिभूत जगतमे तो होती ही है, अध्यात्मजगतमे बार-बार घटती है । यह मानवके पुनर्जन्मकी कथा है । प्रलयमे—निद्रामे मनुको— जीवको, ऋपियो—इन्द्रियोको और सस्कारोको कौन बचाये रहता है ? उस निद्राके सुखमें कौन इनको धारण करता है ? कौन है जो तमसका आश्रय होनेपर भी प्रकाश स्वरूप चमकता रहता है और जागनेपर अन्त -करणको सम्पूर्ण वाणी लौटा देता है ? वह है भगवान् मत्स्य—तामस योनि, किन्तु रसमात्रमे क्रीडा करने वाले ।

भगवान परशुरामका अवतार आवेशावतार है । मूल रूपमे वे कारकपुरुप है—ऋषि है और भगवान कल्किका अवतार होनेपर उन्हे अस्त्र-शिक्षा देंगे । आवेश तो परशुराममे सृष्टिके सञ्चालकका हुआ था भूभार हरणके लिए । भूभार उन सर्वेश्वरको छोडकर दूर कौन कर सकता है । जब सत्ता—भूमिपर भार बढ जाता है, उन श्रीहरिका— वासुदेवका आवेश उसे दूर करनेको अनेक रूपोमे प्रकट होता है ।

भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुपोत्तम है। मानवके आदर्शोको, कर्तव्य-

के विभिन्न क्षेत्रोकी मर्यादाको प्रत्यक्ष उपस्थित करनेके लिए यह अवतार हुआ। जो लोकमर्यादाकी स्थापना करने चलेगा, उसे रावण—लोकोको रुलानेवालेको सहायकोंके साथ मार ही देना पडेगा। भगवान श्रीरामके चरितके आध्यात्मिक पक्षपर ऋषियोंने वहुत कुछ कहा-लिखा है।

श्रीकृष्ण तो पूर्णावतार—लीलापुरुषोत्तम हैं। जान-वूझकर 'थे' नही कहा जा रहा। भगवान कभी भूतपुरुष हुआ नही करते। भगवान वासुदेवने भूभार तो दूर ही किया, ऐसी लीलाएँ भी की जिनका स्मरण-चिन्तन करके युग-युग तक मानव-मन उनके श्रीचरणोंमे लगा रहेगा। उनकी लीलाओका ध्यान परम कल्याणदायी है। वे दयाधाम ।

दो प्रमुख अवतार हैं भविष्यमे होनेवाले। उनमे बुद्धावतार[1] असुरोके मध्य उन्हे मोहमे डालनेको होगा और कल्कि अवतार कलियुगके अन्तमे भूभार निवारणके लिए होने वाला है।

यज्ञ और तप शक्तिदाता है, उत्तम कार्य हैं, किन्तु इनको माध्यम वनाकर कोई व्यक्ति या समुदाय स्वय शक्तिशाली होता रहे तथा उस शक्तिके दुरुपयोगमें लगा रहे—समाज एव ससारका उत्पीडन-शोषण करे तो अन्तत उससे वे साधन छीनने ही पडेगे। सत्कर्ममे स्थितको धक्का तो दिया नही जा सकता, उसे प्रकारान्तरसे—वहलाकर वहाँसे हटाना होगा, जिससे उसे मिलनेवाली लोकोत्पीडक शक्तिसे वह वञ्चित हो जाय।

मेघनाद त्रेतामे जव रणागण छोडकर यज्ञ करने वैठ गया तो मर्यादापुरुषोत्तमने कपियोको उसका यज्ञ-भग करनेकी आज्ञा दी। वह अभिचार-यज्ञ न करके यदि सात्विक यज्ञ करता होता तो उसे भ्रान्त करनेको कोई ऋषि भेजना पडता। ऐसा ही प्रयोजन बुद्धावतारका होना है और कल्किको तो केवल कण्टक वन काटने जैसा कार्य करना है।



1—पुराणोंमें वर्णित इस बुद्धावतारका कोई विशेष परिचय मिलता नहीं। भगवान गौतम बुद्धसे इसका सम्बन्ध नहीं जान पडता। महात्मा जयदेवने तथागतको बुद्ध अवतार माना तो अवतारका हेतु भी परिवर्तित कर दिया है।

भूभार क्या ?

पृथ्वीपर पार्थिव देहोकी संख्या कुछ भी हो, उससे भूमिपर भार तो नही वढता। भूमिके ही तत्त्वोसे सव प्राणियोके शरीर वनते हैं, अत पृथ्वीपर जनसख्या दस करोड हो या दस अरव, क्या अन्तर पड़ता है। सव शरीरोके रूपमे मिट्टी रहे या विना शरीरके अपने शुद्ध रूपमे रहे, मिट्टी रहेगी तो उतनी ही। अत भूभार-हरणका क्या अर्थ है ?

शरीरका कोई अंग आवश्यकतासे अधिक वढ जाय या निष्क्रिय हो जाय—वह भार हो जाता है या नही ? तुमने पर्याप्त मोटे मानव देखे हैं। उनके देहमे एकत्र मेद उनके लिए भार ही तो है। दूसरा भार मनपर होता है। जो वात हमे अप्रिय है—वह हमारे समीप वरावर होती रहे तो मन भारपीडित होता है।

धरापर ये द्विविध भार होते हैं। पहला भार है पृथ्वीपर सेनाकी अभिवृद्धि।[1] सैन्यशक्ति आवश्यक है समाजमे उत्पीडक-निरकुश तत्त्वोको नियन्त्रित रखने तथा वाहरी आक्रमणसे रक्षाके लिए, किन्तु प्राय क्रूर एव महत्वाकाक्षी शासक दूसरे राज्योपर शासन-स्थापित करनेके लिए, उन्हे पराजित करनेके लिये, दूसरोको आतकित करनेके लिये सैन्यशक्ति वढाते रहते है—वढाते ही जाते हैं और जब एक पडोसी या प्रतिद्वन्द्वी अपनी सैन्यशक्ति वढाता है तो दूसरेको भी अपनी सुरक्षा या प्रतिष्ठा-रक्षाके लिए सैन्यशक्ति बढानी पडती है। इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जानेपर पूरा समाज वहुत पीडा पाता है।

सेनाको सवसे अधिक सुविधा चाहिये, क्योकि उसे सदा युद्ध-तत्पर रहना है। उसपर होनेवाला व्यय पर्याप्त अधिक होता है। सामान्य नागरिककी अपेक्षा वहुत अधिक। लेकिन युद्धकालके अतिरिक्त सेनाका उपयोग ?

सेना उत्पादक तत्त्व नही है। देशके उत्पादनका एक वडा भाग सेनापर व्यय होता है। यह व्यय वढता जाता है सैन्यशक्तिकी वृद्धिके साथ और उत्पादक-समाजको अभाव-ग्रस्त जीवन व्यतीत होनेको वाध्य होना पडता है। प्रतिस्पर्धीका आतक सैन्यशक्तिको घटाने नही देता। इस प्रकार सेनाकी वृद्धि पूरे समाजपर—पृथ्वीपर ही भार वनती है। सम्पूर्ण मानव ही

1 भूभारराजपृतना । भागवत ११ १ २

नही , सम्पूर्ण प्राणियो का शोषण चलता रहता है सेनाके लिए। राज्योकी सख्या जितनी बढती है—सेनाका भार उतना बढता जाता है और संसारमे जब किन्ही शासकोको आसुर उन्माद चढ़ता है , सर्वजयी होने—सबपर प्रभुत्व स्थापनकी इच्छा प्रबल होती है , यह भार बहुत अधिक बढ जाता है ।

केवल किसीको पराजित कर देनेसे ही तो बात समाप्त नही होती । अन्याय , अधर्म , उत्पीडन-शोषण करनेवालेको अपना प्रभुत्व , अपना आतक बनाये रखनेके लिए भी बहुत बडी सैन्यशक्ति सन्नद्ध रखनी पडती है । यह बढी हुई सेना समाजपर भार है और उसका आतक भार रहता है जनमानसपर ।

जब देवशक्ति भी आसुर मानवो अथवा असुरोकी बढी सेनाका भार दूर नही कर पाती , सृष्टिकी मर्यादाकी सुरक्षाका जिनपर दायित्व है वे श्रीहरि पधारते हैं और तब वे स्वय यह भार दूर करनेकी व्यवस्था करते है । सेनाका भार तो युद्ध-सैनिको और उनके उन्मद प्रभुओके विनाशके बिना दूर नहीं हो सकता । कोई प्रबल सैन्यशक्ति सम्पन्न शासक अपनी सैन्यशक्तिका विसर्जन स्वेच्छापूर्वक कभी नही स्वीकार करता , भले उसका कोई प्रतिस्पर्धी न रह गया हो और उसके लिए आतक-आशकाका कोई कारण न रहा हो । वह अपनेको बिना बनाये औरोका स्वयम्भू सरक्षक बना लेता है और अपनी सैन्यशक्ति बनाये रखने अथवा बढाते जानेके कल्पित कारण गढता जाता है ।

सर्वेश्वरके लिए अपना-पराया कभी कोई कैसे हो सकता है । उनको भू-भार दूर करना था । यादव-वाहिनीको उन्होंने निमित्त बनाया और अन्तमे पारस्परिक सघर्षके द्वारा उस अजेय वाहिनीका भी विसर्जन कर दिया ।

भूदेवी जड तो नही है । सच तो यह है कि जडता भ्रम है । सम्पूर्ण सृष्टि एक सच्चिदानन्द परमात्मामे ओत-प्रोत है । परमात्मा ही सृष्टिके रूपमे प्रतीत हो रहा है । इनमें जड तत्त्व केवल भ्रमसे प्रतीत होते है । उस सच्चिदानन्दकी प्रकृति —स्वभाव है कि उसकी सत्ता घनीभूत होकर तमस— तमोगुण प्रतीत होने लगती है और उसमे जडताका भ्रम होता है ।

हमारा यह देह जड है , ऐसा लगता है , किन्तु देहमे क्या जड है ? सम्पूर्ण देह क्या अरबो क्षुद्र कणप्राय जीवोका समुदाय नही है ? प्रत्येक तत्त्व जिन्हे जड़वादी जड़ मानते हैं , केवल शरीर है । पृथ्वी , जल , वायु आदिके

दृश्य—पञ्चीकृत रूप उनके शरीर है और उनके अधिदेवता उन शरीरोंमें चेतन है—ठीक वैसे ही जैसे अपने शरीरमे हम अपनेको चेतन जानते हैं।

भूदेवी चेतन है, अत उनमे अनुभूति है और अनुभूति है तो उनके शरीर—धरापर रहनेवाले प्राणी जो कुछ करते है, उसमें उनको प्रिय-अप्रियका अनुभव होता है।

सभी प्राणी भगवती धराकी सन्तान ही तो हैं ?

हाँ, किन्तु जब माता का एक पुत्र अपने दूसरे भाइयोको उत्पीडित-शोषित, आतकित करने लगता है तो उसका अन्याय-अत्याचार माता के मनका भार बन जाता है और माता किसी भी प्रकार उसके अत्याचारसे—दूसरा मार्ग न हो तो उससे अपने शेष पुत्रोकी रक्षाको व्याकुल हो उठती है।[1]

परोत्पीडक, अधर्म-परायण असुर पृथ्वीके भार है। धर्म या अधर्म घट-बढ नही सकते क्योकि ये दोनो ही विराट् स्वरूप श्रीहरिके अग ही है। धर्म यदि उनका हृदय है तो अधर्म उनका पृष्ठदेश है। होता यही है कि इनकी सघनता घटती-बढती रहती है।

सत्त्व, रज और तम ये त्रिगुण प्रकृतिमे घटते-बढते नही। इनकी मात्रा सदा समान रहती है, किन्तु प्रलयके समय ये साम्यावस्थामें रहते हैं। सृष्टिके समय इनका तारतम्य बदलता रहता है। कही एक प्रबल होता है कभी और कभी कही दूसरा। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म सब त्रिगुणात्मक है, अत इनकी मात्रा घट या बढ कैसे सकती है। केवल इनका तारतम्य परिवर्तित होता रहता है।

धरापर भार बढनेका अर्थ है कही किसी विशिष्ट वर्गमे ही केन्द्रित रहनेके स्थानमे तमोगुण एव तमोन्मुख रजोगुण अधिकाश मानवोमे व्याप्त हो गया है। इससे सत्वगुणकी व्यापकता घट गयी है और वह थोड़ेसे विशिष्ट व्यक्तियोमे अधिक सघन हो गया है।

यही अवसर परमप्रभुके अवतीर्ण होनेका होता है। अधिक सघन-प्रबल सत्वगुण अन्त करणको शुद्ध कर देता है और तब उसमे अन्तर्मुखता, अन्तर्यामी वासुदेवका सान्निध्य स्पष्ट हो जाता है। जन्म-जन्मके सस्कारोंके

---

१ गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥
(श्रीरामचरितमानस १. १८३।५)

अनुसार ऐसे शुद्धान्त करण जन योग, ज्ञान या उपासनाका पथ अपना लेते है।

प्राय सर्वत्र व्याप्त तमोगुण प्रधान रजोगुण—जिनमे ये व्याप्त है, उन्हे सत्त्वगुण—शुद्ध सत्त्वगुण सहन कैसे हो सकता है। फलत उनके द्वारा वे साधक-सत पीडित होने लगते हैं। उनपर अत्याचार होने लगता है। आसुर-जन सात्विकोका समूलोन्मूलन करने पर उतारू हो जाते हैं। उनका यह उत्पीडन—भगवती धराको अपने 'श्रेष्ठतम' सर्वाधिक प्रियपुत्रोकी पीडा असह्य हो उठती है। यह धराका सबसे असह्य भार है।

विशुद्ध सत्त्व-शुद्धान्त करण जनोमे जो योगी हैं, ज्ञानी हैं—उन्हे सुरक्षा चाहिए—भले वे अपने शरीरसे निरपेक्ष हो और देहका मानापमान, देहकी पीडा उन्हे व्यथित न करे, सर्वेश्वरको उनकी सुरक्षा सबसे अधिक आवश्यक लगती है।

जो धर्म पुरुषार्थी बन जाते हैं शुद्धान्त.करण होनेपर, पूर्व-पूर्वके सस्कार जिन्हे तप, यज्ञादिमे लगाते है—वे अपने धर्मकी रक्षाके आग्रही होते हैं और उनका तप, यज्ञ, सबसे अधिक असह्य होता है आसुरताको। क्योकि योगी-ज्ञानी तो आत्मरत आत्मतृप्त, एकान्तप्रिय है। उन्हे कोई कैसे रहता है या रहे, इसकी चिन्ता नही। सब अपना स्वरूप या सब भगवन्मय, तो उसमे पापी-असुर या पुण्यात्मा क्या? अत ऐसोकी असुर भी उपेक्षा कर सकते हैं, किन्तु धार्मिकोका यज्ञ-तप तो सीधे आसुरतापर—तमोगुणपर आघात करता है। अत इस वर्ग को सबसे अधिक उत्पीडित होना पडता है और यह चुप-चाप सहन नही करता। यह पुकारता है सर्वेशको। इसके आह्वानकी उपेक्षा कब तक वह धर्मका परमप्रभु कर सकता है।

सबसे बडी बात। जब सत्त्वगुण किन्ही अन्त करणोमे प्रबल होता है, जन्म-जन्मका पुण्योदयऔर भगवत्कृपाका सयोग हो जाता है—भक्तिदेवी आ बैठती हैं उन अन्त करणोमे। ऐसे महाभाग जब आग्रह कर लेते है—वह सर्वेश्वरेश्वर हमारा पुत्र, हमारा मित्र, हमारा पिता, हमारा पति ·। वह अनन्त प्रेमार्णव विवश हो जाता हे और ऐसे महाभागवतोपर आसुरता दृष्टि उठावे—यह उसे भी असह्य हो जाता है। भगवती धरित्रीको ऐसे जन अपने चरणस्पर्शसे धन्य करते हैं। इनपर विपत्ति आवे—धराके लिए यह भार सर्वथा ही असह्य है।

———

अवतारके लिए अनुरोध

धराके दो कार्य हैं—धारण और पोषण। अत धराका आधिदैवत रूप है गौ। भूदेवीके रूपमे तो वे नित्य भगवान नारायणकी सहचरी है। जव उनके लिए आसुरभाव असह्य हो जाता है और वे स्वय उसे दूर करनेमे अक्षम हो जाती हैं, जव उनके सहायक देवता भी समर्थ नही रह जाते तो देवताओंके साथ ये स्रष्टाकी शरण जाती है।[1]

पृथ्वीकी अपनी पहुँच ब्रह्मलोक तक—सृष्टिकर्ता तक ही है। पार्थिव साधनोसे होनेवाले कर्मोंकी गति भी यही तक है। धर्म और तपके द्वारा मनुष्य यही तक पहुँच सकता है। योग, ज्ञान, उपासना तो अन्तर्यामी वासुदेवसे एकत्व प्राप्त करानेवाले साधन हैं। अतः इनमे हिरण्यगर्भका क्षेत्र तो पीछे छूट जाता है, किन्तु धर्म और तपका माध्यम देह है और समस्त देह हिरण्यगर्भके सकल्पमें स्थित है, अत अपने सकल्पकर्त्तासे आगे इनकी पहुँच सम्भव नही है।

जो सृजनका अधिदेवता है, जगतमे अव्यवस्था उत्पन्न करनेवालोकी सृष्टि भी उसीने की है। अत दायित्व उसीका है कि वह उसे सयमित-नियन्त्रित करे। जव जीवनमे आसुर वृत्तियाँ वढ जायँ—इन्द्रियोकी शक्ति अत्यधिक भोग समाप्तप्राय करदे और सात्त्विक वृत्तियोका ह्रास होने लगे—व्यक्तिकी धी-धारिका शक्ति इसके अतिरिक्त और क्या करे कि इन्द्रियोको (इन्द्रियोंके अधिदेवताओको) एकत्र करे और अन्त करण (हिरण्यगर्भ) से सहायताकी पुकार करे।

न स्रष्टा और न देवता ही समर्थ है इस भारको दूर करनेमे। देवता समर्थ रहते हैं, तव तक वे भौतिक उपद्रवोंके माध्यमसे सन्तुलन वनाये रखते है, किन्तु नर तो नारायणका सखा है। उसका वल—उसकी बुद्धि-अनेक वार वह मन्त्र, तप अथवा औषधि (विज्ञान) के द्वारा सुरोकी शक्तिको कुण्ठित कर देता है। सृष्टिकर्ता सृजन कर सकते हैं, उनका कार्य वृत्तियोको स्वरूप देना है। वे स्वय नियन्त्रण करनेमे असमर्थ हैं।

---

१ भूस्खलन, भूकम्पादि पृथ्वीका आधिदैवत प्रकोप भी हो सकता है। अग्नि, जल, वायुके प्रकोपसे अथवा महामारियोंके द्वारा महाविनाश धरापर वार-वार होता है; किन्तु अनेक वार आसुर शक्ति इनपर अधिकार पा लेती है।

अन्त करण तक गति है इन्द्रियोंके देवताओ एव धी की ; किन्तु अत करण नियामक स्वय नही हो सकता। नियन्त्रण एव पालनकर्ता तो अन्त करणके प्रकाशक अन्तर्यामी वासुदेव है। अन्त करण एकाग्र हो तो उस अन्तर्यामीका प्रकाश—उसकी शक्ति जीवनमे अवतरित हो।

भगवान ब्रह्माको सुरो एवं धराके साथ एकाग्र होकर क्षीरसागरके तटपर जाकर प्रार्थना करनी पडती है। क्षीरोदधि—विशुद्ध सत्त्वमे जो परम प्रकाशक स्थित है, उसीसे तो पुकारकी जा सकती है।

स्रष्टा स्वय सत्त्वोन्मुख रजोगुणके अधिदेवता है। उनकी पहुँच सत्त्व-गुणके अधिदेवता भगवान नारायण तक है। वे उन श्रीहरिकी प्रार्थना करते हैं सुरोके साथ।

भगवान विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न कमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए है और पुत्रपर सकट आये तो वह पिताके अतिरिक्त और किसे पुकारे ? अवतार लेनेका—भूभार-हरणका मुख्य दायित्व उन अनन्तशायीपर है और जगत्स्रष्टाके लिए उन्हीको पुकारना सहज सुगम भी है।

सुरोके तथा भगवान ब्रह्माके लिए भी प्रलयकर तक पहुँचना कठिन तो नही है। विनाशके उन अधिदेवतासे भूभार बने वर्गोंके विनाशकी प्रार्थना न करनेका कुछ कारण होगा ?

रजोगुण भले सत्त्वोन्मुख हो, सत्त्वकी ओर—शुद्धता—सूक्ष्मताकी ओर जानेकी अपेक्षा तमसकी ओर जाना सरल है उसके लिए। किन्तु जब तमससे ही उत्पीडन हो रहा हो, उसे और बढा देनेमे लाभ होगा ? भगवान नीललोहित स्वभावसे शान्त है, किन्तु क्षुब्ध होनेपर वे शिव प्रलयकर हो जाते हैं। प्रलय करना हो तो उन्हे कुछ सोचना नही होता, किन्तु कुछको नष्ट करके कुछ की रक्षा उनके लिए सदा अटपटी रहती है।

सुरो और ब्रह्माके साथ सदाशिव भी प्राय. क्षीरोदधि तट जाकर प्रार्थना ही करते हैं। अनेक वार वे उद्धत असुरोका दमन स्वय करते है, किन्तु वह भी तब जब श्रीहरि अनुरोध करे कि यह कार्य आप कर दो।

पालन-शासन-सरक्षण भगवान नीलकण्ठका स्वभाव नही है। वे आशुतोष जैसे किसीको भी वरदान दे देते है, वैसे ही सृष्टिके परमपालक कोई अनुरोध करें तो उतना कार्य भी कर देते है। अन्यथा अपने स्वरूपमे निमग्न वे परमगुरु—ज्ञानका स्वभाव सृजन-सरक्षण नही है। ज्ञानका स्वभाव प्रकाश देना-सबको प्रकाशित करना और सम्पूर्ण भ्रम, अविद्याको

मिटा देना है। भगवान पशुपति ज्ञानस्वरूप हैं। वे वैराग्यमूर्ति प्रलयकर हैं।

अवतारकी प्रार्थना भगवान नारायणसे ही की जाती हो और वही अवतार लेते हो, ऐसा तो नही है। पुराणोमे महाशक्तिके, भगवान शिवके, महागणाधिपतिके और भुवनभास्करके भी अवतारोका वर्णन है।

यह बात इसपर निर्भर है कि सृष्टिमे जो व्यतिक्रम आया है, उसका स्वरूप क्या है और उसके प्रशमनके लिए सर्वेश्वरका प्राकट्य किस रूपमे सृष्टिकर्ताको अभीष्ट है।

भगवान नारायण, श्रीगङ्गाधर, महाशक्ति, गणनाथ और सूर्यदेव एक ही परमतत्त्वके ये पॉच स्वरूप हैं। वैसे दिव्यधामोमे इनके पृथक्-पृथक् नित्यधाम है, किन्तु साकार विग्रह पृथक्-पृथक् होते हुए भी ये एक ही परमतत्त्वके अनेक रूप हैं। अत इनमे न सामर्थ्यका कोई तारतम्य है और न अनुग्रहका। एक अनन्त सच्चिदानन्द चाहे जिस रूपमे हो, उसमे तारतम्य सम्भव नही है। अवतार इन पाँच रूपोमे-से ही किसीका या इनके माध्यमसे ही होता है।

भगवान आशुतोष, जगज्जननी महाशक्ति और भगवान गजानन— यह परिवार ही आशुतोष है। किसीकी आराधना, तपसे सन्तुष्ट होनेपर इन तीनमे कोई यह नही देखता कि जो सामने वरदान मॉगने आया है, वह सुर है या असुर। वह जो वरदान मॉग रहा है, उसका सदुपयोग करेगा या दुरुपयोग। प्रसन्न होनेपर भक्तवात्सल्य तीनोमे ही इतना प्रबल हो जाता है कि इनकी सर्वज्ञता सुप्त हो जाती है। इन्हे तब केवल 'तथास्तु' ही कहना आता है।

अनेक-अनेक बार इनसे ही वरदान पाकर असुरोने इन तीनोको ही नही, भगवान भास्करको भी संत्रस्त किया है और ब्रह्माजीका वरदान तो प्राय उनके विपरीत प्रयोग किया जाता रहा है, किन्तु असीम है इनकी कृपा। अचिन्त्य है इनकी उदारता। अनिरुद्ध है इनका वात्सल्य।

सृष्टिकर्ताकी सब अपनी ही सन्तान हैं। प्राय राजस—तमोन्मुख राजस व्यक्ति ही उनकी आराधना करते हैं, क्योकि सृजन जिनका व्यसन है, वे मोक्ष तो दे नही सकते। राजस व्यक्ति शक्ति सम्पन्न होकर उन्मद हो ही जायगा। राजसकी महत्वाकाक्षा सीमातीत होती है, किन्तु सृष्टिकर्ताका वात्सल्य यह सब स्मरण नही करता। अपनी किसी सन्तानका उग्र तप देखकर वे सर्वथा दया-द्रवित हो उठते हैं। प्राय असुर उनकी इस करुणाका लाभ पाते हैं।

भगवान नारायण तो मोक्षके अधिपति हैं ही, महाशक्ति, भगवान शिव, महागणाधिपति, भुवनभास्कर भी स्वरूपत भवपाशके छेत्ता ही हैं। अत परमतत्त्वकी इन पाँचो रूपोमें आराधना होती है, किन्तु भगवान नारायण शुद्ध सत्त्व विग्रह हैं। किञ्चित् भी रजस-तमस अन्त.करणमे लेकर उनका सान्निध्य नही पाया जा सकता। शुद्धान्त.करणमे वासनाएँ रहती नही। अत भगवान नारायणकी या उनके किसी सात्त्विक रूपकी आराधना करनेवालेसे सृष्टिमे कोई व्यतिक्रम उपस्थित नही हो सकता। ऐसा आराधक वरदान भी माँगेगा तो भक्तिका।

भगवान शिव अपने रुद्रविग्रहमे, महाशक्ति, श्रीगणेश्वर और भगवान सूर्य किञ्चित् रजस एव तमसको कृतार्थ करते है। कहना यह चाहिए कि भगवान नारायणका श्रीविग्रह आनन्दघन है और शेष चारके श्रीविग्रह सच्चिदानन्दघन हैं। मायाके त्रिगुणात्मक क्षेत्रमे आनन्द शुद्ध सत्त्व एव सच्चिदानन्द तमस, रजस युक्त आनन्दके रूपमे प्रतीत होता है। अत. शेष चारो ही मे जहाँ अतिशय औदार्य-वत्सलता है, वही अतिशय भीपणत एव उग्रता भी है।

तत्त्वत उस परमात्माके सब श्रीविग्रह परस्पर अभिन्न है और उनमे सामर्थ्य एव करुणाका कोई तारतम्य नही है। अत. भगवान् नारायण रजस एव तमसकी आंशिक स्वीकृतियुक्त अवतार नही लेंगे—ऐसा कोई नियम नही है। उनके भी नृसिंह-वाराह जैसे उग्रावतार हैं और राजस, तामस प्रकृतिके आराधक—सकाम साधक इन स्वरूपोकी आराधना करते ही हैं।

आराधककी सहज रुचि अपने शील-स्वभावके अनुरूप जो भगवद्-विग्रह हो उसमे होती है। सकाम आराधक इस सहज रुचिके साथ यह भी देखना है कि उसका अभीष्ट शीघ्र कहाँ पूरा हो सकता है। यह निर्णय वह अपनी रुचिके अनुसार करता है अथवा उसके उपदेष्टा गुरु अपनी रुचि एव निष्ठाके अनुसार कर देते हैं।

परमात्माके विभिन्न साकार विग्रहोसे अवतारकी प्रार्थनाका प्रयोजन ?

अनेक बार उद्धत असुरको कोई विशेष वर प्राप्त होता है। जैसे उसे स्त्रीके अतिरिक्त अन्य सबसे अवध्य होनेका वरदान प्राप्त हो तो महाशक्तिके अवतरणकी अनिवार्य आवश्यकता है। इसी प्रकारके अनेक वरदान कुछ समस्याएँ उत्पन्न करते है। कभी आसुरताका प्राबल्य विघ्नोकी गणनामे आता है तो गणाधीशको पुकारना पड़ता है। कभी तमसका अन्धकार प्रबल कर देते हैं तो प्रकाशके अधिपति भुवनभास्करको पुकार की जाती है।

भगवान ब्रह्माको यह भी देखना होता है कि असुरोने किन भगवद्रूपोसे अनुग्रह प्राप्त किया है । उन रूपोसे भिन्न रूप ही उनका प्रशमन कर सकते हैं ।

केवल आसुर तत्त्वोके प्रशमनका कार्य हो तो अवतार ब्रह्माण्डाधीशका ही होता है। ब्रह्माण्डनायक परमेश्वर प्रशमनके अनुरूप श्रीविग्रहमे अवतार लेते हैं और सृष्टिकर्ताकी समस्या सुलझा देते है ।

जिन परमधन्य प्राणोमें निखिल ब्रह्माण्डनायकको अपना वनाकर परितृप्ति देनेकी प्यास जागी है, वे भी तो धराको अकेले अथवा सामूहिक रूपमे अनेक वार कृतार्थ करते है। ये महाभाग ब्रह्माण्डनायकके आगमनसे कहाँ सन्तुष्ट होते हैं। इन्हे तो निखिल ब्रह्माण्डेश्वर अपना स्वजन दीखता है और ये उससे कुछ लेना नही चाहते—उसे भी सुख-परितृप्ति देनेको आतुर होते हैं। जव ऐसा अवसर आता है, परात्पर परमप्रभुको धरापर आना पडता है ।

भगवान ब्रह्मा तो सुरोके साथ क्षीरोदधिशायीसे ही प्रार्थना करते है ?

लेकिन वे प्रेमोज्वल प्राण जो परमप्रभुको पुकारते हैं, उनकी पुकार तो उसी तक पहुँचती है। ब्रह्माजीकी प्रार्थना तव क्षीराब्धिशायी सुनकर उन्हे आश्वस्त कर देते हैं, क्योकि परमप्रभु धरापर आनेवाले हैं, इससे वे सर्वज्ञ अवगत रहते है। परात्पर परमतत्त्वके अवतीर्ण होनेपर उसके साकार विग्रहके अनुरूप होकर ब्रह्माण्डाधीश उससे एकत्व ग्रहण करके अवतार लेते हैं। इस प्रकार उस समय भी ब्रह्माण्डाधीश अवतारका माध्यम वनते है ।

अव इसी द्वापरान्तमे भगवान वासुदेव इस धरापर पधारे और उन्होंने सवको कृतार्थ किया ।



मथुरापुरी

'मथुरा भगवान् यत्र नित्य सन्निहितो हरि' (भागवत १०.१ २८)—यह कहा जाता है। भगवान वासुदेवका प्राकट्य हुआ मथुरामे और इससे पुरी परमपावन हो गयी, किन्तु यहाँ श्रीहरिका नित्यसान्निध्य है और सप्त मोक्षदायिनी पुरियोमे मथुरा है।[1]

यह स्थानमे मोक्षदातृत्व कैसा है?

पुराणोमे ग्यारह प्रकारसे मोक्ष माना है। १. ज्ञानसे, २ योगसे, ३ उपासनासे, ४ निष्काम कर्मसे मोक्षका होना सामान्य जन भी समझते हैं। ५ 'काशीमरणान्मुक्ति' जिनकी समझमे आता है, देशसे अर्थात् स्थान विशेषमे मरनेसे मुक्ति उनकी समझमे आना चाहिये। सप्तपुरियाँ मोक्षदायिनी इसीसे हैं। ६ काल विशेषमे मरनेसे मुक्तिका वर्णन भी शास्त्रोंमे प्रचुर है। इसमे एकादशी, शिवरात्रि आदिका वर्णन है। ७ पदार्थविशेषके सान्निध्यसे मोक्ष माननेके कारण ही मरणासन्नके मुखमे तुलसी-गङ्गाजल डाला जाता है। शालग्राम, शिवलिंगादिका सान्निध्य मरते समय मोक्षप्रद है, यह वर्णन पुराणोंमे है। ८ अकस्मात् मरते समय भगवन्नाम, गुण, रूप, लीलाके स्मरणसे मुक्ति होती है, इसमे तो सन्देहका कारण ही नही है। ९. स्वधर्मपर दृढ निष्ठा होनेसे—जैसे धर्मयुद्धमे प्राणत्यागसे क्षत्रियकी मुक्तिका वर्णन भी है ही। १० आसक्तिसे भी मोक्ष होता है। पातिव्रत्य, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरुभक्ति और किसी मुक्त पुरुष मे आसक्ति मोक्षदायिनी है। ११. परेच्छासे अर्थात् कोई सन्त या भगवान् चाहे तो किसी जीवका भव-बन्धन काट दे सकते हैं।

मोक्ष केवल ज्ञानसे ही होता है, यह श्रुतिका उद्घोष है।[2] लेकिन जीवको दूसरा समर्थ ज्ञान नही दे सकता, ऐसा कोई नियम नही है। अत. इन ग्यारह प्रकारसे होने वाले मोक्षोमे ज्ञानसे तत्काल मोक्ष होता है। शेषमे जन्मान्तरमे ज्ञान प्राप्त करके अथवा लोकान्तरमे ज्ञान प्राप्त करके

---

१. काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि ।
मथुरावन्तिका चैता. सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा ।

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, ६ ६८)

२ ऋते ज्ञानान्मुक्तिः । (शाङ्कर सम्प्रदायमें यह बहुत प्रामाणिक श्रुति मानी जाती है ; किन्तु मन्त्र-संहिताओंमें तथा प्राप्त आरण्यको एवं उपनिषदोमें कहीं मिलती नहीं ।)

मोक्ष होता है। भगवान तथा मन्त ज्ञानदान कर ही सकते है। भगवान ब्रह्मा ब्रह्मलोकमे, इन्द्र स्वर्गमें और धर्मराज सयमिनी-पुरी यमलोकमे ज्ञान दे सकते हैं, यदि कोई जीव इन ग्यारहमें-से किसी एकके द्वारा मोक्षका अधिकारी होकर उनके लोकमे पहुँचता है। इसीसे ये तीनो लोकाधिपति ज्ञानी है।

मथुरा, अयोध्या, द्वारावती और विष्णुकाञ्ची वैष्णवपुरी है। यहाँ श्रीहरिका नित्य सान्निध्य रहता है। काशी, मायापुरी-हरिद्वार, अवन्तिका और शिवकाञ्चीमे नित्य सन्निहित है भगवान् शिव। अत इनमे मृत्युसे इन पुरियोंके अधीश्वरका अनुग्रह प्राप्त होना है। फलत वह जीव जन्मान्तरमे साधन-भजनमे लग जाता है और अन्तमे भगवद्धाम प्राप्त कर लेता है।[1]

सम्पूर्ण धरा ही श्रीहरिकी है। स्थल विशेषमे उनके सन्निहित रहनेका तात्पर्य ? वे सर्वव्यापक तो सर्वत्र ही सदा सन्निहित हैं।

अन्तर्यामी समस्त अन्त करणोमे हैं, किन्तु सर्वत्र उनका प्रभाव कहाँ प्रकट होता है ? सूर्यका प्रकाश सर्वत्र पडनेपर भी उनका प्रतिबिम्ब तो जल या आदर्श (दर्पण) मे ही दीप्त होता है। इसी प्रकार जिस देशमे, कालमे, पदार्थमे सत्त्वगुणका अधिक प्राबल्य है, वही सर्वव्यापक परमात्माका सान्निध्य अधिक पाया—अनुभव किया जा सकता है। ऐसा न हो तो गगाजल, तुलसी, शालिग्राम, नर्मदेश्वर प्रभृतिके महात्म्यका क्या अर्थ रह जाय ?

भगवद्धाम और भगवान सर्वव्यापक है। यह सम्पूर्ण जगत भगवानके तथा भगवत्स्वरूप भगवद्धामके भीतर ही है। भगवद्धामकी प्राप्तिका अर्थ देशान्तरमे जाना नही है। इस स्थूल प्राकृत-प्रपचकी स्थूलतासे सूक्ष्मतामे प्रवेश ही करना है। परमात्माकी उपलब्धि अन्तर्मुख होनेमे होती है।

प्रकृति त्रिगुणमयी है और सृष्टिकालमे इसमे गुणोका वैषम्य रहता है। अत जहाँ तमोगुणकी प्रधानता होती है, वहाँ स्थूलता और अन्धकार अधिक होता है। जहाँ रजोगुणकी प्रधानता होती है, वहाँ गति, क्रिया, उद्वेग अधिक होता है। जहाँ सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है, वहाँ निर्मलता, प्रकाश, शान्ति अधिक होती है। वहाँकी निर्मलतामे सर्वत्र व्यापक परमात्मा अधिक सन्निहित—अधिक सुगमतासे प्राप्त रहता है।

---

१ कवनेहुं जन्म अवध वस जोई। राम परायन सो परि होई॥

—रामचरितमानस ७ ९६।६

जीव श्रीहरिका अंग होनेपर भी अनादिकालसे उनसे वियुक्त होकर माया-अविद्याके कारण भवाटवीमें भटक रहा है। उसपर करुणा करके उन अकारण कृपालुने देशमे, कालमे, पदार्थमे ऐसे अवकाश—ऐसे अवसर छोड रखे है कि उनका आश्रय भी जीव किसी प्रकार प्राप्त कर ले तो जन्म-मरणके इस चक्रसे अन्ततः परित्राणका मार्ग उसे मिल जाय।

श्रीभगवानका सगुण-साकार विग्रह अप्राकृत, सच्चिदानन्दघन होता है। उनका दर्शन, स्मरण, स्पर्श सब प्राकृत प्राणी और पदार्थको असाधारण पावनकारी शक्ति प्रदान कर देता है।

कोई महापुरुष जहाँ एक क्षणके लिए भी चरण रख देता है, दीर्घ काल तक वहाँकी भूमिमे अन्य प्राणियोको पवित्र करनेकी शक्ति आ जाती है। महापुरुषके जन्मस्थान, उपासना-स्थान, देहत्याग स्थान और विशेष महत्वकी क्रीडाओंके स्थान ही तो तीर्थ हैं। अनन्त काल तक वहाँ भूमिमे—जलमे, तरु-लता, शिलादिमे पापहारी-मंगलकारी शक्ति विद्यमान रहती है।

जहाँ परमात्मा अवतार लेते हैं, क्रीडा करते हैं, जहाँ-जहाँ उनके श्रीचरण पडते है, वे क्षेत्र सर्वमंगलकारी तीर्थ हैं, यह सत्य तो सभी सनातन-धर्मी स्वीकार करते है। अनन्तकालसे इसीलिए श्रद्धालु जन तीर्थयात्रा करते हैं।

कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ कल्प-कल्पमे श्रीहरिका अवतार होता है। भगवद्धाम वहाँ उस समय धरासे एकत्व स्थापित करके व्यक्त हो जाता है। यह भगवद्धामका सान्निध्य पाकर भूमिका वह प्रदेश सदाके लिए दिव्य हो जाता है। सप्तपुरियाँ ऐसे ही स्थल हैं।

पाद्मकल्पके स्वायम्भूवमन्वन्तरमे मनुके पौत्र ध्रुवने परमपावन मधुवनमे तप किया था। इस श्वेतवाराहकल्पके त्रेतामें मधुदैत्यके पुत्र लवणासुरने यहाँ निवास बना लिया। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके छोटेभाई शत्रुघ्नकुमारने लवणका वध करके यहाँ मथुरा नामसे अपनी राजधानी बसायी। यह नित्यतीर्थ है धरापर।

सम्पूर्ण व्रजभूमि धराका हृदय है। भूदेवी भगवान् नारायणकी नित्यप्रिया हैं। उनके हृदय-प्रदेशमे नित्य वे सच्चिदानन्द प्रभु विराजते है, इसमे तो कुछ अद्भुत नहीं है।

चौरासी कोसकी सम्पूर्ण व्रजधरा भूदेवीका हृदय है और उसमे गोवर्धन, नन्दग्राम, वृहत्सानु (बरसाना), मथुरा, वृन्दावनका मण्डल हृदय-

कमलकी मध्यकर्णिका है। इस कर्णिकापर वे परात्पर प्रभु प्रकट होकर सदा क्रीडा करते हैं।

हृदय व्रजभूमि है और कर्णिका प्रदेश माथुरमण्डल।

इस देहमे मूलाधार यमका और भगवान् गणपतिका धाम पृथ्वीतत्त्व है। स्वाधिष्ठान—द्वितीय चक्र वरुणदेवका-रसका, कामका-प्रद्युम्नका निवास है। मणिपूर-नाभिचक्र सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीका, हिरण्यगर्भ भगवान सूर्यका अग्नितत्त्व धाम है और हृदयको वैकुण्ठ, गोलोक, अयोध्या आराधक अपनी निष्ठाके अनुसार समझता है।[1] अत यह देह ही अयोध्या है। यही भगवान वासुदेव विराजते है।[2] यह हृदय वायुका-गतिका स्थान है।

महाशक्तिका—सगुणसाकार-विग्रह साम्वशिवका—श्रीकामेश्वर एव भगवती त्रिपुराका स्थान है आकाश-तत्त्वात्मक कण्ठ-चक्र एव लिंग-रूप महेश्वरका—परम गुरुका धाम है आज्ञा चक्र (भ्रू मध्य)। यह मनका स्थान है। सहस्रार मन वाणीसे परे ज्योतिर्मय अनिरुक्त ही है। यह जो व्यष्टिमे है, समष्टिमे भी वही है। अत धरामे वह है, इसे समझनेमे कठिनाई नही होनी चाहिये।

एक ही हृदयस्थान वैकुण्ठ, अयोध्या, मथुरा ?

एक ही नित्य चिन्मय धामके ये रूप है और भावनानुसार एक ही परात्पर तत्त्व इनके अधिष्ठाता रूपमे भक्तोको प्राप्त होता है। अयोध्या, मथुरा, वैकुण्ठ—इन शब्दोका शब्दार्थ भी एक ही है जो युद्धके योग्य नही—अयोध्या। जिसे रौंदा न जा सके—मथुरा। जहाँ कुण्ठा नही—वैकुण्ठ।

भगवान नारायण, मर्यादापुरुपोत्तम तथा भगवान वासुदेवके आराधक भी अपनेको वैष्णव ही कहते है। किन्तु धरापर अयोध्या और मथुरामे पर्याप्त दूरी ?

मर्यादा और उन्मुक्त लीलामे भी तो दूरी है। जब मर्यादापुरुपोत्तम रूपमे प्रभु पधारे, धरापर नित्यधाम व्यक्त हुआ। लीलापुरुपोत्तमके समय व्यक्त नित्य धामका रूप, प्रभाव उससे सहज भिन्न होना था। अत धरापर उसे स्थानान्तरमे तो व्यक्त होना ही चाहिए था, किन्तु अयोध्या और मथुरा दोनो एक ही नित्य चिन्मय धामके दो रूप हैं।

—×—

१ 'अष्टाचक्रा नवद्वारा देवाना पूरयोध्या।' (अथर्ववेद, १० २ २१)

२ ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीन विश्वे देवा उपासते॥ (कठोपनिषद् २. २ ३)

वृष्णि वंश

मोक्षदायिनी पुरी मथुरामे यादवोके कुलपुरुषने अपना निवास बनाया था पश्चिम भारतके साम्वतीर्थ या स्तम्व तीर्थ (खम्भात) से आकर।

लोकस्रष्टा भगवान ब्रह्माके मानसपुत्र प्रजापति महर्षि अत्रिकी परम-सती पत्नी अनुसूयाजीका पातिव्रत्य त्रिभुवन विख्यात है। महर्षिके तप तथा महामतीके पातिव्रतने त्रिवेदोको उनका पुत्र बननेको बाध्य किया। भगवान् नारायणके अशसे योगेश्वर दत्त, शिवाशसे महामुनि दुर्वासा और ब्रह्माजीके अशमे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई।

चन्द्रको ताराके गर्भसे पुत्र हुए बुध। यहाँ तक तो देवसृष्टि है। सोम और बुध दोनो ही ग्रह हैं। बुधने इलाको पत्नी बनाया और इनमे चन्द्रवंश के आदिपुरुष पुरुरवा उत्पन्न हुए। महाराज पुरुरवाके सौन्दर्य, प्रताप, तेज, बलने अमरलोकको सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको आकर्षित कर लिया और उनके उर्वशीके गर्भसे छ पुत्र हुए। महाराजके ज्येष्ठ पुत्र नहुषका यश भी त्रिभुवन-विख्यात है। वृत्रवधसे ब्रह्म-हत्या लगनेपर जब इन्द्र अज्ञातवास करने लगे तो देवाधिप बनाने योग्य पुरुष देवताओको भी त्रिभुवनमे महाराज नहुष ही मिले थे।

महाराज नहुषके भी छ पुत्र हुए और उनमे द्वितीय पुत्र ययातिने शुक्राचार्यजीकी पुत्री देवयानीका पाणिग्रहण किया। दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा तो दासी बनकर साथ आयी। देवयानीके पुत्र हुए यदु और तुर्वसु। शर्मिष्ठाके पुत्र, द्रुह्यु, अनु और पुरु हुए। यहीसे यदुसे यदुवश और पुरुसे पुरुवश पृथक् हुए।

महाराज पुरुरवाके इस महान वशमे दो ऋक्ष, दो परीक्षित, तीन भीमसेन तथा दो जनमेजय नामके महाभाग हुए हैं। हम जिन्हे जानते हैं वे भीमसेन, परीक्षित और परीक्षितका शिशु जनमेजय अन्तिम हैं। एक भीमसेन तो महाराज पुरुरवाके पुत्र अमावसुके ही पुत्र थे। इसी प्रकार हमारे पुरुके पुत्र जनमेजय थे। पितामह भीष्मके पिता शान्तनुके पितामहका नाम भी भीमसेन था और उनके पितामह विदूरथजी जनमेजयके पौत्र थे। इन जनमेजयके पिताका नाम भी परीक्षित ही था।

भगवान् ब्रह्मासे पञ्चम हुए महाराज पुरुरवा। महाराज पुरुरवासे पञ्चम महाराज यदु। महाराज पुरुरवामे गणना करनेपर सैतालीसवें होते हैं महाराज वृष्णि, इन्हींके कारण वृष्णिवंशी या वार्ष्णेय कहे जाते हैं श्रीकृष्ण।

भगवान वासुदेव पुरुरवासे साठवें होते हैं। महाराज यदुसे तैंतालीसवीं पीढीमें सात्वत पुत्र वृष्णि हुए। अत वृष्णिवशी सात्वत या सात्वतीय भी कहे जाते हैं। महाराज वृष्णिसे नवम दूसरे वृष्णि हुए—इनका एक नाम क्रोष्टा भी था। इनसे चौथे हुए श्रीकृष्णके पितामह शूरसेनजी।

महाराज यदुके सहस्रजित, अनिल और क्रोष्टा—ये तीन पुत्र हुए। क्रोष्टासे ज्येष्ठपुत्रो मात्र की गणना करे तो नामावलीका क्रम है—वृजिनवान, स्वाही, रुपद्गु, चित्ररथ, शशविन्दु, पृथुश्रवा, उत्तर, सुयज्ञ, उशना, रुचक, ज्यामघ और इन ज्यामघसे विदर्भ। विदर्भके ज्येष्ठ पुत्र रोमपादके वंशमें आगे चेदि और उनका पुत्र शिशुपाल हुआ।

विदर्भके दूसरे पुत्र क्रथकी वश-परम्पराका क्रम है; क्रथसे कुन्ति, फिर क्रमश धृष्टि, निवृत्ति, दशार्ह। इन महाराज दशार्हके कारण यह वश दाशार्ह कहा जाता है। दशार्हसे आगे व्योम, जीमूत, विकृति, भीमरथ, नवरथ, दशरथ, शकुनि, करभि, देवरात, देवक्षत्र और उनके मधु। इन मधुके कारण आगे वंशका एक नाम मधुवश या माधवीय हो गया।

मधुसे क्रमश अनु, पुरुहोत्र आयु और उनके सात्वत, जिनके कारण उनके वशज लोग सात्वतीय कहे जाते हैं। इन महाराज सात्वत के एक पुत्र क्रोष्टा (वृष्णि) के वशमे श्रीकृष्ण और दूसरे पुत्र अन्धकके वशमे महाराज उग्रसेन हुए।

महाराज क्रोष्टाके पुत्र देवमीढ और उनके पितामह शूरसेनजी। उनसे आनक दुन्दुभि वसुदेवजी उत्पन्न हुए।

महाराज ययातिने अपने ज्येष्ठ पुत्रोको शाप दे दिया था कि वे राज्यसिंहासन के अधिकारी नही होगे। उनके पुत्रोकी सन्तानके लिए तो यह शाप नही था, किन्तु पीछे यह परम्परा बन गयी कि इस वशमे सिंहासन छोटे राजकुमारको प्राप्त होता रहा। इसीलिए मथुराके अधिपति महाराज सात्वतके सबसे छोटे पुत्र अन्धक हुए। उनसे बडे पुत्रोने सिंहासन स्वीकार नही किया।

क्षत्रिक कुमार सेवा, वैश्यवृत्ति या ब्राह्मणवृत्ति तो अपना नही सकते। उन्हे जीवन-यापन तो बाहुबलसे ही करना है। अग्रज या अनुज प्रशासक हो तो उनकी सेना तथा प्रदेश शेष भाइयोका आश्रय बन जाता है। इसी वशमे सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुन हुए—लोकरावण रावण भी पराजित ही हुआ उनसे, किन्तु अत्रेय भगवान दत्ताके अनुग्रहसे योगैश्वर्य

प्राप्त करके भी उन्होने त्रिभुवनपर आधिपत्य स्थापनकी आसुर परम्परा नहीं अपनायी।

भौतिक ऐश्वर्य मानवको प्रमत्त कर ही देता है। अर्जुनके प्रमादने—महर्षि यमदग्निकी होमधेनुके अमित प्रभावके लोभने उन्हे प्रमत्त कर दिया और भगवान परशुरामके परशुकी वलि वनना पड़ा उन्हे। पिताके वधसे उनके पुत्रोकी बुद्धि क्रोधके कारण नष्ट हो गयी और महर्षिकी निष्करुण हत्या करके वे भी परशुराम क्रोधानलमें भस्म हो गये।

पिताके वधसे भगवान परशुराम क्रोधकी मूर्ति वन गये थे। वे क्षत्रियमात्रका संहार करने लगे थे। इक्कीस वार उन्होंने ढूँढ-ढूँढकर क्षत्रियोका विनाश किया। भूभार-हरणके लिए उनको एक बहाना मिल गया था। अर्जुनके शेष पुत्रोको माहिष्मती पुरी छोड़नी पडी। वे प्राण वचाते भागने के लिए विवश थे। अन्तत उनकी सन्तान माथुर मण्डलमें आकर बस गयी और इस प्रकार मथुरा यादव राजधानी बनी।

यद्यपि महाराज ययातिके शापकी परम्परा-रक्षाके लिए अग्रज सिंहासन नही स्वीकार करते थे, किन्तु उनका तथा उनके वंशका गौरव सुरक्षित रहा यहाँ। वे श्रेष्ठ माने जाते रहे और सिंहासनासीन होनेपर भी नरेश अपने अग्रजोंके सम्मुख अवनत ही रहते थे।

महाराज अर्जुनके केवल पांच पुत्र वच गये थे भगवान परशुरामके महासंहारसे। उनमें-से जो मथुरा आकर वसे, उनमे अनेक गोत्र हो गये। जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित—ये पाँच वचे थे। उनमें-से जयध्वजके पुत्र तालजंघ हुए और उनका वंश तालजंघ कहा गया। माथुर मण्डलमें केवल शूरसेन और मधु आये, अत यहाँ प्रारम्भसे माधव और शौरसेनीय--ये दो यदुवंशी कुल रहने लगे। भगवान वासुदेवको शौरि तो पितामह शूरसेनजीके नामसे कहते थे। वे माधववंशी हैं।

वंशमें महाप्रतापी पुरुषके होनेपर उस पुरुषके नामसे आगे गोत्र वदल जाता है, यह परम्परा महर्षियोंने वहुत विचारपूर्वक निश्चय की होगी। इसका सबसे अधिक लाभ यादवोंने उठाया। यहाँ यदुवंशमें माधवीय, वृष्णि, कुक्कुर, भोज आदिवंशी शाखाएँ वन गयी और इस प्रकार गोत्र परिवर्तित हो जाने से परस्पर विवाह करनेका सुयोग पा गये। उन्होंने वहुत कम अपनी कन्यायें माथुर-मण्डलसे वाहर विवाही। वे अपने यहाँ ही गोत्रान्तरके सुयोगके कारण विवाह करते रहे।

यादव महाराज उग्रसेन

मथुराके अधिदेवता तो सदासे श्रीहरि हैं। भगवान कपिल वाराह यहाँके देवता हैं। भूतेश्वर क्षेत्रपाल है। चण्डिका देवी नगर-रक्षिका हैं। ध्रुवकी इस तपस्थलीको माहिष्मती छोडनेके पश्चात् यादवकुलने अपनी राजधानी बनाया।

माथुरमण्डलके अधिपति महाराज अन्धकके पश्चात् उनके पुत्र दुन्दुभि सिंहासनपर बैठे। उनके पुत्र अरिद्योत हुए और उनसे पुनर्वसु हुए। इन महाराज पुनर्वसुके पुत्र हुए महाराज आहुक। महाराज आहुकके दो पुत्र हुए—देवक और उग्रसेन। यदुवंशकी परम्पराके अनुसार छोटे पुत्र उग्रसेनजी मथुरा-नरेश हुए।

महाराज उग्रसेन तक चलती परम्पराको उनके ज्येष्ठ पुत्र कंसने भंग किया था। वह स्वयं पिताको बन्दी बनाकर सिंहासनासीन हुआ, किन्तु उस कलंकको भगवान वासुदेवने धो दिया। महाराज उग्रसेन ही यादवाधिप बने रहे अन्त तक।

कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान ये नौ पुत्र महाराज उग्रसेनके हुए, किन्तु क्या लाभ ऐसे पुत्रोंसे। यादव-कुलकी मर्यादा चल पाती तो सबसे छोटे तुष्टिमानको सिंहासन प्राप्त होता, किन्तु भगवान वासुदेवने जब यदुकुल-कलंक कंसको सिंहासनसे नीचे फेंककर परमधाम पहुँचाया, उसके आठों भाई झपट पडे थे शस्त्र उठाकर। फल जो होना था, वही हुआ। भगवान अनन्तने परिघ उठा लिया और कंसके साथ ही उन सबकी अन्त्येष्टि उसी दिन हो गयी। सिंहासनपर वृद्ध उग्रसेनको बैठाये बिना यदुकुलमें चली आती महाराज ययातिके शापकी मर्यादा बचायी नहीं जा सकती थी।

महाराज उग्रसेनके कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू और राष्ट्रपालिका ये पाँच कन्यायें हुईं। महाराजने तथा उनके अग्रज देवकजीने निश्चय कर लिया था कि वे अपनी कन्यायें मथुरासे बाहर नहीं भेजेंगे। मथुरामें तो शूरसेनजीका ही कुल था, जहाँ महाराज कन्याका विवाह कर सकें। फलतः सबका विवाह उसी कुलमें हुआ।

महाराज उग्रसेन अत्यन्त सौम्य रहे। उनमे कोई महात्वाकांक्षा कभी नही दीखी और न उन्हे कभी रुष्ट होते देखा गया।

उनमे रोष या उग्रताका कोई चिह्न नही था, उन्होंने कभी किसी राज्यपर आक्रमणकी अनुमति नही दी। वे स्वभावसे ही उदार थे और दूसरे लोगोकी सम्पत्ति स्वीकार कर लेते थे। उनका अपने किसी मतमे कोई आग्रह नही था—जैसे उनका अपना कोई मत ही न हो। लेकिन वे धर्म, प्रजापालन तथा भगवद्भक्तिमे अत्यन्त दृढ थे। उन्होने कंसका अनेक वार वहुत कडा विरोध किया था और अन्तमे तो कंसके असुरोके विरुद्ध शस्त्र ही उठा लिया था उन्होंने।

भगवान वासुदेव अत्यधिक सम्मान करते थे महाराजका। किन्तु महाराज ही थे कि उन्हे कभी भ्रम नही हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र सामान्य मनुष्य है। वे वासुदेवकी भगवत्ताके ठीक ज्ञाता थे और इसीलिए सदा वासुदेव जो कहे उसीका समर्थन करते थे।

अपनेको भगवत्करोंका यन्त्र वना देना, यह कहा बहुत जाता है, शास्त्रोमें स्थान-स्थानपर है, किन्तु यह कितना कठिन है। महाराज उग्रसेनने इसे सहज वना लिया था। उनके भीतर अपने अहंकी ग्रन्थिका लेश भी कहीं नही रह गया था।

सर्वेश्वरेश्वर यो ही तो किसीका अनुगत नही वन जाता। भगवान वासुदेव महाराज उग्रसेनके सिहासनके पार्श्वमें भृत्यके समान खड़े रहते थे और महाराजके समुचित सम्मानके प्रति सदा सावधान रहते थे।

इतना सम्मान कदाचित् ही पृथ्वीपर किसी मनुष्यको मिला होगा। सुधर्मा सभामे सिहासनासीन महाराजके सम्मुख अनेक वार इन्द्र, कुवेरादि लोकपाल आये और क्षुद्र सेवकके समान उनके पादपीठका अपने मुकुटसे स्पर्श करके अपने उपहार वहाँ अर्पित करके पिछड़ते पदो हट गये। महाराजके सम्मुख मस्तक उठानेकी धृष्टता देवराज भी नही करते थे। लेकिन महाराजमे गर्वकी छाया तक नही दीखी कभी। वे जैसे मूर्ति वन गये थे--आराध्यमूर्ति और उनका अन्तर सदा सजग रहता था—'यह भगवान वासुदेव हैं कि तुम्हे इस आराध्यपीठपर वैठाये हैं। यह वासुदेवकी महिमा उनका प्रभाव—उनकी कृपा है।'

—x—

युवराज कंस

महाराज उग्रसेन इतने सात्विक, शान्त, भगवद्भक्त, परदु खकातर और उनके ज्येष्ठ पुत्र ऐसे क्रूर, अभिमानी तथा असुर-मित्र हो गये—आश्चर्य ही है। देवर्षि नारदने बतलाया था कि देवासुर-सग्राममे भगवान नारायणके चक्रसे मारा गया महासुर कालनेमि ही कंसके रूपमें धरापर आया, अत. कसके शील-स्वभावमे जो आतुरता थी, वह समझमे आती है, किन्तु ऐसे असुर ऐसे सात्विक पुरुषको पिता बनानेका अवसर कैसे पा जाते है ?

कंस उग्रसेनजीका केवल क्षेत्रज पुत्र था। महारानीके प्रमादसे उनके उदर मे आनेका अवसर मिल गया असुरको। देवर्षि नारदने यह कथा कसको भी सुना दी थी।

देवासुर-सग्राममे जब श्रीहरिके चक्रने कालनेमिका सिर धडसे पृथक् कर दिया, शुक्राचार्यजीने सायकाल फिर उस सिरको धडमे सटाया और अपनी सजीवनी विद्यासे जीवित कर दिया। जीवित होकर वह मन्दराचल-पर चला गया और केवल दूर्वाका रस पीकर दीर्घकाल तक तप करता रहा। जब सुप्रसन्न सृष्टिकर्त्ताने उसके सामने प्रगट होकर वरदान माँगनेको कहा तो उसने माँगा—'कोई सुर-असुर मुझे मार न सके।'

इस वरदानको पाकर कालनेमि पृथ्वीपर आनेका अवसर देख रहा था। अवसर पाकर कसके रूपमे उसने जन्म-ग्रहण किया।

देवर्षि नारदने बतलाया था—"जिस सौभ विमानको तथा उसके स्वामी शाल्वको श्रीकृष्णने नष्ट किया, वह विमान भगवान शकरके आदेशसे दानवेन्द्र मयके द्रुमिलसे लेकर शाल्वको दिया था। दानवेन्द्रने इस विमानको पहिले बनाया था और द्रुमिलकी सेवासे प्रसन्न होकर उसे दे दिया था।"

महाराज उग्रसेनके विवाहको थोडे ही दिन हुए थे। महारानी युवती थी। उन्होने उत्साहमे महाराजसे अनुमति ली और सखियोके साथ सुयामुन (कलिन्द) पर्वत पर घूमने चली गयी। गिरि, वन एव निर्झरोसे उन्हे सहज प्रीति थी। महारानीने नयी अवस्थाके उत्साहमे यह ध्यान नही दिया कि पतिसे पृथक् होनेपर प्रोषित-पतिका-नारीको सयम, सादगी और मर्यादा-

पूर्वक रहना चाहिये। उन्होंने भली प्रकार शृंगार किया था। पर्वतपर किन्नर युगलोके उत्तेजक गायनको सुनकर वे स्वय शृंगार रसमें मग्न हो गयी। सखियोके साथ गाती हुई वे पर्वतपर पुष्पित लता-कुञ्जोमे घूमने लगी।

इसी समय द्रुमिल अपने सौभ विमानमें चढा पर्वतके ऊपरसे निकला। उसने सहज ही विमान नीचे उतारा और विमानचालकको साथ लेकर पर्वतपर घूमने चल पड़ा। दूरसे उसकी दृष्टि सम्पूर्ण शृंगार किये महारानी पर पडी। वे अतिशय सुन्दर तो थी ही। दानव द्रुमिल वैसे भी कामुक था। उसका मन क्षुब्ध हो गया।

'यह सुन्दरी कौन है ?' दानवने स्वत. कहा। उसका सेवक मौन रहा। महारानीके भालका सिन्दूर स्पष्ट था और दानव जानता था कि आर्यनारीके साथ वलात्कार सम्भव नही है। वह शाप देकर प्राणोत्सर्ग कर देगी।

'यह तो यादव नरेश उग्रसेनकी महारानी है।' ध्यान करके दानवने यह जान लिया। महारानी पतिसे दूर हैं और इस समय उनका मन शृंगारोत्तेजित है, यह भी उसने जान लिया। साथीको वही छोडकर महाराजका रूप मायासे धारण करके महारानीकी ओर चल पडा।

'महाराज आप ?' महारानीने मुस्कराते हुए महाराजको अपनी ओर आते देखा तो चौंकी भी और प्रसन्न भी हुई।

'मैं तुम्हारा वियोग नही सह सका।' कहते हुए द्रुमिलने भुजाओमे महारानीको भर लिया। सखियाँ स्वय दूर चली गयी वहाँसे।

महारानी पहिलेसे ही उत्तेजित थी। उनके नेत्र बन्द हो गये। पतिका प्रतिवाद करनेका प्रश्न ही नही था; किन्तु उत्तेजना शान्त होते ही वे सावधान हो गयी। असुरके अगकी दीर्घताने उन्हें चौका दिया। वे क्रोधसे कॉपती हुई बोली 'सच-सच बता, तू कौन है ? तूने छल करके मेरा सतीत्व नष्ट करनेका साहस कैसे किया ? मैं तुझे अभी शाप देकर भस्म कर दूँगी।'

'तू मुझे शाप नही दे सकती।' द्रुमिल अपनी दानव प्रकृतिपर उतर आया—'शाप केवल सती दे सकती है। पतिसे दूर इतना शृंगार करके तू उन्मत्त क्रीड़ा कर रही है, यह सतीत्व है ? तू यहाँ एकान्त पर्वतपर कामोत्तेजक वेश बनाये, शृंगारके गीत गाती, हँसती-अठखेलियाँ करती दर्शकके मन-नेत्रको बलात् आकर्षित कर रही है और कहती है कि दोष मेरा है ?'

'तूने मुझे 'कस्त्व' कहा है, अत: तेरे इस समयके स्थापित गर्भसे जो पुत्र होगा, उसका नाम कस होगा।' दानवने कहा—'वह अतिशय प्रतापी होगा, इसीसे सन्तुष्ट हो जा। अन्यथा इस घटनाको प्रकट करके तू प्रताडिता-अपमानिता ही होगी।'

दानव वहाँसे तत्काल चला गया। महारानी बहुत दु खी, दीन हो गयी। कठिनाईसे उन्होने अपने अश्रु पोछे। सखियोने समझा कि महाराजके अकस्मात् चले जानेसे महारानी दु खी हो गयी है। वे उसी समय मथुरा लौट आयी।

कसका जन्म मृगशिरा नक्षत्रमे हुआ था। उसका कर्म नक्षत्र चित्रा था। वह बचपनसे उग्र प्रकृतिका था और बलवान क्रूर प्रकृतिके लोग उसे प्रिय थे। ऐसे लोगोको अनुशासनमे रखना उसे बहुत अच्छा आता था।

शीघ्र ही मथुराके मल्लोंने अल्पायु राजकुमारकी शक्तिके सम्मुख मस्तक झुका दिया। मल्लयुद्ध और गदायुद्ध कसको प्रिय थे और इनमे उसे अतिशय निपुणता प्राप्त थी। उसके नेत्र बड़े-बड़े और लाल-लाल थे। शरीर वज्रकेसमान कठोर, रस्सीके समान कसा सुदृढ था। विशाल शरीर और महाराज उग्रसेनसे सर्वथा भिन्न कज्जल कृष्णवर्ण था कसका। उसका नामकरण भी माताने ही किया था।

महाराज उग्रसेनने अपने ज्येष्ठ पुत्रको सेनापति बनाया उसकी युद्ध-प्रिय प्रकृतिको देखकर। ज्येष्ठ पुत्रको युवराज बनानेकी बात यदुकुलकी परम्परामे ही नही थी। महाराजने तो राज्याधिकारी समझकर ही छोटे पुत्रका नाम तुष्टिमान रखा था। वे चाहते थे कि प्रजाको वह सन्तुष्टि देता रहे। लेकिन कसने सेनापर शीघ्र अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सेनामे उसने अपने शील-स्वभावके शूर भरने आरम्भ कर दिये जो उसीके अनुगत थे। वे उसे युवराज कहने लगे। उनके प्राधान्यके कारण पूरी सेना ही उसे युवराज कहने लगी।

कसको अधिकार देना नही पडा। आज्ञा देना—शासन उसकी सहज प्रकृति थी। उसने प्रशासनके सभी विभागोपर स्वत. प्रभुत्व स्थापित कर लिया। किसीने प्रतिवाद नही किया, क्योकि महाराज तो सहज ही इस भारके हटनेसे अपनेको निश्चिन्त अनुभव करने लगे और स्वजनोके प्रति कसके मनमे इतनी प्रीति थी, वह उनकी प्रसन्नता, सुख-सुविधा, रुचि-सम्मानका इतना ध्यान रखता था कि आश्चर्य होता है। सभी उसे हृदयसे चाहते थे। उसके छोटे भाई तो उसपर प्राण देनेको सदा प्रस्तुत रहते थे।

इसमे आश्चर्यकी बात नही है। आसुर प्रकृतिमे केवल क्रोध ही प्रधान नही होता। मोह-ममताका भी पूरा प्रावल्य होता है। अत. जब तक कोई स्वजन अपने अहकार-स्वार्थके लिए ही आशकाका कारण न बन जाय, असुर स्वजनोंसे अतिशय स्नेह करते हैं, किन्तु उनके स्वार्थके लिए आशका हो तो अत्यन्त आत्मीयका निर्मम उच्छेद करनेमें भी वे हिचकते नही। कसका आसुर स्वभाव इस तथ्यके सर्वथा अनुकूल था।

कसकी तनिक भी रुचि प्रजा-पालनमें नही थी। प्रजाकी सुख-समृद्धिके लिए यत्नका प्रश्न आनेपर वह कह देता था—'सदा महाराज इसके लिए सचिन्त एव सयत्न रहते हैं, अत मेरे उधर ध्यान देनेकी आवश्यकता ही क्या है ?'

कसकी रुचि प्रजासे कर प्राप्त करनेमें थी। कर देनेमे प्रमाद तो कोई करता नही था, किन्तु विलम्ब भी सह्य नही था। वैसे जो स्वजन थे, उनके लिए कर देना कभी यादव-नरेशने अनिवार्य नही माना था। कर देना उनके लिए केवल महाराजके प्रति सम्मानसूचक था और इसके लिए समयका वन्धन नही था। कसने भी कभी इसे अनिवार्य वार्षिक-कर नही वनाया। यहाँ तक कि जब कस स्वय सिंहासनपर बैठ गया, व्रजपति केवल एक वार उसे कर देने पधारे। वह भी इसलिए कि उन्हे पुत्र-प्राप्ति हुई थी। इस अवसरपर सम्राट्का सम्मान किया जाना आवश्यक माना उन्होने। फिर वे मथुरा कर देने नही आये, न कर भेजा। कसने भी इसमें कभी सिंहासनकी अवज्ञा नही मानी।

स्वभावसे कंस क्रोधी था। लगता था कि वह क्रोधमे भरा ही रहता है। उसकी वाणी रुक्ष, कठोर और स्वर उच्च था। जैसे वह धीरे बोल ही नही सकता हो। मद्य-माँस उसे वहुत प्रिय थे। फलत. समान रुचिवाले लोग उसके परिकर वन गये थे। उसने जब सेना सजायी और दिग्विजय करने निकला, महाराजने मना किया था। 'क्षत्रियको महत्त्वाकांक्षी तो होना ही चाहिए।' यादव-कुलके शूरोने, प्रधान राजसभा-सभ्योंने, यादव वृद्धोंने भी कसका पक्ष लिया उस समय। महाराजको मौन रह जाना पडा था।

'मैं आपकी सेनाको समृद्ध करके लौटा लाऊँगा।' कंसने गर्व-पूर्वक कहा था—'मुझे अधिकाश स्थानोंपर द्वन्द्व-युद्ध ही करना है, अत आप निश्चिन्त रहें।'

सचमुच कसने प्राय मल्लयुद्ध ही किये । मथुराकी विजय-वाहिनीको प्राय तटस्थ दर्शक रहना पडा । युवराजकी विजयके समाचार मथुरामें आये दिन आने लगे और विजय किसे अप्रिय लगती है ? मथुराके नागरिक भी सोल्लास महोत्सव मनाते रहे ।

कस किसीको शूर सुनता था तो वही जा धमकता था और मल्लयुद्ध-की चुनौती देकर कह देता था—'जो पराजित होगा, उसे विजयीका सेवक होकर रहना पड़ेगा ।'

वीराभिमानियोने कसकी चुनौती सहर्ष स्वीकार की, किन्तु परिणाम यह हुआ कि उनकी सख्या कसके सेवकोमे वढती गयी । यह दूसरी बात है कि ऐसे लोगोको कसने सखाके समान ही स्नेह, सम्मान और सुविधा सदा दी ।

माहिष्मती पुरी कस पहले गया था । वहाँके नरेशके लोक-प्रसिद्ध मल्लयुद्ध निपुण पाँचो पुत्र चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल क्रमश. भिड़े और पराजित होकर कसके परिकर वन गये । केशी, अरिष्ट भी ऐसे ही उससे हारे । घोटक वने केशीको पछाडकर उसने उसपर सवारी करली थी और देवताओको भी आतकित रखने वाले अरिष्टासुरको जो प्राय. वृषभ वना रहता था, साँकलमे बाँधकर मथुरा ले आया था ।

मित्र बनाया उसने केवल द्विविदको । यद्यपि प्रवर्षण गिरिपर बीस दिन अविराम युद्ध करके द्विविदको कसने थका दिया । महेन्द्रगिरि पहुँचकर पर्वत ही उखाडने लगा तो भगवान् परशुराम क्रुद्ध हो गये, किन्तु कस उनके चरणोमें दण्डवत् गिर पडा था । इतनेपर भी परशुरामने अपना धनुष आगे धर दिया - 'तू इसे चढा सके तो ठीक, अन्यथा मैं अभी तुझे परशुकी भेट चढा दूँगा ।'

धनुप देकर वलकी परीक्षा करना परशुरामजीका पुराना स्वभाव है । त्रेतामे भी श्रीरामको उन्होंने वैष्णव धनुष चढानेको कहा था । उनका अपना धनुष भी भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित है । श्रीहरिने त्रिपुर ध्वसके लिए वह भगवान नीलकण्ठको दिया था । शकरजीने प्रसन्न होकर भूभार दूर करनेके लिए वह धनुप और परशु परशुरामको दे दिया ।

कसने उस लक्ष भारके धनुषको चढा दिया । यद्यपि वह पूरी शक्ति लगानेके कारण स्वेदसे लथपथ हो गया । स्वय कसने मथुरा लौटकर कहा था—'मैं धनुष चढ़ाकर लगभग मूर्छित हो गया था ।'

'मैं आपका सेवक हूँ।' धनुष भगवान् परशुरामके चरणोंके समीप रखकर कंस बोला था दण्डवत गिरकर—'मेरी रक्षा करें।'

'यह धनुष तू ही रख। इस शाम्भव अस्त्रकी पूजा करना।' परशुरामने कहा—'जो इसे तोड देगा, वह परिपूर्णतम परमात्मा है, यह समझ लेना। उससे विरोध करेगा तो निश्चय ही मारा जायगा।'

कंस वह धनुष मथुरा ले आया था। जिस दिन श्रीकृष्णचन्द्रने उसे तोड दिया, कंसकी चिन्ताका पार नही था उस दिन। समुद्र तटपर रहने वाला सर्पाकार अघासुर वहाँ पहुँचनेपर कंसको निगलने ही लगा था; किन्तु कंसने उसे पटक कर ऐसा रौंदा कि गलेमे लपेटनेपर भी अघ शिथिल ही बना रहा। वह भी अनुचर बनकर आ गया।

अधिकांश नरेशोंने बिना युद्ध किये मथुराका आधिपत्य स्वीकार करके युवराजको कर दे दिया। नरकासुरके यहाँ प्राग्ज्योतिषपुरमे प्रलम्ब, धेनुक, तृणावर्त, बकासुर जब कंससे हार गये तो बकासुरकी बहिन पूतना युद्ध करने आ गयी। कंसने उससे कहा—'यह बक मेरा भाई हुआ। तुम मेरी बहिन बनकर मथुरामे रहो।'

स्त्रीसे युद्ध करके विजयी होनेमे कोई यश नही और पराजित होनेमे अत्यन्त अपयश है, यह बात कंस समझता ही था। उसने नीतिकुशलतासे पूतनाको मना लिया। लेकिन भौमासुरने युद्ध नही किया। उसने हँसकर कंसको हृदयसे लगाया और कह दिया—'हम दोनो परस्पर मित्र रहे। परस्पर युद्धकी बात क्यों की जाय।' कंसने उसकी नीति-कुशलताको स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार शम्बरासुरने भी कंससे मैत्री कर ली बिना युद्ध किये। व्योमासुरने युद्ध किया त्रिकूटपर और हारकर सेवक बन गया। सबसे भिन्न कार्य किया बाणासुरने। कंसने उसके यहाँ जाकर युद्धके लिए ललकारा तो उस सहस्रबाहुने कहा—'मैं किसी अल्पप्राणसे युद्ध नही करता। इससे मुझे व्यथा होती है। तुम पहिले मेरा पैर उठा दो।'

बाणने भूमिपर पैर पटका। उसका चरण घुटने तक भूमिमे धँस गया। कंसने चरण उठा तो दिया, किन्तु इतना श्रम पडा कि क्लान्त हो गया। वह विजयके गम्भीरभ्रममे राशक हो ही गया था, भगवान शिवने रोक दिया आकर—'तुम परस्पर युद्ध मत करो। मित्र बनकर रहो।' कंसने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया।

पश्चिम दिशामे वत्सासुरको कसने पछाडकर सेवक वनाया ; किन्तु कालयवनसे मित्रता करली । यह कसने बुद्धिमानीकी , क्योकि उसे पता था कि कालयवनको युद्धमें अपराजित रहनेका वरदान प्राप्त है । कसने इसके पश्चात् अमरावतीपर आक्रमण कर दिया । यह समाचार मथुरा आया तो महाराज वहुत रुष्ट हुए । उन्होने कसको तत्काल मथुरा लौटनेका आदेश भेजा ।

आदेश पहुँचने मे देर हुई । कस आदेश पाकर लौट आया , अन्यथा वह अन्य लोकपालोकी पुरियोपर चढाई करता । उसकी योजना तो असुर-नाग लोकोको जीतकर त्रिभुवन-विजय करनेकी थी , किन्तु अमरावतीको वह आदेश मिलनेसे पूर्व ही पराजित कर चुका था । देवताओसे उसने युद्ध किया और जब उसके मुद्गरके आघातसे देवराजके हाथसे वज्र गिर पडा , देवताओमे वहुत-से भाग गये । शेषने पराजय स्वीकार करली ! कंस वहाँसे देवराजका छत्रयुक्त सिंहासन लेकर मथुरा लौट आया ।

पृथ्वीपर दिग्विजय करने मगधराज जरासन्ध निकले थे । धरापर मल्लयुद्ध और गदायुद्धमे उनकी तुलना नही थी । कसकी दिग्विजयका समाचार पाकर मथुरा आये और यमुना तटपर उन्होने सैनिक-शिविर डाला । उनके पास साठ सहस्र गजवल रखनेवाला महागज कुबलयापीड था । वह महागज अपनी शृङ्खला तोडकर सैनिक शिविरसे भागा । कुशल यह हुई वह नगरमे नही गया । नगरके वाहर मल्लशालामे पहुँच गया । उस समय युवराज कस वहाँ दैनिक व्यायाम एव मल्लयुद्ध करने पहुँचे थे । उस पर्वताकार मत्तगजको देखकर दूसरे मल्ल भाग खडे हुए , किन्तु कसने गजकी सूँड पकड ली और उसे घसीटता हुआ सीधे जरासन्धके सैनिक-शिविरमे मगधराजके सामने ले गया ।

'आप अपने इस गजको ठीक बाँध रखें ।' कसने उच्च स्वरमे चेतावनी दी—'यह नगर तक पहुँच गया था । अव यदि यह फिर उधर आया तो सम्भव है आप तक लौट न सके ।'

'तात ! तुम इसे मेरा उपहार मानकर स्वीकार कर लो ।' जरासन्धने सहर्ष उठकर कसको हृदयसे लगा लिया और वहुत सत्कार करके, उसी गजपर बैठाकर शिविरसे विदा किया । उसी दिन मगधराजके कुल पुरोहित महाराज उग्रसेनके सम्मुख नारियल लेकर पहुँचे और उन्होने प्रार्थनाकी—'मगधराज अपनी दोनो पुत्रियोंके विवाहके सम्बन्धमें वहुत चिन्तित थे । अल्पप्राण पुरुषको अपना जामाता बनाकर वे लज्जित नही होना चाहते

थे। मगधसे वे उपयुक्त पात्रके अन्वेषणार्थ ही निकले थे। सौभाग्यसे हम मथुरा आ पहुँचे। आपके ज्येष्ठ कुमारके बाहुबलको हमने प्रत्यक्ष देख लिया। मगधराजने प्रार्थना किया है कि यह नारियल स्वीकार करके इस सम्बन्धको स्वीकृति देनेका अनुग्रह करे।'

युवराज कस राजसभामे ही थे। नगरमे यह बात फैल चुकी थी कि मगधराजके महागजको उन्होने सूँड पकडकर घसीट कर सैन्य-शिविर तक पहुँचाया और उसे मगधराजके उपहारके रूपमे लाकर मथुराकी गजशाला-मे बांध दिया है। महाराजने ज्येष्ठ पुत्रकी ओर देखा। कसने सकोचसे सिर झुका लिया। महाराजने महर्षि गर्गको बुलवाया और उसी समय उस सम्बन्धको सविधि स्वीकृति दे दी।

मगधराजने मथुरामे ही अपनी दोनो कन्याये अस्ति और प्राप्तिका परिणय कसके साथ कर दिया। मथुरा-नरेशको गिरिव्रज तक बारात ले जानेका कष्ट भी नही करना पडा। दहेजमे मगधराजने इतने गज दिये कि मथुराकी गजसेना, जो नगण्यप्राय थी, भारतकी प्रमुख गजसेनाओमे गणना करने योग्य हो गयी।

युवराज कसके आग्रहसे ही उनकी बहिनो—चचेरी बहिनोका भी विवाह वसुदेवके ही कुलमे हुआ।



वसुदेव 'आनकदुन्दुभि'

वृष्णिवशमे देवमीढजीके पुत्र हुए शूरसेनजी। उनकी पत्नी मारिषाने दस पुत्ररत्न प्राप्त किये—महाभाग वसुदेवजी, देवभाग, देवश्रवस, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक। पाँच पुत्रियाँ हुईं देवी मारिषाके—पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतिकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी।

शूरजीने अपने सन्तानहीन मित्र महाराज कुन्तको अपनी ज्येष्ठ पुत्री पृथा दत्तक दे दी थी और इसीमे उनका नाम कुन्ती हो गया। महाराज पाण्डुने उनका पाणिग्रहण किया। श्रुतदेवाजीका विवाह करूपाधिप वृद्धशर्मासे हुआ, उनका पुत्र दन्तवक्र था। केकयनरेश धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उनके सन्तर्दनादि पाँच पुत्र हुए और उनकी कन्या भद्राजी तो भगवान वासुदेवकी पट्टमहिषी ही हुईं। चेदिराज दमघोषके साथ परिणय हुआ श्रुतश्रवाका, उनका पुत्र था शिशुपाल। अवन्तीनरेश जयसेनसे विवाह हुआ राजाधिदेवीका, उनके पुत्र हुए विन्द और अनुविन्द तथा श्रीकृष्णचन्द्रने जिन्हे महारानी बनाया, वे मित्रविन्दाजी पुत्री थी उनकी।

उद्धवकी माता कसा उग्रसेनजी की ज्येष्ठ पुत्री थी। उनके दो पुत्र हुए—वृहद्धल (उद्धव) और उनके ज्येष्ठ भ्राता चित्रकेतु। ग्रन्थोमे है कि जिसके मस्तकपर विना छत्र लगाये ही छत्रके समान सदा कमलाकार छाया वनी रहे उसे चक्रवर्ती कहा जाता है।[1] ऐसी छाया सदा श्रीवसुदेवजीके मस्तक पर देखी गयी। महाराज उग्रसेनके मस्तकपर यह छाया स्वाभाविक थी, किन्तु ...?

ऐसी छाया द्वारिकामे प्रद्युम्न और अनिरुद्धके मस्तकपर भी देखी जाती थी। भगवान वलराम और वासुदेवके मस्तकपर दीखी तो इसमे आश्चर्य ही क्या। त्रिभुवनके स्वामीने जिन्हें पिताका गौरव दिया, वे भूमिके चक्रवर्ती नरेशका पद स्वीकार करे या न करे, वे तो महज निखिल भुवनवन्द्य हैं। उनका आदेश स्वीकार करना सौभाग्य है त्रिभुवनाधीशके लिए भी। यह छाया तो केवल यह सूचित करती है कि चक्रवर्तीका ऐश्वर्य, प्रभुत्व, गौरव उस व्यक्तिमे है।

१ यस्य मूर्धनि दृश्येत विना छत्रेण भूपते ।
पद्मानुकारिणी छाया तमाहुः चक्रवर्तिनम् ॥

वसुदेवजीके सभी भाई उनका ऐसा सम्मान करते थे कि अग्रजका वैसा सम्मान पाण्डवोमे ही देखा गया था। वे भी अपने सब अनुजोको अतिशय स्नेह करते थे। उनका भवन ही नही, उनका अपना कक्ष भी उनके अनुजोका जैसे अपना ही गृह रहा। उनके अनुजोंके सभी बालकोंने कभी अनुभव नही किया कि वे हमारे अपने पिता नही है।

कमने उन्हे बहुत सताया था, उनको कितनी मनोव्यथा निरन्तर वर्षो तक झेलनी पडी—कोई कल्पना है। किन्तु उनका श्रीमुख सदा शान्त-गम्भीर दीखता था। कोई क्लेश—कोई व्यथा उन्हे स्पर्श नही कर मकी थी। अवश्य इसका एक सुपरिणाम हुआ था कि वे और माता देवकी भी अत्यन्त करुणाकातर हो गये थे। दोनोको किसीके भी दु खी होनेकी कल्पना असह्य थी।

पितामह शूरसेनजीने बहुत बडी आयु पायी। वे अन्ततक स्वस्थ, सशक्त बने रहे। वैसे उनके लिए यह अच्छा नही हुआ। उन परमश्रद्धेयको अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और उनकी भी सन्तानोका महासहार स्वय देखना पडा।

श्रीशूरसेनजीका भवन क्या गृहस्थका भवन था? वह तो देवमन्दिर था और उसमे वे साक्षात देव विराजमान रहते थे। प्रलम्बकाय, प्रशस्त-भाल, नित्य कृपापूरित दीर्घ लोचन, अजानु विशाल बाहु, विशाल वक्ष, उज्वल केश-श्मश्रु। शरीरमे वली पडी थी सर्वत्र, किन्तु वार्धक्यमे भी सम्पूर्ण तारुण्यकी शक्ति थी उनमे।

सब बालक ही नही, महाराज उग्रसेन तक नियम-पूर्वक प्रतिदिन उनके चरणोमें प्रणाम करने उनके भवनमे पहुँचते थे। वे कदाचित् ही कुछ बोलते थे। केवल सुप्रसन्न दृष्टिसे देख लेते थे। एकमात्र भगवान वासुदेवके पहुँचनेपर कहते थे—'तुम आये।'

'कोई सेवा तात?' प्राय भगवान वासुदेव पूछते थे चरण-वन्दना करके।

'अच्छा!' उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगते थे और उनका दक्षिण कर श्रीकृष्णकी अलकोपर घूमता था।

वे तपोवन नही गये, किन्तु भवनको तपोवन बना रखा था उन्होंने। उनके कक्षमें कोई उपकरण नही रहता था। एक दर्भासन अवश्य था शयनके लिये, पर पता नही, वे शयन कब करते थे। उन्होंने स्वयं

प्रागणमे तुलसी तथा थोडे पुष्प लगा रखे थे। सेवकोकी वात तो दूर— वालकोमें भी किसीको वहाँ कोई सेवा करने वे नही देते थे। स्वय उन वीरुधोकी सेवा करने या आराधनामे लगे रहते थे। केवल माता रोहणी थी कि हठपूर्वक स्वयं उनका भवन नित्य स्वच्छ कर आती थी और वे भी अतिशय वात्सल्यवश उन्हें रोक नही पाते थे।

आराधना—केवल आराधना ही उनका जीवन वन गयी थी। नगरमे, राजभवनमे क्या हो रहा हे, उन्हे कुछ पता नही रहता था। कस जव तक जीवित रहा, उसे भी साहस नही हुआ कि उनको कभी राज-सभामे वुलावे या उनके गृहमे जाय। उनके एकान्त जीवनमे उसे वाधा देनेका न प्रयोजन आया, न उसे स्मरण हुआ। कसके न रहनेपर भी वे प्राय. ऐसे ही रहे, जैसे नगरमे हो ही नही।

उनके ज्येष्ठ पुत्रने अपने ऋषिकल्प पिताका सम्पूर्ण शील-स्वभाव पाया था। निखिल व्रह्माण्डनायकको भी जिन्हे पिता वनानेका लोभ लगा, उनकी गुण-गरिमाका कोई भी कैसे अनुमान कर सकता है। अठारह पत्नियाँ थी उनके और वे मव सवके पुत्रोके लिए अपनी ही माता थी।

महाराज उग्रसेनके अग्रज देवकजीके सात कन्याये थी—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। इन सातो-का विवाह तो देवकजीने क्रमश वसुदेवजीसे ही किया ही था, पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, इन्दिरा, वैशाखी, सुनाम्नी, वृकदेवी और सुतनु और थी। इनमे-से रोहिणी, इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा और सुनाम्ना ये पाँच तो पौरववशीया ही हैं। शेष छ विभिन्न राजकुलोसे आयी थी। इनकी सन्तानोंके साथ वसुदेवजीके अनुजोकी सन्तानोका एक वहुत वडा समुदाय था। सव मातायें समान थी और उस भवनमे देवरानियाँ अपनी जेठानियोकी सगी वहिनें ही रही। सभी माताओने सवके बच्चोको स्वगर्भजातका वात्सल्य ही सदा दिया।

अन्त पुर वालकोंसे भरा रहता था, किन्तु माता देवकी अपने स्वामीके समीप ही प्राय रहती थी। वे सवसे छोटी थी—उनके हृदयसे यह व्यथा कभी नही गयी कि उनके कारण उनके स्वामीको वन्दी-जीवन दीर्घकाल तक व्यतीत करना पडा। उनसे किसी उनकी सपत्नीने कभी

स्पर्धा नहीं की। सब उनको अनुजाका स्नेह देती रहती थी; किन्तु ये दिव्य दम्पत्ति तो जैसे धरापर आराधना करने ही आये थे।

भगवान वासुदेवके पिताका सदन—उनका निजी कक्ष भी सदा असज्जप्राय ही रहा। पितामहके समान ही यह गृह भी मन्दिर ही था और इसमें भी जाते समय सबमें श्रद्धा-विनम्रता स्वत आ जाया करती थी।

आराधनाके अतिरिक्त महाभागवत् वसुदेवजीको जैसे कोई कार्य नही रह गया था। उनको नगरसे, प्रशासनसे और परिवारसे भी सम्यक् श्रद्धा मिली थी, किन्तु वे प्राय अन्तर्मुख रहते थे। कही कोई वाह्य परिस्थिति उन्हे विचलित नही करती थी। इस सदनमे भी दास-दासियोका प्रवेश नही था। देवकी माताने तो द्वारिकामे भी इस सदनकी कोई सेवा अपनी किसी पुत्रवधूको नही करने दी। वे स्वय ही गृहमार्जनसे लेकर समस्त सेवा यहाँ करती थी।

माता देवकी

एक साथ इतना सौभाग्य और इतना क्लेश कैसे मिलता है जीवको ? महाभाग वसुदेवजी और माता देवकीके सौभाग्य तथा क्लेशकी भी सीमा सोचना कठिन है ?

महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायनने लिखा है—प्रजापति महर्षि कश्यपको यज्ञ करना था, वरुणदेवसे वे उन गौओको माँग लाये जो समुद्र-मन्थनसे निकली सुरभिकी सन्तान थी।

वे कामधेनु थी। उनको पाकर महर्षि कश्यपके यज्ञमे किसी सामग्रीका अभाव रह नही सकता था। यज्ञ साग सम्पन्न हो गया, किन्तु देवमाता अदिति और सुरभिके मनमे लोभ आ गया। सुरभिने कहा—'ये मेरी सन्तान हैं, मेरे पास रहे।'

देवमाताका कहना था—'सचराचर महर्षिकी प्रजा है। सब आते है अपने पिताके आश्रममे। सुर-असुर, नागादि सब आते है और मुझे अपनी तथा अपनी सपत्नियोकी सन्तानोका सत्कार करना पडता है। इन गायोकी मुझे आवश्यकता है। वरुण इनका क्या करेंगे ?'

देवमाता अदितिका दिति, दनु आदि सब समर्थन करने लगी थी। सब चाहती थी, गाये कश्यपाश्रममे ही रहे। सब पत्नियोका आग्रह महर्षि कश्यपको स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने माँगनेपर भी वरुणको गाये नही लौटायी।

जलाधीश वरुण सुर-असुर सबके पिता महर्षि कश्यपके साथ कोई धृष्टता करते तो सभी उनके शत्रु हो जाते। विवश होकर वे लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके पास गये—'महर्षि मेरी गाये नही दे रहे है। ये गाये अपने तेजसे ही रक्षित रहनेवाली, कामधेनु है और समुद्रोमे विचरण करती हैं। आपने और सभी देवताओंने इन्हे मुझे प्रदान किया था। इनके अभावमें तो मैं कगाल हो गया हूँ। आप इन्हे दिला दे या फिर और किसीको जलाधिप बनावें।'

ब्रह्माजीको अपने पौत्रपर क्रोध आ गया—'महर्षि और प्रजापति होकर कश्यप अन्याय करता है ?' उन्होने शाप दे दिया—'कश्यपको

साधारण मनुष्यके समान लोभ आया है, अत. वह अपनी पत्नी अदितिके साथ धरापर मनुष्य-जन्म ले। सुरभिको भी मानवी होकर उत्पन्न होना होगा और वह गोपोके मध्य रहकर अपनी सन्तानोका सान्निध्य सुख पायेगी।'

महर्षि कश्यपने सुना तो पत्नियोके सहित ब्रह्मलोक जाकर पितामहकी स्तुति करके उन्हे प्रसन्न किया। वरुणको उनकी गौये लौटा दी। सुप्रसन्न ब्रह्माजीने आश्वासन-वरदान दिया —'पृथ्वीपर जन्म लेनेपर आदिपुरुष तुम्हारे पुत्ररूपमे अवतीर्ण होगे और सुरभि भगवान अनन्तकी जननी बनेंगी।'

महर्षि कश्यपके समान ही वसुदेवजी लोकपिता थे। उनको सब अपनी ही सन्तान लगते थे। किसीपर रुष्ट होते उन्हे किसीने देखा नही।

माता देवकीकी गुण-गाथा अनन्त है। वे वात्सल्यमयी तो कंसपर भी क्रोध नही कर सकी। वे उसे भी दयापूर्वक ही स्मरण करती थी—'भाई कसको विधिने अपना खिलौना बना लिया'—यही वाक्य उनके मुखसे सदा कंसके लिए निकला।

भगवान अनन्तकी जननी रोहिणीजीको ब्रजमे दीर्घकाल तक रहना पडा। वे सुरभिकी अंशोद्भवा थी। स्वर्गीय सुरभिके समान ही सबके लिए नित्य सुप्रसन्ना, सर्वकामवर्षिणी, अनन्तवात्सल्यमयी, सम्पूर्ण कुल-की– यादव राजसदनकी वे अधिदेवता थी और सुर भी आकर उनकी चरण-वन्दना ही करते थे।

माता देवकी महाराज उग्रसेनके अग्रज देवकजीकी सबसे छोटी कन्या थी। कसका जब वे शिशु थी, तबसे उनपर असीम स्नेह था। वैसे तो कस अपने सभी स्वजनोका बहुत ध्यान रखता था पहिले।

कस कहता था—'मैं अपनी छोटी बहिनका ऐसा विवाह करूँगा कि दीर्घकाल तक राजकुमारियाँ वैसे विवाहका स्वप्न देखा करेंगी।'

माता देवकी शैशवसे शान्त-गम्भीर ही रही हैं। पितामही कहती थी कि 'यह बालिका नन्ही थी तब भी चपल नही थी। तब भी अपने खिलौने दूसरी सहेलियोको बाँट देती थी। इसे तो तब भी पूजा-खेल ही प्रिय लगता था—जब देखो, तब पूजा करनेमें लगी है।'

महाराज उग्रसेनने अग्रजको प्रसन्न कर लिया इसके लिए कि देवकीका विवाह उसकी इच्छानुसार हो। महर्षि गर्गको उन्होंने पृथ्वीमे

देवकीके उपयुक्त वर ढूंढनेको कहा और महर्षिकी यात्राकी व्यवस्था कर दी।

यदुकुलको सबने तभी महान भाग्यशाली समझ लिया था जब महर्षि गर्गने यादव पौरोहित्य स्वीकार कर लिया। भगवान शकरके साक्षात् शिष्य, परम तपोधन, ज्योतिप शास्त्रके मूर्तिमान विग्रह गर्गाचार्यजी पौरोहित्य स्वीकार करेंगे, यह सम्भावना ही किसीको नही थी। जव यह सम्वाद मिला—पितामह भीष्म वोल उठे—'निश्चय यदुवशका अतिशय उत्कर्ष-काल आ पहुँचा है। महर्षि गर्गको भी जिस कुलका पौरोहित्य पद प्रलुव्ध करे, उस कुलका उत्कर्ष, लगता है उन सर्वदर्शीको दीख गया कि परमपुरुष इस कुलमे आनेवाने हैं।'

पितामह जैसे भगवद्भक्त, धर्मैकमूर्ति, नैष्ठिक ब्रह्मचारीका मानस असत्यका स्पर्श नही करता—न कर सकता था। सबने तवसे ही यादव-कुलसे अपने सम्वन्धको वहुत महत्व देना प्रारम्भ कर दिया था। देवी पृथा तबसे पितामहकी अतिशय स्नेहभाजन होगयी थी।

महर्षि गर्गाचार्यजी अकस्मात् भ्रमण करते एक दिन मथुराकी राजसभामे आ गये थे। उनकी कीर्तिसे भला कौन परिचित नही था। महाराज उग्रसेनने उनकी विधिवत् अर्चा करके उन्हे सन्तुष्ट किया और प्रार्थनाकी—'हम अपनेको कृतकृत्य मानते यदि आचार्यचरण यदुकुलके पौरोहित्यको स्वीकार करके हमको अपने अभय करोकी छायामे ले लेते।'

महर्षिने एक क्षणको नेत्र वन्द किये और स्वीकृति दे दी। उसी दिन उनके आवासकी व्यवस्था मथुरामे महाराजने कर दी। सम्पूर्ण यदुवशके पुरोहित होनेपर भी महर्षि अपने सात्वत कुलके यजमानोको और विशेपत. पितामह शूरसेनजीके कुलको वहुत अधिक स्नेह देते थे।

वे वीतराग प्रसन्नतापूर्वक देवकीजी के लिए वर ढूंढने चले गये। वैसे इस कार्यके लिए उनसे अधिक उपयुक्त पात्र दूसरा हो नही सकता था। उन सर्वज्ञको तो कही किसीसे कुछ पूछना था नही। प्रसिद्ध राजकुलोके कुमारोको एक दृष्टि देखना मात्र था उन्हे।

आशाकी अपेक्षा वहुत शीघ्र महर्षि मथुरा लौट आये थे। उन्होंने महाराज उग्रसेनसे लौटकर कहा—'महाराज मैंने प्रमुख राजकुल देख लिए। एकान्तमे त्रिभुवनके—सुर असुर सवके प्रधान पुरुषोकी कुण्डलियो पर विचार कर लिया। देवकीके लिए वसुदेवजीके अतिरिक्त त्रिभुवनमे दूसरा उपयुक्त वर नही है।'

कंस तत्काल उठ खड़ा हुआ था राजसभामे—'मैं प्रारम्भसे कह रहा हूँ कि वेचारी बालिका मथुरासे दूर भेज दी जायगी तो दुखी हो जायगी। वैसे ही वह गूंगी जैसी है। अपने अभाव-कष्टकी वात कहना उसे आता नही है। उसके शील-स्वभावसे परिचित स्वजनोंसे दूर उसे कैसे भेजा जा सकता है। उसकी सब बहिने जहाँ हैं, वही वह रहे।'

सचमुच कंसका प्रारम्भसे आग्रह था कि देवकीका विवाह वसुदेवजीके साथ ही हो। प्रतिवाद सहन करना कंसके स्वभावमें नही था। देवकीजीके प्रति अतिशय स्नेहके कारण पिताके निर्णयमें उसने पहिले बाधा नही दी थी। अब महर्षिकी बात सुनकर उसने निश्चित स्वरमें कहा—'महर्षि ! आप मुहूर्त निश्चित करे।'

'शूरसेनजीसे पूछना होगा पुत्र।' महाराज उग्रसेनने हँसकर कहा—'वसुदेवजी भी अब बालक नही हैं। उनकी भी अनुमति आवश्यक है।'

'आप भी अद्‌भुत हैं महाराज !' कस खुलकर हँसा—'शूरसेनजीको किसीकी भी प्रार्थना अस्वीकार करना आता है? नियम पूरा करलें आप या पितृव्य देवकजी उन तापसके सम्मुख जाकर। वे तो स्वीकृति और आशीर्वाद देना ही जानते हैं। महर्षिकी मुहूर्त-गणना अनुमति देती हो तो मैं वसुदेवजीके पास अभी जा रहा हूँ।'

'तुम्हें अनुमति है तात !' महर्षिने कंसकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें कहा—'तुम प्रारम्भ करो। अथमें इतिका सदा सन्निवेश रहे, यही विधाताका विधान है।'

कमने या किसीने नहीं ध्यान दिया आश्चर्यकी गूढवाणीपर। विवाह तो उसी दिन निश्चित हो गया। शूरसेनजीने सहर्ष नारियल स्वीकार कर लिया।

—×—

विवाह

कंस बड़े उत्साहसे पहुँचा था श्रीवसुदेवजीके भवन। वसुदेवजीने आगे आकर स्वागत किया उसका। भुजाये फैलाकर मिले और साथ-साथ भवनमे लाकर बोले—'युवराज अन्त पुरमे पधारे। मेरे साथ जानेसे भाईसे मिलनेमें आपकी बहिनें कदाचित कुछ सकोच करे।'

'आपके अन्त पुरमे तो मैं कुछ दिन पीछे जाऊँगा, जब अपनी एक और बहिनको वहाँ रहनेका प्रबन्ध करके साथ ले जाऊँगा।' कंसने हँसते हुए कहा—'मुझे आप अनुमति तो देते हैं ?'

'अन्त पुर आपकी बहिनोका है, उनका भाई किसीको वहाँ बसाना चाहे तो मैं रोकने वाला कौन ?' वसुदेवजीने भी सहास्य ही कहा—'अनुमति ही लेनी है तो आप अपनी बहिनोंसे लीजिये।'

'देवकी सबको प्रिय है। सबके लिए बच्चीके समान है। उसे यहाँ कोई अस्वीकार नही करेगा। वह भी अपनी बड़ी बहिनोमे रहेगी तो प्रसन्न रहेगी।' कस ने बात स्पष्ट कर दी—'मै आपकी अनुमति लेने आया हूँ।'

'युवराज ! आप जानते है कि मै इस सम्बन्धमें स्वाधीन नही हूँ। मेरी ही रुचि की बात होती तो मैं तो मर्यादापुरुषोत्तमके समान एक पत्नी-व्रत अपनाता।' वसुदेवजीने बहुत गम्भीर होकर कहा—'किन्तु पितृ-चरणका मैं आज्ञानुवर्ती हूँ और जब वे किसीकी कन्याको अपनी पुत्रवधू बनानेकी स्वीकृति दे देते हैं, मैं क्या कर सकता हूँ ?'

'तब मेरी सबसे छोटी बहिन—मेरी पुत्री जैसी देवकीको भी कृतार्थ ही करना है आपको।' कस खुलकर हँसा—'इस बार स्वय महाराज प्रार्थना करने गये हैं और अब आप जानते ही है कि आपके पितृचरण तो आशुतोष हैं। उनके चरणोमे पहुँची प्रार्थनाको वे 'एवमस्तु' कहना ही जानते हैं !'

कस वसुदेवजीसे भुजा फैलाकर मिला और साथ लाये उपहार भेट करके लौट आया। वसुदेवजीने उपहार देखकर कहा था—'यह सामग्री युवराज !'

'यह गृह मेरी वहिनोका है। भाईका स्वत्व है कि वह जो चाहे, यहाँ लाकर रखे।' कसने अपने सहज अट्टहासके स्वरमे जाते-जाते कहा—'आपको केवल स्वीकार करनेका अधिकार है, निषेव करनेका अधिकार नही है।'

उसी दिनसे वसुदेवजी अन्त पुरमे देवी देवकीका कक्ष निश्चित हो गया और सभी अन्त.पुरकी सदस्याये उसे सज्जित करनेमे सोल्लास लग गयी। सबका एक ही स्वर था—'पिताजीने और महाराजने बहुत उत्तम निर्णय किया। देवकी इतनी भोली है कि कही अकेले जाकर तो अत्यन्त दु खी हो जाती। उस छुई-मुई-सी को पल-पल सम्हालनेवाली अभि-भाविकाये आवश्यक हैं।'

महाराज उग्रसेन अपने अग्रज देवकजीको लेकर ही श्रीशूरसेनजीके सदन पधारे थे। प्रणाम करके उन्होंने कहा—'हम दोनो प्रार्थना करने आये हैं कि आप अपने ज्येष्ठ पुत्रके लिए एक पुत्रवधू और स्वीकार कर लें।'

'अच्छा महाराज।' शूरसेनजीने तो यह भी नही पूछा कि उनकी यह होनेवाली पुत्रवधू कौन है।

पितामहीने पूछा था कि 'किस कन्याके लिए यह प्रस्ताव है?'

'महाराज स्वय आये हैं तो कन्याका कुल क्या पूछना है।' शूरसेनजीने रोक दिया था—'वसुदेव तुम्हारा ही तो नही है। महाराजका भी पुत्र ही है वह। उसका विवाह महाराज रना चाहते हैं तो तुम्हे उचित पुत्रवधू मिलेगी।'

'हम देवकीके लिए प्रार्थना करने आये है।' महाराजने स्पष्ट कर दिया।

'देवकी!' पितामहीका अत्यधिक स्नेह देवकीजी पर है, यह सबको ज्ञात था। वे तो नाम लेकर ही मग्न हो गयी।

'प्रार्थना कैसी महाराज!' शूरसेनजीने सुप्रसन्न कहा—'वसुदेव आपका है और हम भी आपके ही हैं।'

मथुरामे इस विवाहकी चर्चा प्राय: चला करती थी। इतना उल्लास इतनी महती नगरसज्जा, इतना सम्भार इस विवाहमे हुआ था कि किसीकी कल्पनामें भी यह नही आ सकता था।

महाराज उग्रसेन और उनके अग्रज देवकीजी ने अपनी सभी कन्याओका विवाह शूरसेनजीके ही कुलमे किया था और किसी विवाहमे उन्होने कोई कृपणता नही की थी, किन्तु यह उनकी सबसे छोटी कन्याका विवाह था। उनको लगता था कि प्रत्येक बार कुछ न कुछ त्रुटि रह गयी है और इस बार सब त्रुटियोको दूर करना है।

कसका उत्साह सबसे अधिक था। उसने अपने सभी अनुगतो, मित्रोको सन्देश भेज दिया था—'यह मेरी अनुजाका—मेरी पुत्री जैसी अनुजाका विवाह है।' अपनी दिग्विजयमे प्राप्त सब दुर्लभ सामग्री कसने देवकीके दहेजके लिए सुरक्षित कर दी थी। केवल आयुध, उद्दण्ड अश्व एव महागज कुवलयापीड उसे शान्त प्रकृति वसुदेवजीके उपयुक्त नही लगे।

वैसे ही कसकी आज्ञाकी उपेक्षा करनेका कोई साहस नही करता था और इस समय तो सभीमें आन्तरिक उल्लास था। इसपर भी कंस स्वयं सम्पूर्ण सामग्री साज-सज्जा आदिका निरीक्षण कर रहा था। सबसे अधिक उल्लास था उसमें—अकल्पित उत्साह।

असाधारण उत्साहकी प्रतिक्रिया भी असाधारण होती है। इसलिए पीछे जो कुछ हुआ, वह स्वाभाविक था।

केवल महर्षि गर्गाचार्य उन दिनो शान्त-गम्भीर थे। सभी पीछे वर्षों तक विवाह-चर्चाके साथ कहते रहे कि महर्षिके नेत्र अद्भुत गम्भीर थे उन दिनो। किसी कार्यमे महर्षिने प्रमाद नही किया। जो आवश्यक था—सबका निर्देश किया और जो कराना था, सब कराया, किन्तु उल्लास नही था उनमे।'

कसके स्वभावमे शीघ्रता थी, वह प्रतीक्षा करना जानता नही था। उसके आग्रहके कारण महर्षिको विवाहका मुहूर्त निकटका वह रखना पडा, जो उन्हे श्रेष्ठतम नही लग रहा था।

वृद्धाये अन्त तक कहती सुनी गयी मथुरामें कि 'कसके दुराग्रहके

कारण देवकीका पाणि-ग्रहण शीघ्रतामे हुआ।' कसने विवाह-मण्डपमे यद्यपि कहा नम्रतापूर्वक, किन्तु उसके स्वरमें आदेश एव कठोरता भी स्पष्ट थे। उसने कहा था—'आचार्य ! विचारी बालिका कल सायंसे उपवास किये है। वसुदेवजी तो उपवासको सह सकते है; किन्तु देवकी तो बच्ची है, आप विलम्ब कर रहे हैं। परिणय-क्रिया यथाशक्ति समाप्त करनेकी कृपा करे।'

'अच्छा तात!' आचार्यने अन्यमनस्क भावसे कहा था—'मैं कुछ अधिक उत्तम लग्नकी प्रतीक्षा कर रहा था, किन्तु तुम्हारी इच्छा ही हो। नियतिको गर्ग टाल कैसे सकता है। आचार्यने सचमुच शीघ्रता की सभी क्रियाओमे। उनके शब्दोपर उस समय किसीने भी ध्यान नही दिया था।

दहेजकी गणना सम्भव नही थी। युवराज कसने बहुत अधिक सामग्री पहिले ही वसुदेवजीके भवन भेज दी थी। अश्व, गज, रथ, गौये आदिकी वहाँ सख्या मात्र सुना दी गयी। लगता था कि मथुराका सम्पूर्ण राजकोष ही दे दिया गया है।

भव्य सत्कार किया कसने सबका और उस सत्कारके समय विनम्रताकी मूर्ति बन गया। उसने वसुदेवजीके सेवको तकके चरण धोये—स्वय उनको वस्त्राभरणसे सज्जित किया। वह रात्रि मथुराकी अन्तिम उल्लास भरी रात्रि बन जायगी, यह किसी को कहाँ पता था।

———

आकाशवाणी और........

विवाहके दूसरे दिन मध्याह्न-सत्कार करके वर-वधूको विदा करना था। कंसने स्वर्ण-निर्मित रत्नखचित रथ सज्जित किया। हिमश्वेत श्यामकर्ण अश्व-चतुष्टय-युक्त वह रथ देखते ही बनता था। अद्भुत थी उसकी सज्जा।

सम्पूर्ण सज्जित सारथि बद्धाञ्जलि उपस्थित था। मगल-गान एव स्वस्तिपाठके मध्य वर-वधू उसपर विराजमान हुए। श्रीशूरसेनजी प्रात ही अपनी आराधनाको आवश्यक मानकर महाराज उग्रसेनसे विदा लेकर चले गये थे। महाराज एव देवकजीने नव-दम्पत्तिको आशीर्वाद दिया।

'युवराज आप ?' वसुदेवजीने देखा कि कसने सकेतसे सारथि को रथके पृष्ठ-भागमे खड़े होनेके स्थानपर चले जानेको कहा और स्वय कूदकर सारथिके स्थानपर आ बैठा है।

'मैं अपनी वहिनको उसके नवीन गृह तक पहुँचा आता हूँ।' कसको अट्टहास करके हँसनेका अभ्यास था—'अभी वह आपसे अपरिचित प्राय है। इसकी वड़ी बहिनोके समीप इसे छोड़कर मैं लौट आऊँगा। मुझे मथुरासे कहाँ बाहर जाना है। तनिक देख भी लेना है वहिनके नवीन गृहकी साज-सज्जा।'

'आप रथमें हमारे समीप विराजे।' वसुदेवजीने तनिक खिसककर कंसके लिए दाहिने भागमे स्थान वनाया।

'मुझे वहुत अच्छी प्रकार रथ-चालन आता है।' कसने हँसकर कहा—'आपके लिए भयकी कोई वात नही है।'

'युवराज सर्वविद्या-निपुण हैं, किन्तु यह कर्म युवराजके उपयुक्त नही है।' वसुदेवजी जानते थे कि कस दुराग्रही है, वह मानेगा नही। अन्तिम बार आग्रह किया उन्होंने।

'यादव राजकुमार अपनी अनुजाको उसके गृह तक पहुँचा आवे, यह तो गौरवकी वात है राजकुमारके लिए।' कसने प्रग्रह उठा लिया था। अश्व चल पड़े मन्द गतिसे। रथके चारो ओर घिरी नारियाँ थोड़े पद हट गयी। शंखनाद गूँजा। ब्राह्मणोंने स्वस्तिपाठ किया। दम्पत्तिपर सुमन-वर्षा होने लगी पथके दोनो ओरसे।

'मूर्ख कस !' आकाशसे एक वज्र-निष्ठुर शब्द गूँजा। चौंककर कसने रथ-रश्मि खीच ली और घूरकर ऊपर देखा। उसके नेत्र अङ्गारके समान जल उठे। कौन है जो उसे इस प्रकार सम्बोधित करनेका साहस करता है ? किन्तु कहाँ—कही कोई दीखता नही और वह भयानक स्वर तो गूँज ही रहा है—

'तू जिसको सारथी बनकर पहुँचाने जा रहा है, उसका अष्टम गर्भ तेरा काल होगा।'

'मेरा काल ? मैं मरूँगा ?' कस तो अपनेको अमर मानता है। उसने मृत्युको भले न जीता हो, देवताओपर विजय प्राप्त कर ली है और यम भी तो देवता ही है। सहसा धक्का लगा कसके हृदय को। आकाशसे गूँजता शब्द समाप्त हो गया, किन्तु दो क्षण वह आकाशको घूरता ही रहा।

'देवकीका अष्टम गर्भ मुझे मारेगा ?' कसने घूमकर नववधूकी ओर देखा और रथसे कूद पडा। रथ-रश्मि उसके हाथोसे पहिले ही छूट चुकी थी। दाहिने हाथसे कटिमे बँधे रत्नजटित कोशसे उसने अपना लम्बा खड्ग खीचा और झटकेसे देवकीका अवगुण्ठन शिरोवस्त्र खीचकर उनकी वेणी पकड ली।

'यह क्या करते हैं आप ?' वसुदेवजी कसके रथसे कूदते ही चौक पड़े थे। उन्होने झपटकर कसका तलवार उठानेवाला हाथ पकडा।

'मैं अपनी मृत्युके इस मूलको अभी मिटाये देता हूँ।' कस क्रोधसे काँप रहा था। उसका स्वर विकृत हो चुका था। उसके शरीरसे स्वेद चलने लगा था।

'यह आपकी छोटी बहिन है ! आपकी पुत्रीके समान है और अभी-अभी आपने ही इसका विवाह किया है।' वसुदेवजी पूरी शक्तिसे दोनो हाथोसे कसका हाथ पकडे हुए उससे कह रहे थे—'आप यदुवशके गौरव हैं। आपका शौर्य त्रिभुवन में प्रख्यात है। एक स्त्रीका वध, वह भी अपनी कन्या जैसी बहिनका, सो भी विवाहके अवसरपर आप कैसे करने जा रहे हैं ?'

'यह मेरे मरणका हेतु है !' कस काँप रहा था। वसुदेवजीके हाथसे अपना हाथ छुड़ानेके प्रयत्नमे था। यदि क्रोधाग्निके कारण उसका शरीर स्तम्भितप्राय न हो गया होता, उसके देहमे इतना कम्प न होता तो उस दुर्दमका कर वसुदेवजी दो क्षण भी रोक नहीं सकते थे।

जब भूखा व्याघ्र गायकी बछडीको दबा देता है, क्या अवस्था होती है उसकी ? देवी देवकीके मुखसे चीत्कार भी नही निकल सकी ; किन्तु इस समय उनकी दशा देखनेका किसीको अवकाश नही था।

'युवराज ! जन्म लेनेके साथ ही देहधारीकी मृत्यु निश्चित हो जाती है। मरना सबको एक न एक दिन है।' वसुदेवजीने पूरी शक्ति कसका हाथ पकडनेमे लगा रखी थी, किन्तु बहुत नम्र स्वरमे कह रहे थे—'ऐसा कर्म नही करना चाहिये कि मरनेके पश्चात् लोग निन्दा करे और अधोगतिको—घोर नरकको जाना पडे।'

'मरण ! मरण ! कैसा मरण ? नही मरना है मुझको।' कस चिल्लाया—'मैं अपनी मृत्युके कारणको ध्वस्त कर दूँगा !'

'छोड दो ! छोड दो इसे।' सहसा पथके दोनो ओरसे नागरिकोकी पुकार आने लगी। अनेक लोग आगे बढ आये। वह जनसख्या शीघ्रतासे बढने लगी।

'तुम्हे ऐसी कुबुद्धि कहाँसे आयी ?' कुछ यदुवृद्ध कसके समीप आ गये। उन्होने कहा—'तुम्हारा सुयश नष्ट करनेको किसी शत्रुने आकाशमे अदृश्य रहकर यह बात कही है। देवता तुम्हारे मित्र तो नही है ?'

कसने मुडकर कहनेवालेकी ओर देखा। उसके चित्तमे सशयका बीज पड़ गया ; किन्तु मृत्यु की आशका वह सह नही सकता था।

'देवता तुम्हारा जीवन चाहने वाले कबसे हो गये ?' किसी अन्यने कहा—'इसका कोई पुत्र तुम्हारा मारनेवाला होनेवाला हो तो देवता उसे छिपावेंगे—बचावेंगे या तुम्हे सूचना देकर उसकी या उसकी माताकी मृत्युका कारण बनेंगे ?'

'जो होनी होती है, होकर रहती है। उसे रोका नही जा सकता। इसे छोड दो।' किसीने भीडमे-से कहा।

'कैसी होनी ? क्यो नही रोका जा सकता उसे।' कंस अधिक उत्तेजित हो गया। देवताओंने झूठ कहा होगा, यह बात मानकर वह कैसे निश्चिन्त रह सकता है। उसने हाथ छुडानेका प्रयत्न किया।

'युवराज ! हम इस प्रकार यह क्रूरकर्म नही देख सकते ! छोड़ दो इसे।' तरुणोके एक पूरे समूहने गर्जनाकी। उनमे जिसके जो हाथमे आया था—तलवार, भाला, मुद्गर, परशु या दण्ड उसीको लेकर दौड आये थे। उनकी सख्या बढती जा रही थी।

कंस एकाकी था। मथुरासे बाहर तो वसुदेवजीको जाना नही था कि सुरक्षाके लिए सेनाकी व्यवस्था आवश्यक होती। राजमार्गके दोनों ओर स्वागतार्थ प्रस्तुत नागरिक ही थे और उनमे-से अब तरुण अस्त्र-शस्त्र उठाये दौड़े आ रहे थे। महाराज उग्रसेन तक समाचार देने अनेक दौड़ चुके थे; किन्तु महाराज आवे या कुछ करे, इतना अवकाश कहाँ था।

'आपको इस असहाय देवकीसे तो कोई भय है नही।' वसुदेवजीने देख लिया था कि कस समझानेसे मान नही सकता। किसी उपदेशका प्रभाव ग्रहण करनेकी स्थितिमे वह नही है। यह भी अनुभव कर रहे थे कि अधिक देर तक उसका हाथ रोकनेकी शक्ति उनमे नही है। सहसा ही कुछ निश्चय करके उन्होने पूछा।

बहुत पीछे श्रीवसुदेवजीने स्वय बतलाया था कि अचानक उनके चित्तमे उठा—'देवकीका पाणिग्रहण किया है उन्होने। वह पति क्या जो प्राण देकर भी पत्नीकी रक्षा न कर सके, किन्तु कंस से युद्ध करके केवल प्राण दिये जा सकते है, देवकीको बचाया नही जा सकता। ये आसपासके उद्यत तरुण भी व्यर्थ मारे ही जायँगे। 'एकाकी कंस भी सबपर भारी है। अत. इस समय देवकीकी मृत्युको टाल देना प्रथम कर्तव्य है।'

'देवकीके पुत्र होगे ही—क्या निश्चित है। पुत्रोके होने तक क्या कसकी मृत्यु असम्भव ही है? पुत्र कभी आगे होगा और इस दयनीयाकी मृत्यु तो सिरपर आ खडी है। इस मृत्युको टालना ही है।'

'देवकीके अष्टम पुत्रसे तो है।' कस दहाडा।

'इसे छोड दीजिये! इसके जो पुत्र होगे, उन्हे मैं जन्म लेते ही आपको दे दिया करूँगा।'

'क्या?' कसका हाथ थोड़ा ढीला पड गया।

'आपको देवकीसे तो कोई भय नही है?' फिर पूछा वसुदेवजीने।

'नही, इससे मुझे क्या भय हो सकता है।' कसने देवकीकी ओर देखा—'पर इसका अष्टम पुत्र ।'

'इसके पुत्र उत्पन्न होते ही मैं आपको स्वयं लाकर दे दिया करूँगा। मैं वचन देता हूँ।' वसुदेवजीने दृढ़ स्थिर स्वरमे कहा। वैसे कसके हाथकी पकड़ उनकी अबभी वैसी ही थी।

'वसुदेव महात्मा पुरुष हैं। ये कभी असत्य नही बोलते। देवकीका केश छोड दो। स्त्री-हत्याके पापसे भी इससे बच जाओगे।' नागरिकोमें-से प्राय. सबने एक स्वरसे कहा।

'आप वचन देते हैं ?' कंसने मुडकर नागरिकोकी ओर अब देखा। उसको एक बडी भीड दीखी। अनेको लोग अस्त्र-शस्त्र लिये आघातको उद्यत थे। लोग दौड़े चले आ रहे थे। कंस डर जाय—ऐसा नही था; किन्तु सबकी पुकार अनसुनी भी करना कठिन था।

'मैं वचन देता हूँ।' वसुदेवजीने शान्त स्वर में कहा।

'अच्छी बात!' कसने देवकीके केश छोड दिये। वसुदेवजीने उसका दाहिना हाथ छोड दिया। खड्गको केशमे डालते हुए उसने कहा—'आप अपना वचन स्मरण रखें!'

वहीसे कस मुड पडा राजसदन जानेको पैदल ही। पीछे खडा सारथि आगे आकर रथ-रश्मि सम्हाल ले, इसकी भी उसने अपेक्षा नही की। उसका अब जैसे वसुदेव-देवकीसे कोई सम्बन्ध ही नही रह गया था।

'हूँ!' नागरिकोपर एक क्रोधभरी दृष्टि डालकर जाते-जाते उसने हुंकार की थी। नागरिकोने उसे और रथको भी मार्ग दे दिया। उसी दिनसे कंसके अन्त करणमे यादवोके प्रति द्वेष जमकर बैठ गया।

—००—

कंसका प्रयत्न

महाराज उग्रसेनको समाचार मिला तो वे तत्काल रथपर बैठ गये थे, किन्तु उसी समय दूसरा समाचार मिला कि कंसने देवकीको छोड़ दिया और वे अपने सदन चले गये।

'तुमने देवकीपर खड्ग उठाया ?' क्रोधमे भरे महाराज उग्रसेन द्वारपर ही खड़े थे, कंसको देखते ही वे उच्च स्वरमें बोले।

'उसका अष्टम गर्भ मुझे मारेगा, यह भी सुन लिया आपने ?' कंसने कोई हिचक अथवा नम्रता नही प्रदर्शित की। 'अनेकोने मेरे विरुद्ध शस्त्र उठा लिया था वहाँ।'

'तुम अमर हो ?' उग्रसेनजीका स्वर तीक्ष्ण बना रहा—'तुम कभी मरोगे नही ? छोटी बहिनपर हाथ उठाते लज्जा नही आयी तुम्हे ? जिन्होने शस्त्र उठाया वे प्रशसाके—पुरस्कारके पात्र हैं। उनमें मनुष्यत्व जीवित है। तुम अब तक उनपर रोष लिये हो और अपने कर्मपर तुम्हें ग्लानि नही हो रही है ?'

'अपने मारनेवालेको मैं मार दूँगा।' कंसने भी उग्रस्वरमे ही कहा—'उसके रक्षको—सहायकोको भी।' उसने पिताकी उपेक्षा कर दी और अपने भवनकी ओर चला गया।

'ओह ! कुलांगार !' महाराज उग्रसेनने हाथ मल लिये। वे कुछ क्षण जाते कंसको घूरते रहे। उनकी समझमे नही आ रहा था कि इस अपने पुत्रको वे कैसे समझावे। मन्त्रियोंने आग्रह करके महाराजको राज-सदन पहुँचाया।

कंस सीधे अपने सदनके मुख्य कक्षमे गया और उसने अपने असुर मित्रोको बुलानेके लिए सेवक भेज दिये; किन्तु उसका चित्त अत्यन्त अशान्त था। उसे इस समय किसीपर विश्वास नही रह गया था। उसे लगता था कि उसके पिता भी उसकी मृत्यु चाहते है। वह अपने अन्तःपुरमे पहुँच गया।

'आकाशवाणीने कहा है कि देवकीका अष्टम गर्भ मुझे मार देगा।'

अपनी दोनो रानियोको बुलाकर उसने सुनाया—'तुमने यह सुन लिया या नही ?'

'दासी दौडी आयी थी तनिक देर पूर्व !' रानी अस्तिने कहा—'वह कुछ ऐसा ही अमगल सुना रही थी , किन्तु मैंने उसे डाँटकर चुप कर दिया था ।'

'वह ठीक सुना रही थी ।' कसने ध्यानसे रानियोके मुखपर दृष्टि स्थिर की । वह उनकी प्रतिक्रिया समझ लेना चाहता था ।

'आपने देवकीको छोड क्यो दिया ?' छोटी रानी प्राप्तिका मुख अरुण हो उठा—उपद्रवकी जड तो वही है ।'

'वहुत कलङ्क मिलता ।' रानी अस्ति अत्यन्त डरे हुए स्वरमें बोली—'उसे छोडकर तो अच्छा किया आपने , किन्तु उसके आठवे गर्भकी उपेक्षा सर्वथा नही करनी है ।'

'वह नही ही करनी है ।' कस अपनी रानियोके भावसे सन्तुष्ट होकर बोला—'किन्तु तुम दोनोको भी कुछ करना है ।'

'आज्ञा करे आप !' दोनोने एक साथ कहा—'अपने सौभाग्यकी-- सिन्दूरकी रक्षाके लिए हम प्राण भी देनेको प्रस्तुत हैं ।'

'पिता को पता नही लगना चाहिये कि तुम्हारा देवकीसे कोई द्वेष है ।' कसने कहा—'तुम दोनो प्रतिदिन नियमसे वसुदेवके अन्त.पुरमें जाओ और देवकीसे मिलती रहो । देवकीको तथा वहाँ अन्त:पुरकी सभी स्त्रियोको यही प्रतीत होना चाहिये कि तुम्हे देवकीसे पहिलेके समान ही प्रेम है । तुम्हे मेरे द्वारा देवकीका जो अपमान हुआ है, उसका वहुत दु ख है । देवकीके लिए उपयुक्त उपहार वार-वार ले जाना मत भूलो ।'

'आप अव भी उसे बहिन मानते हैं ?' चिढकर अस्तिने कहा ।

'पहिले पूरी बात सुन लो', कस गम्भीर बना रहा—वसुदेव देवकीको लेकर कही भाग गये तो समस्या वहुत कठिन हो जायगी । उनके मनका आतक दूर होना चाहिये । देवकीको या किसीको सन्देह न हो , परन्तु देवकीपर सतर्क दृष्टि रखनी है । उसके रजस्वला होनेके दिनसे उसके गर्भवती होनेका पता लगाकर दिन गिनती रहो और मुझे सूचना दिया करो ।'

'कुछ विश्वस्त दासियाँ देवकीकी सेवामे रख दो । कुछ अपने

विश्वासके नपु सक रक्षक देवकीके अन्त पुरके रक्षकोमे सम्मिलित कर दो।' कसने फिर सावधान किया—'कडी दृष्टि रखो, किन्तु उन्हे सन्देह मत होने दो। उनको यही लगना चाहिये कि अतिशय स्नेहके कारण ही तुम लोग वहाँ प्रतिदिन जाती हो और दास-दासियाँ वहाँ बढ़ा रही हो। वसुदेवपर दृष्टि रखनेकी व्यवस्था मैं कर लूँगा।

दोनो रानियोने अपने स्वामीकी प्रशसा की। उनकी योजनाको स्वीकार कर लिया और इस ओर से कसको निश्चिन्त रहनेको कहा।

'आप सबने सब कुछ सुन ही लिया है।' कस अन्त पुरसे अपने मन्त्रणा-कक्षमे आया तो वहाँ उसके असुर परिकरके लोग उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे—'यदुवशियोपर विश्वास नही किया जा जकता। वे कभी भी विद्रोह कर सकते है और महाराज भी अभी उनके ही समर्थक हैं।'

'युवराज! हमको देरसे सम्वाद मिला, अन्यथा हम उन उद्धत लोगोको देख लेते।' एकने दाँत पीसकर कहा।

'यह अवसर भी आता ही लगता है।' कसने एक बार सबकी ओर देखा—'वसुदेवकी सेवामे आज ही कुछ निपुण सेवक भेजने हैं जो अपने अत्यन्त विश्वस्त हो। वसुदेवको सन्देह नही होना चाहिये, किन्तु उनकी प्रत्येक गतिविधिपर दृष्टि रखे वे और प्रतिदिन मुझे समाचार दें।

'सेनामें और प्रशासनमे भी ऐसे कौन-कौन हैं जो किसी कठिनतम अवसरपर भी विचलित नही होंगे और मेरा साथ देगे।' कसने सबकी ओर एक बार घूमकर दृष्टि फिरायी—'मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि महाराजके विरुद्ध भी मेरा साथ देनेका अवसर आ सकता है।'

'हम केवल आपके सेवक—आपके आज्ञानुवर्ती हैं।' प्राय सबने वहाँ स्वीकार किया—'मथुराका सिंहासन आपका है। हम किसीकी आज्ञा मानते हैं तो वह आपके कारण।'

'मुझे आप सबके सौहार्द्र पर विश्वास है।' कसने कहा—किन्तु कोई चौंके नहीं, इस प्रकार सेना और शासनमे अपने पक्षके लोगोका पता लगाइये। उनकी सूचना मुझे दीजिये। जो अन्य प्रलोभनसे अपने पक्षमे हो सकते हों, उनका भी पता लगा लेना है।'

'जो महाराज उग्रसेनके प्रति दृढ़ निष्ठावान हैं, उनसे कुछ मत

कहिये ।' कंसने सावधान किया— 'किन्तु वसुदेवके सहायको, समर्थकोका पता लगाकर अवश्य मुझे सूचना दे दीजिये ।'

उसी दिन कसने पीठ, पैठिक और असिलोमको अपना मन्त्री चुन लिया । अपने अग-रक्षक तथा अपने सदनके सेवकोमे भी उसने परिवर्तन किया । सव असुर उसके परिकरोमे आ गये । वैसे भी उसने वहुत कम यदुवशियोको निजी सेवक-सहायको मे लिया था । उसका स्वभाव ही उनसे नही मिलता था । अव जो नाममात्रके लोग थे भी, वे स्थानान्तरित कर दिये गये ।

वसुदेवजीकी सेवामे पर्याप्त अधिक दास भेजे गये । महाराज उग्रसेनके नामपर ही भेजे गये । वे सेवाके विशिष्ट कार्योमे अत्यन्त निपुण हैं —यह कहकर महाराजसे कमने स्वीकृति ले ली । देवकीजीकी सेवामे कमकी रानियोने सेवा-निपुण अनेक दासियाँ नियुक्त की ।

नाममात्रके कारणपर सेनाके अनेक उच्चतम अधिकारी पदच्युत किये गये । युवराज कस महासेनापति थे । महाराज उग्रसेनसे भी कुछ कोई कहे तो कोई परिणाम नही था । सेनामे वहुत परिवर्तन कसने किया । उसने अपने ममर्थक मेनाके सव प्रधान पदोपर रख लिये ।

कसके द्वारा निकाले या पदच्युत किये गये लोगोकी अन्तिम पहुँच तो महाराज उग्रसेन तक ही थी । कसने महाराजको स्पष्ट कह दिया—'अन्तत मथुरा-नरेश कभी अश्वमेध भी तो करेंगे । दिग्विजयके उपयुक्त सेना कैसे वनेगी, यह मैं समझता हूँ ।'

महाराजने केवल यह किया कि अपने अङ्ग-रक्षकोमे सेनासे निकाले या पदच्युत किये लोगोको ले लिया । अगरक्षकोकी सख्या पर्याप्त वढा ली । वैसे कसने इसपर कुढकर उनको चेतावनी दी थी—'आप अयोग्य लोगोकी एक व्यर्थ भीड अपने आसपास एकत्र कर रहे हैं ।'

कसने प्रशासनके भी कुछ पदोमे परिवर्तन किया, किन्तु इस ओर अधिक परिवर्तन कर नही सकता था । उसे वहाने वनाकर महाराज उग्रसेन-की सम्मति लेनी पडती थी और यह वात उमके स्वभावके अनुकूल नही थी । उमने कुछ नवीन पद वनाये और उन पर नियुक्तियाँ कर दी ।

मथुरामे वसुदेवजीका अत्यधिक सम्मान करने वाले ही अधिक थे ।

स्वयं महाराज उग्रसेन उनका सम्मान करते थे। अव कंस ऐसे लोगोकी सुविधाये कम करनेका कोई भी अवसर छोड़ता नही था। वह पहिलेसे कर लेनेमे कठोर था, अव यादवोंके लिए और कठोर हो गया।

कंसमें स्वजन, परिवार, सम्वन्धी जनोके प्रति पहिले अतिशय ममता थी। इसके कारण इस वर्गको बहुत सुविधा और सम्मान राजसदनसे मिलता था। कसके चित्तसे इस ममताका जैसे सर्वथा लोप हो गया। फलत स्वजन-सम्वन्धियोको मिलनेवाली विशेष सुविधाये क्रमश· वन्द हो गयी और कस सवकी उपेक्षा करने लगा। उसके नवीन अनुचर भी उपेक्षा करने लगे।

कंस स्वयं फिर वसुदेवजीसे मिलने नही गया। उसका अधिकाश समय अपने पक्षको दृढ करनेमे वीतने लगा। उसने अपने असुर मन्त्रियोसे परामर्श करके निश्चय कर लिया था कि यदि अवसर ही आवेगा तो महाराज उग्रसेनके सक्रिय विरोधका सामना कैसे किया जायगा।

महाराज अपने इस उद्धत पुत्रसे उदासीन हो गये थे। कठिनाई यह थी कि कंससे सव छोटे भाई पिताकी अपेक्षा वडे भाईको ही अधिक आदर देते थे। मथुराका वास्तविक शासन धीरे-धीरे कसके करोमें जा रहा था। महाराज इसे समझते थे, किन्तु वे प्रतिवाद करनेकी स्थितिमें नही थे।



देवकीका प्रथम गर्भ

'देवकी गर्भवती है।' कसको यह समाचार सर्वप्रथम उसकी छोटी रानी प्राप्तिने दिया—'उसे दूसरा महीना चल रहा है।'

छोटी रानीने देवकीजीसे वहुत निकटता प्राप्त कर ली थी। उसे सवसे अधिक सुयोग मिल गया था समाचार पानेका। कस उसे वरावर प्रोत्साहित करता रहता था। उसने इतना कृत्रिम स्नेह प्रदर्शित किया था कि वसुदेवजी के सदनमे उसे सव अत्यधिक स्नेहशोला मानने लगे थे।

'अभी तो यह प्रथम गर्भ है।' कसने निश्चिन्त होकर कहा—'फिर भी तुम प्रतिदिन वहाँ जाया करो। देवकीपर और अधिक सतर्क दृष्टि रखो। यह देखो कि उसे दोहद क्या होता है। वसुदेव कही देवकीको लेकर कभी भी भाग जा सकते हैं। अत देवकीके समीप दिनभर तुम दोनोमें-से एक अवश्य रहे और रात्रि में भी विश्वस्त सेविकाये रहे।'

'आप निश्चिन्त रहें।' रानीने सोत्साह कहा—'अव तो देवकीके समीप गर्भवतीकी परिचर्यामे निपुणा जो दासियाँ है, वही रहने लगी हैं और वे सव अपनी विश्वस्त हैं।'

'तुमको अव कोई श्रम नही करना चाहिये।' छोटी रानी देवकीजीके आसपास ही दिनभर वनी रहती थी—'यह तुम्हारे लिए प्रथम अवसर है और नारीके लिए यह प्रथम अवसर पर्याप्त कष्टकर होता है।'

'आप तो है ही और अनुभवी हैं आप।' देवकीजी सहज सरल हृदया—वे कसकी रानियोंको अपनी हितैपिणी ही मानती थी। उनसे यदाकदा परिहास कर लेती थी। उनकी सूचनाओका पालन करती थी। रानीने एक दिन कहा था- 'वे स्वभावसे उग्र हैं। क्रोध आनेपर उन्हे अपना-पराया नही सूझता, किन्तु अपने उस व्यवहारसे वे वहुत लज्जित हैं। मैंने उन्हे वहुत कहा, किन्तु वे सकोचवश तुम्हारे गृह आ नही पाते।'

'मैं जानती हूँ' देवकीजीकी वाणी छलहीन थी—'भैया मुझसे वहुत स्नेह करते हैं। उन्हे वहुत ग्लानि हुई होगी। लेकिन उन्हे खिन्न होनेका कोई कारण नही है।'

वसुदेवजीके सदनमे किसीको कंसके क्रूर हृदयका अनुमान नही था। कंस कोई आशंका भी करता है और उसकी रानियो अथवा उसकी भेजी दासियोका सेवा एवं स्नेहके अतिरिक्त भी कोई प्रयोजन है, किसीको शका नही हुई। कसकी रानियाँ वहुत स्नेह दिखलाती थी। कसके यहाँसे आयी दासियाँ वहुत तत्पर थी सेवामे और वे अपने कार्योंमें प्रर्याप्त कुशल थी।

'उसे कोई दोहद नही होता।' कसकी रानियोंने वहुत प्रयत्न किया, वहुत पूछा, किन्तु देवकीजीके मनमे कोई पदार्थ-सेवनकी, कुछ पानेकी, कही जानेकी या कोई विशेष कार्य करनेकी इच्छा ही नही होती थी।

'मुझे केवल चुप रहना अच्छा लगता है।' देवकीजीने वतलाया था— 'एक तन्द्रा जैसा भाव सदा वना रहता है। ऐसा आलस्य तो मुझे कभी नही आया था।'

'आलस्य तो पहली वार आता ही है।' कसकी रानीने समाधान कर दिया था।

'देवकी वचपनसे ही ऐसी है।' कसने सुनकर रानीसे कहा था— 'उसे कभी किसी पदार्थके प्रति शैशवमे भी उत्सुक होते मैने नही देखा। अवश्य वह देवमन्दिर जानेमे, व्रत-पूजामें उत्साह रखती थी और कोई ऋषि-मुनि आ जाय तो उसकी सेवाका कार्य करनेमे सवसे पहिले दौडती थी।' कसके अन्तःकरणमे पूर्व-वात्सल्यका अश कही अभी शेष था।

'वह अव भी नित्य स्नान-पूजन करती है।' रानीने कहा—'व्रत तो गर्भवती नारीका स्वभाव हो जाता है, क्योकि आहारसे उसे अरुचि हो जाती है। आग्रह करके उसे खिलाना पडता है, लेकिन देवकीमे इन दिनो तन्द्राका भाव अधिक रहता है।'

किसीको कैसे पता लग सकता था कि माता देवकीके गर्भमे आने वाले प्रथम षड्गर्भ दैत्येन्द्र वलिके यहाँ पातालमें प्राय सोते ही रहते है। वे वहाँ इस समय दीर्घनिद्रामे माने जाते हैं। योगमायाने उनके जीव आकर्षित करना प्रारम्भ किया है देवकीके उदरसे। यह प्रथम जो आया है, वह और आगे आने वाले उसके पाँच अनुज सहज निद्रालु हैं। उनकी स्वभावगत निद्रा माताके प्रवल सत्वगुणको केवल आलस्य और तन्द्रा वना पाती है।

'वसुदेवके भवनमें कोई उल्लास-उत्साह नही है ।' कसको यह समाचार भी सब समाचारोके समान अनेक सूत्रोसे मिल रहा था। 'देवकीके सन्तान होने वाली है, यह देवकीको देखकर ही जाना जा सकता है। अन्त पुरमे तो आवश्यक प्रस्तुति भी आपकी सेविकाओंने ही की है।'

'जिसे रहना ही नही है, उसके आनेका उत्सव क्या ।' वसुदेवजीकी सभी रानियो-सेविकाओंके मुखपर गम्भीर वेदनाकी छाया जैसे जमकर बैठ गयी है। चाहे जो दीर्घ नि श्वास लेकर कभी कह देती है—'बेचारी दुखिया देवकी ।'

'वसुदेव अतिशय गम्भीर हो गये हैं इन दिनो।' कसको यह समाचार भी मिलता रहता है—'वे बहुत कम बोलते हैं। किसी काममे जैसे उन्हे कोई रुचि ही नही रही है। स्नान-सध्या, पूजन यन्त्र-चालितकी भाँति करते हैं। भोजनके लिए कहनेपर वह भी यन्त्रके समान कर लेते है। सदा कुछ चिन्तन-सा करते रहते हैं।'

'उनपर दृष्टि रखे रहो। अत्यन्त सतर्क दृष्टि बनाये रहो।' कसको एक ही बात कहनी रहती है—'वे किस-किससे मिलते हैं, किससे एकान्तमे मिलते हैं, यह देखो।'

'वे अपनी ओरसे तो किसीसे मिलते ही नही।' कसके विश्वस्त सेवकोने सदा यही समाचार दिया—'कोई मिलने आता भी है तो अत्यन्त सक्षिप्त उत्तर उसकी बातका देकर उसे विदा कर देते हैं।'

'हम आपके साथ हैं। आपकी सन्तानकी रक्षाके लिए हम प्राण तक देनेको प्रस्तुत है।' अनेक यादव-तरुण वसुदेवजीके पास आये। कसके अनुचर उसे उनका नाम बतला देते हैं, किन्तु वसुदेवजी किसीको प्रोत्साहित नही करते, वे कहते हैं—'भगवान नारायणकी इच्छा पूर्ण हो। सत्य स्वय नारायण हैं। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।'

'वे लोग और भी हैं।' कस कहता है—'वसुदेवके समीप तक केवल उनके प्रमुख आते हैं। मैं इन सबको देख लूँगा।'

ऐसे आने वाले क्रमश घटते गये। वसुदेवजीने प्रोत्साहन नही दिया, सहयोगका उत्साह नहो दिखाया तो सब स्वत शान्त हो गये।

वह समय भी आया जब देवकीको सन्तान होनी थी। वसुदेवजीकी प्राय सब पत्नियाँ प्रसूति-कक्षमे ही थी। कसकी दोनो रानियाँ पिछली रात्रिसे राजसदन नही गयी थी। कसकी भेजी परिचारिकाये तो थी ही।

एक दरिद्रके घर भी पुत्र होता है तो कमसे-कम फूटी थाली तो वजायी ही जाती है। वसुदेवजीके कई पुत्र हुए थे और मथुरामें राजकुमार होनेका महोत्सव हुआ था; किन्तु इस वार—इस बार तो सबके मुखपर गम्भीर वेदना थी। कसकी भेजी एक परिचारिकाने कृत्रिम उत्साह दिखाकर शिशुके धरापर आते हो दौड़कर कास्यपात्र उठाया वजानेको, तो रोहिणी देवीने पात्र छीन लिया उसके हाथसे और ऐसे आग्नेय नेत्रोंसे देखा कि किसीको फिर साहस नही हुआ।

कहाँका नान्दीमुख श्राद्ध और कहाँका जातकर्म—यदुकुल पुरोहित गर्गाचार्यजीको समाचार भी नही भेजा गया। एक परिचारिकाने दौड़कर पाषाण-प्रतिमाके समान वैठे वसुदेवजीको समाचार दिया तो बोले—'नालोच्छेदन कर लो, कसके पास उसे ले जाना है मुझे।'

शीघ्रतामे नालोच्छेदन हुआ और तभी वसुदेवजी प्रसूति-कक्षके द्वारपर आ खडे हुए। उन्होने दोनों भुजाये फैलाकर शिशुको माँगा सकेत से। उनके नेत्र लाल हो रहे थे। उनमे अश्रु तक सूख गये थे।

'स्वामी!' देवकीने चीत्कार किया—इसे वचाया नही जा सकता?' वह कातर कण्ठ, वे प्राणोकी भिक्षा माँगते नेत्र।

'देवि! सत्य नारायण हैं।' कठिनाईसे वसुदेवजीने इतना कहा और और आगे वढकर स्वय शिशुको उठा लिया। वे समझ गये थे कि यहाँ दो क्षण भी रुकनेका अर्थ है कि प्रतिज्ञा-निर्वाहमे प्राण असमर्थ हो जायेंगे।

अन्त पुर क्रन्दनसे—चीत्कारोसे गूँज उठा। देवकी देवी मूर्छित हो गयी। केवल कसकी दासियाँ और रानिया स्वस्थ थी। रानियोमे एकने देवकीको उठाया। दूसरीने कहा—'इतना रुदन-क्रन्दन क्यो? ऐसी क्या विपत्ति आ गयी है? वसुदेवजी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके अभी लौटेंगे। मामाको भानजेका मुख ही तो दिखलाने गये हैं। शिशु तो अभी लौट आवेगा।'

'वे इस पर भला क्रोध करेंगे? यह तो प्रथम सन्तान है।' दूसरी रानीने कहा—'कोई भय भी उन्हे होगा तो आठवी सन्तानसे होगा।'

कंसकी रानियोको देवकीके अन्त.पुरका यह रुदन सर्वथा अप्रिय लगा था। कंसके प्रति यहाँकी घृणा—अविश्वास असह्य था उन्हे। अत. वहाना वनाया उन्होंने जानेका—'हम देखती है कि वे शिशु भानजेका कैसा सत्कार करते हैं!'

कसकी दोनो रानियाँ रथमे बैठकर अपने सदन चली गयी। विश्वस्त दासियोको उन्होने वही रहने और समाचार देते रहनेका सकेत जाते-जाते कर दिया।

'हाँ, इससे युवराजको कोई भय तो है नही। अन्त पुरकी महिलाओमें कसकी रानियोकी बातसे आश्वासन ही मिला था। शिशु लौट आवेगा, इस आशाने रुदन-क्रन्दन रोक दिया। देवकीजी भी आशान्वित हो उठी थी। सब उत्सुकतासे वसुदेवजीके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगी।

'कीर्तिमन्त।' शिशुको करोमे उठाकर केवल एक बार वसुदेवजीने उसे देखा और नामकरण कर दिया था। दूसरी बार उसके मुखपर दृष्टि उन्होने नही डाली। दृष्टि पडेगी तो मोह हृदयको दुर्बल कर देगा—यह वे जानते थे। बालक रुदन नही कर रहा है, यह भी उनके ध्यानमे नही आया। उनके चित्तकी अवस्था यह सब सोचने योग्य नही थी। वे बिना किसी ओर देखे सिर झुकाये पैदल कसके भवनकी ओर तीव्र गतिसे पग उठाते जा रहे थे।



कंसकी कृपा

'धन्य हैं वसुदेवजी।' शिशुको लेकर राजपथसे वसुदेवजीको कंसभवनकी ओर जाते देखकर नागरिक श्रद्धा-विभोर हो उठे—'धन्य है वसुदेवजीका सत्य-प्रेम। सत्यके प्रति ऐसी निष्ठा लोकमे दुर्लभ है।'

'वसुदेवजी महापुरुष हैं, अन्यथा अपना नवजात पुत्र कौन राक्षसको इस प्रकार देने जायगा।' जबसे कसने राजपथपर देवकीका केश पकडा था, उसके प्रति अधिकाश नागरिकोके हृदयका सम्मान समाप्त हो गया था। लोग उसे राक्षस कहने लगे। वे कहते थे—'जो अपनी छोटी बहिनको विवाहके दिन मारनेको उद्यत हो गया, वह मनुष्य नही हो सकता। वह कोई भी दुष्कर्म कभी भी कर सकता है।'

'कंस इस शिशुका क्या करेगा?' अनेकोके मनमे प्रश्न उठा। कुछने परस्पर कहा भी।

'यह देवकीका प्रथम पुत्र है। इससे कंसको कोई भय तो है नही।' यही एक आश्वासन था सबके लिए और इसीसे किसीने कोई सक्रिय पद नही उठाया। सब प्रतीक्षा करनेके पक्षमें थे।

'कंस कुछ भी करे, वसुदेवजीका धैर्य अद्भुत है।' यदुवृद्धने भी प्रशंसा की 'इतना धैर्य, इतनी हृदयकी दृढ़ता सुननेमे भी कम होआती है।'

वसुदेवजीका ध्यान इन सब बातोकी ओर नही था। उनके कर्ण जैसे बहरे हो गये थे। पथमे कोई सामने मिलता भी है, यह भी वे देख नहीं पाते थे। वे केवल चल रहे थे। तीव्र गतिसे उनके पद उठते जा रहे थे।

कंसको उसके सेवकोंने पहले ही सब समाचार दे दिया था। पुत्र हुआ और तत्काल उसे लेकर वसुदेव आ रहे हैं, इस समाचारसे कंस प्रसन्न हुआ। वसुदेव इतनी तत्परतासे अपने वचनका पालन करेंगे, ऐसी आशा उसे नही थी। वह समझता था कि पहले वसुदेवका सन्देश आवेगा—'युवराज! आपके भागनेय हुआ है। आप पधारेंगे यहाँ अथवा जातकर्मादिके अनन्तर मै उसे आपके समीप ले आऊँ? आप अनुमति दे तो उसे षष्ठीपूजनके अनन्तर सातवे दिन आपके सम्मुख उपस्थित करूँ।'

कंसने सोचा था कि वसुदेवजीकी ऐसी किसी प्रार्थनाको वह उदारतापूर्वक स्वीकृति दे देगा, किन्तु वसुदेव तत्काल बालकको लेकर चल पडे है, इस समाचारको पाकर वह सन्तुष्ट हुआ। 'वसुदेव अपने वचनपर दृढ रहने वाले हैं।' उसके हृदयने स्वीकार किया। वह अपने भवनके सभागृहमें अपने सिंहासनपर बैठ गया।

'वसुदेवजीको तत्काल मेरे सामने पहुँचाया जाय!' कंसने प्रहरीको आज्ञा दे दी। इधर वह यदुवंशियोंसे सशंक रहने लगा था। उसके भवनपर उसके विश्वस्त प्रहरी नियुक्त थे और स्वजन-सम्बन्धी भी अब बिना अनुमतिके भवनमे प्रवेश नही पाते थे।

'युवराज आपके आगमनकी प्रतीक्षा ही कर रहे हैं!' प्रहरीने वसुदेवजीको अभिवादन करके उन्हें सभाकक्षमे जानेका संकेत कर दिया।

'युवराज! यह रहा आपका भागनेय!' वसुदेवजीने कंसके सम्मुख पहुँचकर नवजात बालकको दोनो हाथोपर रखे हुए उपहारकी भाँति हाथ बढा दिया आगेकी ओर।

अग्निके समान शिशु—वह सो रहा था—मार्गमे भी सोता ही रहा था। कंसने केवल एक दृष्टि डाली उसपर और बोला—'आप इसे लौटा ले

जायँ ! इससे तो मुझे कोई भय नही। देवकीके आठवे पुत्रके द्वारा मेरी मृत्यु कही गयी है ।'

अत्यन्त स्नेहभाजना छोटी वहिनका प्रथम पुत्र सामने आया, किन्तु कसके चित्तमे अव देवकीके प्रति ममत्वका तो लेश भी नही रहा है। वह तो 'इसे लौटा ले जायँ !' कहकर उठ खडा हुआ भवनमे जानेके लिए।

'जैसी आपकी अनुमति !' वसुदेवजी शिशुको हृदयसे लगाकर लौट पड़े। कस खडा-खडा उन्हे जाते देखता रहा और फिर अपने आसनपर बैठ गया।

'वसुदेवमे उत्साह-उल्लास क्यों नही आया ? पुत्रको जीवनदान मिला—पर ये वैसे ही उदास-गम्भीर ?' कसको इसका कोई समाधान नही मिल रहा था। वह इस वातको लेकर सोचने लगा।

'कंसने शिशुको लौटा दिया।' वसुदेवजीको लौटते देखकर नागरिकोको प्रसन्नता हुई।

'सचमुच वसुदेवजी महापुरुष है।' लोगोमे चर्चा चल पड़ी—'ये हर्ष-शोकसे ऊपर हैं। पुत्रको कसके पास लेजाते समय जैसे गम्भीर थे, उसे लौटा-ले-जाते समय भी वैसे ही शान्त हैं।'

वसुदेवजी सचमुच वहुत शान्त जा रहे थे। वे अव भी किसी ओर देख नही रहे थे। अव भी उनके पद उसी तीव्र गतिसे उठ रहे थे।

'वसुदेवजी लौट रहे है।' वसुदेवजीके द्वारपर प्रतीक्षा करती नारियोंने दौडकर भीतर सवाद दिया—'शिशु सकुशल लौट आया है।'

भवनमे उत्साह छा गया था, किन्तु वसुदेवजीने इसपर भी ध्यान नही दिया। किसीने उनसे कुछ पूछा—यह भी उन्होंने नही सुना। 'कसने क्या कहा ?' किसीके इस प्रश्नका उन्होने उत्तर दिया नही। वे सीधे वैसे ही प्रसूति-कक्ष तक चले गये और शिशुको देवकीकी ओर वढाते हुए बोले—'देवि, इसे लो।'

'आगया मेरा लाल !' माताने ललककर पतिके हाथोंसे शिशुको उठाया और हृदयसे लगा लिया।

भवनकी महिलाओमे किसीने अव कोई वाद्य उठाया और किसीके मगल-गानका स्वर उठा, किन्तु वसुदेवजीने हाथके सकेतसे मना कर दिया। सव फिर सशक हो उठी।

'वहुत प्रसन्न होनेकी कोई वात नही है।' वसुदेवजीने देवकीसे कहा—'जितने क्षण यह तुम्हारे अकमे है, इसे स्नेह कर लो।'

'युवराजने क्या कहा है ?' आज देवकीजी भी कंसको भैया नही कह सकी थी।

'कहा तो इतना ही कि इससे मुझे कोई भय नही है, अत. इसे लौटा ले जाइये !' वसुदेवजीने कहा—'किन्तु मेरा हृदय इसपर विश्वास नही कर पा रहा है। तुम जानती हो कि मेरे हृदयमें अकारण आशका नही उठती। युवराज कब अपना निर्णय परिवर्तित कर देंगे, यह कुछ कहा नही जा सकता।'

वसुदेवजी इतना कहकर अन्त पुरसे निकल आये। महिलाओंका उत्साह समाप्त हो गया। देवकीजीके अङ्कमे जाकर वह शिशु चुपचाप उनका अमृत पयपान करने लगा था। माताको अपने मृत्युके मुखसे लौटे लालको देखनेसे ही अवकाश नही था।

'इसका जातकर्म ?' किसीने अन्त पुरमे प्रश्न किया।

'नान्दीमुख श्राद्ध तो हो नही सकता।' एकने कहा - 'वह नालोच्छेदनके पूर्व होता है। आपत्तिकालके कारण नालोच्छेदन तत्काल करना पडा, अत अब जातकर्म कैसा ? अब तो जात-सूतक प्रारम्भ हो चुका है। अब तो यह बारह दिनका हो जाय तभी सब कर्म एक साथ किये जायेंगे।'

'महर्षि गर्गाचार्यजी भी तभी पधारेंगे ?' किसीने पूछा।

'नालोच्छेदनके पूर्व आ जाते तो आ जाते। देव-पितृ पूजन, दान, श्राद्ध तभी तक सम्भव रहता है।' नारियाँ इस प्रकारकी चर्चासे दु खी-क्षुब्ध ही हुई।

—×—

देवर्षि आये

'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण।'

वातावरण देवर्षिकी वीणा-झकार और भगवन्नाम-ध्वनिसे गूँज उठा। देवर्षि नारदके लिए सुर-असुर सबका भवन सदा स्वागतको प्रस्तुत रहता है। सच्चे अर्थमें देवर्षि अजातशत्रु हैं। वे कब कहाँ पहुँच जायेंगे और क्या करेंगे, कोई अनुमान नही कर सकता।

देवर्षि श्रीहरिके मूर्तिमान मन हैं। अत जो भगवदिच्छा, वह नारदजीका कर्म। अकस्मात् एक अद्भुत ज्योति और दिव्यगन्धसे कंसका गगन भर उठा।

कंस उठे-उठे, इतनेमे तो वीणा लिये, खडाऊँ पहिने देवर्षि सम्मुख आ खड़े हुए। कसने अञ्जलि बाँधकर प्रणिपात किया।

'रुको! पहिले मेरी वात सुन लो।' कस पूजाकी सामग्री मँगाने जा रहा था, परन्तु देवर्षिने उसे यह सौभाग्य नही दिया—'तुमपर स्नेह होनेके कारण मैं यहाँ आ गया हूँ, अन्यथा तुम जानते हो कि मैं सदा शीघ्रतामे रहता हूँ।'

कस हाथ जोड़े सम्मुख खडा रहा। देवर्षि कहते गये—'आश्चर्य है कि महासुर कालनेमि अपनेको भी भूल गये है।'

कसको उसकी जन्म-कथा सुनाकर देवर्षिने यह तो बतला ही दिया—'वह द्रुमिल दानव द्वारा उत्पन्न है और कालनेमि है।' साथ ही यह भी वतलाया—'देवताओंने सुमेरु पर्वतपर तुम्हारे वधके सम्वन्धमे मन्त्रणाकी है। मैं उस समय वही था। श्रीनारायणने देवताओकी सहायता करना स्वीकार कर लिया है। देवताओमे अधिकांश अपने अशसे पृथ्वीपर जन्म ले चुके हैं। जो शेप हैं, वे क्रमश जन्म लेने वाले हैं।'

'तुम्हारे पिता—जिनको तुम पिता मानते हो केवल क्षेत्रज पुत्र होनेके कारण, वे उग्रसेन प्रजापतिके अश हैं। उनके भाई देवकके रूपमे गन्धर्वराज आये हैं। वसुदेव कश्यप हैं और आदिति हैं देवकी।' नारदजीने सक्षिप्त ढगसे कह दिया—'तुम्हारे यहाँ अधिकाश यदुवशी देवाशसे उत्पन्न हुए हैं। इनकी पत्नियाँ भी देवागनाये हैं। यही अवस्था नन्दगोकुलकी—पूरे व्रजमण्डलकी और हस्तिनापुरकी भी है।'

'पृथ्वीपर इस समय दो प्रकारके ही राजपुरुष प्राय है। एक देवाशसे उत्पन्न और दूसरे असुराशसे उत्पन्न। जरासन्धादि तुम्हारे मित्र असुर हैं जो देवासुर-सग्राममे मारे गये थे और अब पृथ्वीपर मनुष्य-रूपमे जन्म ग्रहण करके तुम्हारे सहायक हो गये है।'

कस मुस्कराया। यह देखकर देवर्षिने कहा—'मैं जानता हूँ कि तुम क्या सोच रहे हो। तुम यही तो सोच रहे हो कि नारद कुछ अधिक बुद्धिमान नही हैं। केवल झगडा लगाना इन्हे आता है। युद्धमे साक्षात् देवता उपस्थित थे और तव भी पराजित हो गये तो अव पृथ्वीपर अश-रूपसे जन्म लेकर तुम्हारा क्या विगाड लेगे ?'

'तुम नीतिज्ञ हो!' देवर्षिने प्रशसा की कसकी—'अत. जानते हो कि शत्रु कितना भी छोटा हो, उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिये। देवता इस वार तुम्हारे ही स्वजन-परिजन वनकर प्रकट हुए हैं।'

'आप ठीक कहते है ।' कसने कहा—'मैंने अमरावतीपर चढायी की है, यह समाचार मिलते ही महाराजने मुझे लौटनेकी आज्ञा भेज दी थी। उन्होंने मुझे त्रिभुवनजयी नही होने दिया, यद्यपि तब वे ही त्रिभुवन-सम्राट् कहे जाते। ये यदुवशी तो अब शस्त्र उठाकर मेरा विरोध करने लगे है। मैं इन सबको देख लूँगा।'

'तुमने वसुदेवजीके बालकको लौटा दिया?' देवर्षिने आश्चर्यपूर्ण स्वरमे पूछा।

'हाँ—उससे तो मुझे कोई भय नही है।' कस चौक गया था और उसका स्वर कह रहा था कि 'मुझसे कोई भूल हो गयी क्या?'

'देवकीके अष्टम गर्भसे तुम्हे भय है, यही तो आकाशवाणीने कहा था?' नारदजीने तनिक झुककर भूमिपर अगुलीसे गोलाईमे आठ रेखाये खीच कर कहा 'तनिक बतलाओ तो कि इनमे अष्टम कौन है?'

रेखाये वहाँ दीख नही रही थी। उस कुट्टिम भूमिपर रेखा केवल अगुलीसे नही बन सकती थी, किन्तु कसको देवर्षिका अभिप्राय समझनेमे कोई कठिनाई नही हुई। वह इस प्रकार उस स्थानको घूर रहा था जैसे वहाँ उसको प्राणदण्ड देनेका आदेशपत्र ही पडा हो। उसके भालपर स्वेदकी बडी-बडी बूँदे चमकने लगी थी।

'अज्ञाना वामतो गति' यह तुम जानते ही हो।' नारदजीने कहा—'नारायणने सदा असुरोको छलसे मारा है। इस बार वे छल नही करेगे, इसीका क्या ठिकाना है। अत देवता देवकीके गर्भोंको वृत्त मानकर कहाँसे गणना प्रारम्भ करेगे और किसे अष्टम घोषित कर देगे, यह कैसे कहा जा सकता है।'

'अच्छा, नारायण हरि' देवर्षि उठ खडे हुए—'मैंने तो स्नेहवश तुम्हे एक चेतावनी दी है।' कस अभिवादन करे, इसका भी अवकाश देवर्षिने नही दिया। वे तो वही कक्षमे ही अदृश्य हो गये।

'आपने कसको शिशु-हत्यामे क्यो प्रवृत्त किया?' एक बार हस्तिनापुर जब देवर्षि पधारे तो विदुरजीने पूछा था।

'दो प्रयोजन थे।' देवर्षिने कहा था—'स्वायम्भुव मन्वन्तरमे प्रजापति मरीचिकी पत्नी ऊर्णासे छ पुत्र हुए। वे विद्वान थे, शास्त्रज्ञ देवता थे। सृष्टिकर्त्ता जब भगवती सरस्वतीको देखकर क्षोभको प्राप्त हुए तो इन छहोंको हँसी आ गयी। इनसे कुपित होकर इन्हे ब्रह्माजीने शाप दे दिया—'तुम अपने पितामहका अपमान करते हो, इसलिए असुर हो जाओ।'

छहोंने ब्रह्माजीकी स्तुतिकी। प्रजापति मरीचने भी क्षमा माँगी। ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर कहा--'परमपुरुष अतवीर्ण होकर इनका उद्धार करेंगे।'

'वे षड्गर्भ नामसे दैत्य कालनेमिके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए।' देवर्षिने बतलाया—'देवासुर युद्धमे मारे गये और फिर हिरण्यकशिपुके पुत्र होकर उत्पन्न हुए। अपने पिताका अनुकरण करके इन्होंने भी कठोर तप किया। इनके तपसे प्रसन्न ब्रह्माजीने जब सम्मुख आकर इन्हे वरदान माँगनेको कहा, तब इन्होंने माँगा—'हम देवता, गन्धर्व, किन्नरादिसे अवध्य हो।'

ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहा और स्वधाम चले गये, किन्तु जब लौटकर इन्होंने हिरण्यकशिपुको अपने वरदानका समाचार दिया तो वह क्रुद्ध हो उठा--'मूर्खो! तुम यह परम्परा चलाना चाहते हो कि मेरे कुलके लोग ही मुझे छोडकर अन्यकी आराधना करे और मनमाना वरदान प्राप्त करे। तुम तो मेरे पुत्र थे, मेरी आराधनाके बिना भी मुझसे वरदान पा सकते थे। तुम अत्यन्त अज्ञानी हो, अत मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ। तुम सुतलमे जाकर दीर्घकाल तक निद्राके वशवर्ती रहो। तुम्हारे पूर्वजन्मका पिता ही तुम्हारा वध करेगा।'

'अन्तत हिरण्यकशिपु भवगत्पार्षद विजय ही तो है!' देवर्षिने कहा—'उसका शाप सत्य होना चाहिये था। कालनेमिने कसके रूपमे जन्म लिया, अब वह अपने पुत्रोका वध न करता तो वह शाप कैसे सत्य होता? भगवान नारायणके आदेशसे योगमाया उन षड्गर्भको क्रमश देवकीके गर्भमे स्थापित कर रही थी। सुतलामे सदा निद्रामे सुप्त रहनेवाले षडगर्भोंके शरीर कितने समय अविकृत रहते, यदि यहाँ कस शिशुओको मारकर उनके सूक्ष्म शरीरको अपने दैत्यदेहमे जानेके लिए स्वतन्त्र न करता रहता?'

'दूसरा प्रयोजन भी था।' देवर्षिने स्वय ही बतलाया था—'सृष्टिकर्ताका शाप भगवान वासुदेवका सान्निध्य प्राप्त करके समाप्त हो जाना था। उस समय तो देवकीके इन छहो पुत्रोके अपने स्वरूप—ब्रह्मलोकमें देवता होकर जाना ही था। लेकिन तब इनका कस वध करता, यह कितना अप्रिय और अमगल कार्य होता।'

हिरण्यकशिपुके शापके कारण जब कसके करोंसे इनका वध होना ही था तो देवर्षिका निर्णय उचित था। वे कुमार बडे हुए होते तो माताका मोह उनमे और भी अधिक होता और तब उसके वधसे माता-पिताको बहुत अधिक व्यथा होती, यह बात सहज ही समझमें आने योग्य है।

शरणागतवत्सल, निज जन परित्राता श्रीहरिके अवतार ले लेनेके पश्चात् उनके अग्रजोको कस मार देता—यह बात भी उन निखिलब्रह्माण्ड-नायकके लिए अशुभ ही बनती।

उन शिशुओका मगल था इसीमें और कंसका भी इसीमे मगल था कि उसका दारुण-अत्याचार बढे तो श्रीहरिको आनेकी त्वरा हो। उनके बिना कसका उद्धार तो सम्भव नही था। देवर्षिका तो व्रत है कि जो मिले उसका जैसे भी हो, उद्धार करना।

—※※—

शिशु-हत्या

'सेनापतिको कहो, सन्नद्ध रहे।' देवर्षिके जाते ही कस अपने भवनसे निकला। उसने द्वारपालको आदेश दिया—'एक टुकडी मुझे अविलम्ब वसुदेवके भवनपर चाहिये। शेष सेना भी सज्जित मिले मुझे।'

द्वारपाल अभिवादन करके चला गया। कस अपने रथपर बैठा और उसने सारथिसे रथ वेगपूर्वक चलानेको कहा।

'कस कहाँ जा रहा है?' नागरिकोमे अभी वसुदेवजीकी प्रशंसा ही हो रही थी। 'वसुदेवजी अपने पुत्रको कसके समीप ले गये और उसने लौटा दिया शिशुको—तो भी शान्त ही लौटे। अब तक उनके भवनमे मङ्गल-गान अथवा वाद्यकी ध्वनि नही उठी। बात क्या है? कसने क्या कहा उनसे?' अनेक तर्क-वितर्क नागरिकोंमें चल रहे थे।

कस वसुदेवजीके भवनकी ओर इतने वेगसे रथ क्यो ले जा रहा है?' नागरिक चौंके—'इतनी-सी देरमे क्या नवीन बात हो गयी?' कुछ कुतूहलवश चल पड़े वसुदेवजीके सदनकी ओर, किन्तु इन्हे पैदल जाना था और कसका रथ तो जैसे उडा जा रहा था।

वसुदेवजीको कठिनाईसे कुछ क्षण हुए थे शिशुको सूतिकागृहमें देकर लौटे कि कंसका रथ उनके द्वारपर रुका और उससे कंस कूदा।

'युवराज!' वसुदेवजी शीघ्रतापूर्वक उठ खडे हुए; किन्तु कंसने उनकी ओर देखा तक नही। वह उसी गतिसे अन्तःपुरमे चला गया।

अङ्गार जैसे जलते नेत्र, अत्युग्र भृकुटि, भयङ्कर भङ्गी और इतनी त्वरा—एक ही दृष्टिमे वसुदेवजीने जो कुछ देखा, उमसे समझ गये कि कस कोई अनर्थ ही करने आया है, किन्तु उन्हे कुछ भी करने-कहनेका अवकाश कहाँ मिला।

कसके लिए अन्त.पुरका कोई भाग अपरिचित नही था। यहाँ वह अनेक वार आया था। उसकी रानियोंने देवकीजीके सूतिकागृहका पहिले ही पूरा परिचय उसे दे रखा था। वह अन्त पुरमे विना किसी ओर देखे सीधे सूतिकागृह पहुँचा।

महिलाये ही थी वहाँ और उनमे भी अधिकाश कसकी सगी या चचेरी वहिनें। दासियाँ उस कक्ष से वाहर थी और वे कसको इतने वेगसे आते देख हतवुद्धि हो गयी थी—जहाँ-तहाँ ठिठक गयी थी।

कसको देखते ही सूतिका-गृहकी महिलाये हडवडीमे पड गयी। वे ठीक प्रकारसे एक ओर हट भी नही सकी थी कि उनके मध्यसे उनको लगभग धक्का-सा देता कस भीतर घुसा।

'भैया!' माता देवकीने तो कसको तव देखा जव झपटकर उनकी गोदसे पैर पकडकर शिशुको उसने छीन लिया और लौट पडा था। एक आर्त चीत्कार—असहाय अवला और क्या कर सकती थी। माता उठते-उठते गिरकर मूर्छित हो गयी।

महिलाये हतप्रभ खडी रह गयी। कोई कुछ सोचे-समझे, इतना अवसर ही कहाँ मिला। कस शिशुको लिये सूतिका-गृहसे वाहर आया और वहाँ उस पिशाचने चरणोसे पकडे उस नवजातिशिशुको घुमाकर एक शिलापर पटक दिया। शिशुका नन्हासा सिर चूर-चूर हो गया। शिला रक्तसे लथपथ हो गयी। कसके वस्त्रोपर रक्तके छीटे उसके पापकी साक्षी वन गये।

वही शिशुका शव हाथमे फेककर कस वसुदेवजीके सम्मुख आ खडा हुआ। अव उसने खड्ग खीच लिया था—'तुम वन्दी किये गये।' देवकी भी। उसे पुकार लो और चुपचाप रथपर वैठो। भयकर स्वरमे आज्ञा दी उसने।

'अच्छा युवराज!' वसुदेवजीने कोई प्रतिवाद नही किया। जो कुछ हो चुका था, उसे उन्होंने देख लिया था और इतना समझनेको पर्याप्त था कि इस समय कंससे कुछ कहना व्यर्थ है।

'देवकीको ने आओ !' वसुदेवजीने प्रागणमे आ गयी महिलाओकी ओर देखकर कहा। अब तक उनमे-से किसीके कण्ठसे चीत्कार तक नही निकला था। भयने उन्हे लगभग जड बना दिया था।

यन्त्र-चालितकी भाँति उनसे कई भीतर मुड गयी। हाथोपर उठाकर लायी गयी देवकीजीको उसी मूर्छितावस्थामे उन्होने द्वारपर खड़े रथपर वसुदेवजीके सकेनके अनुसार रख दिया। वसुदेवजी स्वय रथपर वैठ गये। तव कस वैठा।

'कारागार !' कसने सारथिको आदेश दिया और उसी दिन सूर्यास्तसे पूर्व ही वे भुवनवन्द्य दम्पत्ति मथुराके कारागारमे पहुँचा दिये गये। सद्य प्रसूता, मूर्छिता, रक्ताक्तअङ्गा माता देवकी असहायावस्थामे उम कारागारके कक्षमे पहुँचायी गयी—वसुदेवजीने ही उन्हे अङ्कमे उठाकर पहुँचाया। तव भो वे मूर्छिता ही थी, किन्तु कसको अव देवकीजीके जीवनकी कहाँ चिन्ता थी।

'तुम यदि यहाँ शान्त रहे'—कस अव वसुदेवजीको 'आप' कहनेकी शिष्टता भूल चुका था, उसने कहा—'तो तुम्हे कोई कष्ट नही दिया जायगा। अभी यहाँ राजपुरुप और सेविकाये आवेगी। वे तुम्हारे लिए सव आवश्यक प्रवन्ध कर देगी। आवश्यक सामग्री यहाँ आ जायगी। तुम्हारी पत्नियाँ यहाँ तुमसे मिलने आ सकेगी, किन्तु केवल तुम्हारी पत्नियाँ।'

'युवराज !' वसुदेवजीने कठिनाईसे अपनेको कुछ कहनेको प्रस्तुत किया।

'नही' कसने कुछ कहने नही दिया—'इस समय तुम्हारी और कोई वात नही सुननी है। तुम जानते हो कि नगरमे तुम्हारे वहुत सहायक हैं। मुझे देखना है कि वे कोई उत्पात न करे। तुम शान्त वने रहे तो तुम्हारी प्रार्थना भी सुन लूँगा पीछे।'

कस तत्काल लौट गया। कारागारका कठोर द्वार वन्द हो गया। वसुदेवजी मूर्छिता देवकीके समीप मस्तकपर दोनो हाथ रखकर भूमिपर—उस धूलिभरे कक्षकी भूमिपर, जिसपर त्रिभुवनेश्वरकी भावी जननी उनकी सहधर्मिणी अचेत पड़ी थी—वम् से वैठ गये।



महाराज उग्रसेन भी बन्दी बने

'कंसने वसुदेवजीके शिशुका वध कर दिया।' सूखे मूँजवनमे लगी दावाग्निके समान यह समाचार मथुरामे शीघ्र फैल गया—'वसुदेव और देवकीको उसने कारागारमें बन्द कर दिया है।'

'कसको बन्दी बनाओ।' महाराज उग्रसेनने सुना तो क्रोधसे कांपते हुए आज्ञा दी—'यादव राजसभा उसका न्याय करेगी।'

जबसे कसने देवकीपर हाथ उठाया था—महाराजने उसी दिनसे उससे बोलना बन्द कर दिया था। कसने भी पिताकी उपेक्षा कर दी थी। वह महीनोंसे उनके सम्मुख नही आया था।

यादवगण अत्यन्त उत्तेजनामे थे। प्राय युवको और तरुणोंने शस्त्र उठा लिये थे। महाराज उग्रसेनके समीप उनके समूह एकत्र हो रहे थे। यह सब समझ रहे थे कि कस राजाज्ञा मात्रसे बन्दी नही बनाया जा सकता। सेनापर उसका पूरा प्रभुत्व था।

कंस प्रमत्त नही था। कारागारसे निकलते ही उसने जो सैनिक टुकड़ी वसुदेवजीके भवनपर बुलायी थी, उसके थोडे-से सैनिक भवनपर छोड़कर शेषको उसने कारागारकी रक्षाके लिए भेजा।

'केवल मेरा आज्ञापत्र लेकर ही कोई कारागारमे प्रवेश कर सकता है।' सैनिकोको उसने कठोर स्वरमे समझा दिया—'दूसरे किसीकी आज्ञा तुम्हे नही सुननी है।'

'आपको बन्दी बनानेकी आज्ञा महाराजने दी है।' मार्गमें अश्व दौडाकर आता कसका एक अग-रक्षक मिला। उसने समाचार दिया।

'सेनापतिको समाचार दो कि मैंने आज्ञा दी है कि राजभवन घेर लिया जाय।' कसने तत्काल अग-रक्षकको दौडाया।

महाराज उग्रसेनको और उनके अग-रक्षको तथा यादव-तरुणोको राजद्वारसे बाहर आनेका अवकाश नही मिला। सेना पहिलेसे कसका आदेश पाकर सन्नद्ध थी। आज्ञा मिलते ही राजभवनपर सेनापतिने घेरा डाल दिया।

'उग्रसेनको बन्दी करो।' कंसने पहुँचते ही दहाडकर सेनापतिको आज्ञा दी। अब उसमे पिताका कोई सकोच शेष नही रहा था।

वही युद्ध आरम्भ हो गया। कसके असुर सेनानायक राजसभाके द्वारसे घुस जाना चाहते थे और यादव-तरुण प्राणपणसे उन्हे रोकनेमे लगे हुए थे। कुछ काल कस इस भयकर युद्धको देखता रहा अपने ही रथमे बैठा

हुआ, लेकिन वहुत थोडे काल तक। उसमें प्रतीक्षा करनेका धैर्य नही था। उसने देख लिया रथपर-से ही कि महाराज स्वयं खड्ग लिये आगे वढ रहे है। उसके असुर-नायक आहत होकर भी उनपर आघात करनेमें हिचक रहे हैं।

रथसे कस कूदा और उसने गदा उठा ली। उसके अपने सैनिकोंने हटकर उसे मार्ग दे दिया। स्थिति सर्वथा विपरीत हो गयी। यादव-तरुणोपर कंसका निर्मम गदाघात उन्हे धराशायी करने लगा, किन्तु वे शूर असुर सैनिकोंपर जिस उत्साहसे आघात कर रहे थे, अपने ही राजकुमारपर उस प्रकार उनके हाथ उठ नही पा रहे थे। उन्होने भी लगभग हटकर ही कसको मार्ग दिया।

कंसने पितापर हाथ उठानेमे कोई संकोच नही किया। उसने महाराजकी दक्षिण भुजापर गदा चलायी। आघात लगनेसे महाराजके हाथसे खड्ग छूटकर दूर जा गिरा।

'तू मेरा पुत्र नही है।' अव महाराजकी दृष्टि सम्मुख गदा लिये खड़े कसपर पडी। वे पूरे तेजस्वी स्वरमे वोले—'मैने तेरा त्याग किया। नराधम! तू वध कर मेरा!' अपने हाथसे महाराजने राजमुकुट उतार फेंका और श्वेतकेश मण्डित मस्तक झुका दिया।

'वन्दी करो इसे!' कस विना हिचक चिल्लाया, किन्तु कोई असुर भी महाराजको वन्दी करनेका साहस नही कर सकता था। कोई आगे नही वढा।

'चुपचाप आगे वढो।' कसने क्रोधपूर्वक चारो ओर देखा और स्वय उसने वाये हाथसे पिताका हाथ पकड़ा। उन्हे लगभग घसीटता-सा वह द्वारकी ओर वढ़ा।

महाराजके अग-रक्षकों और यादव-तरुणोके शव विछ गये थे वहाँ चारो ओर। सम्पूर्ण सभा-भवन रक्तसे लथपथ हो रहा था। सेनाने विजय प्राप्त कर ली थी और आहत अथवा शेष वचे विपक्षी शूरोको क्रूर असुर समाप्त करनेमे लगे थे।

कसको मार्गमें रोकने वाला अव कहीं कोई नही था। उसके असुर सेनानायक उसके दोनो पार्श्वमे शस्त्र उठाये चलने लगे थे।

उसी रथपर जिसपर वसुदेव-देवकीको कसने कारागार पहुँचाया था, उग्रसेनजीको उसने वलपूर्वक वैठा दिया। उसी दिन सूर्यास्त होते-होते कारागारका द्वार फिर खुला और उसके दूसरे भागमें महाराज उग्रसेनको कंसने स्वय उतारकर वन्द किया।

—×—

कंसका कारागार

मथुरा-नरेशका भी एक कारागार था—केवल इतना ही कहा जा सकता है। कारागार वैसे भी नगरके बाहर ही होता है। यमुना-किनारे ऊँची परिखासे घिरा एक छोटा-सा उपेक्षित कारागार था। पता नही, कबसे उसका कोई उपयोग नही हुआ था। वृद्ध कारागार-रक्षक--वह अकेला ही था। कोई वन्दी कारागारमें उसने अपनी आयुसे देखा नही था। वह स्वय कदाचित् ही कभी कारागारके भीतर किसी प्रयोजनसे जाता हो।

कारागारके दो भाग कहने भरके लिए थे। एक पुरुष वन्दीके लिए और दूसरा स्त्री वन्दिनीके लिए। वैसे कोई कक्ष नही थे वहाँ। एक-एक हो लम्बे कक्ष थे। उनके द्वार अवश्य सुदृढ कपाटोसे बन्द रहते थे और कारागारका विशाल बहिर्द्वार भी सदा बन्द ही रहता था।

वर्षमे केवल एक बार कारागारके द्वार खुलते थे वर्षा ऋतु बीत जानेपर। महालक्ष्मी पूजनके पूर्व नगरकी स्वच्छता होती तो कारागारकी भी स्वच्छता हो जाती थी। अन्यथा वह उपेक्षित--अनुपयोगी भवन था।

कसने जैसे ही सेनाकी व्यवस्था सम्हाली, उसका ध्यान कारागारकी ओर गया था। उसे लगा था कि कभी भी इस गृहकी आवश्यकता पड सकती है। अन्यथा महाराज उग्रसेन तथा उनके पूर्ववर्ती अनेक यादव नर-पतियोको तो, कारागार भी मथुरामे है, यह बात ही विस्मृत हो चुकी थी।

कसने कारागारकी परिखाको दृढ करवाया था। उसे कुछ अधिक ऊँचा उठवा दिया था, द्वार-कपाट जीर्ण हो चुके थे, उन्हे बदलवा दिया था। कारागारके दोनो भागोके कूपोकी भी स्वच्छता करायी थी उसने। महाराजने तब पूछा था—'कारागार क्यो तुम्हे महत्वका लगता है?'

कसने कहा था—'कोई वन्दी कभी वहाँ रखना पड सकता है। ऐसा अवसर कब आवे, कौन जानता है। अत उसे ठीक तो रहना ही चाहिये।'

तब किसे पता था कि स्वय महाराजको ही अकस्मात् वन्दी होकर वहाँ अनेक वर्षों तक रहना पडेगा।

कसने वसुदेव-देवकीको जैसे ही कारागार पहुँचाया, उसने वहाँ अपने सैनिक-रक्षक नियुक्त कर दिये थे। महाराज उग्रसेनको वहाँ बन्द

करके उसने तत्काल वृद्ध कारागार-रक्षकको वहाँसे चले जानेकी आज्ञा दे दी। वह वृद्ध महाराज उग्रसेनके प्रति निष्ठावान होगा, यह बात कंसके ध्यानसे बाहर नहीं थी। कंसने उससे कहा—'तुम अब कार्य करने योग्य नहीं हो। सैनिक अभी तुम्हारे आवासकी सामग्री ले जाकर नगरमें तुम्हें दूसरा निवास दे देंगे। तुमको निर्वाह-व्यय मिलेगा। कारागारके द्वारोंकी कुञ्जियाँ नवीन कारागार-रक्षकको दे दो।'

प्रचण्डकाय, कज्जलकृष्णवर्ण, उग्रस्वभाव एक असुर उसी समय कारागार-रक्षक नियुक्त हो गया। उसे पूरे बारह सहायक दिये गये। कंसने आदेश दिया—'कम-से-कम तीन रक्षक सशस्त्र सदा कारागारके द्वारपर सावधान रहा करें।'

महाराजको बन्दी करके कंस लौटा और सीधे मन्त्रणा-कक्षमें जा बैठा। वसुदेवजीके भवन-प्राङ्गण और राजसभाकी स्वच्छताकी बात उसे नहीं सोचनी थी। उसके मन्त्रियोंने यह कार्य पहिले ही हाथमें ले लिया था और सेवक नियुक्त कर दिये थे। राजसभाके युद्धमें मारे गये लोगोंके शव उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको ले जानेका अवसर दे दिया गया था। लोग शव ले जा रहे थे।

कंसने बैठते ही कहा—'परिचारिकायें तत्काल वसुदेवके कक्षमें भेजी जावें। देवकीको शीघ्र स्वस्थ होना चाहिये। उनकी सुविधाकी आवश्यक सामग्री अभी वहाँ पहुँचा दी जाय और कक्ष स्वच्छ कर दिया जाय।'

असुर-मन्त्रियोंने एक-दूसरेकी ओर देखा। उनको लगा कि उनके नवीन महाराजमें बहिनका स्नेह फिर जाग उठा है।

कंसने उनका तात्पर्य समझ लिया। वह बोला—'मैं उस दिन भूल कर रहा था जब देवकीको मारने जा रहा था। वह अवसर टल गया—अच्छा हुआ। देवकी मर गयी तो पता नहीं कहाँ जन्म लेगी और तब कहाँ उसका अष्टम पुत्र होगा, बढ़ेगा, कौन जानता है। यह तो विपत्तिको सीमातीत बढ़ा देना है। अभी देवकी अपने संरक्षणमें है।'

असुरोंके नेत्र चमके। उनमें प्रशंसाका भाव आया। उनके नायक इतने दूरदर्शी हैं, यह आज उनकी समझमें आया।

कंसने कहा—'अभी इसी समय देवकीके पास परिचर्याकुशल सेविकायें भेज दो। उस कक्षमें पुरुष सेवक नहीं जायेंगे। कलसे सेविकायें वहाँ केवल दिनमें जाया करेंगी। रात्रिमें वहाँ कोई सेविका कलसे नहीं रहेगी।'

कसने कुछ अधिक गम्भीर स्वर मे कहा—'मै नही चाहता कि वसुदेव देवकी दुर्बल, रोगी रहे और उनके दीर्घकालके अन्तरसे सन्तान हो। यह आतक, जितना शीघ्र हो सके, दूर होना चाहिये। इसलिए आवश्यक है कि देवकी शीघ्र स्वस्थ और सबल हो जाय। वसुदेवको भी पौष्टिक भोजन मिलना चाहिये। हमारे चिकित्सक उनको उपयुक्त रसायनका सेवन करावे। उनको कारागारका कष्ट कम अनुभव हो, ऐसा ही व्यवहार किया जाना चाहिये। उनके सुख-सुविधाकी सामग्री उनके बिना माँगे वहाँ पहुँचायी जानी चाहिये।'

'वसुदेवकी रानियाँ कारागारमे उनके समीप आती-जाती रहेगी।' कसने स्पष्ट कर दिया—'उनमे कोई रात्रिको भी रहे तो रहने दी जाय; किन्तु जैसे ही देवकीमे फिर गर्भका लक्षण प्रकट हो, दासियोको उनके पास नही जाना चाहिये और तब वसुदेवकी पत्नियोको भी देवकीके सन्तान हो जाने तक वहाँ नही जाने देना चाहिये।'

'जो दासियाँ वसुदेव-देवकीके समीप जाये, वे कितनी भी विश्वस्त क्यो न हो, उनपर सतर्क दृष्टि रखी जाय कि वहाँसे आकर वे नगरमे किससे मिलती हैं, क्या करती है।' कस कोई छिद्र अपनी सुरक्षामे भला क्यो रहने देता। 'वसुदेवकी पत्नियोपर तो सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये। कोई पुरुष—वसुदेवका भी कोई स्वजन अथवा अपना कोई सेवक उनके कक्षमे कभी नही जायगा।'

'आपके पिताश्रीके लिए ...।' एक मन्त्रीने किञ्चित् व्यंग्यपूर्वक पूछा।

'उस वृद्धकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही है।' कसने कह दिया—'वैसे उसके कक्षको भी स्वच्छ करा दो और उसके लिए आवश्यक सामग्री, जो वह चाहे, भेज दो। उसके यहाँ कभी कोई सेविका नही जायगी। उसके कोई मन्त्री, कोई यादव उससे नही मिल सकेगे। उसके पास केवल दिनमे अपने सेवक जायँगे। उन सेवकोपर भी सतर्क दृष्टि रखो कि वे नगरमे किन-किनसे मिलते है और क्या करते है।'

'वह वृद्ध अत्यन्त राज्यलोलुप है।' कसने वितृष्णा प्रदर्शित की—'उसे बहुत पहिले वनमे चले जाना चाहिये था, किन्तु उसकी चलती तो सिंहासन मृत्यु-पर्यन्त नहीं छोडता। वह कारागारमे रहकर भी कोई षड्यन्त्र न कर सके, इस ओरसे सावधान रहना है।'

कंसके आदेशका पालन उसी समय हुआ। लेकिन महाराज उग्रसेन-ने किसी सामग्रीकी इच्छा प्रकट नही की। उनके लिए सेवक अपनी ओरसे

ही नित्योपयोगी वस्तुएँ ले गये। महाराजने उसी दिनसे भूमि-शयनका व्रत लिया। वे केवल कुशासन बिछाते थे।

महाराज उग्रसेनने कारागारको तपोवन बना लिया। महीनेमें अनेक व्रत वे निर्जल करने लगे। अनेक तिथियोंमें केवल एक बार दूध या थोड़े फल लेते थे। दिनमे एक बार अल्प अन्नाहार वे कभी कदाचित् ही ग्रहण करते थे। महाराजने अपने सब कार्य स्वय प्रारम्भ कर दिये। सेवकोकी सेवा उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दी।

व्रत, सयम और आराधना—महाराज उग्रसेनका जीवन तपस्वीका जीवन बन गया। राज्य के छिन जाने और कारागारमे बन्दी होनेका उन्हे कोई दु ख नही था। केवल व्यथा थी उन्हे—'कुपुत्रका पिता बना मैं! मेरे पुत्र न हुए होते या होते ही मर गये होते—पुत्रोके कर्ममे पिताका भाग होता है और कस जो पिशाचो जैसे कर्म कर रहा है।'

प्रजा महाराज उग्रसेनको प्राणोके समान प्रिय थी। कारागारमें भी सुप्रसन्न रहते यदि उन्हे विश्वास होता कि प्रजा सुखी रहेगी, किन्तु कस—महाराजकी यह व्यथा उस एकान्तमे बढ़ती ही गयी थी।

कैसी विडम्बना थी। कारागारके एक भागमे महाराज अपने पुत्रके कारण दारुण व्यथा भोग रहे थे और उसी कारागारके दूसरे भागमे जो दम्पत्ति थे, वे अपने अबोध शिशु की हत्याके कारण व्यथित थे।

'मेरा लाल!' देवी देवकी मूर्छामे अनेक बार चिल्ला उठी थी—'भैया, वह निर्दोष है! उसे दे दो मुझे।'

वसुदेवजीने उनका मस्तक अपने अङ्कमे ले रखा था। वे समझ नही पा रहे थे कि क्या किया जाना चाहिये। देवकीजीके शरीरसे निकला रक्त कक्ष की भूमि आर्द्र कर रहा था, पर उस समय तक वहाँ अन्धकार हो चुका था।

शीघ्र ही परिचारिकाये आ गयी। कक्षको उन्होने प्रकाशित किया। एक भाग स्वच्छ करके देवकीजीको वहाँ आसनपर लिटाया। उनका उपचार करने लगी। वसुदेवजो शून्य दृष्टिसे यह सब तटस्थ जैसे देखते रहे।

'मेरा लाल! कुछ चेतनामे आनेपर बार-बार देवकीजीने चीत्कार किया और फिर-फिर मूर्छित हुई। कठिनाईसे वसुदेवजी ने उन्हे सम्हाला—'देवि! वह तुम्हारा नही था।'

'हाय ! उसने तो नेत्र भी नही खोले ।' माँकी दारुण व्यथाका पार नही था—'उसने देखा भी नही कि उसे किस भाग्यहीनाने जन्म दिया है। वह तो सोता ही आया, सोता रहा और अनन्त निद्रामे सो गया।'

रात्रि-व्यतीत होनी थी, किन्तु इस दु खी दम्पत्तिकी विपत्ति-रात्रि तो बहुत लम्बी थी। वह अन्धकार जो उनके मानसपर छा गया था—बहुत देर लगी उसमे प्रकाशकी किरण आनेमे।

———

महाराज कंस

कोई मुहूर्त नही देखा गया। किसी अभिषेककी आवश्यकता नही हुई। महाराज उग्रसेनको बन्दी बनाकर कस स्वय महाराज हो गया। रात्रिमे ही उसके मन्त्री, अनुचर उसे महाराज कहने लगे थे। प्रात.काल वह महाराज उग्रसेनका फेका मुकुट मस्तकपर रखकर, राजदण्ड हाथमे लेकर जब राजसिहासनपर आ बैठा तो किसमे साहस था कि उसे मथुरा-नरेश न मानता।

मथुराका शासन वैसे भी कसके ही हाथमे था। महाराज उग्रसेन सिहासनपर थे तब भी प्राय सब राजकार्य कस ही देखता था। अत कसको कोई भी कठिनाई नही हुई। प्रशासनमे उसे कोई बडा परिवर्तन भी नही करना पडा।

'जो लोग सिहासनका सम्मान करते रहेगे, उनकी रक्षा की जायगी। प्रशासन उनकी सुख-सुविधाकी पूरी व्यवस्था करेगा।' कसकी पहिली राजाज्ञा घोषित हुई—'राजभक्त प्रजाको तङ्ग करनेवालो एव आतङ्कित करनेवालोंको कठोर दण्ड दिया जायगा।'

'मधु और शूरसेन वशके लोग राजद्रोही हैं।' कसने दूसरी आज्ञा दी—'इनकी समस्त सम्पत्ति राजकोषमे ले ली जाय। वैसे भी इनकी कोई स्वोपार्जित सम्पत्ति नही है। राज्यकी सम्पत्तिको ही इन दोनो कुलोने दबा रखा है।'

वसुदेवजी तथा उनके सभी भाइयोकी चल-सम्पत्ति, पशु-धन कसने

उसी दिन छीन लिया। अवश्य उनके भवन उसने नही छीने। वे उनके अधिकारमे ही रहे।

मथुरासे पिछली रात्रिके युद्धके पश्चात् बहुत बडी सख्यामें लोग भाग गये थे। जिन यादव-शूरोने कससे युद्ध किया था, उनके स्वजन-सम्बन्धी सब रात्रिमे ही नगर छोड़कर चले गये थे। वे अपने परिवारको साथ ले गये थे।

वसुदेवजीके भाई और परिवारोमे कोई प्रात मथुरामे नही रह गया था। केवल वसुदेवजीकी पत्नियाँ एव निजी सेवक रह गये थे। दिनमें जब वसुदेवजीकी पत्नियाँ कारागारमे देवकीके समीप गयी, वसुदेवजीने सबको कह दिया—'मथुरामे रहना निरापद नही है। अब सबको मथुरा छोडकर अपने पितृ-गृह या अन्यत्र कही सुरक्षित स्थानोमे जाकर रहना चाहिये। विपत्तिके दिन भी बीतेंगे, किन्तु इस समय तो सबको प्रतीक्षा करना है।'

पितृगृह उनमे-से कोई नही गयी। अकारण कंसका कोप पितृ-गृहको क्यो भोगना पड़े। कसकी सभी बहिने भी जब मथुरा छोड गयी तो चचेरी बहिनें कैसे उससे सहानुभूतिकी आशा कर सकती थी। विपत्तिमे वे वसुदेवजीको छोडना नही चाहती थी, किन्तु समस्त सम्पत्ति कसके सेवक सवेरे ही उठा ले गये थे। मथुरा रहनेसे वसुदेवजीकी चिन्ता ही बढती थी। अत. सबने मथुरा-त्यागका ही निर्णय किया।

'मैं कही नही जाऊँगी।' रोहिणीजीने वसुदेवजीसे स्पष्ट कह दिया—'आप और देवकी यहाँ कारागारमे हैं। कोई तो आपकी खोज-खबर लेनेको चाहिये। सेवक कोई आप तक आ नही सकता। सेविकायें भी वे आवेंगी जो कंस द्वारा भेजी जायँगी। अत मैं यही रहूँगी। कस मुझे मार दे या यही बन्द कर दे, मैं नही जानेकी।

'तुम रहोगी कहाँ ?' वसुदेवजीने अत्यन्त व्यथित स्वरमें पूछा। जब उनके गृहकी सब सम्पत्ति राजकोषमे चली गयी तो उस सूने घरमें कोई अकेली नारी कैसे रहेगी ? उसके समीप कोई सेविका भी किस आधार पर रहेगी ?

'क्यो, पिताजी तो हैं।' रोहिणीजीने बिना हिचक उत्तर दिया—उनके सदनमे क्या उनकी एक पुत्रवधूको स्थान नही है ?'

'तुम ठीक कहती हो!' वसुदेवजीने सम्मति दे दी—'पिताजी केवल

तुम्हारी सेवा स्वीकार करते है और इस समय उनकी देखरेख भी आवश्यक है। कसका क्या ठिकाना।'

'कस कैसा भी हो, उस सदनकी ओर देखनेका साहस उसमे नहीं है।' रोहिणीजीने कहा—'जो एकमात्र श्रीहरिमें लगे है, उनकी रक्षा वे सर्वेश्वर कर लेंगे।'

कारागारसे लौटकर रोहिणीजीने ही वसुदेवजीकी सोलह पत्नियोंको विदा किया—'बहिन! जिस देवने यह दिन दिखलाया है, वह कभी अनुकूल हुआ तो हम फिर मिलेंगी।'

एकदू-सरीसे गले मिलकर फूट-फूटकर रोते हुए वे विदा हुई थी। जिनके पितृ-गृह उनको सादर रख लेते—वे भी वहाँ नहीं गयी। उन्होने भी कह दिया—'आर्यपुत्र कारागारमे हैं और हम राजसुख भोगने पिताके घर जायँ—ऐसा हमसे नही होगा।'

वनोमे ऋषि-आश्रममे और गिरि-गुहाओमें ही उन्हे आश्रय मिल सकता था। जिनको अब दीर्घकाल तक तपस्विनीका जीवन व्यतीत करना था, उनके लिए यही बहुत था। वन्य कन्द, मूल, फल, शाकका आहार और वल्कल वस्त्र—पतिवियुक्ता, व्रतनिष्ठा नारीको इतना कम कहाँ था। अत्यन्त अनुरक्त दासियोमे-से भी एक-दो ही उनमे-से प्रत्येकके साथ जा सकी। वृद्ध सेवक भी साथ गये उनके।

'वसुदेवजीकी केवल एक पत्नी नगरमे रह गयी है। वह अपने श्वसुरके सदनमे रहने लगी है।' कसको समाचार मिल गया।

'उसे रहने दो। शूरसेनजी ऐसे शान्त है कि उनके समीप रहकर वह तपस्या ही कर सकती है।' कसने कहा—'वसुदेवके समीप उसे निर्बाध आने-जाने दो।'

'वसुदेवकी शेष पत्नियाँ कहाँ गयी—हम पता लगा लेगे।' एक असुर मन्त्रीने कहा।

'क्या आवश्यकता है?' कसने उसे घूरकर देखा—'वे अपने पितृ-गृह नही गयी, अत. उनसे कोई भय तो है नही। उनका पता लगाकर तुम क्या उन्हे निर्वाह-द्रव्य भेजने वाले हो? वे स्वत चली गयी हैं और हमको पता नही है कि वे कहाँ जा छिपी हैं, अतएव यह कलङ्क भी हमपर नही आता कि हम अपनी बहिनोके जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था नही करते।'

'वहुतसे यदुवशी रात्रिमे ही भाग गये।' मन्त्रीने दूसरी सूचना दी—'अधिकाशको भी अभी ही अपने सम्वन्धियोके यहाँ जानेकी आवश्यकता आ पड़ी है। वे भी जाना चाहते है।'

'उनमे-से जो शासनके प्रमुख पदोपर है; जैसे दानाध्यक्ष अक्रूर', कसने कहा—'ऐसे लोगोको नगरसे वाहर जानेसे पूर्व मुझसे अनुमति लेनी चाहिये। इनके अतिरिक्त जो लोग जाना चाहे, जाने दो। ऐसे व्यक्तियोका चले जाना अच्छा है, जिन पर हम भरोसा नही कर सकते। वे रहेगे तो हमको उनपर सतर्क दृष्टि रखनी होगी।'

'प्रजाके लोग भी भाग रहे है।' दूसरे मन्त्रीने कहा। 'यह भगदड वहुत वडे स्तरपर है।'

'तुम अपने स्वजन-सम्बन्धी लोगोको यहाँ आमन्त्रित करो।' कसने सव असुर सहायकोको अनुमति दे दी। 'ब्राह्मणोमें जो जाते हो, किसीको मत रोको। व्यापारियोमे जो प्रमुख हैं, उन्हे तङ्ग मत करो। वे अपना धन-भवन-व्यापार छोडकर भागें भो तो आश्वस्त होनेपर शीघ्र लौट आवेगे।'

'सेवक?' प्रश्न सहज था।

'जो भाग रहे हैं, उनके सेवक उनके प्रति निष्ठावान हैं। उन्हे रोककर घरमे सर्प वसाये रहना है?' कसने डाँटा—'केवल जो किसी कलामे वहुत निपुण हैं, उनपर दृष्टि रखो कि वे न भाग सके।'

कसके अनुचरोने कुछ अधिक ही किया। जो भी लोग उन्हे अप्रिय थे, अभीष्ट नही थे, उन्हे सताना प्रारम्भ कर दिया कि वे भाग जायँ। जो रोक लिये गये, वे महाराज कसके अनुगत रहनेको विवश थे।

———

निर्मम हत्यायें

'देवि ! मैं न पति होने योग्य हूँ और न पिता होने योग्य !' वसुदेवजीने अत्यन्त व्यथित स्वरमे एक दिन देवी देवकीसे कहा—'मैं न पत्नीकी रक्षामे समर्थ हूँ, न पुत्रके पालनमे। कस कितना निर्दय है, यह स्पष्ट हो चुका है। अत क्यो न अब हम सयम-पूर्वक रहते हुए श्रीहरिके भजनमे लग जायँ। जीवन कितना भी लम्बा हो, इस कारागारमें कट ही जायगा। शिशु-हत्याओमे हम क्यो निमित्त बनें।'

'मैं ही भाग्यहीना कुलक्षणी हूँ।' देवकीजी विलख उठी—'मेरे ही कारण आपको ये दिन देखने पड़े। मेरा आपने हाथ पकड़ा और इस अभागिनीके साथ लगी विपत्ति आयी आपके समीप। कितने सुखी, कितने सम्मानित थे आप इसी मथुरामे।'

'देवि ! इसमे तुम्हारा तो कही दोष नही है।' वसुदेवजीने अश्रु पोछे। आश्वासन देनेका प्रयत्न किया।

'मैं उपवास करके प्राण त्याग दूँगी, यदि आप ऐसा कठोर निश्चय करेंगे।' देवकीजीने दोनो चरण पकड लिये वसुदेवजीके—'मैं चाहती हूँ कि जो आठवाँ आने वाला है, शीघ्र आ जाय। जितनी शीघ्र आ सकता हो, आवे। वह कसको मार दे या कस ही उसे मार डाले, किन्तु आपका यह सकट तो दूर हो। आठवेका आतक नही रहेगा तो कसके लिए आपको वन्दी वनाये रखना अनावश्यक हो जायगा। वह हमे मथुरामे नही भी रहने देगा तो भगवती धरित्रीका अङ्क वहुत विशाल है।'

'तुम्ही ठीक कहती हो।' कुछ क्षण मौन रहकर वसुदेवजी वोले—'सर्वेश्वरका जो विधान है, उसे कोई भी अन्यथा कैसे कर सकता है। उनकी इच्छा पूर्ण हो।'

कसके द्वारा भेजी गयी सेविकाओकी सेवा, उपचार सफल हो गया। देवकीजी शीघ्र स्वस्थ हो गयी थी। लगभग पाँच महीने पीछे ही कसको सेविकाओने समाचार दे दिया—'देवकीको दूसरा महीना चल रहा है।'

'अव उसकी सेवा-शुश्रूषाकी आवश्यकता नही है।' कसने सेविकाओका कारागारमे जाना वन्द कर दिया। केवल वसुदेव-देवकीके लिए आवश्यक आहार, उपकरण देने एक सेविका प्रतिदिन जाने लगी और उसे भी प्राय वदलते रहनेका नियम बन गया।

वसुदेवजी प्रारम्भसे ही सेविकाओमें किसीसे नही बोलते थे। देवकीजी भी अत्यन्त आवश्यक होनेपर ही उनमे-से किसीसे कुछ कहती थी। दम्पत्ति परस्पर ही बोलकर एक-दूसरेका दु ख बँटानेका यत्न करते रहते थे।

अन्तर्वत्नी होनेपर भी देवकीजीने वसुदेवजीकी सेवामें कभी शिथिलता नही आने दी। वे उनके वस्त्र दासीको नही धोने देती थी। उनको जल भी उठकर नही लेने देती थी। वसुदेवजी भी जानते थे कि रोकनेसे देवकीकी वेदना बढेगी। वे सहर्ष सेवा स्वीकार करते रहते थे।

'वही आया है, मेरा लाल फिर आया है।' अचानक अपने उदरपर हाथ फिराकर देवकीजी एक दिन तनिक प्रसन्न होकर बोली। दूसरे ही क्षण उनकी मुख-कान्ति बुझ गयी—'वैसा ही आलस्य, वैसी ही तन्द्रा मुझपर फिर छा गयी है, किन्तु वह क्यो फिर इस दुखिया माताके ही उदरमे आया? उसे जगतमे दूसरी जननी नही मिलती? यहाॅ इस कुक्षिसे जन्म लेनेपर उसे क्या कंस छोड़नेवाला है?'

वह समय भी आया। देवकीजीके मुखसे जब प्रसव-वेदनाके कारण चीख निकली, वसुदेवजी हडबडीमे उठ खडे हुए। बडी कठिनाईसे पीडाको दबाकर देवकीजीने कहा—'आप मेरे समीप न आवे। दूसरी ओर मुख किये रहे। दुस्तर लज्जा मुझे अतिशय संकोचमे डाले है, किन्तु यहाँ और कर भी क्या सकते है।'

'अच्छा, सुषेणका आगमन हो रहा है।' वसुदेवजीने नामकरण कर दिया। इसके पश्चात् तो देवकीजीके गर्भवती होनेपर ही उनके विनोदके लिए वे नामकरण करने लगे। इस प्रकार उन्होने अपने आगामी शिशुओके नाम क्रमश रखे थे—भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन और भद्र। ये नाम ही मात्र तो हैं। माता-पिताको कहाँ इनका दो घडी भी मुख देखनेको मिला था।

'देवकीको सन्तान हुई!' कारागारसे शिशुकी रुदन-ध्वनि सुनकर वहाँके द्वार-रक्षकोंमे एक दौड पडा था। कसको उसने जाकर समाचार दिया।

कंसने पहिलेसे आदेश दे रखा था की देवकीके सन्तान होते ही उसे अविलम्ब सूचना दी जाय। अपने भवन-प्रहरियोको भी उसने कह रखा था कि कारागार-रक्षक कभी भी आवे, उसे कस तक उसी समय पहुँचा दिया जाय।

कंस इधर कई दिनोसे अपने सब आवश्यक कार्योंको टाल रहा था। गणनाके अनुसार देवकीके प्रसवका काल आ गया था। कस कारागारसे सूचना आनेकी प्रतीक्षा करता रहा था कई दिनोसे। उसे इधर रात्रिमे भी ठीक निद्रा नही आती थी। अनेक बार वह द्वार-रक्षकसे पूछता रहा था—'कारागारसे कोई नही आया ?'

उस दिन सूचना प्रात काल पहुँची। कसको पिछले प्रहरमे तो निद्रा आयी थी और अचानक कारागार-रक्षक आ गया। चौंककर कस उठा। वैसे ही चल पडा। इन दिनो उसका रथ द्वारपर सदा प्रस्तुत रखनेका सारथिको आदेश था।

कसका रथ पूरे वेगसे आकर कारागारके द्वारपर रुका। कस रथसे कूदा। रक्षकोंने उसके लिए पहले ही द्वार खोल दिया था। वह सीधे वसुदेवजीके समीपसे होता हुआ देवकीके समीप पहुँच गया।

अभी तक देवकीजी प्रसव-मूर्छामे ही थी। यहाँ नालोच्छेदन कौन करता। शिशु रक्तमे सना सो रहा था। वह उत्पन्न होनेपर नाममात्रको रोया और फिर उसने नेत्र वन्द कर लिये।

कंमने पैर पकडकर शिशुको उठाया और कक्षसे बाहर आकर कारागार-प्रागणमे पडी एक शिलापर उसे पटक दिया। शिला, प्रागणका वह कोना और कसके वस्त्र रक्तमे लाल हो गये। प्रभातमे उगते भगवान भुवन-भास्करको लोग अर्घ्य देते है, उनकी वन्दना करते है, किन्तु उगते ही उन्हे ऐसा पैशाचिक दृश्य कदाचित् ही देखनेको इससे पहिले मिला होगा। पता नही, उस दिनका रविमण्डल ग्लानिसे अधिक अरुण हो गया था या नही। लेकिन विश्व-नियन्ताके यहाँ कसका वह क्रूर कृत्य निश्चित गणनामे आ गया था।

'मेरा लाल!' कसने शिशुको उठाया, तभी माता चौक पडी थी। उनकी मूर्छा टूटी और एक दृष्टि पडी कसपर। भयसे वे पुन मूर्छित हो गयी थी।

'वह तो तुम्हारे समीप रहने नही आया था!' वसुदेवजी अब उठकर समीप आ गये थे। उन्होने देवकीजीका सिर अङ्कमे लिया।

'देवकीके पास परिचारिकायें भेज दो!' कसने लौटते ही आदेश दे दिया।

कहने-वर्णन करने योग्य नही है यह दारुण घटना। यह उस कारागारमे आगे और चार बार दुहरायी गयी। वह प्रागणकी शिला

शिशुओंके रक्तसे रगती रही। निर्दोष सद्य जात शिशुओका रक्त सूखकर वहाँ काला पड गया था। उसे कोई पक्षी-चीटी तक चाटने नही आयी वहाँ।

उन दिव्य दम्पत्तिका दु ख, उनकी वेदनाका भी कोई पार था? होगा सृष्टिका नियन्ता-सञ्चालक करुणा-वरुणालय, किन्तु इन परम पावन प्राणोकी ओर देखने पर लग्ता है कि उस समय वह भी पाषाण-हृदय हो गया था। इतनी भी कही प्रतीक्षा करायी जाती है।

———

रोहिणीजी ब्रज गयीं

'जीजी! मुझ अभागिनीका एक अनुरोध मान लो तुम!' देवकीजीने अचानक जब रोहिणीजीके चरण पकड लिये रोते हुए तो रोहिणीजी चौंक पडी।

'तुम यह क्या करती हो!' उन्होने देवकीजीको हृदयसे लगा लिया—'तुम जानती हो कि मेरे प्राण देनेसे भी तुम्हे सुख हो तो मै हिचकूँगी नही।'

'जानती हूँ जीजी!' देवकी उनके गले लगकर रोती-रोती ही बोली—'इसीसे कहती हूँ कि मुझे वचन दो।'

'अच्छा, वचन दिया तुमको।' रोहिणीजीने उसके आँसू पोछ दिये अपने अञ्चलसे -'तुम मेरी अनुजाके समान ही नही हो, मेरी प्राण हो। ऐसा क्या है जो तुम चाहती हो और मैं नही कर सकूँगी?'

'सब बहिनें विपत्तिकी मारी चली गयी। वे मन विचारी जाने कहाँ-कहाँ रहती होगी।' देवकीजीका दु ख अपार था—'इस हतभाग्याके कारण ही सबको यह सब भोगना पड रहा है। उस दिन भाई कंस इसे मार ही देता . . .'

'देवकी!' रोहिणीजीने दोनो हाथोसे मुख पकडा और स्नेहसिक्त

स्वरमें वोली—'तू यही मत कहा कर ! फट जाता है मेरा हृदय यह सुनकर ! वोल क्या करूँ मैं तेरे लिए ?'

'पता नही कब आठवाँ आवेगा और उसके आनेपर भी क्या होगा, कौन कह सकता है।' देवकीजीने फिर चरण पकडे रोहिणीजीके—'एक तुम्ही यहाँ हो जीजी ! तुम्ही वचा सकती हो।'

'तुम कहो भी ! मैंने वचन दे दिया है तुम्हे और इनके चरणोकी शपथ करती हूँ।' रोहिणीजीने श्रीवसुदेवजीकी ओर देख लिया—'कहो ! क्या करना है मुझे ?'

'इनका वंश ही नष्ट हो रहा है !' देवकीने अब कहा—'तुम बचा लो वह वश जीजी ! इस अभागिनीने तो वश-दीप ही बुझा दिया।'

'क्या ?' दो क्षण लगे देवकीजीकी वात समझनेमें रोहिणीजीको और तव वे लज्जामे ऐसी सकुचित हो गयी कि उनके मुखसे शब्द ही नही निकला।

'मैं तुम्हारा अनुजा हूँ।' देवकीजीने धीरे-धीरे कहा—'हम विपत्तिमे है। इस समय मेरी लज्जा करोगी जीजी तो वश ही नष्ट हो जायगा। तुमने मुझे इनके चरणोकी शपथ करके अभो वचन दिया है।'

'देवकी !' रोहिणीजीने कठिनाईसे सम्वोधन किया। बात उनकी समझमे आ गयी थी कि इस कुलकी रक्षाके लिए ऐसा कुछ करना आवश्यक है। श्रीशूरसेनजीका ही वश समाप्त होने जा रहा था। अब तक वसुदेवजीकी किसी दूसरी पत्नीसे उन्हे कोई सन्तान नही हुई थी और न वसुदेवजीके छोटे भाइयोमे ही किसीके अब तक कोई सन्तति हुई थी।

रोहिणीजीने देवकीकी वातकी महत्ता स्वीकार कर ली। अव जब वे कारागारमे पहुँचती, देवकीजो प्राय एक कोनेमे जाकर सो जाया करती थी। वसुदेवजीने दोनो पत्नियोकी वात सुन ही ली थी। वे सदा यही कहकर चलने वाले थे—'जैसी श्रीहरिकी इच्छा।'

अन्तत यह प्रयत्न सफल हुआ। रोहिणोजीने ही एक दिन देवकीके कानमे फुसफुसाकर कहा—'अव तुम्हे दिनमें निद्राका आह्वान करनेकी आवश्यकता नही है। तुम्हारा सकल्प पूरा हो गया।'

'सच जीजी ?' देवकी ऐसी प्रसन्न हो उठी, जैसे उनका पुत्र ही बच गया हो।

'कंस क्या करेगा ?' शीघ्र ही आशंका का उदय हो गया। आशंका अकारण तो नहीं थी। जो आठवेंकी प्रतीक्षा न करके देवकीके सब शिशुओंका वध कर रहा था, वह वसुदेवजीकी किसी अन्य पत्नीसे हुई सन्तानको छोड ही देगा, इस बातका क्या भरोसा था।

'इसे बचाओ जीजी !' देवकीने अत्यन्त दीनतापूर्वक अनुरोध किया—'अपनी इस अभागिनी अनुजाके लिए, इस वंशके लिए इसे बचा लो।'

'क्या करू मैं ?' रोहिणीजीने साश्रु-नेत्र पूछा—'मैंने तुम्हारी बात मान ली है। अब तुम जो कहो, वह और करूँ।'

बात दोनो महिलाओंसे ही सुलझ जाने योग्य नहीं थी। दोनो वसुदेवजीके समीप बैठ गयी। देवकीजीने ही पतिसे सब कुछ कहा।

'तुम कारागारमें नहीं हो अभी।' वसुदेवजीने गम्भीर स्वरमें कहा—'मैंने केवल देवकीकी सन्तान कंसको देनेका वचन दिया था। वैसे अब उस वचनका भी कोई अर्थ नहीं है, क्योकि जब कंसने वचनपर विश्वास न करके हम दोनोको कारागारमे डाल दिया तो वचन स्वतः समाप्त हो गया। कंस अतिशय क्रूर है। वह कब क्या करेगा, कुछ निश्चय नहीं है। उसे तुम्हारे अन्तर्वत्नी होनेका पता लगे, इससे पूर्व ही तुम मथुरासे चली जाओ।'

'मैं चली जाऊँ आपको और देवकीको इस अवस्थामें छोड़कर ?' रोहिणीजी फूट-फूटकर बिलख पडी वसुदेवजीके दोनों चरण पकडकर।

'जीजी ! तुमने मेरा अनुरोध कभी अस्वीकार नहीं किया है।' देवकीजीने इस बार उनके कण्ठमे भुजायें डाल दी—'यह एक भिक्षा अपनी अनुजाको और दो।'

'भावनामें मत बहो देवि !' वसुदेवजी बोले—'बुद्धिमती हो तुम। परिस्थिति समझो ! मेरी बात मानो।'

'अच्छा !' रोहिणीजीने मस्तक उठाया—'आप आदेश देते हैं और देवकीका आग्रह है—मैं पालन करूँगी; किन्तु कहाँ जाऊँ मैं ? मथुरासे दूर जाकर जहाँ आपका मुझे कोई समाचार न मिले, मेरे प्राण नहीं बचेंगे।'

'मथुरासे दूर मत जाओ !' वसुदेवजीने इस बार बहुत स्नेह भरे स्वरमें कहा—'मैं भी चाहता हूँ कि तुम समीप ही रहो मथुरासे। हमारा

एक ही तो वशधर है तुम्हारी कुक्षिमे। उसके समाचारके लिए हमारे प्राण भी उत्सुक रहेगे सर्वदा।'

'मथुराके समीप?' रोहिणीजीने कुछ नही कहा, पर देवकीजी चौंकी।

'मथुराके समीप गोकुल में व्रजाधिप नन्दराय मेरे भाई ही तो हैं।' वसुदेवजीने कहा—'कंस भी सहसा उन गोपनायकपर हाथ उठानेका साहस नही कर सकता और तुम वहाँ श्रीनन्दरानीसे अपरिचित तो नही हो।'

'वे स्नेहमयी!' रोहिणीजी यशोदाजीके स्मरणसे निश्चिन्त हो गयी। शान्तिके सुखद दिनोमे वसुदेवजी अपने परम सुहृद्, भाई नन्दजीसे अनेक वार मिल चुके थे। दोनोके परिवारो में अत्यन्त घनिष्ठता थी।

'जीजी! तुम आज ही प्रस्थान करो।' देवकीने आग्रह किया। नन्दभवनमें रोहिणी रहेगी, इस बातसे वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयी थी।

'कसकी दासी अभी यहाँ आनेवाली है।' वसुदेवजीने कहा—उसके यहाँ पहुँचनेसे पहिले ही तुम यहाँसे निकल जाओ। वह आकर यहाँ तुम्हारे आनेकी जब तक प्रतीक्षा करे, तब तक तुम्हे मथुरासे वाहर हो जाना चाहिये। इस वेशमे मत जाना।'

रोहिणीजी रोते-रोते देवकीके गले मिली। वसुदेवजीके चरणोपर वार-वार उन्होने मस्तक रखा। अन्तमे वहाँसे अश्रु पोछकर निकली— 'दैव देखे कव इन चरणोके समीप फिर पहुँचाता है!'

शीघ्रतामे रोहिणीजीने पुरुष-वेश धारण किया। मस्तकपर पगडी बाँधी। अश्वपर बैठी वे। मथुरासे निकलते अकेले अश्वारोही युवकपर कौन ध्यान देता और गोकुल था ही मथुरासे कितनी दूर।



गर्भ सङ्कर्षण

माता देवकी अपने उस स्वप्नको कभी नही भूली, वे प्राय. उसकी चर्चा किया करती थी—वह स्वप्न भी कोई भूलने योग्य था।

अनन्त उज्वल जलराशि—इतनी उज्वल—सम्भवत वह क्षीरोदधि होगा। यह तो पीछे महर्षिने बतलाया था, स्वप्न सुनकर कि माताने अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक गर्भोदशायी भूमा पुरुषको देखा था।

उच्छलित उत्तुङ्ग लहरे और अवर्णनीय अमित प्रकाशराशि, किन्तु वह प्रकाश स्निग्ध था। नेत्रोको प्रिय लगता था। उदधिकी उत्ताल तरङ्गोने सागरके गर्भमे अकल्पनीय विस्तृत सौध बना दिया था। जल, जैसे वहाँ स्तम्भ-छत आदिके रूपमे स्थिर हो गया था। यत्र-तत्र उस प्रकाशमे पता नही, मणियाँ चमकती थी या जल-बिन्दु उछलते थे।

हिमश्वेत सहस्रशीर्षा महानाग अनन्त अपने सहस्र फण उठाये स्थिर थे। कम्पनका लेश तक नही था उनमे। उनके मस्तककी मणियोकी अरुण ज्योति उस प्रकाशमे अद्‌भुत शोभा देती थी।

कुण्डलाकार शेषके उस सुविस्तृत भोगपर एक अतसी कुसुम श्याम पीताम्बर परिधान पुरुष लेटे थे। प्रलम्ब भुजाये, विशालवक्ष, कण्ठमे जगमग करता पद्मराग महामणि, सर्वाङ्ग रत्नाभूषण भूषित।

माताका कहना है—'एक उडती-सी ही दृष्टि तो उन परमपुरुषपर पडी थी। फिर तो दृष्टि उनके मुखपर जो स्थिर हुई, हटी ही नही। कितना सुप्रसन्न मुख, उच्च नासिका, बडे-बडे रतनारे लोचन। कितनी कृपा, कितना स्नेह, कितनी ममता थी उन नेत्रोमे।'

सहसा स्वप्नमे माता चौकी थी। यह क्या हुआ—वह उज्वल केश! उज्वल तो शेष भी थे और अचानक ज्योतिर्मय सूक्ष्मकेश भी बनकर उन अनन्तशायीके सघन, घुंघराले, कोमल केशोमे एक बन गये। वह एक श्वेत चमकता केश—माताको वह केश बहुत अखरा था। इनके केशोमे एक पका!

सहसा उन परमपुरुषने अपना एक दक्षिण कर उठाया और बिना देखे ही उस श्वेत केशको सिरसे निकाल लिया। एक कृष्ण केश भी उसके साथ आ गया उस किसलय अरुण करमें।

परमपुरुषने ध्यानसे दोनों केशोंको देखा। किञ्चित् हास्य आया उनके अधरोंपर। अब उन्होंने माता देवकीकी ओर अद्भुत भावसे देखा और कृष्णकेश हाथमें ही रखकर श्वेतकेशको छोड़ दिया।

अद्भुत था वह केश—माताकी दृष्टि उसीपर स्थिर हो गयी। वह नृत्य करता था, कभी अनन्त सहस्र-शीर्षा शेष बनता था, कभी केवल ज्योतिरेखा हो जाता था। कभी वह इतना व्यापक लगता था कि दिशायें भी उसके भीतर समा जाती थीं, कभी अतिशय सूक्ष्म—यह सब था, किन्तु वह बढ़ा आ रहा था। समीप आता जा रहा था और अकस्मात् समीप आकर उसने माता देवकीके मुखसे प्रवेश किया। माता चौंककर उठ गयीं।

'देवि! अरुणोदय हो चुका है। उठो!' वसुदेवजी जगा रहे थे उन्हें।

'मैंने स्वप्न देखा है।' देवकीजीने उठकर अपने स्वामीके चरणोंपर मस्तक रखा और उन्हें अपना स्वप्न सुनाया।

'श्रीहरिने दर्शन दिया तुम्हें।' वसुदेवजीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया। दम्पतिका चित्त आज पहिली बार प्रफुल्लित हुआ। पहिली बार उन्हें लगा कि कुछ अद्भुत शान्ति वातावरणमें व्याप्त हो गयी है।

'रोहिणी जीजीको गोकुल गये महीने भरसे अधिक हो गये!' देवकी-जीके लिए यह दैनिक स्मरणकी बात हो गयी थी। लगभग दो मासका गर्भ लेकर रोहिणीजी गोकुल गयी थीं और उनके जानेके दिनसे ही देवकी-जी दिन गिनने लगी थीं। आज तो उन्हें बहुत अधिक स्मरण हो रहा था रोहिणीजीका।

'रोहिणी मथुरासे छिपकर कहीं चली गयी।' कंसके पास उसी दिन—जिस दिन रोहिणीजी गयीं, सूचना पहुँची थी।

'अच्छा हुआ' कंसने कहा—'वह वसुदेव-देवकीसे प्रतिदिन मिलती थी। प्राय दिनभर उनके पास ही रहती थी। पता नहीं, क्या-क्या बातें करते थे वे। उसकी ओरसे सशंक रहना पड़ता था। वह आशंका भी गयी।'

'वह क्यों गयी?' एक मन्त्रीने कहा—'उसे कोई भय तो नहीं था। आतङ्कित भी नहीं किया गया था। कहीं वह अन्तर्वत्नी होकर तो नहीं गयी?'

'हो सकता है।' कंसने उपेक्षाकी उस दिन—'ऐसा भी हो तो उनके शिशुसे मुझे क्या भय था। वह यहाँ भी रहती तो इसके बच्चेसे मुझे कोई शत्रुता नहीं थी।'

कसने तव भी उपेक्षाकी जब उसके चरने समाचार दिया 'रोहिणी गोकुलमे नन्द-गृहमे हैं और माता बनने वाली हैं।' लेकिन आज वह चौका ? उसे कारागारसे लौटकर दासीने समाचार दिया था—'देवकी फिर अन्तर्वत्नी है, किन्तु इस वार उसमें न आलस्य-तन्द्रा पहिलेके समान है, न वह उतनी दु खी ही दीखती है। वसुदेवजी भी कुछ प्रसन्न ही लगे मुझे।'

'रोहिणीको उन्होंने नन्द-गृह भेज दिया।' कस बोला—'नन्द भाई हैं उनके और वे जानते हैं कि व्रजाधिपसे मैं उलझना नही चाहूँगा। गोप वहुत वीर जाति है और इनको एक वार छेड दो तो आजीवन शत्रुता नही भूलते। अव देवकीके इस गर्भके सम्वन्धमें कोई योजना तो नही गढी है वसुदेवने ?'

कंसने उसी दिन कारागारके रक्षक वढा दिये। देवकी-वसुदेवके समीप जाने वाली दासियोमें परिवर्तन किया।

केवल कस ही नही चौंका था। चौंकी तो देवी देवकी भी थी। उन्होंने जव समझा कि उनके उदरमे सन्तान है, वसुदेवजीसे कहा था—'लगता है वह हठी हार गया। अन्तत वह इस अभागिनी माताकी कुक्षिमे कितनी वार आता। इस वार न मुझे आलस्य लगता है, न तन्द्रा। मेरा शरीर भी मुझे वहुत हल्का-स्फूर्तिवान लगता है। कोई दूसरा ही भोला प्राण आया है इस वार। वह भी आयुहीन ही तो होगा।'

कसका स्मरण आते ही देवकीजी अत्यन्त कातर हो उठती थी। उनकी सहज प्रसन्नताको यह चिन्ता आच्छादित किये रहती थी। वैसे उनमें एक विचित्र तेजस्विता लगने लगी थी। अनेक वार कसकी सेविका-को भी लगा था कि देवकीकी दृष्टिमे अव दैन्य नही है। वे मुखसे भले न बोलें, उनकी दृष्टिके सकेतमे वह गौरव आ गया है जो महारानीकी दृष्टिमे भी नही है। अव वे सकेतसे अनजाने ही आदेश दे देती है और उनके आदेशकी उपेक्षा कर पाना सम्भव नही है।

देवर्षि नारदने वतलाया था—'मथुरामे किसीको कैसे पता हो सकता था कि सृष्टि-सचालक कव क्या किया करते हैं और उन दिनो वे कितने व्यस्त थे। उनके अग्रज जव माता देवकीको जननी वनाने आ गये, स्वय वे श्रीहरि निर्गुण वने वैठे नही रह सकते थे।'

सृष्टिकर्त्ताने सुरो और धरा देवीकी करुण पुकार सुनकर स्तवन किया था परमपुरुषका। स्वयं भगवान चन्द्रमौलि ब्रह्माजीके साथ सर्वेश्वरका आह्वान कर रहे थे। ऐसी पुकार अनन्यशायी अनसुनी कैसे कर देते।

उन्होने सुरोको आश्वासन दे दिया था। असुर धरापर उत्पन्न होकर उत्पीडन कर रहे थे तो भगवान नारायणके आदेशसे सुर भी अपने अशसे पृथ्वीको धन्य करने उत्पन्न हो गये थे और अपने अधीश्वरके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इस बार उन निखिलेश्वरके आनेसे पूर्व अनन्त आ रहे थे।

भगवती योगमायाका स्मरण किया लीलामयने और आदेश दे दिया—'देवि! पधारो पृथ्वीपर। देवी देवकीके गर्भमे भगवान शेष पहुँच गये हैं। वसुदेवजीकी सगर्भापत्नी रोहिणी गोकुलमे है। उनके गर्भका आकर्षण करो और शेषजी देवकीके उदरसे रोहिणीजीके उदरमें पहुँचा दो।'

योगमायाने मस्तक झुकाया। परमपुरुष कहते गये--'इस बार तुम मेरी अनुजा वन जाओ। व्रजपति नन्दकी रानी यशोदा मैयाकी कुक्षिको धन्य करो। मैं देवकीके उदरमे आ रहा हूँ। मेरे लिए वह पावन स्थान प्रस्तुत कर दो।'

'धन्य हुई मैं!' योगमाया पुलकित हो गयी।

'तुम्हारी तो आराधना होगी!' नियन्ताने स्पष्ट किया—'दुर्गा, भद्रकाली, विजयी, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या-कुमारी, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका—तुम्हारे अनेक नाम मनुष्य रखेंगे और अनेक स्थानोमें तुम्हारी स्थापना करके विविध द्रव्योसे तुम्हारी पूजा करेंगे।' वरदान दिया प्रभुने—'तुम आराधककी समस्त कामनाये पूर्ण कर सकोगी। वरेश्वरी हो तुम आजसे।'

'वह अनुजाका सौभाग्य मेरा ?' योगमायाको इतने नाम, ये सब वरदान प्रिय नही लगे थे। वे उदास हो गयी थी। मनुष्य पूजा करेंगे, मनुष्य वरदान पायेंगे, मानव स्तुति करेंगे, किन्तु स्वय उन्हे ?'

'तुम थोडी प्रतीक्षा और कर लेना।' श्रीहरि सुप्रसन्न थे—'मेरे पश्चात् माता देवकीसे अपने एक अशसे अनुजा होकर भी आ सकती हो!'

योगमायाको लगा कि उन्हे सबसे अलभ्य वरदान अब मिला है। श्रीहरिने सकेत दिया—'वैसे तुम नन्दात्मजा बनकर जिन निखिलेश्वर आनन्दघनकी अनुजा बनने जा रही हो, उस गौरवके पश्चात् इसकी आवश्यकता थी नही।'

'मुझे आपकी नरलीला देखनेका तो सौभाग्य मिलेगा?' योगमायाने अपनी आकाक्षा स्पष्ट कर दी।

भाद्रशुक्ल प्रतिपदा थी वह। उसी दिन आधी रातको माता रोहिणी अपने भीतर स्थापित गर्भके गिर जानेसे निद्रामे ही छटपटा कर भूमिपर गिर पडी। अपने उदरसे निकन्ने गर्भको उन्होने स्वप्नकी भाँति देखा और फिर वह अदृश्य हो गया। इससे दो घडी तक उन्हे वहुत व्यथा रही। सहसा लगा—उनका उदर फिर पूर्ण हो गया है। पीडा शान्त हो गयी। निद्रा आ गयी। तभी उन्होने तन्द्राकी दशामें देखा, कोई अष्टभुजा तेजोमयी देवी सम्मुख खडी कह रही है—'देवि! क्षमा करना। तुम्हारे गर्भका आकर्षण किया मैंने।'

मथुरामे कारागारमे देवी देवकी भी पीडासे छटपटा उठी थी उसी समय, किन्तु उन्हे भी तन्द्रा आ गयी शीघ्र। रोहिणीजीको पूरे वर्ष भर गर्भ रहा था। गोकुलमे कई वृद्धाओने सन्देह किया था—'मूढगर्भ तो नही है यह?' सचमुच वह मूढगर्भ ही था। योगमायाने उसे रोहिणीके उदरसे कर्षित करके देवकीजीके सम्मुख डाल दिया था।

'देवकीका गर्भपात हुआ है!' प्रात काल कसकी भेजी सेविका आयी तो उसी ने पहिले कोलाहल मचाया। क्लान्त-श्रान्त देवकीजी तो तव भी तन्द्रामे ही थी।

देवकीके दिन जवसे पूरे होनेको आये थे, कस बहुत सतर्क था। सेविकाको वहुत शीघ्र कारागार आना पडता था और उसे तुरन्त लौटकर कसको समाचार देना पडता था। उस दिन यह समाचार पूरे नगरमे फैल गया।

'देवकीका गर्भपात हुआ!' नागरिकोमे भय, ग्लानि आदिके भाव जागे। उस समय पिताके सामने पुत्रकी मृत्यु ही अनहोनी घटना थी। किसी शिशुकी मृत्यु—किसीका गर्भपात तो महान अनर्थ था।

'वसुदेवजी परम धर्मात्मा हैं। देवकी तो साक्षात् देवी है।' लोगोको उस विषयमे कोई मतभेद नही था—'यह कसके पापका परिणाम है। कसके अधर्मसे ही यह दुर्घटना हुई। पता नहीं, इस राजाके पापका क्या-क्या कुपरिणाम प्रजाको भोगना पड़ेगा।' लोग कहते डरते थे, किन्तु समझते यह थे कि कसने किसी औषधि-प्रयोगसे गर्भपात करा दिया है।

'देवकीका गर्भपात हुआ? तू ठीक समझती है?' कसने सेविकाओसे पुन पूछा।

'मैं उस लोथड़ेको स्वय फेंक आयी हूँ।' सेविकाने कहा—'आप कारागार पधारकर स्वयं सन्तुष्ट हो सकते हैं।'

कंस कारागार नही गया। देवकीके पास उसने परिचारिकाये भेज दी। इस घटनाके केवल पॉच दिन पीछे गोकुलमें भाद्र शुक्ल षष्ठीको श्रीसकर्षणका प्राकट्य हुआ। यद्यपि वसुदेवजीको यह समाचार कुछ देरसे मिल सका।



अष्टम गर्भ

इस वार वह स्वत ही शरीर त्याग गया। माता देवकी अपने गर्भपातसे प्रसन्न ही हुई थी--'कोई क्रूर पकडकर उसे शिलापर पटके, इससे तो यही उत्तम हुआ। वुद्धिमान निकला यह। मैं पहिले ही कहती थी कि छ वार आनेवाले उस अवोध हठीसे यह भिन्न है।'

इस वातकी अपेक्षा भी माताको अव यह प्रसन्नता थी—'अव वह आठवॉ आवेगा। इस विपत्तिका अन्त आनेवाला है।'

कंस भी यह सोच रहा था—'चलो अब देवकीका अष्टम गर्भ आवेगा। आशका और आतंकके थोडे दिन रह गये हैं।'

प्रत्येक वारकी भाँति देवकी-वमुदेवजीकी परिचर्या फिर वढा दी गयी थी। इस बार कस वार-वार सेविकाओको सावधान करता था। देवककीकी दैनिकचर्या वह इस वार पूछने लगा था।

'दो महीने तो वीत गये।' कस इस वार दिन गिनने लगा था। वह समझ चुका था कि देवकी लगभग तीन महीने वाद नूतन गर्भ धारण कर लेती है।

'महाराज स्वय एक वार कारागार पधारे।' अचानक एक दिन सेविकाओके साथ ही मुख्य कारागार-रक्षक भी कसकी सेवामे आ उपस्थित-हुआ। हाथ जोडकर काँपते हुए उसने कहा—'मैं नही जानता कि वसुदेवको क्या हो गया है। उन्हे किसी देवताने वरदान दे दिया अथवा कोई उनमे स्वयं आविष्ट हो गया।'

'हुआ क्या है?' कस तनकर बैठ गया।

'स्वय देखे विना महाराज हमारी वातपर विश्वास नही करेंगे।'

कारागार-रक्षक गिडगिडाते हुए बोला—'मैंने देखना तो दूर, सुना भी नही था कि मनुष्यमे इतना तेज होता है। आप मुझे प्राणदण्ड दे दे अथवा अन्यत्र परिवर्तित कर दे। मुझमे या मेरे किसी सहायकमे शक्ति नही है। वासुदेव कारागारसे जाना चाहे तो हम उन्हे रोक नही सकेंगे। अच्छा यही है कि अब तक उन्होने किसीको कोई आदेश नही दिया है।'

'तुम चलो, मैं आ रहा हूँ।' कस भयभीत नही हुआ। इतना वह समझ गया कि जो विष्णु उसका वध करने अवतीर्ण होने वाले है, वे वसुदेवमे आ गये हैं। वसुदेवके मानवमे उनके आनेसे ही इतना तेज आया है।

कस कारागार आया और वसुदेवजीके कक्षमे पहुँचा तो चौककर कई पद पीछे हट गया। 'इतना तेज!' कसकी कल्पना भी यहाँ तक नही पहुँची थी। उसने प्राय सब देवताओको देखा था, किन्तु इतना तेज तो किसी देवतामे भी नही दीखा था उसे।

कसके आनेपर सदा विनम्रताकी मूर्ति बन जानेवाले वसुदेवजीने इस बार केवल दृष्टि उठाकर कसको देखा, जैसे वनराज किसी उपेक्षणीय मण्डूकको देख ले। कस कॉप गया उस दृष्टिसे ही।

'कैसे कोई वसुदेवको रोक सकता है।' कसकी समझमे अब कारागार-रक्षककी वात आयी—'यह तेजोमय पुरुष सम्मुख है, यह आज्ञा दे दे कि अपना मस्तक धडसे भिन्न करो—लगता है कि कस इस आज्ञाको अस्वीकार स्वय नही कर पावेगा। वसुदेव तो इस समय सृष्टिकर्ताकी सचराचर सृष्टिके लिए दुरासह-दुर्धर्ष हैं। इनकी केवल आज्ञा मानी जा सकती है। इन्हे किसी कार्यसे वारित नही किया जा सकता।'

कस शीघ्र हट गया वहाँसे। उसने उसी दिन वसुदेव-देवकीको हथकड़ी-वेडी पहिनानेकी आज्ञा दे दी। यह भी इसलिए हो सका कि वसुदेवने कोई प्रतिवाद नही किया और स्वय कस कक्षसे बाहर खडा रहा। वैसे वह वसुदेवजीके सामने फिर नही पडा। उसे भय लगता था—'वसुदेव कोई आज्ञा न दे बैठे।'

वसुदेवजीको अपने ही शरीरकी सुधि नही थी। एक अनिर्वचनीय आनन्द-समुद्र हिलोरें ले रहा था उनके भीतर। वे वार-वार देखते और विभोर होते—'एव नवजलधर सुन्दर, आनन्दघनैकमूर्ति, पीताम्बर परिधान, सुदीर्घ चतुर्बाहु, कमल लोचन, वनमाली—मेरे आराध्य श्रीहरि।'

वसुदेव पुलकित होते, उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च होता , स्वेद-धारा चलती देहसे , किन्तु वह श्रीमूर्ति प्रणम्य नही बनती थी । वह तो मुस्कराता अङ्कमे आ बैठता था और वात्सल्य उमडता था उसके प्रति ।

क्षण-क्षण जैसे नवीन-नवीन होकर वह आता था । वह भुवनैक सुन्दर—वसुदेवजीकी दृष्टि ससार कहाँ देख पा रही थी । उन्हे कहाँ अपना पता था उस समय ।

देवकीजी अपने स्वामीका तेज—उनकी अवस्था विमुग्ध देखनेमे तल्लीन थी । उन्हे भी पता नही लगा कि कब कस आया , कब गया । कब उनके या वसुदेवजी के हाथ-पैरोमे हथकडी-बेडी डाली गयी ।

'मेरे स्वामी महापुरुष है । परमपुरुष ।' देवकीजी मन ही मन दुहराती रही—मैने कहाँ यह विश्वास कभी खोया था । इस दासीपर प्रसन्न होकर अब इन्होने अपने स्वरूपका दर्शन कराया है इसे ।'

'द्वार सदा बन्द रखो । केवल परिचारिकाके लिए खोलो और उसके भीतर जाते ही बन्द कर दो ।' कसने उस दिन कारागारसे जाते समय आदेश दिया—'द्वारकी कीले , शृङ्खलाये आज ही द्विगुण कर दी जायँगी । मै और द्वार-रक्षक तुम्हारी सहायताको भेज रहा हूँ , किन्तु सावधान ! वसुदेवके सम्मुख किसीको नही पडना चाहिये । उनके कक्ष-द्वार तक कोई नही जायगा । वे कदाचित् आते दीखे ही द्वारकी ओर तो द्वार बन्द करके सब इतनी दूर चले जाओ कि उनकी पुकार सुनायी न पडे और तत्काल मुझे समाचार दो ।'

कस जानता था कि इतना प्रबन्ध पर्याप्त नही है । उसे स्वय शका थी कि वसुदेव आज्ञा दे तो जड किवाड बन्द रहेगे या उनकी आज्ञाका पालन करेंगे , किन्तु वह इससे अधिक और कर भी क्या सकता था । सेवकोंके सम्मुख अपनी दुर्बलता प्रकट न हो जाय , इसलिए वह शीघ्र चला गया ।

देवी देवकी अपने स्वामीका दर्शन करते-करते उनके चरणोमे पड गयी थी और फिर उन्हे पता नही लगा कि कितनी देर वे वहाँ आनन्द-समाधिमे सुप्त रही । सहसा उन्हे वह एक बारका देखा स्वप्न फिर दीखने लगा । वे पीछे भी सदा कहती थी—'स्वप्न भी ज्योंके-त्यो कई बार दीखते हैं ।'

वही असीम उच्छलित उज्वल उदधि । वही अकल्पनीय प्रकाश-राशि । वही सहस्रशीर्षा कमलतन्तु श्वेत शेष और उनके फणोपर लाल-लाल मणियाँ । वही उस शेषकी भोग-शय्यापर आधे लेटे पीताम्बरधारी

इन्दीवर नील विशाल बाहु परमपुरुष। वे तो अपने दक्षिण करमे लिये उस दिनके कृष्णकेशको अब तक देख रहे है। बडे ध्यानसे देख रहे है।

सहसा उन कमल लोचनने उसी दिनकी भाँति मुस्कराकर माताकी ओर देखा और हाथके केशको छोड दिया। यह केश भी उस दिनके श्वेत-केशके समान नृत्य करता बढा आ रहा है। यह केश है या वे चतुर्भुज वनमाली स्वय है? यह कभी केश बनता है और कभी घनसुन्दर चतुर्भुज पीताम्बरधारी, किन्तु यह तो शिशु है—अत्यन्त सुन्दर शिशु।

कब तक माता वात्सल्य-विभोर देखती रही—किसे पता है। दम्पत्तिमे किसीको पता नही लगा कि दिन कब बीता और रात्रि कब आयी। उस दिन परिचारिकाने आकर क्या किया और कब चली गयी। रात्रि भी कब बीती, पता नही लगता था।

सहसा वसुदेवजीका कर देवकीके शरीरपर पडा और उनकी स्थिति बदल गयी। उनका वह आह्लाद-सागर लुप्त हो गया। उन्होने दृष्टि खोली और देखते रह गये। वही—वही तो शिशु है जो हृदयकमलकी कर्णिकापर हँस रहा था। अब वह देवकीके अकमे आ बैठा है।

माताका स्वप्न—वह केश, वह शिशु—वह आता गया समीप और समीप आकर वह केश माताके मुखमे प्रविष्ट होगया पहिलेके समान। माताने चौंककर नेत्र खोले। अपनी ओर विमुग्ध भावसे वसुदेवजीको देखते देखकर वे लज्जासे सिमट कर बैठ गयी।

'प्रभात हो गया?' माताने अचानक दिशाओमे फैली अरुणिमा देखी। कहना तो चाहती थी—'सन्ध्या हो गयी?' लेकिन उनके श्रीमुखसे इस समय सत्य ही तो निकल सकता था।

'सचमुच प्रभात हो गया देवि!' वसुदेवजीको भी समयका बोध नही था। वे अब तक सहधर्मिणीके अकमे आ बैठे उस शिशुकी छवि-छटामें विभोर बोल रहे थे—'लगता है कि हमारी विपत्ति-निशा बीत गयी। उसमे प्रभातका प्रकाश आ गया है।'

'आप!' देवकीजीने अब ध्यान दिया कि उनके स्वामीका वह स्वरूप उस समय नही है, जो कल उन्होने देखा था। अब वसुदेवजी अपने सामान्य स्वरूपमे ही है।

अचानक कक्षद्वार खुला। परिचारिका डरते-डरते भीतर आयी और उलटे पैर बाहर भाग गयी। कक्षद्वार बहुत शीघ्रतासे बन्द हो गया।

———

कंस आतङ्कग्रस्त

'महाराज !' परिचारिका प्राय दौडती हुई कारागारसे आयी थी। उसने कारागार-रक्षकको न साथ लिया, न उससे कुछ कहा। उसे यह कुछ करना नही सूझा था। वह सीधे कसके सम्मुख पहुँची थी।

'क्या हुआ ?' कस भी हडबडा उठा था--'वसुदेव निकल गये कारागारसे ?'

'वसुदेव वही हैं महाराज ! लेकिन देवकी ' सेविका ठीक बोल नही पा रही थी।

'देवकीको क्या हुआ ? उसे तो अभी सन्तान होनेवाली नही थी ?' कसने फिर पूछा—'वसुदेव वही हैं तब देवकीको उन्होने कही भेज दिया ?'

'नही महाराज !' परिचारिका हाँफ रही थी दौडनेके कारण — देवकी वही है, पर देवकी '

'क्या हुआ देवकीको ? वह वही है, वसुदेव वही है तो देवकीको हुआ क्या ?' अब कंसका स्वर कड़ा हुआ—'तू स्पष्ट क्यो नही कहती ?'

'देवकी वह नही हैं।' परिचारिकाने कठिनाईसे कहा—'वहाँ तो कोई दूसरी ही देवकी वैठी है।'

'वसुदेव वे नही रहे और अब देवकी भी दूसरी हो गयी ?' कसके स्वरमे चिन्ता थी।

'वसुदेव तो वही है।' वह सेविका कह गयी—'कोई भूत उनमे आ घुसा था। वह उनको छोडकर देवकीमे '

'वसुदेव पहिले जैसे हो गये ?' कस प्रसन्नतासे मानो उछल पडा हो।

'हाँ महाराज ! लेकिन देवकीकी ओर तो मैं देख भी नही सकी।' सेविकाको वसुदेवकी उतनी चिन्ता नही थी।

'तुममे-से अब किसीको वहाँ नही जाना है।' कसने निर्णय सुना दिया —'वहाँ अब कोई गूँगी-बहरी परिचारिका जायगी।'

निर्णय ठीक ही था। जब किसीको कारागारमे रखना है तो उसके

आहारकी व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी, किन्तु कोई गूंगी रहेगी तो उसे देवकीसे बोल न पानेका प्रश्न तङ्ग नही करेगा और वह बधिरा जब सुनेगी ही नही तो उसे कोई आदेश भी क्या देगा।

'देवकी अन्तर्वत्नी हो गयी।' कसने परिचारिकासे मिले सम्वादका अर्थ किया—'वह मेरा मारनेवाला हरि अब देवकीके भीतर आ गया।'

कसको देवकीसे उतना भय नही लगा, जितना वह वसुदेवजीसे डर गया था। कुछ भी हो, देवकी दुर्बल नारी है। वह अकेली कही नही जा सकती। वह किसीको भला आदेश भी क्या देगी।

लेकिन कस उसी समय देवकीको देखने कारागार चल पडा। वहाँ सचमुच उसे देवकीका जो स्वरूप दीखा, वह अकल्पनीय था। जैसे कोई दिव्यलोककी देवी धरापर उतर आयी हो।

कसको देखकर देवी देवकी पहिलेकी भाँति कातर नही हुई; किन्तु उनके मुखपर किञ्चित सहम जानेका जो भाव आया, उसे कसने लक्षित कर लिया।

'मेरा निश्चय ही ठीक था।' कंसने सोचा—'हरि इसके भीतर आ गया। अन्यथा यह पहिले तो कभी ऐसी थी नही। यह तो ऐसी हो रही है जैसे मेघोसे ढका सूर्य हो। तब ?'

एक बार कसका हाथ अपने कटिमे झूलते लम्बे खड्गकी मूठपर चला गया—'इसे अभी ही समाप्त कर दूँ तब ?'

लेकिन देवकीकी ओर दृष्टि गयी और कसका हाथ मूठपरसे हट गया। वह कुछ भी करता, वहाँ कौन उसे रोकनेवाला था। वसुदेवजी हाथ भी पकडनेमे आज समर्थ नही थे, जैसे एक दिन उन्होने कसका हाथ पकड लिया था। आज तो स्वय उनके हाथ हथकडीमे जकड़े थे।

'छि! अतिशय निर्दयता अच्छी नही।' कंसके भीतर एक स्वर उठा। जैसे अब तक निर्दयताकी सीमा टूटनेमे कुछ कमी रह गयी हो।

'लोग इतनी क्रूरता सुनेंगे तो मुखपर भले कुछ न कहे, पीछे गाली देंगे मुझे, और मरनेपर सचमुच नरक जाना पडेगा।' सच बात यह है कि देवी देवकीके भीतर जो आ बैठा था, उस धर्मके परम प्रभुका सान्निध्य कसके काले हृदयको भी कुछ किरणें अपने प्रकाशकी दे रहा था।

'यह स्त्री है, बहिन है और गर्भवती है।' कसकी बुद्धिने कहा—

'अत्युग्र पाप प्रारब्ध बनकर तत्काल फल देता है। इतना उग्र पाप यश, श्री और आयुको भी तुरन्त चाट जा सकता है।'

'आयु—आयु ही न रहे तो यश और श्री कैसी ?' कसने ऐसे कौन से सत्कर्म किये थे कि मरनेके पश्चात् उसका यश रहेगा—यह विश्वास कर ले। इसी प्रकार जन्मान्तरमे ऐश्वर्य–श्रीके मिलनेकी आशा वह किस आधारपर करे ?

'हरि इसके भीतर आ चुका।' कसके अन्तर्मनमें-से एक आतक जागा—'वह देवीका अष्टम गर्भ तो बन चुका। अब मैं देवकीपर हाथ उठाऊँ और वह अभी प्रकट हो जाय। प्रह्लादको बचाने वह खम्भेमे-से प्रकट हो गया था। कब किस रूपमे प्रकट होगा—क्या ठिकाना उस मायावीका।'

'अच्छा, इसे जीने ही दो।' कसको लगा वह बहुत दया कर रहा है—'इतना क्रूर मैं नही बनूँगा।'

कारागारसे वह लौट पडा। रक्षकोको कडे आदेश दिये। द्वार, अर्गलादिकी स्वय परीक्षा की। कुछ सैनिक और भेजे कारागारपर।

वसुदेवजीकी ओर उसने आते ही देखा था और उधरसे निश्चिन्त हो गया था। वह फिर देवकीको ही देखता रहा था और लौटा भी तो एक सर्वग्रासी चिन्ता लेकर लौटा।

'हरि देवकीमे आया! वह उसका अष्टम गर्भ बन चुका। अब वह कहीसे प्रकट हो सकता है।' कस जल देखकर चौकता है–'वह मत्स्य बना, कच्छप बना—कही इस बार मकर बन जाय तो ? वह तो नन्ही शफरी बना था पहिले—कही नन्ही–बहुत नन्ही जोक बनकर मेरे उदरमे उतर जाय और वहाँ बढने लगे—वह वामनसे विराट बननेवाला!' अपने उदरको वह छूता है और काँपता है।

'वह वाराह बन गया, हयशीर्ष बन गया, हंस बन गया।' कसको प्रत्येक पक्षी, प्रत्येक पशु अब हरि दीखता है—'वह इस बार काक, गौ या हाथी बनकर क्यो नही आ सकता ?'

अपनी अश्वशालाके अश्वोंसे, अपने गजोंसे—वृषभो और गायोंसे ही नही—आजकल तो कस बकरियो तकसे भयभीत हो जाता है—'यह अभी बकरी है, अभी भयानक महिष या व्याघ्र बनकर कूद पड़े मुझपर तो ?'

'वह मोहिनी बना, वामन बना, परशुराम बना।' कंसने जो कुछ सुना है, वह उसके लिए आतङ्क बन गया है। अब वह अपनी पत्नी, अपने सेवक, अपने मन्त्री तकको देखकर चौंकता है– खड्ग खीच लेता है –'यह आया हरि! यह आया हरि! यह आया हरि!'

सब कहते हैं–'महाराजको भयोन्माद हो गया है।' सब सच कहते है, किन्तु सब सत्य है या कंस सत्य है? सब-सब रूप, समस्त सृष्टि वे हरि ही हैं, यह क्या सत्य नही है? कंस असत्य कहाँ देखता है।

लेकिन कंसका सत्य-दर्शन—बडा दुःखद, बहुत उत्पीडक हो गया है उसके लिए। वह भोजनकी थाली, पहिननेको आये वस्त्र, अपने ही शस्त्र अथवा सेवक-सेविकाको चौंक-चौंककर नेत्र फाडकर, खड्ग सम्हालकर देखने लगता है। उसके समीप आनेमे उसकी पत्नी तक अब कांपती है।



भाद्र कृष्ण अष्टमी

देवर्षि नारदने कहा था—'इतना प्रसन्न इतना चपल मैंने कभी सनकादि कुमारोको नही देखा था। वे मेरे ही अग्रज है। क्या हुआ कि सदा पाँच-छ वर्षकी आयु जैसा शरीर बनाये रखते हैं, किन्तु उनका ज्ञान, उनकी गम्भीरता तो सर्वोपरि है। उस दिन उनके शरीरका शैशव विजय पा गया था उनकी बुद्धिपर। उस दिन उनका मन शिशु बन गया था। वे राशि-राशि पुष्प अञ्जलिमे भरकर धरापर न्योछावर कर रहे थे। उनका वह भाव-विह्वल जयनाद! उस दिन तो वे महर्षि भृगु तकको उभाड आये—'समाधि छोड़ो! धरापर समाधिका सौभाग्य आ रहा है।'

माता देवकी और वसुदेवजीके लिए अब बहुत-सी बातें स्वाभाविक हो गयी थी और दिनमे जो एक कसकी भेजी सेविका आती थी, वह हक्की-बक्की आकाशकी ओर देखती रह जाती थी। वह गूँगी-बहिरी थी। नगरमे वह लोगोंमे अद्भुत सकेत करती थी। उसके सकेतोका तात्पर्य कंस ही नही समझ पाता था तो दूसरे क्या समझते।

रात्रिमे—स्वप्नमे ही नही, दिनके प्रकाशमे भी अनेक बार कारागारका वह कक्ष अलौकिक सुरभिसे भर जाता था। प्रायः पहिले सुरभि और फिर अलौकिक पुरुषो तथा देवियोकी भीड प्रकट हो जाती वहाँ। वह

सेविका थोड़े घण्टोको ही आती थी, पर वहाँ हो तो डरके मारे किसी कोनेमे दुवक जाती थी।

ये देवियाँ और दिव्यपुरुष वसुदेवजीकी, देवकीकी परिक्रमा कर जाते थे। उन्हे प्रणाम करते थे। स्तुति करते थे और कभी-कभी तो सेवा करने लगते थे। कभी कोई देवी सुगन्धित जलसे स्नान करा जाती, कभी कोई अंगराग ले आती और कभी देवियोका पूरा यूथ माताको अलौकिक पुष्पोसे सजा देता।

'ये ब्रह्माजी, ये भगवान त्रिलोचन शशाङ्क-शेखर, ये वज्रधर देवराज और ये गणनायक' माता देवताओकी भीडमें बहुत थोडोको पहिचान सकती थी, जिनका वर्णन उन्होने वचपनमे सुना था। कुछ औरको वे अवश्य पहिचान लेती यदि वे अपने वाहनोपर आते, किन्तु कोई उनके सामने वाहनपर आता नही था—'कुमार कार्तिकेय, अग्निदेव, धनाधीश कुबेर ' बहुत थोडे पहिचाने जा सकते थे। देवियोंमे और भी कम पहिचानमे आती थी।

'ये आपकी स्तुति-पूजा करने आते है, यह तो उचित है, किन्तु मैं—मैं कहाँ किसीकी वन्दनीय हूँ। मेरी सेवा-सम्मान ये सुर क्यो करते हैं?' देवी देवकीने पहिली वार अपने स्वामीसे पूछा था। वसुदेवजी उनकी दृष्टिमे साक्षात् परमपुरुष थे। अत देवता उनकी पूजा करते दीखे तो देवकीजीकी आस्था दृढ हुई, किन्तु अपनेको लेकर ये बहुत सकोचमे पडी।

'देवि! तुम्हारे अंकमे मै वार-वार जिस चतुर्भुज नीलसुन्दर कमललोचन शिशुको देखता हूँ, वे तो सर्वाराध्य श्रीहरि है।' वसुदेवजीने कहा था—'उन्होने तुम्हे माताका सौभाग्य दिया तो सुर तुम्हारी सेवा करेंगे ही। उसी के कारण तुम्हे और मुझे भी यह प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी है।'

दिनमे और रात्रिमे भी—चाहे जव वह कक्ष सुरो या देवियोंसे भर उठता था। कभी कोई देवी एकाकी अथवा दो-चार भी आती थी। अब कसकी परिचारिकाके लिए कोई सेवा—कोई कार्य रह नही गया था। उसने यह वात सकेतसे कसको बहुत समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह समझाती—'मेरा दिया भोजन वे नही करते' या 'मुझे कक्ष स्वच्छ नही करना पडता'—और कस सकेतका अर्थ लगाता—'वे भोजन नही करते। आँधी आयी आकाशसे और कक्ष स्वच्छ हो गया।' वह हँस देता या डाँट देता था। सकेत कर देता था कि 'वह प्रतिदिन जाय। वे भोजन न करें तो भी उनके समीप भोजन रख दिया करे।'

एक दिन तो ब्रह्मा-शिव प्रभृति सभी देवता एक साथ देखे माताने' अपने समीप। वे पता नही हाथ जोडे क्या-क्या स्तुति करते रहे थे। किसकी स्तुति ? सम्भवत: गर्भस्थ शिशुकी स्तुति। अवश्य उस दिन जाते-जाते चतुर्मुख ब्रह्माजीने हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर माताको प्रणाम करके कहा था – 'अम्ब ! अब आप तुच्छ कससे मत डरे। वह शीघ्र मरनेवाला है। आपका सुत तो त्रिभुवनको सरक्षण देने आ रहा है।'

देवताओका आवागमन बढता ही गया। बढती गयी देवियोकी श्रद्धाभरित सेवा और बढता गया माता देवकीका वह गर्भ। माता कहती थी—' इस बार यह अद्भुत ही आया है। मुझे इसका कोई भार नही लगता। इस बार तो लगता है कि मेरी स्फूर्ति, शक्ति बढ गयी है।'

'तुम्हारे तेज, सौन्दर्य तो असीम बढ गये है इस बार।' वसुदेवजी कहते थे—' इस बार तो वह तुम्हारे अङ्कमे बैठा मुस्कराता मुझे बार-बार दीखता है।'

अन्तत वह दिन—वह अजन्माके जन्मकी तिथि भी आयी। भाद्र कृष्ण अष्टमी—भरी वर्षाकी वह ऋतु और सर्वत्र लोग चकित रह गये उस दिन प्रभातसे ही—' सरिताये बढी हैं और उनमे स्वच्छ-निर्मल जल ! मिट्टी, रेत—कही घास-तिनकोका नाम तक नही। शरदमे भी जलमे जो स्वच्छता नही आती, वह स्वच्छता।'

सरोवरोमे राशि-राशि कमल और कुमुदिनियाँ एक साथ खिल उठी उस दिन। सम्पूर्ण धरा—एक-एक तृण, वीरुध, लता, तरु पुष्पोसे लद उठे।

पर्वतोपर मणि-राशि प्रकट हुई। वनमे ही नही, ऊसरमें भी तृण उग उठे और उनपर नन्हे पुष्प खिले। गिरि, कानन, धरा, जल, सर्वत्र एक विचित्र बात—मरुस्थल तकमे वही विशेपता—मानो कही किन्ही निपुण कलाकुशल करोंने मणियोको, पुष्पोको, पल्लवोको और मरु तथा पुलिनके रेणु-कणोको सजाया है। सर्वत्र विचित्र-विचित्र मण्डल, नाना शिल्प-क्रम अपने आप व्यक्त हुए।

'आज तो पक्षी तक शिल्प-मण्डल बनाकर उडते है।' किसी एकने नही—बहुतोने लक्षित किया—'आज पक्षियोंके कूजन और भृङ्गोके गुञ्जारमे लयबद्ध कोई स्वागत गीत गूँजता जान पडता है।'

'इतना प्रसन्न, इतना आनन्दोल्लसित मन तो कभी नही हुआ।' ऋषि-मुनियोने ही नही, सामान्य सज्जन-वर्गके लोगोने अनुभव किया।

'अग्निदेव स्वय आवाहनीय कुण्डमे पधारे।' सम्पूर्ण विप्रवर्ग, सब ऋषि-मुनि व्यग्र हो गये हवन-सामग्री जुटानेमे। कसके राज्यमे छिप-छिपकर किसी प्रकार दैनिक अग्निहोत्रका नियम कुछ नैष्ठिक लोग निर्वाह करते थे। उनके यहाँ भी आहुति देनेपर प्राय अग्निदेव धूम्र ही देते थे। बडा प्रयत्न करना पडता था ज्वाला प्रकट करनेके लिए, किन्तु आज तो उन हवन-कुण्डोंसे सहसा लपटें उठने लगी, जिनमे वर्षोंसे समिधा तक नही पडी थी।

असुरो और उनके अनुगत मानवोकी स्थिति भी आज अद्भुत थी। पता नही, कहाँका आलस्य उतर आया था। न कही जानेको जी करता था, न कुछ करनेको। केवल सोते रहनेकी इच्छा होती थी। पूरे प्रकृतिके प्रागणमे आज जो महोत्सव उतर आया था, उसपर दृष्टि डालनेका अवकाश इस वर्गमें-से किसीको नही था।

कस बहुत दिनोपर आज सोया था—दोपहरसे भी पहले सो गया था और थोडे समयके लिए सायकाल उठा था। उसके अनुचरोकी भी यही अवस्था थी। अवश्य आज उन्हे भी आहारमे बहुत स्वाद मिला था। डटकर भोजन किया था आज उन सबने, अत आलस्य-निद्रा सहज थे।

दिन बीत गया। सायकाल आया और रात्रि आ गयी। इतना निर्मल आकाश—ऐसी स्वच्छ दिशाये कि लगता था गगनमे रत्नोका अम्बर किसीने उलट दिया है। तारोकी ज्योति बहुत अधिक जगमगाने लगी थी।

आराधना—हवन, पूजन, जपमे कर्तव्य मानकर ही लगना पडा आज, अन्यथा मन तो इतना सत्वपूरित हो रहा था ऋषियो, विप्रो, धर्मात्माओ एव भक्तोका कि अन्तर्मुखताको भङ्ग करना पडता था जपादिके लिए। रात्रि आयी, किन्तु जैसे विश्वका सम्पूर्ण तमस असुर प्रकृतिके लोगोके पास ही सिमट गया। शेष किसीको तन्द्रा या आलस्य तक नही आया। आज तो ऋषि-आश्रमोमे नन्हे बालक तक आसन बाँधे ध्यानस्थ बैठे थे।

अचानक दिव्यलोकोमे उत्सव प्रारम्भ हो गया। सत्यलोक तक जब सकीर्तन गुञ्जित होने लगा तो अमरावती तो वैसे भी अप्सराओकी नृत्य-गीत स्थली है। गन्धर्वोके कलकण्ठ दूसरे किस दिन सार्थक होते।

स्वर्गके उस सङ्गीतकी ध्वनि धरापर पहिचान ली गयी होती यदि उसी समय दूर—समुद्रतटीय प्रदेशकी ओरसे मन्द-मन्द, किन्तु गम्भीर एव निरन्तर मेघगर्जनकी ध्वनि न आने लगी होती।

रात्रिमें बहुत देर तक आमोद-व्यस्त रहने वाले असुरो को आज दिनसे ही आलस्यने दबा रखा था। उनके पानक एवं क्रीडा-गृह आज सूने पडे थे। उन्होने जीवनमें पहिली बार आज शीघ्र शय्याका आश्रय से लिया था।

'मेघ गर्जन करने लगे है!' असुरोने प्राय कहा—'आज कही गृहसे निकलने योग्य नही है। दिन भर गगन खुला रहा है। लगता है वर्षा होगी। सावधानीसे उन्होने द्वार बन्द कर दिये। केवल वे जगे रहनेको विवश थे, जिन्हे रात्रिमें पथपर अथवा कही किसी द्वारपर नियुक्त किया था। ऐसे लोगोंने भी अपने बैठनेका स्थान ढूँढ लिया और जब निद्राका वेग होता है—बहुतसे प्रहरी खडे-खडे भी सो लिया करते है।

मेघोका गर्जन धीरे-धीरे बढता जा रहा था। गगनमें चपलाकी दूर छूटती फुलझडियाँ अपना प्रकाश क्षण-क्षण पर फैलाने लगी थी। बहुत मन्द पदोंसे घटाओके गजयूथ गगनमे मथुराकी ओर बढ रहे थे।

आश्रमोमे, विप्रगृहोमें, धर्मात्माओके हृदयमे सात्विकता अधिक-अधिक सघन होती चली गयी। गति वहाँ भी नही थी। बोलनेकी रुचि वहाँ भी किसीमे नही थी, किन्तु वहाँ एकाग्रता-अन्तर्मुखतामे अपना देह ही विस्मृत हो चुका था। अत गगनमे बढते सुरोके महोत्सव-शब्द धरापर सुननेकी स्थितिमे न असुर मानव रह गये थे और न सात्विकजन ही थे। नीरव-निस्पन्द धराका अङ्क—धरादेवी समुत्सक थी, रुद्धश्वास प्रतीक्षारत थी।

—×—

श्रीकृष्णावतार

महर्षि गर्गने पीछे भगवान वासुदेवकी जन्मपत्रिका बनायी थी। उनका कहना था—'भाद्रपद कृष्ण अष्टमीकी अर्धरात्रि थी। इस रात्रिका नाम जयन्ती है। विजय नामका मुहूर्त था। रोहिणी नक्षत्रका तृतीय चरण प्रारम्भ हुआ था। बुधवासर था और हर्षण योग था।'

'वृष लग्न, लग्नमे चन्द्र और केतु, चतुर्थमे सिंहका सूर्य, पञ्चम्में कन्याका बुध, षष्ठम्में तुलापर शुक्र और शनि, सप्तम् वृश्चिकका राहु, नवम् मकरका मंगल और एकादशमें मीनका गुरु था।'[1]

अर्धरात्रिका वह धन्यकाल—धरापर घोर अन्धकारको विदीर्ण करता प्राचीमे क्षितिजसे इन्दुकी अमृतमयी किरणे ऊपर उठी और उसी समय, समकाल ही, कंसके कारागारके उस कक्षमे देवी देवकीके सम्मुख वह दिव्य ज्योति प्रकट हुई जिसने त्रिभुवनमे छाये तमसावरणको विच्छिन्न कर दिया।

गगनका चन्द्र कलङ्कित है, अष्टमीको आधा ही रहता है। घटता-वढता है। लेकिन देवी देवकी के सम्मुख जो कृष्णचन्द्र प्रकट हुआ, वह नित्यपूर्ण पुरुष, उसका स्मरण निखिल कलङ्क कलमपको ध्वस्त कर देता है।

महामुनि गर्गाचार्यजीने जब अवसर आने पर नामकरण किया तो कहा था—'ये भगवान वासुदेव मुकुन्द हैं। इनका सहज गुण है अनन्तकालसे अविद्यान्धकार मे भटकते जीवको मुक्तिदान करना।'

'विष्वकसेन' यह नाक्षत्रिक नाम उसी रात्रिमे वसुदेवजीने रखा था अपने कुमारका, किन्तु यह नाम लोकमे प्रचलित नही हुआ। लोकमें तो वासुदेव ऐसे प्रिय हुए कि पीछे पौण्ड्रक तथा शृगाल अपनेको वासुदेव कहने लगे।

माता देवकीको लगा था कि उन्हे तन्द्रा आ गयी है। समस्त धार्मिक, भक्तिप्राण प्राणियोके समान वसुदेवजी भी घनीभूत सत्वगुणके कारण अन्तर्मुख हो गये थे। एक आनन्द समाधिमें निमग्न थे वे।

अचानक कारागारका वह कक्ष सहस्र-सहस्र पूर्णचन्द्रके सम्मिलित प्रकाशके समान दिव्यजोतिसे प्रकाशित हो उठा। वसुदेवजी ही सर्वप्रथम सावधान हुए। उन्होने देखा—देवकीके सम्मुख दिव्य शिशु खडा है मन्द-मन्द मुस्करा रहा है वह नवजलधर सुन्दर, तडिदाम्बर, वनमाली, रत्न-

---

१. श्रीकृष्ण की यह कुण्डली 'खमाण्डिक्य' नामक ज्योतिष ग्रन्थमे है और इसीको सूरदासजीने भी एक पदमें दिया है।

किरीटी। अपनी विशाल भुजाओमे उसने कंकण, अंगद आदि धारण किये हैं। करोमे शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं। कण्ठमें महामणि कौस्तुभ है। वक्षपर वनमाला के मध्य श्रीवत्स चिह्न है। कटिमे रत्नमेखला है। चरणोमे नूपुर हैं।

एक दृष्टि सर्वाङ्गपर घूम गयी। नवनीत सुकुमार सर्वाङ्ग और उससे ज्योत्स्ना झर रही है। दृष्टि मुखपर आयी—पल्लव मृदुल मुस्कराते अधर, विशाल भालपर तिलक, वक्र भृकुटि और दीर्घ दृग—दृष्टि उन कृपावर्षण करते दृगोपर लगी और स्थिर हो गयी।

'श्रीहरि स्वयं पधारे!' वसुदेवजीका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया। रोम-रोममे स्वेद-धारा चलने लगी। कई क्षण वे केवल देखते रहे। नेत्रके पलक तक गिर नही सकते थे।

कुछ क्षण लगे स्वस्थ होनेमे। वसुदेवजीने अञ्जलि बाँध ली। मस्तक झुकाया। बेड़ीमे जकडे पदोको मोड़कर घुटनोके बल गये और स्तवन करने लगे—'आप साक्षात् परमपुरुष हैं। प्रकृतिसे पार केवल अनुभव स्वरूप हैं। समस्त बुद्धियोके द्रष्टा हैं। सर्वस्वरूप, सर्वसाक्षी, सबके प्रकाशक, स्वयप्रकाश प्रभु। इस विश्वके निमित्तोपादानकारण। इस सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, संहारके मूल हेतु! आप यहाँ अपनी मायासे युग-युगसें अवतीर्ण होते हैं, अतः इस समय भी प्रकट हुए है। इस धराको धन्य करने, असुरोका संहार करने, भक्तोका भय मिटाने मेरे यहाँ प्रगट हुए आप, किन्तु निखिलेश्वर! कंसके अनुचर उसे समाचार देगे तत्काल और वह शस्त्र उठाये दौडता अभी आवेगा।'

वसुदेवजीने अपने हथकडीमे जकडे करोकी ओर देखा। वे कितने असहाय है। ये चक्र और गदा लिये सम्मुख जो तेजोमय खडे हैं—लेकिन वात्सल्य उमड रहा है। ये शिशु हैं और एकाकी है।

'कंस आता होगा अभी!' वसुदेवजीके शब्द कानोमे पडे और देवकीजीने चौंककर नेत्र खोल दिये। उन्होने जो सम्मुख देखा—देखती रह गयी। उस स्थितिमें भी उनके श्रीमुखपर मुस्कान आ गयी। वे भी अपने स्वामीके समान बद्धाञ्जलि बैठ गयी और स्तवन करने लगी।

'जानती हू कि जिसे ऋषि-मुनि अव्यक्त, आदि, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष कहते है, वे अध्यात्मदीप विष्णु तुम्ही हो। समस्त लोक जब कालके गालमे चले जाते हैं—प्रलयकाल जब सब लोकोको निगल लेता है, तब भी तुम शेष रहते हो और अनन्त शैयापर सोते रहते हो। यह सर्व-

ग्रासी काल तुम्हारी चेष्टा मात्र है। इस कालरूप सर्पसे सन्त्रस्त मानव भागता रहता है और कही—किसी लोकमे आश्रय नही पाता, किन्तु जब तुहारे चरणोमे पहुँच जाता है, तब निर्भय हो जाता है। काल-सर्प उसे छोड़कर तब भाग जाता है।'

'तुम प्रलयमे भी निर्भय निश्चिन्त सोते हो। काल तुम्हारी चेष्टा है। तुम्हारे चरणोका आश्रय जीवको कालसे निर्भय कर देता है—यह जानती हूँ, किन्तु मेरा हृदय इस समय बहुत व्याकुल हो रहा है। तुम्हारे लिए मैं बहुत चिन्तित हूँ। कस सर्वथा पिशाच है—अत्यन्त घोर है और आता ही होगा वह। तुम तो अपने जनोका त्रास दूर करने वाले हो, मेरा यह त्रास दूर करो—तुम्हारे लिए मैं बहुत भयभीत हूँ।'

'एक बात और। बडी विडम्बना है कि तुम मेरे गर्भसे प्रकट हुए। समस्त लोक कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड तो तुम्हारे रोम-कूपोमे रहते हैं" नही इस चतुर्भुज रूपको छिपा लो। यह तो ध्यानका सौभाग्य, महापुरुषोकी धेयमूर्ति है। इसे अभी स्थूल देह-दर्शियोके सम्मुख मत करो।'

'माता!' अब वे परमपुरुष बोले। उनका वह मेघगम्भीर स्वर वह परावाणी—'पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तरमे आप पृश्नि थी और ये पिता, निष्पाप प्रजापति सुतपा थे। सृष्टिकर्ताने आदेश दे दिया था आप दोनोको प्रजाकी सृष्टि करनेका। वर्षों तक आप दोनोने इन्द्रियोको सयमित करके, वर्षा, आतप, हिमपात सहते हुए घोर तप किया था।'

वसुदेव तथा देवकीजीको लगा कि अब भी वे तप ही कर रहे हैं। उन्हे अपना यह देह, यह काल, यह कारागार भूल ही गया। वे मेरुके शिखर पर तप कर रहे हैं—अभी तप ही तो कर रहे है और आज उनका तप सार्थक हुआ है। ये उनके आराध्य प्रकट हुए उनके सामने।

'मैं तब भी ऐसे ही प्रकट हुआ था आपके सम्मुख।' वे परमपुरुष कह रहे थे—'मैने तब कहा था—वर ब्रूहि' और आप दोनोने एकसाथ कहा था—'तुम्हारे समान पुत्र हो हमे।'

इस समय वे बोलते न चले गये होते तो दोनो ही अपना वही वरदान माँगने ही जा रहे थे। उन्हे कहाँ दूसरा वरदान आज भी चाहिये।

'मैने कहा था—'दिया! दिया! दिया!' और वह तीन बार कही मेरी बात सत्य होनी चाहिये थी। उस समय मैं आपका पुत्र बना। अपने समान मैं दूसरा कहाँसे लाता। मुझे तब सभी पृश्निगर्भ कहते थे। दूसरी

बार माँ! आप जब अदिति हुईं और ये प्रजापति कश्यप हुए तो मैं आपका पुत्र बना। वामन देह होनेसे मुझे तब वामन कहते थे।'

'वत्स उपेन्द्र!' माताके अधरोपर वाक्य आया और उनका अञ्चल झरती दुग्धधारासे भीगने लगा।

'अब तीसरी बार मैं आपका पुत्र बनकर आया हूँ। मैं साधारण मर्त्य शिशु बनकर प्रकट होता तो आप दोनों पहिचान नहीं पाते कि आप मेरे जन्म-जन्म के माता-पिता है। आप तो नित्यमुक्त है। मुझे पुत्र मानकर और ब्रह्म मानकर भी आपका अन्तर मुझमे लगा रहेगा! मेरा चिन्तन करते हुए आप मेरे धाम पधारेंगे अब यहाँसे।'

पिता वसुदेवजी तो अब तक चुपचाप सुन रहे थे। ये जन्म-जन्मके अपने आये भी तो केवल मातासे ही बोलते जा रहे हैं? पिताकी ओर देखेंगे ही नहीं क्या? और उन सर्वेश्वरने देखा वसुदेवजी की ओर—'तात! माँने मुझे यह रूप छिपा लेनेकी आज्ञा दी है।'

'ठीक तो कहा है' वसुदेवजी बोले नहीं; किन्तु उनका हृदय बोल उठा 'यह रूप भी क्या सबको अभी दिखलाने योग्य है और कस।'

'आप कससे भयभीत है तो मुझे गोकुलमे नन्दरायजीके यहाँ अभी पहुँचा दे।' परमपुरुषने कहा और जैसे स्वप्नका दृश्य बदलता हैं, दृश्य परिवर्तित हो गया। वह अकल्पनीय ज्योतिराशि, वह सर्वाभरणभूषित पीताम्बर परिधान, सशङ्ख, चक्र, गदाधारी चतुर्भुज सहसा अदृश्य हो गया।

वसुदेवजी चौंके। माता देवकी चौंकी और दूसरे ही क्षण देवकीजीने अपने सम्मुख धरापर पड़े सद्योजात इन्दीवर सुन्दर शिशुको ललककर अङ्कमे उठा लिया। वह तो माता के अङ्कमे आनेको उत्सुक दोनो कर एवं चरण भी उठाये माताकी ओर ही देख रहा था। वसुदेवजीने विमुग्ध नेत्रो से देखा और प्रत्येक बारके अभ्यासके कारण अधरोसे निकला—'विष्वक्सेन!'

वासुदेव गोकुल गये

'आप मुझे गोकुल पहुँचा दे।' उन चतुर्भुज पुरुषोत्तमने आदेश दिया है।

वसुदेवजीके मनमे ही नही आया कि वे गोकुल कैसे पहुँचा देगे इस नन्हे नवजातको अपने। वे मानो यन्त्रचालितके समान उठे और तभी बेडी उनके पैरोंसे सरककर नीचे गिर गयी। जैसे किसीने उतार दी हो। अभी अपने हाथ सम्हाले भी नही थे कि हथकडी भी उतर गयी। वह ऐसे हाथोसे सरक गयी जैसे सदासे बहुत ढीली रही हो।

'देवि ! इसे मुझे दो। कस आवे इससे पहले मै इसे लेकर निकल जाऊँ।' दोनो हाथ फैला दिये वसुदेवजीने देवकीके सम्मुख।

वह नीलसुन्दर भला क्यो रोने लगा। वह तो वसुदेवजीकी ओर ही देख रहा था चुपचाप। जैसे वह जानेसे पूर्व पिताको पहिचान लेना चाहता था।

माताने हृदयसे लगाया शिशुको। उसके भालका चुम्बन किया और उठाकर वसुदेवजीके करोपर धर दिया—'इसकी सुरक्षाके लिए इसे छोड़ती हूँ——समस्त देवता इसकी रक्षा करे।'

वसुदेवजीने इधर-उधर देखा। केवल एक सूप मिला उन्हे। अपना ही पटुका बिछाकर लिटा दिया शिशुको उसमे और मस्तकपर रखकर उठ खड़े हुए।

वसुदेवजी या माता देवकीको भी यह स्मरण नही आया कि द्वार बन्द है। यह भुवन-मोहन समीप हो तो इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ क्या स्मरण रहता है। अपने शरीर तकको सुधि तो दम्पत्तिको रही नही थी, फिर यह सुधि कैसे रहती कि जो मेघ पहिले दूर मन्द-मन्द गर्जना करते सुनायी पड़ते थे, वे उमड़-घुमड़ रहे है मथुराके गगनमे। प्रबल झञ्झावात और तीव्र वर्षा हो रही है इस समय।

वसुदेवजीने पद बढ़ाये और द्वारकी अर्गला किसी अज्ञात करने हटा दी। शृङ्खला खुल गयी। खुल गया स्वत वह कक्षद्वार। अन्तत गोकुलमे मैया यशोदाके अङ्कमे जो योगमाया नवमी लगते ही अवतीर्ण हो चुकी थी, वह क्या सामान्य बच्ची थी कि वहाँ एक रूपसे सोती ही रहती। वह कोटि-

कोटि ब्राह्मण्ड विधायिका अनन्तरूपा कभी निष्क्रिय रहती है कि इस समय निष्क्रिय रहती। वह तो अदृश्य रहकर वसुदेवजीके मस्तकपर सूपमे सोये अपने स्वामीकी सेवामे सदा तत्पर ही रहती है। उसके अदृश्य कर काम कर रहे थे। कारागारका अत्यन्त दृढ, विशाल द्वार भी अनावृत मिला वसुदेवजीको।

अनेक रक्षक थे कसके कारागार-द्वारपर। इस आँधीवर्षामे वे भला वाहर कैसे रहते। वे द्वारके भीतर सिमट आये थे और ऐसे कुसमयमे रक्षाकी सावधानी अनावश्यक लगी उन्हे। न जाने कितनी राते जगते कटी थी। दिनमे कही ठीक निद्रा आती है। भले आज वे पूरे दिन प्राय: सोते रहे थे, किन्तु उससे तो आलस्य और वढ गया था। किसी प्रकार लगभग आधी रात तक पलके झपकाते जागे। अब तनिक नेत्र बन्द हो गये तो उनका दोष ? वे सबके-सब द्वारके दोनो ओर बैठे-बैठे लुढक गये थे।

मथुरामे कोई जाग नही रहा था। केवल द्वार-रक्षक ही नही सोये थे इस समय। सो तो गये थे इस वर्षामे नगरके श्वान तक इधर-उधर दुवककर। केवल कस जाग रहा था आज अपने कक्षमे, किन्तु उसकी वात फिर। उसके सब अनुगत सो गये थे और सात्विक जनोको भी मध्य-रात्रिके पश्चात् निद्रा तो आती ही है।

'देव! मेरे और आपके आराध्य भी आ रहे हैं! आप स्वागत करने नही चलेंगे ?' योगमायाको भगवान अनन्तको कही ढूँढने तो जाना नही था। वे तो उसी नन्द-सदनमे अपने पलनेमे पड़े थे समीप ही—'वर्षा-वायु-को इस समय वारित करना उचित नही होगा।'

'यह सेवा तुम मुझे करने दो।' अनन्त प्रभु जानते हैं कि योगमायाके लिए अदृश्य छत्र बने रहना कोई समस्या नही है।

वसुदेवजी कारागार-द्वारसे निकले। उन्हे तो एक ही विचार व्याकुल किये है—'कस आता होगा! उनका सर्वस्व किसी प्रकार गोकुल सुरक्षित पहुँच जाय।'

वसुदेवजी नही देख सके कि कारागार-रक्षक है भी या नहीं। आकाशमें मेघ उमड-घुमड रहे हैं, यह कौन देखता। उन्हे तो अपने चारो ओर होती मूसलाधार वृष्टि नही दीख रही है। सन्-सन् करती वायुका पता नहीं। पल-पल होती तडातड विजली की गर्जना सुनायी नही पडती। लगभग घुटनो तक जलमे वे छपाछप चले जा रहे हैं, यह भी पता नहीं उन्हें।

भगवान अनन्त अपने सहस्र फणोको उठाये वसुदेवजीके मस्तकपर फणोका छत्र लगाये उनके पीछे उसी गतिसे चल रहे हैं। वसुदेवजीके ऊपर एक सीकर पड जाय इस समय, यह भला कैसे सम्भव है। उन सर्वेश्वर शेषका स्मरण तो महामायाकी विपत्ति-वर्षासे प्राणीको त्राण दे देता है और इस समय तो वे अत्यन्त सावधान अपने स्वामीकी सेवामे, उनके श्रीमुखका दर्शन करते चल रहे है।

यमुना यमराजकी सगी बहिन हैं, यह उनका पावसमे बढा रूप देखकर सहज समझमे आता है। प्रबलधारा, भयानक शतश आवर्त, उच्छलित तरगे, बहते तृण-तरु-फेनराशि। दोनो तटोको ढहाती बहने वाली उनकी उग्र धारा और इस समयकी प्रबल वर्षाने उस धाराको अत्यधिक उग्र कर दिया है—वढा दिया है। लेकिन भगवान रमाकान्त जब गरुडपर बैठ समुद्रमे अपने सौध पधारते हैं, उदधि अपने जामाताको मार्ग देनेमे कभी प्रमाद करता है? वही नवजलधर सुन्दर—न सही गरुडारूढ, वसुदेवके सिरपर सही, न सही चतुर्भुज युवा, द्विभुज शिशु रूप सही— यमुना अपने स्वामीको ही नही पहिचानेगी? यह जो स्वामीपर छत्र बने शुभ्रकान्ति अनन्त चुपचाप चले आ रहे है—प्रलयमे इनकी फुङ्कारसे समस्त पयोधि जल पलक झपकते वाष्प बनकर उड जाता है। यमुनाको इस समय आतङ्क नही है, उल्लास है। उन्हे स्वागत करना है। मार्ग देना है।

ठीक हे कि चन्द्रोदय हो चुका है, किन्तु इस मेघाडम्बरमे कही शशिका पता लग सकता है? मथुरामे तो पथ-प्रदीप तक झञ्झावेगमे बुझ चुके हैं। सूचीभेद्य अन्धकार है चारो ओर। केवल क्षण-क्षणमे चमकती चपला प्रकाश फैलाती है। वसुदेवजीका पथ प्रकाशित है। वह विद्युतकी चमक है या भगवान शेषके सहस्र फणोकी मणियोका प्रकाश है, यह देखने जाननेकी स्थितिमे वसुदेवजी नही हैं।

वसुदेवजी सीधे वढ रहे हैं। कारागारके ठीक सामने उस पार गोकुल है। उन्हे शीघ्र गोकुल पहुँचना है। उन्होंने नही देखा कि पथ किधर है, कैसा है। पथके दोनो ओरके भवन कौन देखता—पदके नीचे बहता जल तो उन्होने देखा ही नही। उन्हे यह भी पता नही लगा कि कब वे पथके वहते जलसे यमुनाके प्रवाहमे उतरे और कब यमुनासे बाहर निकले। सर्वत्र ही तो जल था। यमुना कब आयी, कब पीछे छूटी—यह उन्हे नही

जान पडा, कालिन्दीने उन्हे पथ दे दिया घुटने-घुटने जल बनाकर अपना और वे गोकुल पहुँच गये।

योगमाया अद्भुत हैं। वे अविद्या हैं तो विद्या भी हैं। वे तामसजनोको निद्रासे मोहित करती हैं, राजसोके समीप श्रान्ति बनकर आती हैं तो सात्विकजनोंके लिए समाधि भी वही बनती हैं। मथुरामे सब घोर निद्रामे पड़े थे तो गोकुलमे भी कोई जाग नही रहा था। यहाँ भी सब सो गये थे। अद्भुत अलौकिक तन्द्रा—सत्वगुणके समुद्रेकमे सबकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ शान्त-अन्तर्लीन हो गयी थी। पशु तक सो गये थे पूरे गोकुलके इस समय।

वसुदेवजीके पद त्वरापूर्वक उठते गये। उन्हे कोई अज्ञात शक्ति ही ले जा रही थी। गोकुल कब आया, कब वे नन्द-भवनके खुले द्वारमे प्रविष्ट हुए यह उन्हे पता नही। वे चलते हुए सीधे मैया यशोदाके प्रसूति-कक्षमे पहुँचे और तब रुक गये।

वसुदेवजीने मस्तकसे सूप उतारा और शिशुको उठाकर प्रसुप्त यशोदाजीके अङ्कमें रखने बढे। सहसा दृष्टि पडी एक नवजात बालिकापर। वह नन्ही एकटक देख रही थी वसुदेवजीकी ओर। धीरेसे मुस्करा उठी वह और वसुदेवजीकी रही-सही सुधि भी खो गयी। उन्हे स्मरण ही नही कि कब उन्होने अपने शिशुको शय्यापर रखा और कब उनके करोने उस कन्याको उठाकर सूपमे सुला दिया। सूपको मस्तकपर रखकर वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट चले।

'अब आप ?' नेत्रोसे ही योगमायाने भगवान शेषसे पूछा था। उसका तात्पर्य था कि आप अब यही विराजें।

मनकी ही भाषामे उत्तर मिला—'चुपचाप पडी रह ! अब तू अनुजा हो गयी है। तुझे तेरे घर तक पहुँचा आऊँ और फिर पिताकी भी तो सेवा मिल रही है मुझे।'

'कंस आ न गया हो !' वसुदेवजीको अब दूसरी आशङ्का पूरे वेगसे चलनेको बाध्य कर रही थी। उनका ध्यान अब इस भयने किसी ओर नही जाने दिया। वे जैसे आये थे, वैसे ही चलते गये। यमुनाने फिर मार्ग दिया। छोटे भाई न सही, छोटी बहिन है इस बार और अनन्त तो साथ हैं ही।

वसुदेवजीने कारागारके द्वारमे प्रवेश किया और भगवान अनन्त

अदृश्य हो गये। वह विशाल द्वार वसुदेवजीके पीछे स्वत बन्द हो गया। बन्द हो गयी अर्गला, शृङ्खलादि। ऐसे ही कक्षमे प्रवेश करते ही कक्ष-द्वार भी बन्द हो गया। वसुदेवजीने सूप उतारा ओर बेडी पदोमे, हथकडी हाथोमे डाली तो वे जकड गयी। मानो वे कभी वहाँसे हटी ही न हो। माया आयी तो बन्धन भी आना ही था।

—×—

योगमाया

'आप इसे क्यो ले आये ?' माताने बालिकाको देखा तो ललककर उठा लिया। स्वर्ण-गौर वह नन्ही बालिका भी अद्‌भुत ही थी। वह अब तक तो चुपचाप सूपमें पडी थी, माताकी ओर देख रही थी और माताने उसे उठाया तो रोने लगी।

'वे अपने नही हैं ? वृद्धावस्थामे एक तो बालिका हुई उन्हे और अब इसे कस लेने आवेगा।' माताने अञ्चलमे छिपा लिया। दूध पिलानेका प्रयत्न किया, किन्तु वह तो रोती ही चली जा रही है। माता के प्राण काँप रहे हैं। 'रक्षक सुन लेगे इसका रुदन और कस ' ।'

'क्यो ले आया मैं इसे ?' वसुदेवजी भी चौंके। वे वहाँ गोकुलसे नन्दरायकी सन्तान लाने तो गये नही थे। पता भी नही था कि यशोदाजीको सन्तान होने वाली है। वहाँ जाकर यह क्या किया उन्होंने ? यह कैसे हो गया उनसे ?

'कसको कह दे ?' कहा किसीने नही, किन्तु दोनोके हृदयमे यह बात आयी। दोनोको एक ही उत्तर सूझा—'कस विश्वास करेगा इसपर ?'

कोई भी कैसे विश्वास करेगा कि हथकडी-बेडीसे जकडे वसुदेवजी कारागारके बन्द द्वारसे निकलकर इस बढी यमुनामे-से गोकुल गये और सकुशल लौट आये। यह चर्चा तो उठाना ही व्यर्थ था।

वसुदेवजीने दोनो हाथ मस्तकपर धर लिये। उनसे जो कुछ हो गया था, उसे अन्यथा करनेका कोई उपाय नही था और उन्हे ऐसी ग्लानि हो रही थी कि उस अन्धकारमे भी वे पत्नीकी ओर देखनेका साहस अपनेमे नही पाते थे।

'कैसे बचाऊँ इसे मैं ?' माता व्याकुल हो रही थी और वह थी कि रोये चली जा रही थी। वह जो त्रिभुवनको रुला सकती है—उसने कभी रोना कहाँ सीखा था। उसे आगे भी कहाँ कभी रोना था। रुदनका यही तो एक अवसर आया था—वह मानो सब कसर इसी समय निकल लेना चाहती थी।

यह योगमाया—उसका रुदन कहाँ व्यर्थ जानेवाला था। अनेक काम एकसाथ हो गये उस रुदनसे। वायुके पद शिथिल हो गये। झझावात रुक गया—मानो वायुदेव सहम गये। सहमकर भागे गगनसे मेघ आकाश स्वच्छ होने लगा। वर्षा रुक गयी। मथुराके भवनोमे—गोकुलमे भी उसी समय प्राय सबकी निद्रा टूट गयी।

'देवकीके शिशु हुआ।' कारागारके रक्षक जागे। शिशुकी रुदन-ध्वनि सुनायी पडी और हडबडीमे भागे उनमे-से कई एकसाथ राजभवनकी ओर।

इतना सब करके वह बालिका चुप हो गयी। वह माताकी छातीसे चिपटकर उनका स्तनपान करने लगी। ऐसी चुप हुई जैसे उसे रोना आता ही नही। यह अमृतपय उसे फिर तो मिलना नही है, अतः भरपेट इसे पी लेने मे जुट गयी वह।

कस अपने कक्षमे इधरसे उधर घूम रहा था। इधर कई दिनोसे उसे नीद नही आती थी। उसकी गणनाके अनुसार तो देवकीका प्रसवकाल आ चुका। दिनोमे और रात भर वह प्रतीक्षा किया करता था। कोई आता—कोई पदध्वनि सुनायी पडती तो वह चौंककर देखता—'कारागारसे कोई आया ?'

कई दिनोसे कस कारागार थोडी-थोड़ी देरपर चर भेज रहा था—'देवकीके सन्तान हुई ?'

कारागार-रक्षक सन्त्रस्त हो उठे थे। रात्रिमे भी चर आते रहते थे। यह तो आजका दिन था कि कस कोई चर नही भेज सका। बहुत क्रुद्ध था वह। प्रातःकालसे उसके मन्त्री, सेवक, सहायक आज उसके पास नही आये थे। आज तो वह गूगी परिचारिका भी कारागारसे नही आयी।

कस दिन भर उद्विग्न रहा—उसके भवनमे भी सब सोये ही रहे प्राय. आज। मध्याह्न एव रात्रि-भोजन वह उधर कई दिनोसे अपने कक्षमे

ही करता है। वह भोजन करने जावे और कारागारसे सन्देश आ जाय तो ? जो मायावी हरि इस बार देवकीमे प्रकट होनेवाला है, वह क्षणोमे वामनसे विराट् बनने वाला ही है—यह कस कैसे भूल सकता है।

आज आहार कौन कक्षमें रख गया—यह कसने नही देखा। आहार लानेवालीसे भी उसने पूछा था—'कारागारसे ......?'

उसने कुछ उत्तर भी दिया, यह कसके कान नही सुन सके। उसकी दृष्टि तो मनके साथ बाहरी द्वारकी ओर लगी थी। अब उसे यह भी स्मरण नही कि उसने भोजन कैसे कर लिया था।

आधी रात होते-होते कस इतना उद्विग्न हो गया कि स्वयं कारागार चल देनेको कई बार द्वार तक पहुँचा, किन्तु भयानक वर्षा हो रही थी। ऐसी वर्षामे निकलते उसके भी प्राण काँपे—'इस अन्धकारमे अचानक वह मायावी शत्रु कही मार्गमे टूट पडे अपने ऊपर ?

वर्षा रुकी। गगन स्वच्छ हुआ और कस अपने कक्षसे निकलने ही वाला था कि दौडते हुए कारागारके रक्षक आ गये—'महाराज ! देवकीके सन्तान हुई।'

'देवकीके सन्तान हुई।' कसने भी दुहराया। वैसे ही खुले केश, नगे पैर दौड पडा वह नगी तलवार लिये। मस्तकपर मुकुट रखने, मार्ग-प्रकाशक सेवक साथ लेनेकी उसे सुधि कहाँ।

कस अनेक बार फिसला—गिरते-गिरते बचा मार्गमे। वर्षा हुई थी और खूब हुई थी। पानीका बरसना रुका था, किन्तु मार्ग पिच्छल था और कस दौड रहा था। इतने वेगसे वह दौड रहा था कि कारागारसे सन्देश लेकर आये रक्षक उसका साथ नही दे सकते थे। वे पीछे छूट गये।

कारागार-रक्षकोने दूरसे द्वारपर जलते प्रकाशमे कसको देखा और द्वार खोल दिया। वैसे भी अब प्रातःकालका धुँधला प्रकाश फैलने लगा था। मार्ग अब दीखने लगा था। गगन स्वच्छ होनेसे यह प्रकाश शीघ्रतासे बढ रहा था।

कस सीधे वसुदेवजीके कक्षमे पहुँचा। वसुदेवजी वैसे ही दोनो हाथोपर मस्तक रखे मुख नीचे किये बैठे रहे। वे मूर्तिके समान निस्पन्द बैठे रहे। न उन्होने कसकी ओर दृष्टि उठायी, न कसने उनकी ओर देखा।

'भैया ! में तुम्हारी छोटी बहिन हूँ और इस बार यह कन्या आयी है मेरे अङ्कमे !' माता देवकी अत्यन्त दीन स्वरमे कसके द्वारमें आते ही पुकार उठी—'मुझे यह एक पुत्री दे दो । यह तो मेरी अन्तिम सन्तान है भैया !'

'पुत्री ?' कस ठिठक गया दो क्षणको ।

'हाँ भैया, यह पुत्री है और मै तुम्हारे पुत्रसे इसका विवाह कर दूँगी । यह तुम्हारी पुत्रवधू बनेगी ।' माता अत्यन्त कातर स्वरमे प्रार्थना कर रही थी—'तुमने मेरे अग्निके समान अनेक पुत्र मार दिये भाई ! तुम तो देव-प्रेरित थे, दोष तुम्हारा नही है, किन्तु अब स्त्री-हत्या मत करो । यह पुत्री मुझे दे दो ।'

'हूँ ! यह पुत्री है !' कसने हुकार की । उसका तात्पर्य था कि—'मैं जानता हूँ कि मुझे छलनेके लिए मोहिनी बननेवाला यह मायावी यहाँ कन्या बनकर आया है ।'

माताने सरल भावसे कन्याको हृदयसे हटाकर कसके आगे कर दिया—'देख लो, यह कन्या है ! इसे छोड़ दो !'

लेकिन कंसने इतनेमें तो उस बालिकाका पैर पकड़ा और माताके हाथोसे झपट लिया उसे । माताने चीत्कार किया और मूर्छित हो गयी ।

कस वैसे ही बालिकाको लिये हुए कक्षसे बाहर कारागार-प्रागणके कोनेमें पडी शिलाके समीप आया, किन्तु वह शिला अब कहाँ शिशु-रक्तसे स्नान को आज प्रस्तुत है। वह तो आज रात्रिकी महावृष्टिमें धुलकर स्वच्छ हो चुकी है ।

बालिकाका पैर पकडे कंसने उसे मस्तकके ऊपर उठाकर घुमाया। वह उसे अन्य शिशुओकी भाँति शिलापर पटक देना चाहता था; किन्तु कंसके हाथसे बालिकाका चरण छूट गया। भला योगमाया कही ऐसे किसीको अपने चरण पकडे रहने देती है ।

कसने चौंककर ऊपर देखा और उसके हाथसे शस्त्र छूट गिरा। वह देखता रह गया। वहाँ गगन तो प्रखर प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया। वहाँ वह कन्या कहाँ थी ? कैसी कन्या और कैसी बालिका ? वहाँ तो प्रचण्ड तेजोमयी तप्तस्वर्णवर्णा, अष्टभुजा महादेवी गगनमें अपने दिव्य शतपत्र स्थपर नीलाम्बर धारण किये विराजमान थी और उसके आठों हाथोंमें शूल, खड्ग, घण्टा, कपाल, खट्वाङ्ग, कमल, पास और तर्जन मुद्रा थी। उस मयूर पिच्छकी ध्वजावाले दिव्यरथमे चार सिंह जुते थे ।

पीताम्बरोत्तरीय, मयूरपिच्छाङ्गदा, हीरक-हार-धारिणी उस अष्टभुजा महाशक्तिके चारों ओर भयानक भूतगण पार्षदके रूपमें हाथ जोडे उपस्थित हो गये थे।

'दुष्ट !' डाँटा उस महाशक्तिने कसको—'मूर्ख ! मेरी हत्याके प्रयत्नसे तुझे क्या मिला ?'

कंस काँप रहा था थर-थर। स्वेदसे भीग गया था। वह भले सुर-विजयी हो, इस महाशक्तिके तेजने ही उसे हतप्रभ कर दिया था। अब यदि यह कंसपर कूद पडे—अपना पाश या शूल ही फेंके वहाँसे—कस ऐसा हो रहा था जैसे वध्य पशु खडा हो।

'तेरा वध करनेवाला तेरा शत्रु धरापर कही प्रकट हो चुका।' दवीके इस वाक्यने कसको उस समय तो मानो अभय ही कर दिया। कस आश्वस्त हुआ कि ये उसे नही मारेंगी। वे महादुर्गा कह रही थी—'तू व्यर्थ अब कृपणा देवकीको कष्ट मत दे ! दीन-असहायोकी हत्या मत कर !'

अचानक कंसने देखा कि वज्रधर देवराज इन्द्र दवताओसे घिरे गगनमे प्रकट हुए और उन्होने देवीकी स्तुति प्रारम्भ की। कस केवल देखता रहा। उसके मुखसे शब्द नही निकल सकता था। वह अब भी काँप रहा था—'देवकी-वसुदेवको इन्होने माता-पिता बना लिया है। अब ये क्रुद्ध हों मुझपर …।'

इन्द्रकी स्तुतिसे महाशक्ति सन्तुष्ट हुईं। देवराजने प्रार्थना की—'आप अमरावतीको एक वार पवित्र करे। वहाँ हम सव आपका अभिषेक कर लें, फिर धरापर आपकी स्थापना मैं कर दूँगा। आप मेरी बहिन है उपेन्द्रके नाते।'

सस्मिता, सुप्रसन्ना दुर्गा सुरोके साथ अदृश्य हो गयी। देवर्षिने बतलाया—उनका सुरोने स्वर्गमें महाभिषेक किया। देवगुरु वृहस्पतिने सविधि पूजा सम्पन्न करायी उनकी। देवराज इन्द्रने ही विन्ध्य पर्वतपर उनकी स्थापना की। वैसे वे धरापर अनेक पीठोमे अनेक रूपो एवं नामोसे प्रकट हुईं।

वे इच्छानुसार रूपधारिणी, भक्तभयहारिणी, त्रैलोक्यचारिणी, वरदायिनी, असुर-सहारिणी हैं। वे कही कुमारी हैं, कही वैष्णवी, कही शारदा और कही अम्बिका, किन्तु हैं वे अनुजा जनार्दनकी। मास-रहित बलि एव पूजन प्रिय है उन्हे। भाद्रकृष्ण नवमी उनका जयन्ती-महोत्सव, महापूजन पव है।

—००—

कारागारसे त्राण

देवी अदृश्य हुई और कंस सावधान हुआ। उसे बहुत आश्चर्य हुआ—'वे यादव ही ठीक कह रहे थे। देवता मेरे शत्रु हैं। उन्होने आकाशवाणी करके मुझे भ्रममे डाल दिया और मुझे अपने ही कुलका शत्रु बना दिया।'

वह मुडा और वसुदेवजीके कक्षमे आकर उनके तथा देवकीके हाथोकी हथकडियाँ, पैरोकी बेडियाँ खोल दी उसने। बडी नम्रतासे बोला—'बहिन और जीजाजी ! मैं बहुत पापी हूँ। नरभक्षीके समान आपके बहुत-से पुत्र मार दिये। मुझमें दया नही रही—निष्ठुर हो गया मैं और मुझ दुष्टको मेरे जातिके भाइयोने, सुहृदोने त्याग दिया। यह लोक तो मेरा गया ही, पता नही मरकर किन नरकोमें जाऊँगा। ब्रह्मघातीके समान मैं तो जीवित ही मृतके समान हूँ। आप दोनो मुझे क्षमा करे।'

कंसने अपनेको निर्दोष बतलाया—'मनुष्य ही झूठ नही बोलते, देवता भी झूठ बोलते हैं। देवताओकी बातपर ही विश्वास करके तो मैंने अपनी बहिनके पुत्र मारे। लेकिन मैंने क्या मारे उन्हे—मै तो निमित्तमात्र बना, जीव तो अपने ही कर्मका फल भोगते हैं। सभी प्रारब्धके वशमे हैं। अतः आप महाभाग उनके लिए शोक न करे। दैवका विधान ही ऐसा था।'

'महात्मा है आप तो' कंसने अधिकतम विनीत बनकर कहा—'जानते ही है कि जब तक मैंने मारा या मैं मारा गया, यह कोई मानता है तब तक अपनी इस दृष्टिके कारण ही वह अज्ञानी वधिक या वध्य बनता है, अन्यथा तो आत्मा न मारता, न मारा जाता।'

'आप साधुपुरुष हैं। साधु दुःखियोपर दया करते हैं। आप दोनो मुझ दुरात्माको क्षमा करे।' कंस रो पडा और उसने वसुदेवजी तथा देवकीके भी चरण पकड लिये।

सहज सरला देवकीजीने भाईको रोते देखा तो उनका हृदय द्रवित हो गया। वसुदेवजीने भी प्रसन्न मुखसे कहा—'महाभाग ! आप ठीक कहते हैं। मनुष्यमें अपने और परायेपनका भेद अज्ञानसे ही होता है। इस अज्ञानसे ही हर्ष, शोक, भय, द्वेष, लोभ, मोह या भेदके वशीभूत होकर पार्थक्यदर्शी प्राणी परस्पर एक-दूसरेको मारते हैं।'

'भैया ! आप दु खी न हों ।' देवकीजीने कहा—'जो दैवको कराना था , हो गया । अब आप शोकत्याग करे ।'

कसकी एक चिन्ता मिटी । वह सचमुच दु खी हुआ था, अभिनय नही किया था उसने , किन्तु उसके अन्तर्मनमें गगनमें दीखी देवीका भय भी जमा बैठा था । वसुदेव-देवकीकी कृपा मिल गयी तो देवीका भय गया ।

कंसने वहीसे रक्षकोको रथ लानेकी आज्ञा दी और हाथ जोडकर बोला—'आप अपने सदन पधारे ! जो भी असुविधा हो, मुझे सूचित करनेकी कृपा करे ।'

'आप राजसदन पधारें ।' वसुदेवजीने कससे कहा । देवकीजीने भी आग्रह किया । कस स्वय भी राजसदन शीघ्र जाना चाहता था । वसुदेव-देवकी अपने सदन पहुँचें , उससे पूर्व वहाँ उनके लिए आवश्यक सामग्री जानी चाहिये । उस गृहकी सामग्री—वहाँ की सम्पत्ति तो पहिले ही उठवा चुका था कंस । गृहपर उसके सेवक रहते हैं , उन्हे तत्काल वह सदन छोडने की आज्ञा भी देनी थी ।

'सचमुच मुझे शीघ्रता है' कसने अनुमति स्वीकार की—'आपके लिए दूसरा रथ अभी आ रहा है ।'

वसुदेव-देवकी उसी दिन दिनमे ही अपने भवन पहुँच गये । कंसने उनका गोधन तो नही लौटाया , किन्तु उनके भवनकी प्राय सब सामग्री , सब कोष उसने लौटा दिया । वह स्वय उनके भवन आया और अपना सौहार्द्र प्रदर्शित करनेका पूरा प्रयत्न किया उसने ।

वसुदेवजीके भाइयोंके गृह भी कंसके आदेशसे उसके सेवकोने उसी दिन छोड दिये । कसने आदेश दे दिया–'जो लोग लौटें , उनकी सामग्री , कोष जो सुरक्षाके लिए राजसदनमे रख लिया गया है, उन्हे अविलम्ब लौटा दिया जाय ।'

कसके इस परिवर्तित व्यवहारका प्रभाव पडा । रोहिणीजीको छोड-कर वसुदेवजीकी अन्य पत्नियाँ जो मथुरासे जहाँ-तहाँ चली गयी थी, वनों गिरिगुफाओ और आश्रमोमे छिपकर रहने लगी थी, मथुरा आने लगी । प्राय सब आ गयी थोडे ही दिनोमे । वसुदेवजीके लगभग सभी भाई भी सपरि-वार लौट आये और इन सबके सेवक-सेविकायें भी अपने स्वामियोंके गृहोमें लौट आये ।

यदुकुलके वे लोग नही लौटे जिन्होने कसके साथ सघर्षमे सक्रिय

भाग लिया था। कसका स्वभाव उन्हें पता था। वह शत्रुता-द्वेषको बाँध रखनेवाला—न भूलनेवाला व्यक्ति था। उसपर विश्वास नही किया जा सकता था।

ब्राह्मणो, धार्मिकजनो, सत्पुरुषोमे-से भी कम ही मथुरा लौटे। कस भले वसुदेवजीके प्रति नम्र हो गया हो, उसकी प्रकृति तो नही गयी कही। उसके असुर अनुचर भी मथुरामे ही थे और वही कसके प्रमुख पार्षद थे। अत मथुरा सत्पुरुषोके लिए निरापद नही हुई थी।

यदुकुलके वृद्धोमे थोडे ही मथुरा छोड़कर गये थे। वे किसी स्वजन-सम्बन्धीसे मिलनेके बहाने ही गये। उन्हे मथुरा लौटनेमे कोई कठिनाई नही हुई। मथुरामें कंसके अनुचरोंने उनका स्वागत नही किया तो उनको उत्पीडित भी उन्होने नही किया।

———

कुटिल मन्त्रणा

कस वसुदेव-देवकीको सन्तुष्ट करके, उनकी व्यवस्था करके निश्चिन्त हुआ। इस निश्चिन्तताका अर्थ कसके लिए था – उस अष्टभुजा देवीसे निश्चिन्त होना। जबसे कसने उस भयानक भूतोसे-घिरी तेजोमयीको देखा था, वही उसके मस्तिष्कपर छायी थी। उसकी ओरसे आशङ्का मिटाकर कस अपने मन्त्रणा-गृहमें आ बैठा और उसने अपने सभी पीठ,, पैठिक आदि मन्त्रियो तथा सहायकोको बुलानेके लिए सेवक भेज दिये।

असुर स्वभावसे प्रात देर तक सोते रहने वाले होते हैं, किन्तु आज उन्हे जगाये जाने पर कठिनाई नही हुई। वे प्राय पिछले दिन और पूरी रात सोते रहे थे। इतने पर भी उन्हे कसका सन्देश जानेपर जगाना पड़ा। वे कहाँ प्रात. स्नानके व्रती थे कि विलम्ब लगता उन्हें। जागते ही झटपट वस्त्र पहिने, शस्त्र उठाया, चल पडे।

मन्त्रणा-कक्षमें कंस अपने सिंहासनपर गम्भीर बैठा था। मन्त्री आकर अपने महाराजको अभिवादन करके अपने निश्चित आसनोपर बैठने गये। सब समझ गये कि बात कुछ गम्भीर है, क्योकि कस किसीसे बोला नही। जब सब मन्त्री आ गये तब कसके सकेतपर मन्त्रणा-कक्षका द्वार बन्द कर दिया गया।

'रात्रिमें जो कुछ हुआ है, उसे आप सबको सुना देनेके लिए मैंने बुलवाया है।' कंसने रात्रिकी पूरी घटना सुना दी। 'मैंने देवकी-वसुदेवको उनके भवन भेज दिया है। उन्हे अथवा यादव प्रमुखोको जो बाहर चले गये है—लौटे तो अब कोई उत्पीडित न करे।'

'आपने उचित किया।' कंसके मन्त्री अपने महाराजकी स्तुति करना भली प्रकार जानते थे। उनको पता था कि महाराज विरोध सुनना कभी नही चाहते।

'उस कन्याकी वात कुछ वहुत महत्वपूर्ण नही है।' महामन्त्री पीठ वोले—'उसने यही तो कहा है कि आपका शत्रु कही प्रकट हो चुका। वह आज, कल या अधिकसे अधिक परसो प्रकट हुआ होगा। हम नगरो, ग्रामो, व्रजोमे ढूँढ-ढूँढकर दस दिन और उससे छोटे सद्योजात शिशुओ तकको मार देगे।'

'यह काम तो मैं अकेली कर डालूँगी।' पूतना बोल उठी—'भाई, आप चिन्ता मत करो। यह तुम्हारी बहिन इस कामके लिए पर्याप्त है।'

'देवता शान्ति-कालमे ही शूर वने रहते हैं और बहुत बडबडाते है। युद्ध सम्मुख आनेपर तो बस भागते ही दीखते है वे।' प्रलम्ब ठठाकर हँसा—'आपको अपनी अमरावती विजय तो स्मरण ही होगी। वहुत-से भाग गये थे। कुछने अस्त्र शस्त्र फेंक दिये, शिखा और कच्छ खोलकर भयभीत प्राण-भिक्षा माँगने लगे थे और आपने उनको दया करके छोड दिया था।'

'देवता वही हैं, कुछ दूसरे नही होगये।' पैठिक हँसा—'अब वे क्या उद्यम कर लेगे। उनका मन तो आपके धनुषकी ज्याघोपसे अब तक उद्विग्न रहता है। आप कुछ शस्त्रास्त्र चलाना भूल गये हैं कि देवता साहस करेंगे।'

'इन्द्र अल्पप्राण है। हरि कही एकान्त समुद्रमे छिपा रहता है।' केशी हिनहिनाया—'शिव वन-पर्वतोमे घूमता फिरता है और ब्रह्माको तपस्यासे ही अवकाश नही।'

'यह सव ठीक है, किन्तु देवता हम दैत्य-दानवोंके नित्य शत्रु हैं। इनकी उपेक्षा नही करना चाहिये।' महामन्त्रीने कहा—'मेरा मत है कि आप आदेश दे दे और हम आपके अनुयायी देवताओका समूलोन्मूलन कर डाले। शरीरमे व्याधि हो जाय और मनुष्य उसकी उपेक्षा कर दे तो पीछे

वह दृढ-मूल होकर असाध्य हो जाती है। इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर दी जाय तो वे दुर्जय हो जाती है। ऐसे ही उपेक्षित शत्रु वलवान होकर दुर्जय बन जाता है।'

कसने महामन्त्रीकी ओर देखा। उसकी दृष्टिका तात्पर्य था कि महामन्त्रीकी योजना क्या है, क्योंकि इन्द्रियोंके अधिदेवता तो इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु आदि ही हैं। अव तक सभी असुरोंने इन्द्रियोकी अपेक्षा ही की है। अव क्या महामन्त्री सव असुरोको इन्द्रिय-दमनका उपदेश करना चाहते है ?

'देवताओका मूल है विष्णु'—महामन्त्रीने फिर प्रारम्भ किया—'वही सनातन धर्मका रक्षक है और ब्राह्मण, वेद, गायें तथा दक्षिणायुक्त यज्ञ विष्णुको पुष्ट करते हैं। अत. हम सव तपस्या करने तथा यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोको तथा यज्ञके लिए घी, दूध आदि देनेवाली गायोको मार देंगे।'

कंसने देखा कि उनके मन्त्री कुछ अधिक वुद्धिमान नही हैं। प्रारम्भसे ही ये देवताओकी ही चर्चा करते रहे हैं और मूल वात गौण हो गयी है। मूल वात तो उस शत्रुको ढूढना और मार देना है जो कहीं प्रकट हो चुका है।

'आप अपनी वात स्मरण रखे और आजसे ही लग जायँ।' कसने पूतनाको सम्मान देते हुए कहा—'सवसे महत्वका कार्य आपका है और सभीके अन्त पुरमे आप जा सकती हैं।

'हम गोष्ठोका ध्वंस करके एक ओरसे सब नरेशो तथा व्रजपतियोंको शत्रु वना लेंगे।' कंसने चेतावनी दी—'अवश्य ही तपस्वियो, यज्ञशील विप्रोको आतङ्कित करके विरत किया जाना चाहिये—' कंसने आदेश इतना ही दिया, किन्तु उसके अनुचर तो स्वभावसे हिंसाप्रिय, साधुद्वेषी थे। उन्हें मनमाना अत्याचार करनेकी छुट्टी मिल गयी।

—oo—

पूतना गयी

बडे गर्वसे पूतना कहा करती थी—वह दैत्यराज बलिकी पुत्री थी और दूसरे जन्ममे भी अपने भाई बाणासुरके यहाँ ही रही। क्या हुआ जो इस जन्ममे कोटराके उदरसे उत्पन्न नही हुई, बाणकी धाय माता कोटरा उसे स्वगर्भजात कन्या ही मानती थी।

पूतना—अविद्या रहेगी अहङ्कारके ही आश्रित, भले वह शोणितपुरमे सहस्रबाहु बाण हो अथवा मथुरामे कस हो। इस शिशु-मारक ग्रहका आहार ही अबोध शिशु—अज्ञानी जन है और यह तो रक्तपायिनी है। जिसे अङ्कमे ले पाती है—पय पिलानेका प्रलोभन देकर रक्त चूस लेती है उसका।

पूतनाको पूर्व स्मृति ज्योकी-त्यो थी। बलिके यज्ञमे भगवान वामन पधारे। छोटे-छोटे कर-चरण, छोटा-सा आकार—इस पुत्रहीनामे वात्सल्य उमड पडा—'यह बालक तो गोदमे लेकर स्तनपान कराने योग्य है।' स्तनोमें—सदाके सूखे इसके स्तनोमे उस दिन दूध उतर आया था।

भगवान वामनने तीन पद पृथ्वी-दानका सकल्प लिया और विराट् बन गये। बलिका सम्पूर्ण राज्य, स्वर्ग तक सब नाप लिया और बलिको बाँध दिया। तब बलिकी कन्याके अधर फडक उठे थे। पूतना अब भी क्रोधसे ओष्ठ काटकर कहती है—'वह दूध पिलाने योग्य था? वह मिल जाय तो मैं उसे घोर हलाहल पिला दू ँ।'

उस नित्यसे लगकर तो कोई किसीका सङ्कल्प असत्य-अपूर्ण रहता नही। उसे पूतनाका पय-पान करना ही था, भले पूतना घोर विष ही पिलाने पहुँचे उस तक।

बडा भयानक मुख था पूतनाका। भारी गोल मुखपर बडी-बडी गोल-गोल पीली, बाहरको निकली-सी पडती आखे बहुत डरावनी थी। वह आकृतिसे उलूकी थी। अत्यन्त वेधक, प्राणहारी दृष्टि थी उसकी और निशाचरी तो वह थी ही। रात्रिमे उस गगनचरीको कुछ भी देखने, कही भी जानेमे कोई कठिनाई नही होती थी।

कोटराके दो पुत्र भी थे इस पूतनाके अतिरिक्त—बक और अघ। बक रहता था भारी बगुलेके रूपमे और अघको अजगर बनकर पडे रहना

प्रिय था। वैसे ये तीनो कामरूप थे। जब जैसा चाहते, रूप बना लेते थे। पूतना अपने दोनो छोटे भाइयोके साथ कसके यहाँ आयी तो कसने बहुत सम्मानपूर्वक रखा था इनको।

पूतना अपनी आकृतिसे उलूकी थी; किन्तु वेश और स्वभावसे बकी थी। वह बहुत उज्वल वस्त्र पहनती थी। पुत्रवती स्त्रियोसे हिलमिल जाना, शिशुओके प्रति वात्सल्य प्रदर्शित करना, माताओको प्रेमसे झिड़कदेना कि उन्हे बालकको रखना-पालना भी नही आता, यह सब पूतनाको बहुत आता था। वात्सल्यमयी माताका अभिनय करनेमे वह दक्ष थी; किन्तु इस सबका उसका अभिप्राय सदा बहुत निर्दय रहता था। वह शिशु-घातिनी थी--अबोध शिशु-घातिनी थी। अबोध शिशुओका रक्त ही उसका आहार था।[1]

वैसे भी पूतना घूमती ही रहती थी रात्रिमे नगरो-ग्रामो मे। उसे बालक—नवजात बालक चाहिये थे रक्त-पानके लिए, किन्तु मथुरामे यादवोके घरोमे अभी छोटे शिशु थे नही। कस भाई था। उसके राज्यमें उत्पात करना पूतनाको अभीष्ट नही था। वह दूरस्थ नगरो-ग्रामोमे निकल जाती थी। ऐसे असहाय, निरीह लोगोके शिशुओकी हत्या करती जो कही पुकार भी नही सकते थे। फिर पूतना रात्रिमे एकाकी सोये बालकका रक्त चूस लेती। बालकका रक्तहीन शव रह जाता। उसके माता-पिता, स्वजन यह भी नही जान पाते कि अचानक शिशुको क्या हो गया।

अब पूतनाको कसने कर्तव्य दे दिया—ऐसा कर्तव्य जो उसको प्रिय था, उसका स्वभाव था। अब केवल पेट भरने तक बात नही रही। अब तो शिशुओको मारना था उसे और मथुराके आसपासके शिशुओको तो मार ही देना था।

नगरोमे, ग्रामोमे, घूमते-फिरते लोगोके डेरोमें—पूतनाका प्रवेश भला कहाँ नही। वह निशाचरी शिशुओकी हत्या करती सर्वत्र घूमने लगी। वह अब पूरी रात्रि उलूकी बनकर और दिनमें बकी बनकर घूमती। जहाँ जैसा अवसर देखती, वैसा वेश बना लेती। दस दिन तकके सूतिका-गृहमे अथवा उससे बाहर आये शिशु उसके आखेट बनने लगे।

---

1 'पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।'

—श्रीमद्भागवत १०. ६. ३५

मथुरामे शिशु नही थे उस समय और मथुराके सर्वथा समीप गोकुलमे कई दिनो पूतना गयी नही। योगमायाकी प्रेरणा तो थी ही—वह उलूकी या बकी बनकर उडती तो गगनमे पहुँचनेपर ठीक नीचे दृष्टि नही जाती उसकी। वह सीधे जहाँ दृष्टि पडती उन दूरस्थ स्थानोकी ओर उड जाती।

वह भाद्र कृष्ण चतुर्दशी थी। पूतना घूमती हुई मथुरामे यमुना-तटकी ओर निकल आयी थी। उसका विशाल शरीर, मल्लो जैसी सुपुष्ट-काय थी वह और कज्जल कृष्ण वर्ण था उसका, यदि वह अपने सहज रूपमे रहे। उस समय उसे देखकर अच्छे-अच्छे शूर भी सहम उठते थे।

सहसा पूतनाकी दृष्टि गयी यमुनापार बसे गोकुलके गोप-गृहोपर। उसे वाद्य-ध्वनिने आकृष्ट किया—'यह तो किसीके यहाँ पुत्रोत्सव जैसा कुछ मनाया जा रहा है।'

पूतनाको स्वय आश्चर्य हुआ कि वह अब तक इतने समीपके गोपोके पुरमे क्यो नही गयी। उसने उडनेका निश्चय किया बकी बनकर, किन्तु ठिठक गयी, उसे पता था कि गोपोके कुलाचार्य महर्षि शाण्डिल्य है।

'वह बुड्ढा जटिल भयानक है।' पूतना जानती है कि उन तपोधनकी दृष्टिको धोखा नही दिया जा सकता। वे रोषमे आकर शाप दे दें तो पूतना तो क्या, समस्त असुर कुल दो क्षणमे भस्म हो जायगा। गगनमे मायासे पक्षी होकर जानेमे उन तेजस्वीकी दृष्टि पडने का भय था और उनकी सहज दृष्टि भी पड गयी तो माया टिकेगी नही। अपने यजमानोके अनिष्टका कुटिल अभिप्राय लेकर आनेवालीके साथ वे क्या व्यवहार करेगे? पूतना एक बार काँप गयी।

'उनसे बचकर भी तो वहाँ जाया जा सकता है।' पूतनाने मार्ग सोच लिया। वह नारी बनकर ही वहाँ जायगी। बहुत सुन्दर नारी बनकर जायगी। गोपनारियाँ चकित रह जाये, ऐसी नारी बनकर और उस बूढे ऋषिके आश्रमको दूर छोड़कर गोकुलमे प्रवेश करेगी।

पूतना गोकुल गयी—वह गयी सो गयी। वहाँ जाकर भला कोई असुर लौटता है कि वही लौटती मथुरा।

'पूतना बालकोको मारती घूम रही है।' वसुदेवजी तक यह समाचार पहिले ही पहुँच चुका था। वे बहुत चिन्तित थे, किन्तु चिन्ता स्वयं तो कोई उपाय नही है; और कुछ किया भी जा सके—इस स्थितिमे वे नही थे।

'पूतना आज बहुत मनोरम नारीरूप बनाकर गोकुलकी ओर जाती देखी गयी है।' वसुदेवजीके उस सेवकने उन्हे समाचार दिया, जिसे उन्होने चुपचाप पूतनापर दृष्टि रखने का आदेश दे रखा था।

'गोकुलकी ओर गयी है?' वसुदेवजी व्याकुल हो गये। वे अपने आराध्यके श्रीविग्रहके सामने पहुँचे—'नारायण! भक्तवत्सल! करुणा-वरुणालय! रक्षा करो स्वामी।'

वसुदेवजीको नन्दभवनमे अपना लाल जैसे प्रत्यक्ष दीखता हो और पूतना गयी है वहाँ। क्या करे? कैसे करे? वे आराध्यको ही तो पुकार सकते हैं।

यह तो कही कई दिन पीछे पता लगा कि पूतना गयी। वह सचमुच मथुरासे ही नही, इस लोकसे सदाके लिए ही चली गयी। वह कहाँ फिर धरापर लौटने वाली है।



व्रजपति-मिलन

'व्रजराज आये हैं।' एक सेवकने वसुदेवजीको समाचार दिया उपासनागृहके द्वार तक आकर।

'कहाँ?' वसुदेवजी बहुत शीघ्रतामे उठे। उन्हे लगा कि वे यही उनके भवन ही पधारे हैं।

'वे गोपोंके साथ मथुरा आये हैं।' सेवकने कहा—'उनके साथ बहुतसे छकडे हैं। मार्गमे मैं मिला तो समीप बुलाकर सन्देश देनेके लिए कहा उन्होने। महाराजको वार्षिक कर देकर वे लौट रहे थे। नगरके बाहर आम्रोपवनमे उनके छकडे रुकेंगे।'

'देवि! व्रजपति आये हैं।' वसुदेवजीने अपने अन्तःपुरमे जाकर देवकीजीको समाचार दिया—'नीतिज्ञ हैं वे। उनका यहाँ आना उचित नही है, कंसको कोई सन्देह नही होना चाहिये, यह वे समझते हैं। मैं मिल आता हूँ उनसे।'

'आप मिल आइये !' देवकीजीने कहा—'वे बडे हैं, उन्हें मेरा प्रणाम कह दे और जीजीका समाचार तो वे स्वयं देंगे आपको। बहुत दिन हो गये उनका सम्वाद पाये।'

श्रीनन्दरायजी आयुमे वसुदेवजीसे पर्याप्त बडे थे। यो गोपकन्याजात होनेके कारण वे अपनेको वसुदेवजीमे छोटा मानते थे, किन्तु वसुदेवजी अग्रजके समान ही उसका सम्मान करते थे।

'वसुदेवजी अपने है, किन्तु कसकी क्रूर दृष्टि है इन दिनो उनपर। कस स्वभावसे शङ्कालु है। उसे कोई सन्देह हो यह उचित नही।' गोपोसे नन्दरायजीने कहा था—'हमारे इतने छकडे हैं। इनके बैलोको चरनेकी भी सुविधा चाहिये। नगरमें इनके लिए सुविधा कहाँ।'

'हम गोप हैं। हमें आहार मिले या न मिले, हमारी गायो-बैलोको चारा-घास या चरनेकी सुविधा पहिले चाहिये।' सन्नन्दजीने समर्थन किया—'यमुना-किनारे आमोंके उपवनमे छकडे रुके और बैल चरनेको छोड दिये जाये। वहाँ इनके जल पीनेका भी सुपास है।'

लगभग मध्याह्न हो चुका था। गोपोने स्नान किया मध्याह्नकालीन, और छकडोमे अपने लिए दोपहरका भोजन तो वे साथ ही ले आये थे। सब भोजन करके उठे ही थे कि वसुदेवजीका रथ आ गया।

व्रजपति दोनो भुजाये फैलाकर भाईसे मिलने आगे बढे। देर तक दोनो लिपटे रहे एक-दूसरेसे। साथ आये नन्दजीके भाइयोसे भी मिले वसुदेवजी। गोपोने उन्हे अभिवादन किया। वही हरित दूर्वासे श्यामल भूमि-पर गोपोंने छकडोसे उतारकर वस्त्र बिछा रखे थे। सब एकसाथ बैठ गये उनपर मण्डलाकार। वसुदेवजी एव नन्दजीको सबने बीचमे कर लिया।

'भाई ! आप स्वजन।क साथ सकुशल तो हैं ?' वसुदेवजीने पूछा—'जहाँ बृहद्वनमे आप इस समय हैं, वहाँ पशुओके लिये पर्याप्त घास, जल और आप सबके लिए फलदार वृक्ष है ? आपके पशु निरोग, सबल हैं ?'

'आप पुण्यपुरुषोका अनुग्रह है।' नन्दजीने कहा—'गोष्ठ खूब समृद्ध हैं और गायो-गोपोको पूरी सुविधा है।'

'भैया ! बडे सौभाग्यकी बात है कि इस आयुमे आकर आपके सन्तान तो हुई।' वसुदेवजीका कण्ठ भर आया यह कहते-कहते। कठिनाईसे अपने रुदनको दबाया उन्होंने—'मुझे तो आशा नही रह गयी थी कि इस जीवनमें आपके दर्शन कर सकूँगा। लगता था—कारागारमे ही आयु कट जायगी।

यह तो बहुत बड़ा पुण्योदय है मेरा कि आप जैसे आत्मीयका दुर्लभ दर्शन आज मिल रहा है।'

व्रजराज गद्गद् हो रहे थे। उनसे बोला नही जा रहा था। उनके मनमे एक ही बात आ रही थी—'हाय! कितना कष्ट पाया है उन्होने।'

'क्या किया जाय! सबके कर्म-प्रारब्ध पृथक्-पृथक् हैं। सबको अपने प्रारब्धका फल भोगना ही पडता है। अत बहुत इच्छा होनेपर भी मनुष्य अपने स्वजन-सुहृदोके साथ एकत्र नही रह पाता है।' वसुदेवजीने नेत्र पोछे अपने।

स्पष्ट ही था कि वे कितनेभी उत्सुक हो, इस समय परिस्थिति ऐसी नही थी कि व्रजराजको अपने गृह चलने और दो-चार दिन निवास करनेको आमन्त्रित कर सके, वे स्वय भी गोकुल जानेकी स्थितिमे नही थे।

'पुरुषका अर्थ, धर्म, काम तभी सुख देते हैं जब उसके सुहृद् भी सुखी हो। वसुदेवजीने कहा— 'सुहृद् दुखी हो तो कोई सम्पत्ति या भोग सुखी नही करता। कसने मुझे सब सुविधा दे दी है अब, किन्तु''' ।

'भाई! मेरा पुत्र माताके साथ आपके यहाँ रहता है। वह आपको ही पिता मानता होगा।' वसुदेवजीने अब वह बात कही, जिसे कहने-जाननेको वे अत्यन्त आतुर होकर यहाँ आये थे—'जानता हूँ कि आप प्रेम-वात्सल्यकी मूर्ति हैं। उसपर आपका असीम वात्सल्य है। आपसे उत्तम लालन-पालन उसका हम नही कर सकते।'

'हमने तो समझा था कि देवी रोहिणीका वह पुत्र गूँगा है।' सन्नन्द-जी हँसकर बोले—'वह इतना गम्भीर, गुमसुम रहा है पूरे वर्ष भर कि सब चिन्तित हो उठे थे। लेकिन व्रजराजकुमारके जन्मसे वह ऐसा हँसने-खेलने लगा है, मानो उसीको सबसे अधिक सुख मिला है।'

'देवी रोहिणी तो साक्षात् वरदानमयी है।' नन्दजीने प्रफुल्लित होकर कहा—'वे गोकुल आयी और गोपोके घर उनके पुत्रके सखा-सेवक आने लगे। वे कृपामयी हो हम सबका सरक्षण-पालन करती है, हम कहाँ उनकी सेवा करने योग्य हैं।'

'दैव भी कितना निष्ठुर है।' नन्दरायजी दो क्षण रुककर बोले—'देवकीसे उत्पन्न आपके अनेक पुत्रोको कसने मार दिया। एक कन्या बच गयी थी, किन्तु वह भी स्वर्गमे रहने चली गयी। अवश्य ही सब भाग्यका खेल है। अदृष्टके द्वारा ही मनुष्यका जीवन नियन्त्रित है। जो इस तत्त्वको जान लेता है, वह मोहमे नही पड़ता। आप तो परम तत्त्वज्ञ हैं।'

कसकी चर्चा आते ही वसुदेवजी चौंके। वे यहाँ आकर भूल ही गये थे कि अभी सवेरे ही पूतनाके गोकुलकी ओर जानेका समाचार मिला है। ये व्रजपति तो प्रधान गोपोको भी लेकर यहाँ मथुरा चले आये है, और वह मायाविनी वहाँ पहुँची होगी।

'आपने महाराजको वार्षिक कर दे दिया और मुझे आपके दर्शन भी हो गये।' वसुदेवजीने स्थिर गम्भीर स्वरमे कहा—'अब आपको यहाँ अधिक देर नही रुकना चाहिये, क्योकि गोकुलमे उत्पात होनेकी आशङ्का है।'

'गोकुलमे उत्पात हो सकता है!' गोपोने सुना तो एक साथ उठ खडे हुए। गोप जाति एकमत, त्वरित कर्मरत होनेवाली है। गोप किसीपर अकारण अविश्वास नही करते। कारण पूछनेका अभ्यास उन्हे प्राय नही होता।

'ये दाहिने-बायें उडते पक्षी आपको शीघ्र चल देनेका सकेत कर रहे हैं।' वसुदेवजीने आकाशकी ओर सकेत किया और नन्दराय भी उठकर खड़े हो गये।

गोपोने बैल हाँके और उन्हे छकडोमे जोता। जो भी वस्त्र, भाण्ड भूमिपर थे, उठाकर छकडोमे रखा।

'श्रीहरिकी कृपा हुई तो फिर मिलेगे।' व्रजपतिने भुजा फैलाकर अङ्कमाल दी वसुदेवजीको। गोपोने भी यथायोग्य अभिवादन किया और व्रजेन्द्र छकडेपर जा बैठे।

वसुदेवजीने विदा किया उस समूहको। वे वही खडे-खडे जाते हुए छकडोको तब तक देखते रहे, जब तक उनकी ध्वनि सुनायी पडती रही। फिर वे अपने रथकी ओर मुडे।

'भगवान नारायण रक्षा करे।' जाते हुए व्रजराज तथा वसुदेवजीने भी सोचा था। गोकुल दूर नही था, सायसे पूर्व ही व्रजराजको अपने यहाँ पहुँच जाना था।



अटके प्राण

वडा लीलामय है वह, जो कारागारमें प्रकट होकर अब नन्दके भवनमें जा विराजमान हो गया है। उसे देखकर तो उसमे प्राण अटक ही जाते हैं, उसे सुनकर भी प्राण उसीमे अटक जाते है। प्रेमसे—स्नेहसे उसमे प्राण लग जायँ तो जीवका सौभाग्य, किन्तु भयसे भी लग जायँ उसमे, तो अभाग्य कहनेका कोई साहस करेगा ?

व्रजकी तो तुलना तीन लोकमे नही है। वहाँके गोप, गोपी, गाय-बछडे, पशु-पक्षी ही नही, तरु-तृण तक धन्य हैं, दिव्य हैं। उनकी बात—उनकी महिमाकी बात, कौन करे। बात मथुराकी और उसमें भी महाराज कसकी ? कसके प्राण भी अधरमे अटक गये है इन दिनो।

'वही-वही है ! वह नन्दका लडका ही बनकर प्रकट हुआ है।' पूतनाके मरनेका समाचार मिला और कसको सन्देह नही रह गया कि उसे मारनेवाला हरि गोकुलमे ही है। गोकुलमे – और गोकुल तो मथुराके ठीक सामने यमुनाके उस पार ही है। इतने समीप प्राणहर्ता आ गया—कब यमुनापार उतर आवे, कुछ पता नही। कसका भय—उसकी चिन्ता सीमाहीन है।

गोपराज नन्द कोई एकाकी असहाय वसुदेव तो नही है कारागारमे पडे कि कस उनके पुत्रको मारने दौड जायगा। नन्दराय व्रजपति हैं और कस जानता है कि सम्पूर्ण व्रजके गोप उनकी रक्षाके लिए मर-मिटनेको पलक मारते दौड पडेगे। रोषमे भरे गोप तो सभीके लिए—भले वह कितना भी वीर हो, भारी पडते हैं।

एक बार गोपोसे युद्धकी बात सोच भी ली जाय तो उस नन्दके शिशुका उपाय ? शिशु है—यह सोचकर उसकी उपेक्षा कस कैसे कर दे। छ दिनकी आयुमे उसने पूतनाको मार दिया है—उस पूतनाको जो सुरेन्द्र-विजयी कसको मल्लयुद्धको चुनौती दे चुकी थी। उसे मार देनेवाला शिशु है ?

कस स्वय अपने उस कालके सामने जानेका साहस नही कर सकता। अपने-आप दावाग्निमे कूद पडनेकी मूर्खता वह नही करेगा। सेना भी नहीं

भेजी जा सकती। कोई ऐसा कार्य नही किया जा सकता, जिससे नन्दको, गोपोको अवसर मिले कसके विरुद्ध शस्त्र उठानेका। ऐसा होनेपर तो वह मायावी वामनसे विराट् बननेवाला मथुरा पर चढ दौड़ेगा।

कूट प्रयत्न—छलसे मारना ही एकमात्र मार्ग लगता है। कुछ हो भी जाय तो कंस अपनेको अनजान-निर्दोष दिखलानेकी स्थितिमे बनाये रखना चाहता है। वह अपने श्रेष्ठतम—प्रबलतम समर्थकोंको भेजेगा और उस नन्दके शिशुकी हत्या करा देगा—यही एकमात्र मार्ग कसके सम्मुख है।

पूतना मर गयी। कंस मृतोका श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति नही है। वह जीवनकी—जीवितोकी चर्चा करता है। उसे वे चाहिये जो कसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करनेको नित्य उद्यत रहे। कस उनका सम्मान करता है, किन्तु जो जीवन उत्सर्ग कर चुके, उन्होने कर्तव्य किया अपना। उनके लिए कसको रुदन नही आवेगा। पूतनाको बहिन बनाकर रखा—वह ठीक बहिन सिद्ध हुई। भाईके लिए प्राण दे दिये उसने।

कंसके पास एक पूतना ही तो नही थी। उसके पास अनेक असुर हैं और कंस अपना प्रयत्न रोक तो नही सकता। उसके लिए तो अपनी मृत्युको मारनेका प्रश्न है। उसके प्राण उस नन्दके लडकेमें भयसे अटके हैं।

प्रेमसे—वात्सल्यसे अटके हैं उस इन्दीवर सुन्दरमे प्राण वसुदेव-देवकीके। वह नन्हा, सुकुमार—कितना भोला, कितना सुन्दर, कितना मनोहारी था। वसुदेव-देवकीको वह अब भी सद्योजात ही लगता है और क्रूर कंस उसे मारनेके बार-बार कुटिल प्रयत्न करता रहता है। कॉपते रहते हैं दम्पत्तिके प्राण। वही तो इनका जीवन है और कंस?—नारायण रक्षा करें उसकी।

पूतनाके मरनेका समाचार मिला—यह आश्वासन ठीक हृदयमे उतर भी नही पाया था कि सुना—'कसने श्रीधरको गोकुल भेज दिया है।'

श्रीधर ब्राह्मण है जातिसे, किन्तु पिशाच ब्राह्मण। जीवित ब्रह्म-राक्षस है वह। कसके अभिचार यज्ञोका पुरोहित श्रीधर—ऐसा कोई क्रूर कर्म नही जो न कर सके। गोप बहुत सीधे हैं। व्रजपति और व्रजरानी श्रद्धाकी मूर्ति हैं। ब्राह्मणका वे सत्कार करेंगे। ब्राह्मणपर उन्हे तनिक भी सन्देह नही होगा। पता नही, अवसर पाकर श्रीधर क्या कर बैठे।

कसने बहुत सोचकर श्रीधरको भेजा था। यह समाचार पाकर देवकी-वसुदेवजी तो मूर्छितप्राय हो गये। श्रीहरिसे प्रार्थना ही एकमात्र

अवलम्ब है उनका। वे असहाय---उस अशरण-शरणको पुकार ही तो सकते हैं वे।

आर्तप्राणोंकी पुकार वह करुणावरुणालय अनसुनी नही करता। देवकी-वसुदेव को भी अभय मिला। उन्हे सम्वाद मिल गया कि श्रीधर लौट आया है। वह गोकुलसे गूँगा होकर लौटा है और विक्षिप्तप्राय हो गया है।

लोग कहते हैं कि श्रीधरने कंसको लिखकर बतलाया था कि नन्दके उस शिशुने अकेले पाकर, पालनेसे उठकर श्रीधरके मुखमे नवनीत लपेट दिया। दही-नवनीतके भाण्ड फोड दिये और श्रीधरकी जिह्वा उमेठ दी।'

'धूर्त कहीका। वह सुकुमार अभी स्वय तो पालनेमें करवट नहीं ले पाता और उसपर आरोप ?'

लोग ठीक कहते है---'श्रीधर बहुत जिह्वालोलुप है। वह गृह सूना पाकर नवनीत खाने लगा होगा। उतावलीमें भाण्ड गिरकर टूट गये होगे। गोपोने उसे धिक्कारा होगा। सम्भव है, धक्का देकर घरसे निकाल दिया हो। ब्राह्मणपर वे हाथ तो नही ही उठावेगे। लेकिन गिरनेसे श्रीधरके सिरमे कही चोट अवश्य लगी। इससे उसकी वाणी मारी गयी।'

श्रीधर फिर मथुरामे नही दीखा। उसके प्रति किसीकी सहानुभूति नही थी, अत किसीने खोज-खबर उसकी नही ली कि उसका क्या हुआ। उसके चले जानेसे मथुराके नागरिक प्रसन्न ही हुए।

कसने कागासुरको भेजा था।' इस सम्वादने बहुत चिन्ता नही दी; क्योकि सम्वाद जिसने दिया, उसने सुना दिया—'भला कौएको मथुरासे गोकुल जाते कितनी देर, किन्तु वह तो फट्से कसके पैरोंके पास आ गिरा। मरते-मरते भी असुर झूठ बोलते है ? वह मरते-मरते कससे कह गया—'नन्दके शिशुने पालनेमे पडे-पडे हाथ लम्बाकर उसे पकड कर फेक दिया।'

यह समाचार लानेवाला सेवक देर तक पेट पकडकर हँसता रहा था—'लगता है कि गोप-बालकने गुलेलका लक्ष्य बस कौएको बनाया। ऐसा पत्थर लगा उसे कि बुद्धि भी ठिकाने नही रह गयी।'

'कसके सिंहासनके पास कौआ मरा।' सेवकने फिर हँसकर कहा—'महाराज कंसके लिए बडा भारी शकुन तो हुआ यह आज।'

सप्ताह भी नही बीतते ऐसे सम्वादोको और कंसके किसी नवीन उत्पातका समाचार मिल जाता है। सेविकाने आज सुनाया—'कस उत्कचको गोकुल जानेको कहता सुना गया।'

उत्कच अदृश्य रहता है। वायुशरीरी है। मथुरामे सब जानते है कि चाक्षुष मन्वन्तरमे उत्कचने जब मदमत्त होकर महर्षि लोमशके आश्रमके बहुत-से वृक्ष उखाड दिये, तब महर्षिने क्रोधमें आकर इसे शाप दे दिया—तू घोरवायुके समान वृक्षोको गिराता है, अत वायुदेह हो जा।'

इस शापसे उत्कचकी तो शक्ति ही बढी। वह अधिक उत्पाती हो गया। वह अदृश्य रहकर सर्वत्र जा सकता है और कुछ भी उत्पात कर सकता है। कंसकी दिग्विजयके समय इसने कसको गिरा देनेका प्रयत्न किया था। कस पैर टेके जमा खडा रहा। तबसे यह कसका मित्र हो गया। कसके अनुरोधपर मथुरा आ गया। कसने इसे उत्तम गुफा समीपके पर्वतमें दे रखी है। इसके लिए नियममे आहार कंसके सेवक उस गुफामें रखते रहे है।

उत्कच चाहे जब, चाहे जिसके गृह या उद्यानमे उत्पात करने लगता था। वस्त्र फटने लगें, भाण्ड गिरने-फूटने लगें, वृक्ष टूटने लगे, और कोई कारण न दीखे तो लोग समझ लेते थे कि उत्कच आ गया है। इस असुरके अट्टहास और दुर्वाक्य कभी भी आकाशसे आने लगते थे। कुशल यही थी कि वायुशरीर होनेके कारण यह अधिक देर कही टिक नही पाता था।

'पूतना कितनी भी भयानक थी—दीखती तो थी। उत्कच तो दीखता ही नही। कसने यह अदृश्य रहने वाला असुर गोकुल भेज दिया—'हे नारायण।' वसुदेव-देवकीके प्राण चीत्कार कर उठे।

इस बार यह चिन्ता मिटनेका नाम नही लेती। उत्कचका कोई सम्वाद नही आया। उस अदृश्य शरीरीका क्या हुआ, पता भी कैसे लगता। यह कौन जानता कि वह नन्दप्राङ्गणमे शकटमे आविष्ट हुआ था और नन्दतनयने उसे चरणस्पर्श देकर मुक्त कर दिया।



श्रीगर्गाचार्य गोकुल गये

वसुदेवजी स्वयं गर्गाचार्यके आश्रम एकाकी गये। यदुकुलपर—विशेषत शूरसेनजीके परिवारपर आचार्यका वात्सल्य प्रारम्भसे बहुत अधिक है। बुलानेपर वे कुलाचार्य अवश्य आ जाते, किन्तु वसुदेवजी तो उनसे अपना मिलना प्रकट नही करना चाहते थे। ऐसे उनके यहाँ गये मानो यमुना-स्नान करने आये तो इधर निकल आये हो।

'यह शूरसेनात्मज वार्ष्णेय वसुदेव श्रीचरणोमें प्रणिपात करता है।' दण्डवत् भूमिपर गिरकर प्रणाम किया वसुदेवजीने।

आचार्य नित्य हवनके लिए आसनपर बैठने ही जा रहे थे। उन्होंने आगे आकर उठाया वसुदेवजीको और तत्काल अपनी कुटियामें ले गये—'कोई आवश्यक कार्य वत्स?' विना प्रयोजन इस प्रकार ये नही आये होंगे, यह अनुमान आचार्यने कर लिया।

'मैं श्रीचरणोकी सेवा करने योग्य कहाँ हूँ।' वसुदेवजीका कण्ठ भर आया।

'तुमको देखता हूँ तो लगता है, मेरा पौरोहित्य सफल हो गया।' आचार्यने भाव भरे स्वरमें कहा—'किन्तु कुछ भी कहनेसे तुम्हे सङ्कोच होगा। मेरी प्रसन्नताके लिए अपना प्रयोजन बतलाओ।'

'देवकी अत्यन्त व्याकुल हैं।' वसुदेवजी भी जानते थे कि इस समय आचार्य त्वरामें हैं। उन्हे दैनिक हवन-पूजन करना है—'रोहिणीका पुत्र गोकुलमें लगभग सवा वर्षका हो चुका और छोटेको भी कल सौ दिन पूरे हो जायँगे।'

'आपत्तिकालमे समयपर संस्कार न होना दोष नही होता।' आचार्यने कहा—'भगवान आसुतोष शीघ्र सुयोग देंगे और तब विलम्बका प्रायश्चित्त कठिन नही होगा।'

मैंने इसीसे नन्दरायजीको कहला दिया था कि रोहिणी-कुमारका संस्कार अभी न किया जाय।' वसुदेवजी कहते गये—'किन्तु छोटेको वे अपना ही आत्मज जानते हैं। उनका तो है ही अब—उसका संस्कार वे करना चाहेंगे। बहुत सङ्कोची हैं नन्दरायजी, इसीसे बड़ेके संस्कार न होनेके

कारण अपने तनयका भी संस्कार अब तक नहीं कराया ; किन्तु कल जब वह सौ दिनका हो जायगा, बहुत दु ख होगा उन्हे ।'

'महर्षि शाण्डिल्य सर्वज्ञ हैं ।' गर्गाचार्य खुलकर हँसे—'मेरे प्रमुखतम यजमानको ही वे अपना नही बना लेंगे । वैसे उसे अपना यजमान बनानेका अवसर सुरगुरुको भी प्रलुब्ध करेगा ।'

'कंसने उत्कचको भेज दिया गोकुल ।' वसुदेवजीने दूसरी बात कही–'उसका कोई समाचार नही मिला । वह कब कुछ कर बैठे ।'

महर्षिने पार्श्वसे पट्टिका और शुभ्र मृत्तिका उठायी । दो क्षण कुछ गणित करते रहे और फिर मस्तक उठाया—'वसुदेव ! मेरा गणित कहता है कि तुम्हारे शिशुका यह सङ्कट तो कबका टल चुका । उत्कच अब जीवित नही है ।'

'प्रभुका अनुग्रह ।' वसुदेवजीने महर्षिके चरणोपर मस्तक रखा—'देवी देवकीका अनुरोध था कि श्रीचरण गोकुल पधारते नन्दभवन और किसी प्रकार दोनो बालकोका नामकरण कर देते ।'

'सचमुच मैं भी उनका दर्शन करनेको उत्सुक हूँ ।' महर्षिने फिर अँगुलियोपर कुछ गिना—'कल मै वहाँ पहुँच जाऊँगा ।'

'नन्दरायजी भविष्यमे छोटेके साथ ही इस बड़ेका भी सस्कार करा लिया करें ।' वसुदेवजीने बड़ी नम्रतासे यह सन्देश देनेको कहा ।

'तुम ठीक कहते हो ।' महर्षि गर्ग मुस्कराये—'शाण्डिल्यजीको इतना स्वत्व मुझे दे देना चाहिये । उनका सहकर्मी होना मेरे लिए सौभाग्यकी बात है । वे महातापस इस नाते कभी मथुरा बुलाये गये यज्ञादिमे तो ऋत्विक् बनना अस्वीकार नही कर पावेंगे ।'

वसुदेवजीने प्रणिपात करके अनुमति ली । महर्षि हवनकुण्डके समीप चले गये और वसुदेवजीको भी अपने स्नानान्तरके शेष कृत्य पूर्ण करने थे ।

महर्षि गोकुल आये । दूसरे ही दिन सायकाल स्वय पधारे वसुदेवजीके भवन । अर्घ्य-पाद्यादिसे उनकी सविधि अर्चा हो चुकी तो उन्होंने सकेत कर दिया सेविकाओको कक्षसे चले जानेका ।

'मेरी दक्षिणा व्रजपतिने दे दी है ।' महर्षि सुप्रसन्न बोले—'रोहिणी-कुमार राम तो है ही, बलाधिक्यके कारण बल भी है । उस सङ्कर्षणका

प्रभाव शैशवमे भी असीम है। ऐसा लगता है कि वही सदासे सबका गुरु है। उसे अङ्कमें मैंने लिया; किन्तु लगता था कि वह स्वय त्रिभुवनका ज्ञानदाता है। गर्ग उसका शिष्य होता तो अपनेको कही अधिक धन्य मानता।'

'देवि! तुम्हारा वह नीलसुन्दर वासुदेव! वह तो कृष्ण है—आनन्दकी सहज सत्ता। त्रिलोकीको धन्य करने वह धरापर आया है। उसके गुणोकी, गुणोके अनुरूप नामोकी गणना करना मेरे गुरु भगवान शिवके भी वसकी बात नही। मैं गोकुल जाकर कृतकृत्य हो गया। उस कुमारके सरोज, ध्वज, वज्र, यवादि चिह्नोंसे चिह्नित श्रीचरणोका स्पर्श मिला मुझे।'

महर्षिके नेत्रोसे वारिधारा झरने लगी। उनका शरीर पुलकित हो उठा। कई क्षणो तक वे मौन रहे। अन्तमे उन्होने स्वयं अपनेको सम्हाला—'दोनो कुमारोके नाम एकार्थक है। वस्तुत दोनो अभिन्न है। एकके ही दो रूप गौर-श्याम।'

देवकीजीकी ओर महर्षिने दृष्टि उठायी—'तुम उन पुरुषोत्तमकी जननी हो। वे धराका भार ही दूर करने तो आये हैं। कस और उसके असुर मरेंगे—उनके सम्मुख असुरोमे जो जायगा, मारा जायगा। गर्गकी यह भविष्यवाणी कभी असत्य नही होगी देवि! वे त्रिभुवन भयहारी—उनके लिए भयकी सत्ता ही नही। तुम चिन्ताका त्याग करो।'

श्रीव्रजराज, नन्दरानी और रोहिणीजीकी प्रशसा करके, उनका समाचार देकर सुपूजित होकर महर्षि उस सदनसे विदा हुए।



सुभद्रा-जन्म

'वह वालिका—वह सौन्दर्यमयी !' माता देवकीने कहाँ उस योगमायाको अष्टभुजा देखा था। उनके अङ्कमे तो वह आते ही रोने लगी थी। वहुत रो-धोकर चुप हुई और दूध पीने लगी—'हाय ! भूखी ही चली गयी वह। उसे भाई कंसने भरपेट दूध भी नही पीने दिया था।'

माता देवकी उस वालिकाको भूल नही सकी। वह जैसे उनके नेत्रोमे, मनमे, हृदयमें वस गयी। नीदमे वे प्राय· देखती हैं कि वह उनके वक्षसे सटी चुप-चुप करती दूध पी रही है उनका और कोई क्रूर कर उसे छीन लेता है। चीत्कार करके जाग जाती हैं; फिर प्राय. पूरी रात रोते वीत जाती हैं।

वहुत समझाया वसुदेवजीने। उन्होने भी वहुत समझाया अपनेको; किन्तु वह तो नेत्रोके सम्मुखसे जैसे हटती ही नही। माताको लगता है—'वह आनेको आतुर है। वह उनके अङ्कमें आना चाहती है।'

'वह देवी है, योगमाया है' पता नही लोग कससे सुनकर क्या-क्या कहते हैं उसके विपयमे। यादवोने तो उसका एक नाम भी रख लिया है—एकानंशा और उसकी आराधना करना भी कुछने प्रारम्भ कर दिया है; किन्तु माता देवकीको यह सब रुचता नही। वह उनकी है—उनकी बच्ची और भूखी गयी है। इसलिए उनकी गोद फिर भरनेको वहुत आतुर है।

वसुदेवजी पत्नीकी व्यथा समझते हैं। वे जैसे भी बने दु.खिया देवकीको सन्तुष्ट रखना चाहते है। उनके और भी पत्नियाँ हैं। दैव अवसर देगा तो पुत्रोंसे घर भर जायेगा; किन्तु देवकीके छ पुत्र मार दिये गये। एक है—वही आशा है सवकी; किन्तु वह दूर है। नारायण उसे सकुशल रखें। देवकीका आतुर-भूखा वात्सल्य गोदमे शिशु चाहता है—स्वाभाविक है।

'वह आयी—वही आयी थी' माता देवकीने उस दिन प्रात उठकर अपने स्वामीसे कहा—'अव उसे कोई निष्ठुर कर मुझसे नही छीनेगा। वह इस वार मेरे भीतर प्रवेश कर गयी—यह मैंने स्वप्नमें देखा है।' वड़े प्यारसे उन्होंने अपने उदरपर हाथ फेरा।

महर्षि गर्गाचार्य गोकुलसे लौटे थे और वहाँका समाचार देकर गये थे। रात्रिमे माता गोकुल गये अपने इन्दीवर सुन्दरके सम्बन्धमें ही सोचती हुई सो गयी थी। वहुत प्रसन्न थी वे उस दिन और बहुत प्रसन्न थे वसुदेवजी भी। मनपर-से भार उतर गया था महर्षिकी भविष्यवाणी सुनकर। ब्राह्ममुहूर्तमे यह अद्भुत स्वप्न माताने देखा था। शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि वे अन्तर्वत्नी हैं।[1]

इस वार माता देवकी बहुत प्रसन्न हैं। वे अनेक बार स्वामीसे कहती है—'वही आवेगी—देख लेना, उसीको आना है। बेचारी क्षुधातुर चली गयी थी। मेरा दूध अब उसीका तो है। अब इसपर उसका—केवल उसीका स्वत्व रह गया है।'

'सुभद्रा—मङ्गलमयी है वह।' वसुदेवजीने अभीसे नामकरण कर दिया है उसका। हाँ—सुभद्रा ही तो है वह। माता-पिताका प्राय: सब क्लेश उसने उदरमे आनेसे भी पूर्व मिटा दिया है। भले नन्दात्मजा होकर वह उस दिन अङ्कमे आयी थी—कारागार, वन्धन तो उसने उसी दिन कटवा दिया था। कंस सानुकूल हो गया उसी दिन।

अव वह माताके उदरमे आयी तो कंस समाचार पाकर प्रसन्न ही हुआ है। वह अपनी दु:खिया वहिनको यथासम्भव सन्तुष्ट रखना चाहता है। कौन जाने, उसके मनमें उस योगमाया का आतङ्क है या वहिनका स्नेह जागा है, किन्तु वह इधर वहुत मृदुल व्यवहार करने लगा है।

कंसकी चिन्ता वढती जाती है। उसका शत्रु गोकुलमे ही है और उसके कूटप्रयत्न विफल हो गये। उत्कच जैसा अदृश्य शूर भेजा उसने; किन्तु महीनो वीत गये, कुछ पता नही लगा उसका। सम्भवत: पूतनाके समान वह भी मारा गया—कंसने निश्चय कर लिया।

दृश्य पूतना गयी, अदृश्य उत्कच गया। अन्तत: कंसने दृश्यादृश्य तृणावर्तको भी भेज देखा। गोकुल जाकर ये सव मारे ही जाते हैं। कोई लौटता नही है। ऐसी अवस्थामें कंस वसुदेव-देवकीको तङ्ग करके उस योगमायाको भी शत्रु वनानेकी मूर्खता कैसे करे।

---

१. 'पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम्।' (श्रीमद्भागवत १०.१.५६.) सुभद्रा एक वर्ष छोटी है श्यामसुन्दरसे और वलरामजी उनसे दो वर्ष बडे हैं। वसुदेवजी के शेष पुत्र तो वहुत छोटे हैं। बलरामजी के अन्य भाई तो जब रोहिणीजी ग्यारह वर्ष व्रजमें रहकर लौटीं तव हुए।

'देवकी फिर गर्भवती है।' यह समाचार मिला—साथ ही 'वे बहुत प्रसन्न है। उनको अपना शरीर साधारण स्फूर्तियुक्त लगता है। उन्हे कोई कष्ट नही होता, किन्तु उनमे कोई असाधारण तेज आ गया हो, ऐसा भी नहीं लगता। अवश्य वे कान्तिमयी लगती है। दूसरी स्त्रियोके समान उनका मुख विवर्ण नही है।'

'लड़की ही होनी चाहिये।' लक्षण जानने वाली परिचारिकाने भी कंसको बतलाया—'देवकीका वामपाद भारी है। वह स्वय भी बार-बार कहती है कि उसकी बच्ची आने वाली है।'

'वह योगमायाकी बहिन होगी।' कंस मनमे ही कहता है—अच्छा है वह आ जाय। अन्तत तो मेरी भागिनेयी ही होगी। उसको स्नेह कर लूँगा। योगमाया कुछ रुष्ट भी होगी तो इस माध्यमसे प्रसन्न हो जायगी।'

वसुदेवजीकी सन्तानोंने तो प्रारम्भसे जन्म लेनेके लिए भाद्रमास मानो चुन लिया था। पहिले कीर्तिमन्तसे लेकर सब भाद्रमे आये। यह कन्या भी उत्पन्न हुई भाद्र शुक्ल अष्टमीको स्वाति नक्षत्र, तुला लग्नमे। लग्नमे चन्द्र, शनि, द्वितीय राहु, चतुर्थ मङ्गल, सप्तम गुरु, अष्टम केतु, एकादशीमे सूर्य और द्वादशमे बुध।

बहुत पीछे जब राम-श्याम मथुरा आ गये, लोग कहते थे—'सुभद्रा तो सङ्कर्षणके ही साँचेमे गढी गयी है। वही रङ्ग, वही रूप और पूरीकी पूरी वैसी ही मुखाकृति। केश तक रामके समान स्वर्णिम। केवल नेत्र रामके अरुणाभ और सुभद्राके श्वेतपद्म दलके समान।'

हुई बालिका, किन्तु वसुदेवजीने पुत्रोत्सवके समान महोत्सव मना लिया। महर्षि गर्गाचार्यने कहा—'यह भुवनजयी शूरकी अर्धाङ्गिनी बनेगी और इसका पौत्र चक्रवर्ती सम्राट होगा। इसका पुत्र अक्षय कीर्ति प्राप्त करेगा।'

सौन्दर्यकी वह मूर्ति बालिका—माताकी बहुत अभिलाषाकी सन्तान, किन्तु घुटनो सरकना सीखते-सीखते तो उसे पितामहका प्रांगण प्रिय हो गया। श्रीशूरसेनजीके समीप ही रहना उसे अच्छा लगता था और वे तपोमूर्ति भी इसपर बहुत अधिक वात्सल्य रखने लगे।

वह चुपचाप बैठी रहती। देखती रहती अपने पितामहको आराधना करते। उसने वहाँ कभी कुछ उठानेका उपक्रम नही किया। कभी कोई बाधा नही दी। चुपचाप बैठी देखती और नींद आनेपर वही भूमिपर ही सो जाती।

माताको ही वहाँ जाकर दुग्धपान करानेको उसे उठाना पड़ता था अथवा वह सो गयी हो तो ले जाना पड़ता था। इस बालिकामे चञ्चलता कभी आयी नही। लगता था कि वह जन्मसे ही गम्भीरताकी मूर्ति है।

पीछे भी जब वसुदेवजीका गृह बालकोंसे भर गया, सुभद्रा अपने सब छोटे भाइयोके लिए अत्यन्त सदय थी। वह उनके विवादकी सहज निर्णायिका थी। श्रीबलरामका अपार वात्सल्य था उसपर; किन्तु वह अपने छोटे अग्रज—श्यामके सम्मुख ही खुल सकती थी। उन्हीके समीप वह थोडी चञ्चल बनती थी।

पदो चलना प्रारम्भ करते-करते तो उसने शूरसेनजीको पुष्प, दूर्वा देने प्रारम्भ कर दिये। अपने पितामहके सदनकी सेवा उसने शैशवमें ही अपना ली और यह सेवा उसका स्वत्व बन गयी। शूरसेनजी इस बालिकाको किसी सेवासे प्रारम्भसे ही नही रोकते थे। यह इनकी पौत्री, सहायिका, सरक्षिका तक बन गयी थी।



क्रूरता कटती गयी

गोकुलके समाचार आते हैं—प्राण उत्सुक रहते हैं इन समाचारोंके लिए। वसुदेवजीने तो व्यवस्था कर ली है कि कसकी कुटिल मन्त्रणाओके समाचार भी उन्हे मिल जाया करें; किन्तु श्रीहरिसे प्रार्थना मात्र कर सकते हैं वे।

कंसने तृणावर्तको भेजा—पता लग गया था और उसी दिन पता लग गया कि तृणावर्तका अन्त हो गया। अब समाचार आते है गोकुलके और वे प्रसन्न करते हैं। दोनों बालक गोपो-गोपियोको बहुत प्रिय हैं। दोनो बहुत चञ्चल हैं। ऊधमी हो गये है दोनो। बहुत अधिक मित्रोंकी मण्डली बनाली है उन्होने।

मैया यशोदाने कृष्णको बाँध दिया था ऊखलसे। यह सुनकर देवकीजी खुलकर हँसी—'अच्छा किया उन्होंने। ऊधम करेगा तो माता बाँधेगी ही।'

'नन्दभवनके द्वारपर खडे अर्जुनके दोनो वृक्ष अचानक गिर पड़े विना वायुके और कृष्ण उस समय वृक्षोके मध्यमे था।' सुनकर माता देवकी काँप गयी—'उत्कचका उत्पात तो नही ?'

'महर्षिने कहा कि उत्कच मर गया।' वसुदेवजी बोले—'उनकी वाणी असत्य नही हो सकती, किन्तु कसके पास असुरोका कहाँ अभाव है। कोई और गया होगा अदृश्य बनकर वहाँ।'

कसके यहाँसे कोई उस समय भेजा गया हो, ऐसा पता नही लगा। कस भी इस समाचारसे प्रसन्न होकर बोला था—'लगता है कोई मित्र विना मुझे सूचित किये मेरा हित करने वहाँ पहुँच गया था।'

इसके पीछे तो बहुत भयानक समाचार आया। गोकुलके आस-पास काले मुख वाले सैंकड़ो वृक (भेडिये) आ वसे है। उनका उपद्रव बढता ही जा रहा है। वन्य पशुओसे जनपदकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है, किन्तु कसने तो सुनकर अट्टहास किया—'गोप वलवान जाति है। लाठी वहुत चलाते हैं वे। उनको आखेटका अवसर मिलना चाहिये।'

सहसा समाचार आया कि नन्दरायने अपने सव गोपोके साथ गोकुल त्याग दिया। सबको लेकर वे वहाँसे चले गये। वृहत्सानुपुरके समीप वृन्दारण्यमे नन्दिकेश्वरपर स्थान बनाया है उन्होने अपना।

'वडा अच्छा हुआ।' वसुदेवजीने कहा—'कससे कुछ दूर तो हो गये वे। वहाँ उनके मित्र हैं वृहत्सानुपुरके स्वामी वृषभानुजी। वालक वहाँ अधिक सुरक्षित रहेगे।'

वालक तो वालक ही हैं। उन्हे वहाँ जाकर और अधिक मित्र मिल गये। गोप-वालकोमे वैसे भी चपलता बहुत रहती है। नित्य नवीन ऊधम करने लगे हैं वे वहाँ।

'कृष्ण चार वर्षका होते-होते हठ करके बछड़े चराने वनमे जाने लगा।' मैया अनेक वार सोचती है—'यहाँ होता तो महर्षि गर्गाचार्य उपनयन कर देते उसका वड़े भाईके साथ, और पढने चला जाता गुरुकुल पाँच वर्षका होनेपर। अव वहाँ तो छोटे भाईके साथ बड़ेको भी बछडे ही चराने हैं।'

'देवि ! उन्हे कस जैसे शत्रुको मिटाना है।' वसुदेवजी कहते हैं—'इन्हे गोपकुमारोके साथ अभीसे नियुद्धकी शिक्षा मिलना ही उत्तम है।

कस मल्लयुद्ध और गदायुद्धका ही शूर है। गोपोको भी लाठी चलानी उत्तम आती है।'

कसने साहस नही किया था नन्दग्राममे किसी असुरको भेजनेका, किन्तु उसने बकासुर, वत्सासुर, अघासुर, धेनुकको वहाँ आसपासके वनोमे नियुक्त कर दिया। उन्हे समझा दिया कि जिसे भी अवसर मिले, वही गौर-श्याम बालकोको समाप्त कर दे।

वसुदेवजीकी व्याकुलता बढ गयी फिर। कही वही यमुनामे कालियका ह्रद भी है। बालक अब बिना वयस्क-गोपोके सरक्षणके वनमे जाते हैं। वे अबोध हैं और असुर बहुत कपटी होते है।

कस भी समाचार पानेको वसुदेवजीसे कम उत्सुक नही रहता। उसके पास समाचार पानेके प्रचुर साधन हैं, किन्तु समाचार जो आते है वे कसको अधिक उद्विग्न, अधिक भयभीत ही करते है।

वत्सासुर गया और गोपोके बछड़ोमे मिल गया। ठीक किया था उसने। बालकोंने अभी-अभी बछड़े चराने प्रारम्भ किये थे। वे अपने-अपने बछड़े पहिचान लेंगे, क्या सम्भावना थी।

'मूर्ख था वह। कसने सुनकर मुट्ठियाँ बाँध ली। 'उसे काला ही बछडा बनना था। इतना मोटा तगडा बनकर गया कि पहिचान लिया गया।'

कृष्णने पिछले पैर पकड़कर कपित्थपर दे मारा उसे और उसका कचूमर निकल गया, किन्तु पता नही बकासुरके साथ क्या हुआ। जबसे उसकी बहिन पूतना मारी गयी, वह क्रोधसे पागल हो रहा था। उसे कसने किसी प्रकार रोका था कि ठीक अवसर आने दे। अवसर तो ठीक ही मिला था। उसने निगल भी लिया था कृष्णको। फिर पता नही क्या हुआ कि उगलना पडा और तब अवसर मिल गया उस गोपकिशोरको। उसने चोच पकड़कर चीर डाला बेचारे बगुलेको।

मयका पुत्र व्योम स्वय आ गया था मथुरा कससे मिलने। कसने अपनी व्यथा सुनायी तो उसने दर्पसे कहा था—'मै मायावियोके परमाचार्य दानवेन्द्र मयका पुत्र हूँ। मित्र! तुमको निश्चिन्त रहना चाहिये। केवल दो ही नही, नन्द व्रजके सब लडकोको मरा मान लो तुम।'

व्योम गोप-बालक बनकर गया था। मित्रता स्थापित करनेमें सफल हो गया था वह। अधिकांशको गुफामे बन्द भी कर चुका था, किन्तु

कृष्ण बहुत चतुर है। उसने पकड लिया व्योमको और इतनी क्रूरतासे पीट-पीटकर मारा उसे कि सुनकर रोमाञ्च हो आता है।

'कही कुछ गडबडी है।' कस सोचता है—'वह मायावी हरि है। उसे मारने जाने वाले पूरे सावधान नही रहते।'

अघासुर अजगर बनकर गोप-बालकोके मार्गमें ही पड रहा था। वह पूतना और बकका छोटा भाई पूरे बालकोको, बछडोको निगलनेमे सफल भी हो गया, किन्तु कस काँप उठा था यह सुनकर कि कृष्ण अघके मुखमे जाकर निकल आया। सब बछड़े और बालकोको भी जीवित निकाल लाया। मरा केवल अघ और उस अजगरका सूखा शरीर बालकोके लिए खेलनेकी गुफा बना वृन्दावनमे पडा है।

वसुदेवजीने जब सुना—'कृष्ण कालियह्रदमे कूद पडे थे।' मूर्छित होते बचे। चीत्कार कर उठे थे—'क्या हुआ ? क्या हुआ उसका ?'

'निकल आये।' समाचार देने वालेने शीघ्रतापूर्वक कहा था—'थोडी देर कालियके फणोपर नाचते-कूदते रहे और जब सर्प मूर्छित होने लगा, कूदकर ह्रदसे बाहर आ गये।'

'सकुशल है वह ?' माता देवकीने पूछा था।

'सब वहाँ सकुशल है।' चरने सुनाया--'कालिय सपरिवार यमुना छोडकर कही चला गया। रात्रिमे दावाग्नि लग गयी थी, किन्तु किसीके वस्त्रका कोना तक नही जला।'

'किसीको उनके पास नही जाना चाहिये।' कसने निर्णय किया। उसके प्रमुख शूर एक-एक करके मारे जा रहे हैं। वह कोई उत्तम योजना बनावेगा। लेकिन वे ही किसीके पास पहुँच जाये तो ? सब बालकोको लेकर वे तालवनमे जा पहुँचे थे। वहाँका अधिपति बना बैठा था गधा धेनुक। उसे बडे भाईने मार दिया और छोटेने उसके जाति भाइयोको नष्ट कर दिया।

बेचारी ढुण्ढा तो केवल पता लगाने वहाँ गयी थी। दुर्भाग्य उसका कि वह होलीके दिन पहुँची। राम-श्यामको देख भी नही सकी। गोप-कुमारोने उसे सूखी लकडियोमे दबाकर फूंक दिया।

प्रलम्ब कह गया कससे—'मैं दोनोमे-से एकको जीवित आपके पास ले आऊँगा।'

कसकी रोहिणीकुमारमें उतनी रुचि नही है, किन्तु प्रलम्त्र छोटेसे भय खाता है। वह बडेको ले आवे तो सम्भव है छोटा अग्रजके प्रेमवश स्त्रय मथुरा आ जाय। वह यहाँ आ जाय तो कुछ-न-कुछ किया ही जा सकता है।

प्रलम्वको उपाय वही ठीक लगा था जो मयपुत्रने अपनाया था। वह भी गोपकुमार ही वनकर गया। गोपोके लड़के मित्र बनानेमे हिचकते नही। प्रलम्व सफल हो गया बडे भाईको पीठपर बैठाकर ले भागनेमे, किन्तु उसे कहाँ पता था कि वड़ेका घूसा भी वडा है। प्रलम्बकी खोपड़ीकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयी थी एक ही घूसेसे।

कसने सुना--'व्रजपर प्रलयङ्कर वर्षा प्रारम्भ हो गयी है।' वडा प्रसन्न हुआ था वह। इस बार वह देवराज इन्द्रको पुरस्कृत कर देगा। अभय दे देगा उन्हे। अमरावतीका राज्य नही चाहिये कसको। उसके शत्रुका उन्मूलन यदि सुरेन्द्र कर दे ।'

वसुदेवजीने भी सुना और सिर थाम लिया। 'श्रीहरि ! श्रीहरि !' रट लग गयी उनके रात-दिन। देवकीजीने अन्न-जल त्याग दिया। नन्ही सुभद्रा तक शूरसेनजीके यहाँ उपासनामे स्थिर जमी रही।

'नन्दकुमारने गोवर्धन उठाये रखा हाथपर सात दिन। व्रजको बचा लिया उन्होने। देवेन्द्र पराजित हो गय !' कसको आश्चर्य नही हुआ सुनकर। उसने कहा—'सुरपति सदा कापुरुष हैं। एक मायावी बालकसे हार गया वह।'

'कृष्णने गोवर्धन उठा लिया।' वसुदेव-देवकीको यह सुनकर सूतिका-गृहमे देखा चतुर्भुज रूप स्मरण आ गया। 'वे साक्षात् नारायण हैं। अखिलेश्वर है वे ! कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोको वही धारण करते हैं।' ऐश्वर्य-बोधने उन्हे चकित नही होने दिया उस समय।

कसने एक प्रयत्न और किया। अरिष्टको भेजा उसने। अरिष्ट वृषभाकार है। गोप उसे मारनेमे हिचकेंगे। वैसे कस स्वय हिचक रहा था। जिसने वत्सासुरसे असुर-विनाश प्रारम्भ किया, वह अरिष्टको पहिचाननेमें चूक जायगा ?

अरिष्टसे देवता भी काँपते है। वह और केशी—केशी कसका प्रधान सेनापति है—अन्तिम आशा है; किन्तु अरिष्ट केशीसे दुर्बल नही है।

वसुदेवजीने सुना। अरिष्ट-नाशके लिए आराधना ही तो की जा सकती है। आराधना ही अवलम्ब है उनका। वे सुनते ही आराधनामे लग गये थे और उनकी आराधना कभी असफल नही हुई। उसी दिन उन्होने सुन लिया कि व्रजमे सायंकाल अरिष्ट नष्ट हो गया। कृष्णका स्मरण सबके अरिष्ट ध्वस कर देता है, उन तक जाकर अरिष्ट बचा रह सकता था ?

———

फिर आये देवर्षि

सेवकने समाचार दिया कसको--'देवर्षि नारदजी राजोद्यानमे पधारे है। श्रीमान् जानते ही है कि वे बहुत शीघ्रतामे रहते हैं।'

'नारदजी कुछ अधिक बुद्धिमान नही हैं।' कस हँसा--'इनको झगड़ा लडाई देखना प्रिय है, किन्तु विना समझे-बूझे सुनी-सुनायी बात कह दिया करते है।'

कस नारदजीसे प्रसन्न नही था। देवर्षिने ही व्यर्थमे उकसाया उसे देवकीके पुत्रोको मार देनेके लिए। इतनेपर भी कस अविलम्ब उपवनको चल पडा। नारदजीकी उपेक्षा नही की जा सकती। अनेक वार उनसे वहुत महत्त्वके समाचार मिल जाते है। फिर कस यह भी जानता है कि देवर्षिकी शत्रुता किसीसे नही। वे अजातशत्रु है। कोई उनसे द्वेष नही करता।

प्रणिपात किया कसने देवर्षिको। वह कुछ कहे, इससे पहिले देवर्षि ही बोले--'भोजराज! वहुत बुद्धिमान समझते हो अपनेको, किन्तु ठगे गये।'

'मैं ठगा गया!' कस चौका। दूसरे ही क्षण हँसा--'देवता भी झूठ बोलते है और आप भी छल करते है, यह नही जानता था।'

'न देवता झूठ बोलते और न नारदने कभी किसीसे छल किया है।' दवर्षिने डाँट दिया---'अपनी अज्ञता-असावधानीको दोष दो।'

'देवकीकी वह कन्या कह गयी ।' कसकी बात देवर्षिने पूरी नही होने दी। उसी डाँटनेके स्वरमे वे बोलते गये।

'कैसी देवकीकी कन्या! वह यशोदाकी पुत्री थी जो तुम्हारे हाथसे छूटकर आकाशमें अष्टभुजा देवी बन गयी।'

'यशोदाकी पुत्री ? नन्दात्मजा ?' कस तो मुख फाड़े देखता ही रह गया देवर्पिको दो क्षण। 'सच तो कहते है ये। देवकीकी पुत्री होती तो माताका सम्मानपूर्वक नाम लेती। उसने तो कहा था—'दीना देवकीको व्यर्थ कष्ट मत दे !' कसको पूरे वाक्य उस देवीके ज्योके-त्यो स्मरण हैं।

'तब देवकीके अष्टम गर्भका पुत्र ?' कसने कुछ घबराये स्वरमे पूछा।

'वह नन्दरायके यहाँ बढ रहा है अपने बड़े भाई रोहिणीपुत्र बलरामके साथ।' नारदजीने बतलाया—'उत्पन्न होते ही उसे वसुदेव यमुना पार करके गोकुल पहुँचा आये थे और यशोदाकी कन्याको ले आये थे। तुम्हारे प्रसिद्ध शूरोको उन दोनो भाइयोने मार दिया और तुम यह सीधी बात भी नही समझ सके।'

'मैं अभी मार दूँगा वसुदेव और देवकीको भी।' कसने पैर पटका। खड्ग खीच लिया कोशसे और मुडा वेगसे चलनेको।

'मार दोगे ? मार देनेका प्रयत्नकर देखो।' देवर्षि खुलकर हँसे। उनके इस प्रकारकी हास्यध्वनिसे चौककर कसने मुडकर उनकी ओर घूरकर देखा।

'वे कौन हैं—जानते ही हो ?' देवर्पि कह गये—'तुम उनके माता-पिताको मारने जाओगे तो उन्हे वहाँ प्रकट होनेसे कोई रोक लेगा ? आज ही मरनेकी उतावली है क्या तुमको ?'

कसका शरीर क्रोधसे काँपने लगा, किन्तु वह समझ गया कि देवकी-वसुदेवको मार देना इतना सरल नही है। उसके मुखसे शब्द नही निकला, किन्तु उसकी दृष्टि पूछ रही थी—'आप कृपा करके कोई उपाय बतलाइये।'

'जो कुछ करो, सोच-समझकर करो।' देवर्पि कहाँ किसीको इस प्रकार सीधे कुछ बतलाते हैं—'अपने कालके सम्मुख स्वय चले जाना बुद्धिमानी नहीं है। तुम्हारे पास बहुत सहायक हैं। बहुत साधन हैं जिनका तुम अभी उपयोग कर सकते हो, किन्तु ऐसा कुछ मत करो कि वे प्रकट होनेको विवश हो जाये अथवा गोपोको लेकर तुमपर आक्रमण करनेका अवसर मिल जाय उनको।'

'वसुदेवने धोखा दिया मुझे।' कसके हाथसे तलवार छूट गिरी। वह वही सिर पकडकर धमसे बैठ गया। उसे पता ही नही लगा कि देवर्पि कब 'नारायण हरि' कहकर अदृश्य हो गये।

कस यह जानता था—समझ चुका था कि व्रजपतिका पुत्र ही उसका शत्रु है। कंस इधरसे असावधान नही था; किन्तु वह वसुदेवका पुत्र है, इस रहस्योद्घाटनसे उसे भारी धक्का लगा।

'मैं व्यर्थ ही उस गगनमे गयी देवीसे डरकर वसुदेवका सत्कार करता रहा।' कसने मुट्ठियाँ भीच ली। उसे आज सबपर—अपनेपर भी क्रोध आ रहा था। वह जब उस राजोद्यानसे उठा—इतना भयानक उसका मुख हो गया था कि उसके सेवक तक सहमकर इधर-उधर दुबकने लग गये।

सीधे कंस अपने राजसदनके एकान्त कक्षमे चला गया। इस समय उसे सोचनेके लिए समय चाहिये। उतावलीमे अब कुछ करना अनर्थकारी हो सकता है।



फिर कारागार

उस दिन कसने राजसभा बुलायी। महर्षि गर्ग भी उपस्थित हुए उसमे। कंसने प्रस्तावना की—'आप सबको पता ही है कि यदुवशमे सदासे पिताका सम्मान आवश्यक नही माना जाता। वृद्ध उग्रसेनको मैंने सब सुविधा कारागारमें दे रखी है, किन्तु उनकी आज्ञायें ऐसी होने लगी थी कि उनका पालन सम्भव नही था। महाराज यदुने भी पिताकी आज्ञा अस्वीकार कर दी थी।'

'अपने पूर्वजोपर आक्षेप करना उचित नही है।' श्वेतवस्त्र एव स्फटिकमाला धारण किये दूसरे चन्द्रदेवके समान महर्षि गर्गाचार्य उठ खडे हुए—'मैं इसीलिए सभाओमे नही आता कि वहाँ अनुचित सुनकर मौन रह जाना भी दोष है।'

'पिताकी आज्ञा अस्वीकार नही की थी यदुने ?' कस उद्धत भावसे बोला।

'उचित कारण दिया था उन्होंने।' महर्षि वैसे ही शान्त स्वरमें कह रहे थे—'उन्होंने कहा था कि मैंने एक ब्राह्मणको मुँहमाँगी भिक्षा

देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। उस विप्रने अब तक बतलाया नही कि उसे क्या चाहिये। जब तक उसकी भिक्षाका ऋण न उतार लूँ, आपका बुढ़ापा नही ले सकता। पता नही, वह क्या माँगे और वृद्ध होकर मैं उसकी माँग पूरी कर पाऊँ या न कर पाऊँ।'

गर्गाचार्यजी राजसभासे यह कहकर चले गये। उन तेजोमय तपोधनको रोकनेका साहस कसमे नही था, उनके अनुचर कैसे रोकते उन्हे।

'वसुदेवने मुझे धोखा दिया।' कंसने देखा कि उसकी प्रस्तावना ठीक नही रही तो अपने उद्देश्यपर आ गया—'उन्होने अपने सत्यकी रक्षा नही की। अपने पुत्रको छिपाकर गोकुल पहुँचा आये।' देवर्षि नारदसे सुना वर्णन उसने सुना दिया।

'इसमे अनुचित क्या किया उन्होंने?' उग्रसेनजीके बडे भाई देवकजी तीखे स्वरमे बोले—'अपने पुत्रकी रक्षाका प्रयत्न करना भी क्या अधर्म है? तुमने उनके छः पुत्र मार दिये। सातवाँ दैवने नही होने दिया। अब एकको किसी प्रकार उन्होने बचा लिया तो वे प्रशसाके पात्र हैं।

'वसुदेवजीने सत्यकी कोई उपेक्षा नही की।' कसको अन्धकजीने डाँटा—'उन्होने वचन दिया था तुम्हे कि देवकीके पुत्रोंको वे तुम्हे दे जाया करेंगे। मथुराके सब नागरिक जानते हैं कि वसुदेवने अपने वचनका पालन किया था। वे अपना पहिला पुत्र जन्मते ही तुम्हारे पास ले आये थे।

'यह तो मुझे विश्वास दिलानेके लिए था।' कसका स्वर बहुत तीक्ष्ण था।

'यह तुम कैसे कह सकते हो।' अन्धकजी उससे भी तीक्ष्ण स्वरमे बोले—'तुमने उनको स्वतन्त्र रहने दिया होता और वे अपने पुत्र तुम्हे न देते तब उनपर आक्षेप कर सकते थे। जब तुमने उनको कारागारमे डाल दिया—अपने पुत्र तुम तक पहुँचानेके वचनसे वे तुम्हारे द्वारा ही मुक्त हो गये। अब तो वे विवश हो गये और विवशका कोई कर्तव्य नही होता, विवश करने वालेके प्रति। ऐसी अवस्थामे तुम्हारी असावधानीका लाभ उठाकर यदि उन्होंने अपने पुत्रकी रक्षा कर ली तो उनकी बुद्धिमत्ता प्रशसनीय है। उन्होंने पुरस्कृत होने योग्य साहस एव चतुरता प्रदर्शित की है।'

'वे मथुरामें हैं, यह उनकी कृपा है।' देवकजीने कहा—'मथुरासे वे चले गये होते तो भी उनपर दोष नहीं दिया जा सकता था।'

'कंससे भागकर वे जाते भी कहा ?' विद्रूपपूर्ण स्वरमे बोला वह।

'क्यो—क्या तुम समझते हो कि त्रिभुवनमे एक तुम्ही शूर रह गये हो ?' एक वृद्धने शान्त उत्तर दिया—'तुम्हारे श्वसुर जरासन्ध ही शरण आयेको त्याग देंगे ?' वाणासुर या भौम तुम्हारे मित्र सही, किन्तु कोई प्राण बचाने उनके यहाँ जायगा तो वे कापुरुष निकलेंगे ? वसुदेव तो अपने पुत्रोंके पास व्रजपतिके यहाँ भी जा सकते हैं। राम-श्यामका क्या बिगाड़ लिया तुमने कि उनके पिता वहाँ पहुँच जायँ तो कुछ कर लोगे ?'

कंस चुप हो गया। वह चौंक गया। सचमुच्च यदि वसुदेव देवकीको लेकर नन्दरायके यहाँ चले जायँ तो ? शरण लेने जानेपर तो उन्हे वाण, भौम या मगधराज भी अस्वीकार नही करेंगे। क्या रह जायगा तब उनपर अपना अधिकार और वे यहाँसे चले जायँ—उनके पुत्रोपर दबाव देनेका भी कोई साधन नही रह जायगा।

कंसने वही आदेश दिया—वसुदेव-देवकीको कारागारमे पहुँचा देनेका। उसी समय उसके अनुचर दौड पड़े थे। वही कारागार, वही कक्ष। अब भी वसुदेवजी द्वारा सूतिका-रक्षणके लिए रखा उस समयका लोहा रखा था वहाँ। अब भी उस समय जलायी गयी अग्निकी राख पडी थी कक्षमें। हथकडी और बेडीसे जकडे दम्पत्ति फिर वहाँ सात द्वार भीतर बन्द कर दिये गये।

कुशल यह हुई कि बालिका सुभद्रा उस समय शूरसेनजीके यहाँ थी। वह दस वर्षकी बच्ची अब प्राय पितामहके यहाँ ही रहती थी। उस समय उसे माता-पिताके बन्दीगृह ले जानेका कोई पता नही लगा और जब पता लगा—उसने यह भी सुना कि उसके भाई मथुरा आने वाले हैं परसो ही।

केशी गया

कसने देवर्षिके जाते ही चर भेज दिया था केशीको बुलानेके लिए। यह असुर घोड़ा मथुरासे दूर वनमे रहा करता था। केशीका यह निवास-स्थान मनुष्योके कङ्कालोंसे भर गया था। वह उधरसे निकलने वाले मनुष्योको मारकर उनका माँस खा लिया करता था। वह वनमार्ग अगम्य हो गया था। मनुष्य भूले-भटके, अनजान-मृत्युके मारे ही उधरसे निकलने आते।

केशी उस वन तक ही सन्तोप कर ले, ऐसा कहाँ था। वह पृथ्वीपर ही नही, स्वर्ग तक धावा करता था। उसकी हिनहिनाहट सुनायी पड़ते ही देवता स्वर्ग छोडकर भाग खड़े होते थे।

कस केशीको पराजित करके ले आया, अपना प्रधान सेनापति नियुक्त किया उसे और इतना ही आदेश दिया—'मेरे साथ मेरे मित्रोंके राज्यमे उपद्रव मत करना। वन्य अञ्चलके ग्रामोसे आहार लेना और मथुराके इतने समीप रहना कि अवसर आनेपर मैं बुला सकूँ।'

केशीने अरण्यवासी, पर्वतीय लोगोंमे बहुतोको खा लिया था। वह आहार लेने—उत्पात करने भी दूर-दूर तक निकल जाता था, किन्तु रहता मथुराके समीपके काननमें ही था।

आज अकस्मात् कंसका सन्देश पाकर वह दौड़ता आया था। राजसभामें उसे आनेपर कौन रोकता। वह दौड़ता हुआ सीधे सिंहासनके सम्मुख आकर ऐसे खड़ा हो गया, जैसे कंस उसपर सवारी करके अभी ही कही यात्रा करने वाला हो।

'तुम आ गये।' कंसने उठकर उसे थपकी दी—'मित्र! मैंने इतने दिनोपर—जबसे तुम मथुरा आये हो, उसके पश्चात् आज तुम्हारा स्मरण कठिनाईसे किया है। तुमपर ही मैं भरोसा कर सकता हूँ।'

'उच्च स्वरसे केशी हिनहिनाया।' फिर उसने स्पष्ट वाणीमे कहा—'महाराज! आज्ञा दें। आपकी सेवाका सुअवसर मिले, यह मेरा सौभाग्य होगा।'

'केशी ! तुम अद्वितीय शूर हो।' कंसने उसके शरीरपर हाथ फेरते हुए प्रशंसा की उसकी—'तुम प्रस्थान करो कल प्रात और नन्दव्रज चले जाओ। वहाँ दो कुमार हैं—गौर तथा श्याम। उन दोनोको न भी मार सको तो उनमे-से श्यामको अवश्य मार दो।'

'मैं दोनो को मार दूँगा।' केशी बहुत जोरसे हिनहिनाया—'मैंने बहुत सुना है उन दोनोके विषयमे। नन्दव्रजके बहुत गोप आज मेरे आहार बनेंगे।'

'तुम और चाहे जिसे भक्षण कर लेना, किन्तु पहिले उस कृष्णको।' कंसने केशीसे अनुरोध किया—'और सावधान रहना—वह बहुत ।'

'उहँ, आप भी एक बालकका वर्णन करके मुझे डराना चाहते हैं।' केशी चिग्घाडकर मुड़ पडा और दौडता निकल गया राजसभासे ।

'लगता है, यह भी अपनी मूर्खतासे मारा ही जायगा।' कंसने केशी को जाते देखा तो बहुत प्रसन्न नही हुआ। पता नही, क्यो उसे निराशा हुई।

कसके मुखसे जो बात निकल गयी, अचानक उसे सुनकर अन्धकजीने उससे कहा—'भोजराज, तुम यह समझते हो और फिर भी इसी प्रकारका प्रयत्न करते रहते हो। तुम्हारे सब असुर-नायक एक-एक कर मारे जा चुके और जो कुछ हो रहा है पृथ्वीपर और गगनमे, उसे तुम देखते नही हो?'

'आप बहुत शकुनज्ञ कहे जाते है' कसने तनिक व्यग्यसे कहा—'क्या देखते है आप? क्या सम्मति है आपकी?'

'यह राहु स्वाति नक्षत्रका वेध कर रहा है। स्वाति नक्षत्र तुम्हारे कर्म-नक्षत्र चित्रासे दूसरा है और उससे तुम्हारा जन्म-नक्षत्र मृगशिरा अठारहवाँ होता है। मङ्गल सर्वतोभद्र चक्रमे तुम्हारे नक्षत्र चित्रापर वक्री है।' कसने यह राजसभा रात्रिके प्रथम प्रहरमे बुलायी थी। अन्धकजी आकाशकी ओर देखकर कह रहे थे—'बुध पश्चिममे उदित है, यह राजभङ्ग सूचक है। शुक्र सूर्यमार्गपर अतिचारी है। धूम्रकेतुकी पूँछसे भरणी आदि तेरह नक्षत्र विद्ध है।'

आजकल सायकाल धूम्रकेतु दीखने लगा था और लोग प्राय. उसके अशुभ प्रभावकी चर्चा करते थे। अन्धकजीने उसकी ओर सकेत किया, फिर बोले—'आज ही सायकाल सूर्यको मण्डल लगा था। इधर कई दिनोसे सन्ध्याको एक गीदड़ी श्मशानसे निकलकर भयानक शब्द करते हुए

मथुराका चक्कर लगाती है। थोडे समय पहिले ही वज्रपातकी ध्वनि करती उल्का गिरी पृथ्वीवर। अभी तो सूर्य-ग्रहण पडा था, उससे दिनमे रात्रिका अन्धकार हो गया था।'

अन्धकजीने और अशुभ गिनाये—'परसो ही विना मेघोंके बिजली गिरी। कई बार मेघ गड़गड़ाहटके साथ रक्तकी वर्षा करते हैं। देवप्रतिमायें अपने स्थानोसे प्राय. स्वय हट जाती है, ऐसे समाचार वहुत आ रहे हैं। ज्योतिपी इसे छत्रभङ्ग सूचक मानते है। अत कस! मेरी मानो तो वसुदेव-को लेकर नन्दव्रज तुम स्वय कल जाओ और कृष्णसे सन्धि कर लो।'

कसके नेत्र अगारे हो गये। वह उठा और बिना वोले वहाँसे भीतर चला गया।



अक्रूर व्रज गये

कंस राजसभासे उठकर मन्त्रणा-कक्षमे आ वैठा था। अन्धकजीकी वातसे सशङ्क अपने पुरोहित सत्यकजीको वुला उसने अपना स्वप्न सुनाया—'स्वप्नमें एक काली, विधवा, शूद्रा स्त्री काले वस्त्र पहिने, खुलेकेश, कटी नाकवाली मेरा आलिङ्गन करना चाहती थी। मेरे मस्तक और छातीपर ताडके पके फल सशब्द गिर रहे थे। वह काली स्त्री मुझे तेल लगा रही थी। एक मैला-कुचैला म्लेच्छ, विकृताङ्ग, रुक्ष केश मुझे आभूपण बनानेको फूटी कौड़ियाँ दे रहा था। एक सधवाने क्रोधमे भरकर भरा घडा पटककर फोड़ दिया। एक ब्राह्मण अपनी पहिनी रक्तचन्दनकी माला मुझे दे रहा था। मुझे सूखे काष्ठकी ढेरी, वन्दर, कटे नख दीखे। फन्दा लिये यमदूत दीखे। एक नङ्गी स्त्री खुले केश नृत्य करती थी। कोयले लिये नग्न स्त्रियाँ मेरे अङ्गोंमे भस्म लगाती थीं। विवाहोत्सव हो रहा था। एक नग्न पुरुप रक्त-वमन करता नृत्य करता था। नरमुण्ड-माला लिये नग्न पुरुप दीखा। उसका सिर कटा था। उल्कापात दीखा। पर्वत ढहते दीखे।

पुरोहित सत्यकजी स्वप्न सुनकर स्तब्ध रह गये। अन्तमे वोले—'महेश्वरका पूजन करो। महेश्वर धनुपका यज्ञ करके उसे उठाओ। लेकिन सावधान! धनुप किसी भी प्रकार टूट गया तो यजमानका नाश निश्चित है।'

चिन्तित कसने अपने प्रमुख मन्त्रियो, सहायकोको तो बुलाया ही, अपने दानाध्यक्ष अक्रूरजीको भी वही बुला लिया। उसके सिरमे जैसे आँधी चल रही थी—'अब इस विपत्तिको समाप्त ही कर देना है। इन विरोध करने वाले यादवोंको—सभी प्रतिपक्षियोको वह सर्वथा समाप्त कर देगा अब। उसने जो उनके साथ कुछ मृदुल व्यवहार किया, उससे ये अतिशय धृष्ट हो गये हैं।'

'मुझे गोपोके यहाँ पलनेवाले बालकोंसे सन्धि करनेकी सलाह दी जाती है।' क्रोधसे उसका अङ्ग जल रहा था। उसने मन्त्रियोके अतिरिक्त चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल, कूट आदि मल्लोको तथा कुवलयापीड गजके प्रधान महावतको जो मथुराकी गजशाला का अध्यक्ष भी था, बुला लिया था।

'आप सब मेरी बात ध्यानसे सुने!' कंसने सबकी ओर देखा एक बार--'वसुदेवके पुत्र राम और कृष्ण नन्दव्रजमें हैं। उनके द्वारा ही मेरा मृत्युका विधान देवताओने किया है। उनकी वहुत दिन उपेक्षा की गयी, अब उन्हे और अवसर देना उचित नही है। मैं उनको यही बुला रहा हूँ।'

वहाँ नन्दव्रजमें वे अपने स्थानपर सबल हैं। मथुरा आवेंगे तो यहाँ कस और उसके अनुचर प्रबल रहेगे, यह कसका सोचना उसके अनुरूप ही था।

'वे यहाँ आ जायें तो उनको मल्लयुद्धमे लगाकर आप लोग मार डालें।' कसने आज्ञा दी —'मल्लक्रीडाके लिए मल्लशाला सजायी जावे। वहाँ नागरिको तथा आगन्तुकोंके बैठनेके लिए दो दिनमे उपयुक्त विस्तृत मञ्च बना दिये जावें। दर्शकोंके—स्त्रियोके भी बैठने और मल्लक्रीडा देखनेकी उचित व्यवस्थाकी जावे। दर्शकोंके जल पीने, लघ्वाहार की भी वहाँ व्यवस्था करो। नगरके लोगोको, समीपके जनपदोके लोगोको बुलाओ! सव आकर मल्लक्रीडा-महोत्सव देखें, यह राजाज्ञा घोषित कर दो।'

'स्वच्छन्द मल्लक्रीडा होगी?' चाणूरने स्पष्टीकरण चाहा। वैसे भी चाणूर-मुष्टिक अन्यायपूर्वक मल्लयुद्धमे अपने अनेको प्रतिद्वन्द्वियोका वध कर चुके थे। इसके लिए उनका अपयश सर्वत्र फैला था। उनके साथ मल्लयुद्ध करनेका साहस मल्ल नही करते थे।

'सर्वथा स्वच्छन्द मल्लक्रीडा—कोई नियम बन्धन नही रहेगा।' कसने प्रोत्साहन दिया—'घोषणा कर दी जाय कि मल्लयुद्धमे उतरनेपर मल्ल सब प्रकारके शारीरिक आघात कर सकेंगे।'

'महामात्र ! तुम विशेष सावधान रहो।' कंसने अपनी गजसेनाके नायकसे कहा—'कुवलयापीडको भरपूर सुरा पिलाकर उसे मल्लशालाके द्वारपर ही रखना। मेरे वे शत्रु आवें तो उनको गजके द्वारा कुचल दो द्वारपर ही।'

'इसी चतुर्दशी—शिवरात्रिको ही यह महोत्सव होगा। इस दिन भगवान पिनाकपाणिके धनुषकी पूजा होगी पहिले और तब सबके सम्मुख मैं उस धनुषको उठाऊँगा।' कंसने जनसमूहपर अपना प्रभाव स्थापित करनेका मार्ग निकाल लिया था—'भगवान आशुतोष भूतेश्वरको पवित्र पशुओंकी बलि दो प्रात काल। धनुपोत्तोलनके अनन्तर मल्लक्रीड़ा हो। पुरोहित सत्यकजीने धनुष-यज्ञकी आज्ञा दी है।'

कंसकी योजना थी कि गोप शिवरात्रिके उपवाससे उस दिन कुछ तो दुर्बल रहेंगे ही। धनुपोत्तोलनके समय सबका ध्यान इस ओर होगा, उसी समय राम-श्याम रङ्गद्वारपर आवें, ऐसी व्यवस्था कर रखी जायगी। महागज उन पर आक्रमण करेगा, तब रङ्गशालामें किसीका ध्यान द्वारकी ओर नहीं जायगा। कदाचित इससे बचकर आ गये रङ्गशालामे तो अपने मल्ल हैं ही। यदि वे द्वारपर ही समाप्त हो गये तो रङ्गशालामे एकत्र यादवों तथा नन्दादिको वहीं मरवा दिया जायगा। उनको वहाँसे निकलनेका अवसर नहीं मिलेगा।

इसी समय अक्रूरजीने वहाँ प्रवेश किया। उनको देखते ही कंस उठा सिंहासनसे। उसने उठकर अक्रूरजीका हाथ पकडा और उन्हें लाकर अपने समीप बैठाया। अक्रूरजी बोले—'नीच पुरुषोंका अधिक आदर देना, बहुत गूढ अर्थ रखता है और ऐसे समय उनसे विशेष सावधान रहना चाहिये।'

'दानपति ! यादवोंमे केवल आप मेरे हितैषी है। आपपर ही मैं भरोसा कर सकता हूँ। भोज, वृष्णि, अन्धकादि कुलोंमे आपसे अधिक कोई मेरा हितैषी नही।' कंसने बहुत नम्रतासे कहा—'देवराज इन्द्र जैसे उपेन्द्र-वामनका आश्रय लेकर अपने महत्त्वके कार्य बना लेते है, वैसे ही मैंने अत्यन्त महत्त्वके कार्यके लिए आपका आश्रय लिया है। आप मेरी मैत्रीका निर्वाह करेंगे—ऐसा मुझे भरोसा है। मेरे कार्यकी सिद्धि सर्वथा आपपर निर्भर है।'

अक्रूरजी बोले नहीं। उन्होने केवल कंसकी ओर देखा इस प्रकार मानो वे कार्य जानना चाहते हैं।

'नन्दव्रजमें वसुदेवके पुत्र राम और कृष्ण हैं। आप कल प्रात मेरे रथसे चले जाये वहाँ और उन दोनोको अविलम्ब यहाँ ले आवे। परसो वे यहाँ आ जाये, ऐसा करे।'

अक्रूरजीने फिर कसकी ओर देखा। अन्तत उन्हे यह तो जानना ही चाहिये कि क्या कहकर वे उन बालकोको यहाँ न आवेंगे।

'आप जानते ही है कि विष्णुके आश्रित रहनेवाले देवताओंने उन दोनोके द्वारा मेरी मृत्यु निश्चित की है।' कसने अक्रूरपर अपना पूरा विश्वास दिखलाते हुए उन्हे अपनी पूरी योजना सुना दी—'वे दोनो यहाँ आ जायेंगे तो मेरा महागज कुवलयापीड कालके ही समान है, उससे मरवा दूँगा दोनोको। यदि उससे किसी प्रकार बच गये तो चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशलादि मल्ल है, ये मार डालेंगे उन दोनोको।'

'देखिये अक्रूरजी! वे दोनो मर जायेंगे तो उनके दु खसे वसुदेवादि स्वत अधमरे हो जायेंगे। वसुदेव, उनके सब भाई, भोज-वृष्णि-अन्धकादि वशके उनके समर्थक तथा नन्दादि गोपोको मैं वही रङ्गशालामे ही मार दूँगा।' कसने मुट्ठियाँ बाँध ली—'मेरा पिता उग्रसेन वृद्ध हो गया, किन्तु राज्यासनका लोभ उसका गया नही। उसे और उसके भाई शूरसेनको भी मार दूँगा।'

'केवल उस नन्दपुत्र कहे जाने वाले कृष्णसे मुझे भय है। उसने भी मेरे समान इन्द्रको पराजित किया है। इन्द्र-यमादिको मैं पुन. पराजित कर लूँगा। ब्रह्मा और शिव तपस्वी है। विष्णु सागरमे डूबे रहते हैं। इनसे मेरा कोई प्रयोजन नही है।'

'आप तो मेरे मित्र है।' कसने अक्रूरजीके कन्धेपर हाथ रखा—'इन सबको मार दूँ तो यह पृथ्वीका राज्य मेरे लिए निष्कण्टक हो जायगा, क्योंकि मगधराज जरासन्ध मेरे श्वसुर है। वानर श्रेष्ठ द्विविद मेरे प्यारे सखा है। शम्बर, नरक, वाण भी मुझसे ही मैत्री रखते हैं। इन सबको साथ लेकर पृथ्वीके देवपक्षीय सभी नरेशोका हम सहार कर देंगे। सम्पूर्ण धराका स्थायी आधिपत्य भोगेंगे हम। पृथ्वी ही क्यो त्रिलोकीका राज्य हमारा हो जायगा। इन्द्र सहित देवताओको बाँध लेंगे। कुवेरको मेरु पर्वतकी दुर्गम कन्दरामे फेक देगे।'

'राजन्! आपने विचार तो बहुत दूर तक सोचकर किया है—अपने अमङ्गलको, अहितको मिटा देनेका आपका निर्णय समझदारीका है, किन्तु

सफलता-असफलतामे समान भाव रखकर प्रयत्न करना चाहिये। सफलता सदा दैवपर निर्भर रहती है।' अक्रूर शान्त स्वरसे बोले—'मनुष्य बडी-बड़ी अभिलाषाये कर लेता है, पर भूल जाता है कि वह भाग्यके हाथकी कठपुतली है। अत. उसे हर्ष अथवा शोक भोगना पड़ता है।'

'आप इसकी चिन्ता न करे।' कंस हँसा। वह जानता है कि अक्रूरजी शान्त स्वभावके हैं। वह उन्हे भाग्यवादी-निराशावादी ही मानता था। लेकिन इस समय अपना काम आ अटका था। कोई ऐसा चाहिये जिसपर नन्दादि विश्वास करे। अक्रूर वसुदेवजीके कुल-बन्धु हैं। धार्मिक प्रख्यात हैं। कसके राज्यमे भी दानाध्यक्ष होनेके कारण पीड़ितो-दु खियो, असहायोको राजकोपसे सहायता दिलाना ही इनका कार्य रहा है। कोई क्रूरता या कंसकी किसी क्रूरताके समर्थनका आरोप अक्रूरपर नही है। इनपर कोई अविश्वास नही करेगा। यह सब सोचकर ही कंसने उन्हे चुना था। वह बोला—'आप तो नन्दव्रज जाकर उन दोनो बालकोको शीघ्र यहाँ ले आवे।'

अब तक भी बात कुछ पूरी नही हुई। अक्रूरने फिर कसकी ओर देखा—'अन्तत. वे वहाँजाकर कहेगे क्या ?'

कस जानता है कि अक्रूर अपनी ओरसे झूठ नही बोलेंगे, न बहाना बनाना उन्हे आवेगा। अत. उसने कहा—'चतुर्दशीको धनुप-यज्ञ होगा। धनुपका पूजन करके मैं धनुपोत्तोलन करूँगा। इस अवसरपर नगर भरपूर सजाया जायगा। नन्दसे कहिये कि मैंने दोनो कुमारोंको धनुष-यज्ञ तथा नगरकी शोभा देखने बुलाया है। नन्दादि गोपोको भी उपहार लेकर इस अवसरपर अवश्य आना चाहिये।'

'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' अक्रूरजीने इतना ही कहा। उन अल्पभाषीका इतना ही कहना पर्याप्त था। कससे अनुमति लेकर वे अपने गृह चले गये। कंसने कह दिया कि उसका रथ प्रात उनके द्वारपर प्रस्तुत मिलेगा।

अक्रूर लौट आये

नन्दग्रामसे अक्रूरजी लौट आये—कंसके भेजे जाकर वही थे जो लौट आये थे। केशी नहीं लौटा, कंसके पूछनेपर अक्रूरने कहा था—'वे एकादशीको वहाँ व्रजसे पहुँचे थे। कुछ मनस्थिति ऐसी हो गयी कि चले थे मथुरासे प्रातः, किन्तु शामको वहाँ पहुँच सके। केशी वहाँ पहुँचा या नहीं, यह पूछना उन्हें स्मरण नहीं रहा और वहाँ किसीने इसकी चर्चा भी नहीं की।'

कंसको वैसे उसके चरोंने समाचार दे दिया था कि केशी वहाँ सूर्योदयके समय पहुँच गया था। उसकी भी वही गति हुई जो व्रज जाने वाले और असुरोंकी हुई थी। श्रीकृष्णने उसे भी सहज ही मार दिया था। उसका शव जनपदसे दूर घसीटकर गोपोंने गड्ढेमें डाला सूखी लकड़ियाँ भरकर और फूँक दिया उसे।

'ऐसा ही कुछ होगा, यह अनुमान तो मैंने पहिले ही कर लिया था।' कंसने ऊपरसे यह कहकर अपनेको निश्चिन्त प्रकट किया, किन्तु उसके भालपर स्पष्ट चिन्ताकी रेखायें उभर आयी थीं।

'अक्रूरजीका क्या हुआ?' कंसने कल अनेक बार पूछा था। उसने नगरसे बाहर तक कई बार चर भेजे थे—'अक्रूरजीको वहाँ प्रातः ही पहुँच जाना चाहिये था। वे केशीसे थोड़े ही पीछे पहुँचे होंगे। सायंकाल तक उन्हें आ जाना चाहिये।'

कंसकी उतावलीके अनुसार तो कुछ होना नहीं था। चर बार-बार एक ही सम्वाद देते थे—'रथके लौटनेका कोई चिह्न दिखलायी नहीं देता।'

'कहीं अक्रूरने वहाँ तात्पर्य प्रकट न कर दिया हो।' कंस रातमें बहुत चिन्तित रहा। उसे पूरी रात नींद नहीं आयी—'अक्रूर वैसे भी धार्मिक है और झूठ नहीं बोल सकता। वह वसुदेवका भाई भी लगता है। मैंने उसपर भरोसा करके अच्छा नहीं किया।'

'वे दोनों कम चतुर तो नहीं हैं।' कंसकी चिन्ता अनेक विकल्प उत्पन्न करती है—'उन्होंने अक्रूरके वहाँ आने, मेरे बुलानेका तात्पर्य अनुमान कर लिया हो तो?'

राम-श्याम आये

उस दिन मथुरामें एक ही चर्चा थी—राम-कृष्णकी चर्चा। प्रातःसे लोग इन्ही दोनोके चिन्तन और उनके गुण-वर्णनमे लगे थे। कसके अनुगतोकी चर्चाके विषय भो यही थे। यह दूसरी वात है कि उनकी चर्चामे अपशब्द, निन्दा वहुत थी और 'देख लेंगे' का भाव था।

कस अपने भीतरके भयको दूर करनेके लिए पूरे दिन अपनेको वहुत व्यस्त बनाये रहा। प्राय वह नगर-निरीक्षण करने निकल गया था। नगरके राजमार्ग, गलियाँ भी सिञ्चितकी गयी थी। स्थान-स्थानपर तोरणद्वार बनाये गये थे। भले कस समझता हो कि उसके धनुष-यज्ञके लिए नगर-सज्जा हुई है, किन्तु योगमाया ही तो जन-मानसकी प्रेरिका हैं। मधुपुरीके वास्तविक स्वामी आज पधारने वाले है, अत नगर तो सज्जित होना ही चाहिये था उनके स्वागत मे।

नवीन पताकाये फहरायी गयी गृहोपर सुसज्जित ध्वजदण्डमे। नागरिकोंने अपने द्वारके सम्मुख मार्गपर विविध चित्राङ्कन किया चूर्ण, हरिद्रादिसे। द्वारोके दोनो ओर कदली-स्तम्भ खडे किये। आम्रपल्लव मण्डित जलपूरित कलशोपर नारिकेल रखा। द्वारपर तोरण लटकाया।

'वसुदेवके महापराक्रमी पुत्र आवेंगे आज।' अधिकाश नागरिक अपने घरोमे स्पष्ट कह रहे थे—'उनके स्वागतकी पूरी सज्जा करो।'

बहुत-से विप्रोने ही नही, नगरके प्रमुख व्यवसायीजनोने भी स्वागतका सम्भार सजा लिया था। दोनो कुमार यदि उनके द्वारके सम्मुखसे निकले तो वे उनका पूजन करेंगे— उन्हे उपहार अर्पित करेंगे।

'उहँ, कस कुछ कहे ही तो वहाना अच्छा है।' नागरिकोने परस्पर हँसकर कहा था—'वे आपके भागिनेय है। आपने उन्हे अपना निजी स्यन्दन भेजकर आमन्त्रित किया। आप स्वय नगर-सज्जित करनेका आदेश देकर सज्जा देखने निकले। हम महाराजके ऐसे आदरार्हका स्वागत न करनेका अपराध कैसे कर सकते थे।'

कसका भय लोगोंके हृदयमे अवश्य था, किन्तु पता नही क्यो वह

बहुत कम—सुप्तप्राय हो गया था आज। आज तो व्रजसे आनेवाले अलौकिक कुमारोके दर्शनके लिए लोग व्याकुल थे।

कसने दोपहरसे पूर्व ही नगर देख लिया। अनेक स्थानोपर उसने विशेष सज्जाके आदेश दिये। जब अक्रूरने सुना दिया कि वे दोनो कुमार आ गये तो वह रङ्गशाला देखने चला गया, किन्तु वहाँसे शीघ्र लौट आया। आज वह कही भी उन दोनोके सम्मुख नही पडना चाहता था। क्या पता कि वे नगर देखने निकले या रङ्गशाला ही देखने आ पहुँचे।

रङ्गशाला अब भी सजायी जा रही थी। स्वर्णके घटोमे जल भरकर स्थान-स्थानपर रखा जा रहा था। वहाँ कसके सेवक जल पिलाने बैठेंगे। कसकी योजना थी कि सब सैनिक, सशस्त्र इन सेवाओमे कल रहे। वे प्रेक्षागार के प्रत्येक नागरिकपर दृष्टि रखेंगे और उनकी उपस्थितिपर कोई आपत्ति भी नही कर सकेगा।

फलोके भरे टोकरे स्थान-स्थानपर रखनेकी व्यवस्था थी। वहाँ कई-कई सैनिक-सेवक लोगोको आग्रह करके फल देनेके लिए खडे रहते थे।

पूर्वकी ओर पर्याप्त ऊँचाईपर कसके बैठनेका मञ्च बना था। उसपर जालीदार पर्दा लगाया गया था। मालाये, वन्दनवार पूरी रङ्गशालामे लगी थी। कसने घूमकर एक बार सब देख लिया था।

मल्लोंने अखाडेकी मिट्टीमें पर्याप्त गोबरका चूर्ण मिलाया था और अनेक सुगन्धित द्रव्य डाले थे। वह मृत्तिका अत्यन्त स्निग्ध और कोमल बना दी गयी थी। कस जब रङ्गशालामें आया तो मल्लोके नायक एव शिक्षक कूटने उसका स्वागत किया था। कस उसकी पीठ ठोककर, कल सतर्क रहनेको कहकर चला गया वहाँसे।

'वे यहाँ आवेगे भी या नही ?' नागरिकोकी यह चर्चा और आशङ्का तभी समाप्त हो गयी जब पता लगा कि व्रजराज गोपोके साथ आम्रोपवनमे आ गये।

'कस क्या करेगा इनके साथ ?' प्राय लोग अपने विश्वासके लोगोसे पूछते थे।

'ये क्या करेगे कसके साथ—यह पूछो।' अनेकोने हँसकर कह दिया—'कस क्या करना चाहता है, वह तो पता ही है। उसने इनके जन्मसे अब तक इनको मारनेका ही तो प्रयत्न किया है। कल वह अपने

'अक्रूर उन्हे मेरे रथपर बैठाकर कही दूर सुरक्षित स्थानपर चला जाय ?' कस क्रोधसे काँपता है। ऐसा कुछ हुआ तो कल वसुदेव-देवकीके साथ अक्रूरके पूरे परिवारको वह मार देगा।

'अक्रूरको वे मारेंगे तो नही।' कसको यह आशङ्का नही है—'उसे वे बलपूर्वक वही रोक ले और स्वय कही दूर चले जायँ ? उसे बलात् साथ आनेको विवश कर दे ?'

कस चाहकर भी इतनी भयङ्कर कल्पना नही कर पाता कि वे अक्रूरके आनेका तात्पर्य जानकर उसे मारने मथुरा आ धमकेंगे। वह नही समझता कि वे सीधे कोई आक्रमण आज ही कर देंगे।

अक्रूरने जब आकर कहा—'मै सायंकाल पहुँच सका वहाँ। दिनभर वनमे रह गया।' कस उच्च स्वरसे हँसा था। अक्रूरने पहुँचते ही यह तो पहिली बात कही थी—'वे दोनो भाई आ गये। नगरसे बाहर आम्रोद्यानमे नन्दरायजी गोपोके साथ रुके है। दोनो भाई रथसे वही उतर गये।'

'आप मार्ग भटक गये होगे!' कसने अक्रूरको कोई उलाहना नही दिया। अक्रूरजी भी उसे अभिवादन करके अपने भवन तत्काल चले गये।

'यह वृद्ध भी अद्भुत है।' कसने अक्रूरको जाते देखकर स्वय अपने आपसे कहा—'ऐसा भोला-मूर्ख कि रथसे उन दोनोको लेकर चला और मथुरा गोपोके छकडोसे भी बहुत पीछे पहुँच सका है। यह सोचता होगा कि मैं सब यदुवशियोको मार दूंगा और इसका ऐसे ही सम्मान करता रहूँगा।'

कसको प्रात गोप आवेंगे ऐसी आशा नही थी। जब वे पिछले दिन—रात्रिके प्रथम प्रहर तक नही आये तो वह समझ गया कि गोप अब कल प्रात ही चलेंगे। वे दोनो भी घरसे कुछ खा-पीकर ही निकलेंगे।

'गोपोको मैंने उपहार लेकर आनेको कहा है।' कस अपनी पिछले दिनकी अकुलाहटपर स्वय हँसा—'वे उपहारमे दूध, दही, नवनीत, घी ही तो लावेंगे। अक्रूरके पहुँचने तब दूध उनके यहा जमाया जा चुका होगा कल, और दधि-मन्थन तो गोपघरोमे प्रात. ही हो जाता है। केवल नवनीत और घी लेकर तो वे यहाँ आनेका साहस नही करेंगे। आज प्रात.से पहिले वे चल ही नही सकते थे।'

मध्याह्नसे पहिले ही कसको समाचार मिल गया—'वहुत धूलि उड़ती दीख रही है। लगता है कि गोपोंके छकडे बड़ी सख्या मे आ रहे है।'

'व्रजपति नन्दराय गोपोके साथ आ गये।' दूसरा समाचार मिला—'उन्होने आम्रोपवनमे छकडे खोले हैं अपने। वे वहाँ राम-कृष्णके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे है। गोप उनके आनेपर उनके साथ ही मध्याह्न भोजन करनेको उत्सुक हैं।'

'अक्रूर कहाँ रह गया ?' कस झल्लाया था। वह राजसभामें बैठा-बैठा अक्रूरके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वैसे उसकी आकुलता मिट गयी थी—'वे दोनो चल तो पडे ही हैं। अक्रूर बडा पुजारी है। कही मध्याह्न स्नान-सन्ध्या करनेमे लग गया होगा।'

'वे दोनो आ रहे है।' कसका हृदय कुछ अधिक वेगसे धडकने लगा है। उसके भीतरका भय अब साकार हो गया है। वह अपनेपर बहुत दवाव डालकर उस भयको दबाये है। वह अपनेको समझाता है—स्वय उसीने बुलवाया है दोनोको। एक रातकी तो बात है—कल उसके भयका यह आधार ध्वस्त हो जायगा।

'व्रजपति आ गये मथुरा गोपोके साथ।' नगरमे यह समाचार शीघ्र फैल गया था। नागरिक बहुत उत्सुक थे तभीसे, जबसे सुना था कि कसने दोनो वसुदेव-पुत्रोको बुलानेके लिए अक्रूरको व्रजेशके यहाँ भेजा है। व्रजराजके आगमनका समाचार पाकर नागरिकोमे भय, स्नेह, उत्सुकताकी मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई।

अक्रूर आ गये। नागरिकोने देखा कि रथ खाली है। राम-कृष्णको उतारकर वे चुपचाप मनमारेसे राजसदन गये और वहाँसे घर चले गये।



सब असुर एकसाथ झोक दे सकता है इनपर, किन्तु उसके असुर-नायक अब बचे ही कितने हैं? चुन-चुनकर वह व्रज भेजता गया और जो गया उसे ये यमलोकके मार्गपर लगाते रहे। कल लगता है कि कसकी बारी आ गयी है।'

'वे आ गये!' मथुरामे यह सम्वाद बडी शीघ्रतासे फैल गया। लोगोने दौडकर—भले फुसफुसाकर दूसरेसे कहा; किन्तु समाचार तो पूरे नगरको कससे पहिले मिल गया था। कसका भय इतना ही काम कर सका कि लोग आम्रोपवनमे दौडे नही पहुँचे। यो लोगोका हृदय व्याकुल था वहाँ जानेको।

सब मानते है, किन्तु बालक नही माना करते। बालकोका मानस भय या आतङ्क देर तक पकडे नही रह सकता। बालकोकी एक बड़ी भीड़ आम्रोपवनके समीप पहुँच गयी। मध्याह्न भोजन तक उनमे-से बहुतोंने विस्मृत कर दिया था। सङ्कोचके कारण वे दूर ही दूर रहे, किन्तु राम-श्यामका समाचार उनके द्वारा मिलता रहा उनके घरके लोगोको।

वे आये और उनके मित्रोने जो गोपोके साथ आये थे, उन्हे घेर लिया। दोनो कुमार सखाओके साथ स्नान कर आये यमुनाजीमे। नन्दबाबा और गोपोने भी साथ ही स्नान किया। बालकोको शीघ्र ही जलसे निकलनेको बाध्य किया। ऐसे भी फाल्गुनमे यमुना-जलमे देर तक तो नही रहा जा सकता था।

सब गोप और गोप-बालक एकसाथ भोजन करने बैठ गये। वे अपने साथ ही छकडोमे भोजन-सामग्री ले आये थे।

'बडे सुन्दर है। खूब हँसते है और हँसाते हैं सबको।' बालकोने मथुराके घरोमे जाकर सुनाया—'बूढे गोपोको भी हँसा देते है। अपने हाथमे मित्रोको ही नही, गोपोको भी खिलाने लगते हैं। छोटे कुमार तो बहुत ही चञ्चल है। बडे गम्भीर लगते हैं, किन्तु दोनो बहुत अच्छे हैं।'

बालक घरोको दौड जाते थे और थोडी देरमें फिर लौट आते थे; बालकोको दूरी, थकावट आदिका कहाँ पता लगता है। वे आम्रोपवनके आसपास ही घिरे रहे।

'वे आ रहे है। नगरमे आ रहे हैं।' बालक दौडे अपने-अपने घरो को। 'उनके साथ उनके सब मित्र नगर देखने आ रहे हैं।'

भोजन करके थोड़ा ही विश्राम किया राम-श्यामने। शीतकालके दिन होते ही कितने बड़े है। मध्याह्न बीत ही चुका था। दिनका तीसरा प्रहर भी बीतने ही वाला था। दोनो भाइयोने बाबासे अनुमति ली—'हम लोग नगर देख आवे ?'

'तुम्हारे साथ किसी वयोवृद्ध गोपको कर देते है।' बाबाने कहा—'अथवा मैं चलता हूँ।'

'बाबा, हम सब शीघ्र आ जायेंगे। दाऊ दादा तो साथ ही है।' श्याममुन्दरने किसी भी बडे गोपको साथ लेनेमें अनिच्छा प्रदर्शित की।

'बालकोको घूम आने दो।' सन्नन्दजीने कहा—'इन्हें सङ्कोच होगा हममे-से किसीके जानेसे। वैसे भी मथुरा इनके लिए अपरिचित है। नगरमें ये सङ्कोची बालक किसीसे बोल नही सकते। अपने-आप घूम-घामकर लौट आवेंगे।'

'किसीकी कोई वस्तु छूना मत। कोई कुछ दे तो भी मत लेना।' बाबाने समझाया—'किसी भवन या दूकानमें मत घुसना। स्थान-स्थानपर विशेष प्रकारके वस्त्र-कञ्चुक पहिने राजसेवक मिलेगे। उनमे कोई कुछ कहे तो मान लेना। उनका अपमान मत करना। नगरमे दौडना-चिल्लाना मत। शीघ्र ही लौट आना तुम लोग। वहाँ परस्पर भी मत झगडना और किसी नगरवासीसे तो झगडना ही नही।'

'मैं कहाँ किसीसे झगड़ता हूँ।' कृष्णचन्द्रने मुख बनाया—'मैं तो अभी थोडा-सा नगर देखकर आ जाऊँगा।'

व्रजपतिको सन्तोष नही है। उनको बहुत कुछ बालकोको समझा देना आवश्यक लगता है; किन्तु बालक तो शीघ्रतामें ही रहते हैं। वे बडोकी शिक्षा ध्यान देकर कहाँ सुनते है।

नील-पीत वसन, मयूरपिच्छधारी, वनमाली दोनो कुमार गोप-बालकोंसे घिरे निकल पडे आम्रोपवनसे। उन्होने व्रजपतिको, गोपोको आश्वासन दे दिया कि सीधे मार्गसे जाकर उसीसे लौट आवेंगे।

व्रजेश और गोप-बालकोको खडे-खडे देखते रहे। अब जब तक ये बालक लौटकर न आवें, इन्हीमे मन-प्राण लगा रहेगा। गोपोको छकडेके चरते बैलोकी भी अब सुधि नही आती है और बालक तो नगरकी ओर हँसते-बोलते जा रहे है।

———

नगर-दर्शन

मथुरा उस समयके दिग्विजयी राजाकी राजधानी थी। उस समयके अनुरूप सुदृढ रचना थी मथुराकी। बहुत ऊँचे स्फटिक (सङ्गमर्मर) के गोपुर बने थे नगरमे चारो ओर चार। उनगोपुर-द्वारोमे स्वर्णके भारी किवाड लगे थे और स्वर्णका ही तोरण (द्वारका ऊपरी भाग) बना था। तोरणद्वार का प्रकोष्ठ भाग ताम्रमण्डित था।

तोरणद्वारसे नगरके चारो ओर ऊँची लाल पत्थरकी परिखा बनी थी। इस परिखापर चढ जाना या इसे लाँघ लेना किसी मनुष्यके लिए सम्भव नही था। जब द्वार खुले हो तभी नगरमें प्रवेश किया जा सकता था। प्राय नगर-द्वार खुले ही रहते थे। केवल युद्धकालमे उन्हे बन्द रखा जाता था और उनपर सैनिक नियुक्त किये जाते थे।

नगर-परिखाके बाहर द्वारोके समीप पुष्पोद्यान थे और उनसे लगे हुए उपवन थे। इन उपवनोंमे-से ही आम्रोपवनमे श्रीव्रजराज गोपोके साथ अपने छकड़ोको लेकर ठहरे थे।

नगरमें तोरणद्वारसे प्रवेश करते ही राजपथके दोनो ओर ऊँचे भवन थे। उन भवनोमें किसीका शिखर स्वर्ण-मण्डित था और किसीका रजत-मण्डित। उनपर स्वर्ण-कलश सुशोभित थे जो दूरसे चमकते रहते थे। भवनोंके ऊपरी भागमे अनेक प्रकारके कलामण्डित छज्जे थे।

मार्गके दोनो ओर श्रेणीबद्ध बने इन भवनोंके नीचेके भागमें कही दूकानें थी, कही सभागृह थे और कहीं लोगोंके बैठनेके लिए चबूतरे बने थे। इन वेदियों (चबूतरो) मे कोई वैदूर्य मणि जटित थी, कोई हीरक जटित, कोई स्वच्छ स्फटिककी, कोई मूँगेसे बनी, कोई मोतियो या मोतियोंके सीपसे अथवा पन्नासे बनी थी।

भवनोंके ऊपर ध्वजदण्ड सोने, चाँदी या रत्नोंसे मण्डित थे और उनमे अनेक रङ्गोंकी पताकायें फहरा रही थी। इन पताकाओके रङ्ग तथा उनमें बने चिह्नोंसे भवन किस वर्णके व्यक्तिका है, यह पता लग जाता था। जैसे ब्राह्मणोंके भवनोपर लाल या गैरिक पताकायें थी और

उनपर स्रुवा, शङ्ख या अग्निकुण्ड बने थे। क्षत्रियोके भवनोपर श्वेत पताकाये अनेक चिह्नोसे युक्त थी। वैश्य पीली पताका भवनपर लगाते थे।

भवनोमे गवाक्षोंसे अगुरुका सुगन्धित धुआँ निकलता रहता था। इससे गवाक्ष धूम्रवर्ण हो गये थे। नागरिकोंने मयूर तथा कवूतर पाल रखे थे। वे भवनोपर वोलते-उडते थे अथवा मार्गमे चबूतरोपर जहाँ-तहाँ उनके लिए पडे अन्नपर एकत्र थे और दाना चुग रहे थे।

पूरा मार्ग और गलियाँ भी धोयी गयी थी। चौराहोपर पुष्पमाल्य, दूर्वांकुर, लाजा, अक्षतसे चतुष्पथ-पूजन हुआ था और इनसे कलापूर्ण चित्राङ्कन किया गया था। भवन-द्वारोपर जलपूर्ण कलश सजे थे। उन कलशोपर स्वस्तिक चिह्न वना था और दही, चन्दन, रोली, हरिद्रासे उनका पूजन हुआ था। उनपर दीपक जल रहे थे। पुष्प, धूप, फल आदिसे वे कलश सज्जित-पूजित थे। द्वारोपर फलसहित केलेके खम्भे खडे किये गये थे और नवीन हरे वाँसोमें झण्डे लगाये गये थे। द्वारोपर वस्त्र-पट्टिकामें स्वागत वाक्य अङ्कित थे।

इतना सुसज्ज नगर गोप-वालकोंने देखा, किन्तु उन्हे इतने ऊँचे भवन, यह सब कृत्रिम श्रृङ्गार कुछ अधिक आकर्षक नही लगा। वे फल-भारसे झुके वृक्षो, पुष्पोसे लदी लताओ, कूजते पक्षियों और गुञ्जार करते भृङ्गोंसे मञ्जु कुञ्जोमें खेलने वाले वालक—कईने परस्पर कहा भी—'नगरके लोग इन पिंजडोसे गृहोमे रह कैसे पाते हैं ?'

सखाओंसे घिरे वलराम-श्रीकृष्ण तो ऐसे चल रहे थे मानो राजकुमार पैदल घूमने निकले हो। मथुराका कोई वैभव दृष्टि उठाकर देखने योग्य भी उन्हे नही लगा। मत्तगयन्द गतिसे वे चले जा रहे थे। दृष्टि उठाकर जिधर देख ले, वह गृह—वह दिशा कृतार्थ हो जाय, इतना गौरव था उनमे।

मथुराके नागरिक समझते थे—'गोप वालकोके साथ आ रहे हैं। वे वालक वनमे ही रहे हैं। नगरकी शोभा देखकर चकित-थकित रह जायँगे। इधर-उधर उत्सुकतासे देखेंगे और पदार्थों—गृहो आदिके सम्बन्धमे पूछेंगे।'

ऐसा तो कुछ भी नही हुआ। इतना गौरव, इतनी महिमा दोनो भाइयोंमे ही नही, उनके मित्रोमें भी है, यह नागरिकोकी कल्पनासे परेकी वात है। वे तो देखते रह गये—स्वय अभिभूत-चकित रह गये।

'वसुदेवजीके दोनो पुत्र राजपथसे आ रहे हैं।' नगरकी नारियोने सुना और वे दौडी। सबके भवन तो राजपथपर नही थे। नगरके दूसरे भागोकी स्त्रियाँ राजपथपर स्थित अपने परिचितोंके भवनोमें आगयी। बन्धुओ, कन्याओका समूह गवाक्षोपर एकत्र हो गया। वृद्धाये द्वारोंपर खड़ी हो गयी।

'वे भुवनमोहन—त्रिभुवन सुन्दर हैं।' वहुत सुना था। आज उस छविको भले क्षण भरको देखनेको मिले—सब देख ही लेना चाहती थी। और वे आये—मन्दमन्द हास्य शोभित श्रीमुख, कमलदल विशाल लोचन वे दोनो भाई झूमते-से चलते आये। वे तो भवनके सम्मुखसे सहज गतिसे वढ गये, किन्तु सबके मन अपने साथ लेते चले गये।

भवनोंसे नारियोंने उनपर दधि, अक्षत, चन्दन, मालाये तथा पुष्पोकी वर्षाकी। सम्पूर्ण राजपथ उन लाजा, पुष्प, दुर्वांकुर, चन्दनादिसे आच्छादित होता चला गया।

मार्गमें ब्राह्मणोंने वीच-बीचमें रोककर तिलक किया और स्वस्ति-पाठ किया। मन्दस्मितके साथ दोनों भाई अञ्जलि वाँधकर विप्रवर्गको मस्तक झुका देते थे। गृहद्वारोपर मस्तकपर भरा घट लिये गृहोकी सेविकाये खडी थी। उनको उन्होने सस्मित देखकर धन्य कर दिया।

दही, नवनीत, चन्दन, इत्र तथा नाना प्रकारके उपहार करोमे उठाये नगरका वणिकवर्ग मार्गमे दोनों ओर पंक्तिवद्ध खडा था। खड़े तो थे स्वागतमाल्य लिये यदुकुलके राजपुरुष भी। दृष्टिपातसे सबको धन्य करते, सहास्य कही-कही देखते दोनो भाई चले जा रहे थे सबका अभिनन्दन स्वीकार करते।

'यह सौन्दर्य! यह गौरव! त्रिभुवनके सम्राट् जैसा यह सहजशील!' नागरिकोंने कहा—'धन्य हैं गोप, धन्य हैं गोपियाँ जो इनके नित्य प्रफुल्ल श्रीमुखका सदा दर्शन मिलता है उन्हे।'

—×—

धोबी मरा

श्रीबलराम-कृष्ण सखाओंके साथ मथुराके राजपथसे नगरमें ब ढे जा रहे थे। मार्गके दोनों ओर पंक्तिवद्ध नगरजनोकी भीड खडी था। उनमें वयोवृद्ध ब्राह्मण थे, यादव थे, वैश्य थे। कोई चन्दन-अक्षत लगाकर अर्चना कर रहे थे, कोई कुशाग्रसे जल ,छिडककर स्वस्ति-पाठ कर रहे थे, कोई आशीर्वाद दे रहे थे और कोई अपने उपहार करोंमें लिये विनम्र खडे थे।

श्रीवलराम या कृष्णचन्द्र किसीको मस्तक झुका देते थे। किसीकी ओर मुस्कराकर देख लेते थे। किसीके उपहारको कर-स्पर्शसे धन्य कर देते थे। गोपकुमार केवल देख रहे थे। किसी भी पदार्थके प्रति उनमें-से एकने भी कुतूहल प्रदर्शित नही किया।

सहसा सामनेसे महाराज कसका वस्त्र रगनेवाला आता दिखायी पड़ा। वह जातिसे भले धोवी था, किन्तु राजकीय रङ्गकार था। उसके साथ उसके सेवक-अनुगत थे और उन लोगोने स्वर्णयष्टियोपर धुले, रंगे रत्नजटित बहुत ही सुन्दर वस्त्र इस प्रकार उठा रखे थे कि उन वस्त्रोपर कोई सिकुडनकी रेखा न पड जाय।

वह रङ्गकार धोवी विशालकाय था। बहुत चौडी छाती थी उसकी। गलेमें निष्कोका कण्ठा पहिन रखा था। लहरदार सतरङ्गी पगडी बाँधी थी उसने और मूल्यवान कञ्चुक पहिने था। काला रङ्ग, भारी गलमुच्छे, बडी उमेठी मूँछे, मदिरापानसे लाल-लाल नेत्र। वह ऐसा अकडता चल रहा था जैसे वही मथुरा-नरेश हो। उसके पीछे चलने वाले भी गर्वसे ऐंठते ही आ रहे थे।

'यह इतना अकडता कौन आ रहा है?' गोपकुमारोंने एक वार परस्पर देखा—'वह ब्राह्मणो, यादव प्रमुखो, नगरके सम्पन्नतम श्रेणियोकी भी उपेक्षा करता चला आ रहा है। किसीकी ओर वह देखता तक नही। किसीके प्रति विनम्र नही। दूसरे लोग ही कुछ हटकर इन सवोको मार्ग दे रहे हैं।'

वह रजक रङ्गकार—उसे अपना गौरव—अपनी महत्ता दिखलानेका अवसर मिला है मथुराके लोगोको। महाराज कलके महोत्सवमे जिन वस्त्रोको धारण करेंगे, वे वस्त्र हैं उसके पास। मथुराके सम्मानित नाग-

रिकोंका समूह देखकर उसकी अकड बढ गयी है। वह महाराजका कृपा-पात्र है—दूसरोकी उपेक्षा क्यों न करे। फिर इन वस्त्रोपर तो तनिक भी किसीका स्पर्श—कोई रेखा नही पडनी चाहिये। अत वह आज पूरे राज-पथपर अपना स्वत्व मानता है। दूसरोको चलना हो तो उसके दलसे वचकर, हटकर, किनारे होकर निकल जायँ।

गोपकुमारोको रजकका यह गर्व बुरा लगा। वे क्या इस धोबीको मार्ग देनेको विवश हैं? यही उनके परस्पर देखनेका तात्पर्य था, किन्तु कन्हाई ही नही, दाऊ भी साथ हैं। वे जैसा करेगे, करना तो वही पडेगा।

उस रङ्गकारपर—उसके साथके अनुगतोके करोमे स्वर्णयष्टियोपर सम्हालकर लटकाये वस्त्रोपर दोनो भाइयोकी दृष्टि भी पडी। किसीने नही देखा कि उन रङ्गकारोंकी कटिमे भारी थैलियाँ भी वँधी हैं। वे सम्भवत नगरके किन्ही धनिकोके वस्त्र रङ्गकर दे आये हैं उन्हे और अपने पारिश्रमिककी स्वर्णमुद्राये वाँधे हैं। इस धनने भी उन्हे कुछ मदमत्त किया है।

कृष्णचन्द्र कुछ पद आगे बढ आये। उन्होंने रङ्गकारसे कहा—'रङ्ग! हम तुम्हारे पूज्य है और तुम्हारे पास धुले-रगे नवीन उत्तम वस्त्र हैं। अत हम सवको हमारे अनुरूप वस्त्र दो। वस्त्र देनेपर तुम्हारा परम कल्याण होगा, इसमें सन्देह मत करो।'

महाराज कसके भागिनेय पूरे नगरके आदरणीय पूज्य हैं, इसमे किसीको आपत्ति क्यो होनी चाहिये और नागरिकोमे तो किसीको सन्देह नही था कि ये जिसका उपहार स्वीकार कर लेंगे, उसका परम कल्याण होगा।

कृष्ण कुछ चाहे और न मिले—अव तक तो यही हुआ है कि वे जो चाहते रहे है, लोग सस्नेह देते रहे हैं उन्हे। गोपियाँ कभी मना भी करती तो वह भी प्रेमका मना करना होता। कृष्णके लिए अपना-पराया क्या। सव तो उनके अपने ही हैं। किसीके पास कोई वस्तु है और उसे लेनेकी इच्छा है तो माँग लेने या यो ही ले लेनेमे उनको तो कभी हिचकना नही आया।

रङ्गकार सोचता था कि उसके समीप आनेपर ये वालक एक ओर हटकर मार्ग दे देंगे, किन्तु ये तो मार्ग रोके ही खडे हैं और ऊपरसे वह वस्त्रोंकी माँग। एक दो-वस्त्र भी नहीं, सवके लिए वस्त्र। वह क्रोधमे लगभग चिल्लाते हुए डाटने लगा।

व्यंग्यपूर्वक उस घमण्डी राजसेवकने कहा—'जङ्गलियो ! ऐसे ही वस्त्र पहिनकर तुम लोग गाये चराया करते हो ? तुमने कभी देखे भी हैं ऐसे वस्त्र ? इन वस्त्रोके पहिनने योग्य भी तुम हो या नही—यह भी सोचा है ?'

'मूर्खो ! बड़े उच्छृङ्खल हो गये हो तुम लोग ! शीघ्र भाग जाओ यहाँसे अगर जीवित रहनेकी इच्छा हो !' उसने उग्र स्वरमे कहा—'तुम लोग महाराजके वस्त्र—राजकीय वस्त्र चाहने लगे हो ! ऐसे घमण्डी-निरंकुश लोगोंको हमारे महाराज बाँध लेते हैं, मार देते है और उनकी पूरी सम्पत्ति छीन लेते हैं।'

गोप-बालकोको बहुत बुरा लगा। प्राय सबके मुख तमतमा उठे—'यह दुष्ट तो बकता ही जा रहा है।'

बालकोके हाथ लकुटपर कस उठे थे। और एक क्षण मिलता तो उनके लकुट उस रजककी खोपडी पर एकसाथ गिरते, किन्तु—रजकका सिर तो पलक झपकते धड़से गिरा पथकी भूमिपर और उछलने लगा।

कृष्णचन्द्रका मुख भी क्रोधसे अरुण हो रहा था। उन्होने अपना दाहिना हाथ उठाया था और हाथके अग्र भागके झटकेसे धोबीका सिर धडसे उठा दिया था।

'अच्छा किया !' सखाओने एकसाथ कहा।

उस रङ्गकारके पीछे चलने वालोने हाथकी स्वर्ण-यष्टियाँ वस्त्रोके साथ फेंकी और पीछे मुडकर भागे। उन्होंने तो इस भयसे कि ये बालक उनकी कटिमें बँधी स्वर्ण-मुद्रायें लेनेको पीछा न करे, थैलियाँ भी खोलकर फेंक दी। वे भागते ही चले गये। पीछे मुडकर भी उन्होने नही देखा।

गोपकुमारोंने तालियाँ बजा दी और वे धोबी उससे और डरकर भागे। उन्होंने बहुत सुना है—उनके महाराज कसके सब बडे अनुचर राक्षसोंको इन बालकोंने मार दिया है। उन्हे अपने प्राण नही देने। वे वस्त्र रगने वाले हैं—योधा नही हैं। उनमे एकका भी पता नही लगा कि वे किधर गये। दूर तक वे सीधे दौडते गये और फिर इधर-उधर गलियोमे होकर भाग निकले।

'दादा ! ये वस्त्र आपके अनुरूप हैं।' कृष्णचन्द्रने वस्त्र चुने और बड़े भाईके सम्मुख आ खड़े हुए। सखाओकी ओर मुस्कराकर उन्होंने केवल देख लिया। वह दृष्टि ही कहती थी—'तुम सब भी अपने मनके वस्त्र उठा लो।'

श्यामसुन्दरके हाथसे श्रीबलरामने वस्त्र ले लिये। कृष्णचन्द्रने अब अपने लिए वस्त्र उठाये। गोपकुमारोमे जिसे जो वस्त्र जँचा, उसने उठा लिया।

'बडे अटपटे वस्त्र पहिनते हैं ये नगरके लोग भी।' गोप-बालकोको थोडी उलझन हुई अपने योग्य वस्त्र चुननेमें। कई बार हाथमें उठाये वस्त्र उन्होंने फेके और दूसरे उठाये। एक-दूसरेको ओर देखा कि वह कैसे वस्त्र उठाता और पहिनता है।

जिसे जैसा आया, उसने वैसे वस्त्र पहिन लिये—लपेट लिये कहना अधिक उपयुक्त है। रङ्ग-बिरङ्गे रत्नखचित वे रेशमी वस्त्र—बडी अद्भुत शोभा हुई उन्हे पहिनकर गोपकुमारोकी।

श्री बलराम, श्रीकृष्णचन्द्र तथा सभी गोपकुमारोने अपनी कछनी-पटुकेके ऊपर ही वे वस्त्र पहिन लिये थे। पटुका तक उन्होने न उतारा, न कटिमे लपेटा। वस्त्रोको पहिनकर वे आगे बढे। बचे वस्त्र, स्वर्णमुद्राओसे भरी थैलियाँ—स्वर्ण-यष्टियाँ वही पडी रही पथपर। उनकी ओर बालकोमे-से किसीने दृष्टि नही डाली।

'इसका नाम है तेजस्विता। यह है शक्तिमत्ता!' पथपर खडे सहस्रश. नागरिकोका हृदय इस दृश्यमे अभिभूत हो उठा। अब तक उन्होंने केवल इन कुमारोके पराक्रमकी बात सुनी थी, आज प्रत्यक्ष देखी। अब तक वे इनके भुवनमोहन सौन्दर्यपर मुग्ध थे, अब इनके शौर्य एव साहसने मानो सेवक बना लिया।

'दिन-दोपहर खुले राजपथपर राजकीय रङ्गकार प्रमुखका सिर केवल किसलय कोमल करके एक झटकेसे झटककर भूमिपर फेंक दिया।' अनेकोंने मर्मापस्थोंमे कहा—'राजाके ही वस्त्रोमें हाथका रक्त ऐसे पोछ डाला जैसे जलमें भीगा हाथ पोछते हो और यह पड़ा है रङ्गकारका मस्तक, वह पड़ा है कबन्ध भूमिपर कसको चुनौती देता कि आ करले जो कुछ तू कर सकता हो।'

'कंस क्या कर लेगा ?' किसीने कहा—'देख लेना, सैनिक तो दूर, एक कुत्ता भी नही भेजेगा इस धोबीके शवकी सुधि लेने। इसके सम्बन्धी भी इसे रातके अन्धकारमे ही उठानेका साहस कर पावेंगे।'

'बहुत अकड़ता था।' धोबीसे किसीको भी तो सहानुभूति नही हुई।

'इसका नाम है निर्भीकता।' प्रशसाके स्वर नागरिकोंमे गूँज रहे थे—'वे हँसते सखाओके साथ राजभवनकी ओर ही बढ़ रहे है। ऐसे चल रहे हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो।'

'हुआ क्या है उनके लिए !' किसीने सुनाया—'तुमने सुना नही कि अभी कल ही ऐसे हँसते हुए ही इन्होंने महाराज कसके मुख्य सेनापति केशीको व्रजमे मार दिया है। रजक तो एक मच्छर जैसा था। देखा नही कि इनके हाथ हिलाते ही उसका सिर धड़से कैसा कूद गया।'

कसका भय—आतङ्क नागरिकोंके हृदयसे इस घटनाने धो दिया। अपने उद्धारक तथा स्वामीको नागरिकोने पहिचान लिया था।

—×—

दर्जीकी कला कृतार्थ हुई

कुछ पद—मित्रोंके साथ केवल कुछ पद श्रीकृष्ण-बलराम चले होंगे। बालकोको अटपटे वस्त्रोंमे उलझन होरही थी। तभी वायक गुणक अपनी सिलायीकी दूकानसे उतर आया।

गुणक दर्जी है। मथुरामे ही नही, दूर-दूर तक उसकी सिलायी-कला प्रख्यात है। अनेक नगरोके राजकीय दर्जी इसमे अपना गौरव मानते हैं कि वे मथुराके गुणकके यहाँ सिलायी सीख चुके हैं।

गुणक वृद्ध हैं, किन्तु अत्यन्त सतेज हैं उनके नेत्र। उसके मस्तकमे भले एक भी केश काला न रहा हो और भले उसके गौर शरीरपर झुर्रियाँ पडी हो, उसके हाथोमे अब भी अद्‌भुत स्फूर्ति है।

इकहरा लम्बा शरीर, लम्बी पतली अंगुलियाँ और बड़े-बड़े नेत्र। गुणक शान्त व्यक्ति है। घण्टो मौन अपने काममे तल्लीन रहने वाला।

वहुत प्रयोजन होनेपर वह बोलता है और तब भी थोड़े शब्द धीरे बोलता है। उसकी वात ध्यानसे सुननी पडती है।

मथुराका राजकीय वायक है गुणक। उसे आज शाम तक महाराजके वस्त्र दे देने हैं सीकर। अब तक वह अपने वचनका पक्का रहा है। किसीको जो समय कहेगा, उसी समय उसके वस्त्र प्रस्तुत मिलेंगे। लेकिन गुणकमें भी एक दोष है—अच्छे कलाकारके लिए शोभा देने वाला दोष। वह किसीके यहाँ बुलानेपर भी नही जाता। महाराजको भी अपना माप देने स्वय आना पडता है और सेवक भेजकर वस्त्र मँगाने पड़ते है।

दूसरी वात—गुणक अपने पारिश्रमिकमे मोल-भाव नही सुन सकता। उसके मुखसे जो निकल जाय, वही सिलायी उसे देनी होगी। वह किसीके वस्त्र सीना स्वीकार कर ले—यह उसका वड़ा अनुग्रह। प्राय वह कह देता है—'अभी अवकाश नही है।'

गुणक कलाका धनी सही—वैसे कङ्गाल ही है। काम ही नही करेगा तो धन कहाँसे आवेगा। राजाके यहाँका और दूसरोंका भी जो थोडा काम कर देता है, उससे मिला पारिश्रमिक अपने यहाँ सिलायी सीखने आनेवालोंको खिला देता है। वह तो मानो एक सिलायी महाविद्यालय चलाता है।

अपनी उस दूकानसे गुणक कभी पर्वपर ही यमुना स्नान करने उतरता है। आज वह दूकानसे उतरा तो नागरिकोंको आश्चर्य हुआ। हाथमे कैंची लिये वह दूकानसे उतरा और सीधे श्रीकृष्णके सम्मुख जाकर कैंची लिये-लिये ही हाथ जोडकर खड़ा हो गया—'आप अनुमति दे तो आप सबके वस्त्रोंको शरीरके अनुरूप सजा दूँ।'

'अवश्य भद्र।' कृष्णचन्द्र मुस्कराये। बड़े भाईकी ओर सकेत करके बोले—'किन्तु हमे शीघ्रता है। तुम झटपट वस्त्र ठीक कर दो।'

गुणकने विना बोले काम प्रारम्भ कर दिया। उसमे कला है, यह सब जानते थे, किन्तु इतनी स्फूर्ति है, यह लोगोंको आज दिखायी पडा। वह श्रीबलरामके चारो ओर घूम गया। कही वस्त्रोंको खींचकर मोड़ा, कहीं कुछ काटा, कही सुईसे दो-चार टाँके लगाये और लो वह तो श्रीकृष्णके समीप पहुँच गया।

अकल्पनीय शीघ्रता—कोई वस्त्र किसीका शरीरसे उतारा नहीं उसने। किसीको इधर या उधर मुड़ने-हटनेको नहीं कहा। हाथ भी उठाना

हुआ तो छूकर संकेत कर दिया । वस्त्रोको खीचते-मोड़ते , सीते उसके कर यन्त्रकी शीघ्रतासे चलते गये ।

गोप-बालक इस वृद्धकी शीघ्रता चकित देखते रहे । मथुरामे आनेसे अब तक उन्हे चकित करनेवाला यह वृद्ध मिला । चकित तो देख रहे थे मथुराके नागरिक । वह जिसके समीपसे हटता था , उसके वस्त्र ऐसे बनाके हटता था मानो उसके शरीरके मापका कञ्चुक उसने अनेक दिनोमे सप्रयत्न सिया हो ।

रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र । गोप-बालकोने अटपटे ढङ्गसे कई-कई वस्त्र चाहे जहाँ , चाहे जैसे लपेट लिये थे , किन्तु धन्य है गुणककी कला । वह उन्हे ऐसे सजाये जारहा था मानो ये रङ्ग और इतने वस्त्र-खण्ड ही उस शरीरको सुशोभित करनेके लिए आवश्यक थे । कटे वस्त्रोके टुकडोका ढेर कर दिया उसने पथपर ।

बहुत शीघ्र काम समाप्त करके गुणक हाथ जोडकर राम-श्यामके सम्मुख खडा होगया । श्रीकृष्णचन्द्रने उसके कन्धेपर दक्षिण कर रखा और उनकी गम्भीर वाणी सबने सुनी—' तुमको इस लोकमें अक्षय सम्पत्ति दी । तुम्हारा ऐश्वर्य कभी घटेगा नही । तुम्हारा शरीर सदा तरुणोके समान बलवान रहेगा । तुम्हारी सब इन्द्रियाँ आजीवन सशक्त रहेगी । तुम्हारी स्मृति सतेज रहेगी ।'

आश्चर्य—लोगोने आश्चर्यसे देखा कि गुणकके शरीरकी झुर्रियाँ मिट गयी । उसके केश भले काले नही हुए—पर उसका शरीर तो तरुणोकी भाँति चमकने लगा है । कई क्षण लोग चकित देखते रह गये उसे ।

' मैं केवल आपकी और आपके जनोकी सेवा करूँ ।' गुणकने गद्गद् वाणीमे माँगा ।

' अवश्य !' यहाँ भी और परलोकमे भी तुम मेरे स्वरूपमे रहते हुए मेरे ही परिकर रहोगे ।' श्रीकृष्णने वरदान दिया ।

' भगवान वासुदेवकी जय ।' नागरिकोकी भीडमे-से किसीके कण्ठसे जयघोप उठा और सबके कण्ठोसे गूँज गया यह जयघोप ।

' भगवान वासुदेव ' नागरिकोको लगा कि जाने कबसे उनके अन्त.करणसे यही बात आ रही थी । वे स्वय इसीको कहना चाहते थे और कह नही पा रहे थे । भगवान—भगवान ही तो हैं उनके सम्मुख ये वासुदेव पीताम्बरधारी ।

गुणकका ध्यान इस जयघोषसे भी भङ्ग नही हुआ। उसे पता ही नही लगा कि कब उसके कन्धेसे वह अमृतस्पर्शी कर उठा। कब श्रीकृष्ण सखाओंके साथ आगे बढ गये। वह विभोर, रोमाञ्चित शरीर खड़ा रहा। किसी नागरिकने पकड़कर उसे कब उसकी दूकानमे पहुँचा दिया, यह भी उसे पता नही लगा।

गुणक सावधान हुआ तो और भी चकित हुआ। उसने सुना है कि कोई स्पर्शमणि (पारस पत्थर) होता है। उससे लोहेका स्पर्श हो जाय तो लोहा स्वर्ण बन जाता है; किन्तु वे नीलसुन्दर कैसे मणि थे ? उनके स्पर्शसे क्या स्वय गुणक स्पर्शमणि होगया है ?

वह जिधर देखता है—जिस पदार्थपर उसकी दृष्टि जाती है, वह धातुका बना हो या काष्ठका, स्वर्ण होजाता है। उसकी दूकानके सब उपकरण स्वर्णके होगये हैं। केवल कैंची और थोडी सुइयाँ स्वर्णकी नही हुईं। इसका अर्थ है कि उसे सम्पत्ति-ऐश्वर्य दिया गया; किन्तु उसकी कला उसके समीप सुरक्षित है।

गुणकके नेत्रसे अश्रु बह रहे हैं। वह गद्गद् रोमाञ्चित बैठ गया है अपनी दूकानमें। उसके पास काम है—वस्त्र हैं राजाके और राजसेवक आवेगा सायकाल उन्हे लेने, किन्तु गुणकको अब यह कुछ स्मरण नही। वह उनके नीलसुन्दरके ध्यान मे तन्मय है। उनके हाथ, उसकी कला अब उनके और उनके जनोके लिए सुरक्षित है। अब वह किसी अन्यके वस्त्र नही छुएगा। एक टाँका भी नही लगायेगा अन्यके वस्त्रोंमे।



धन्य माली सुदामा

मथुराके राजपथको सहसा श्रीकृष्णने छोड़ दिया और एक गलीकी ओर मुड गये। बड़े भाईकी ओर केवल देखा था उन्होंने। अग्रज तो मानो स्वीकृति स्वरूप ही हैं। श्यामको कृपा भी करनेकी जिनसे प्रेरणा मिलती है, किसीको अपनानेके लिए पद बढ़ाकर उनकी प्रशसा ही तो पानी हैं। सचमुच श्रीबलरामका मुख गलीमे छोटे भाईके मुडते ही हर्षसे खिल उठा।

'कहाँ जा रहा है कन्हाई ?' सखाओमे-से किसीने नही पूछा। नगर देखना हे, कही निश्चित स्थानपर तो जाना नही है। कोई गली भी तो देखना चाहिये कि मथुराकी गलियाँ कैसी है। इसमें भी कुछ देखनेको हो ही सकता है।

'ये लोग कहाँ जा रहे हैं ?' नागरिकोको अवश्य कुतूहल हुआ; किन्तु पूछनेका साहस किसीने नही किया। 'ये सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान हैं' नागरिकोंके हृदयमे यह वात बैठ गयी है। उनके सामने कसके रङ्गकारका शव पडा है राजपथपर अभी कुछ ही दूरीपर और वृद्ध गुणक इनके स्पर्शसे तरुण हो गया है। इस गलीमें कुछ करना होगा इन्हे। मन-प्राण इनमे लगे हैं, अत नागरिक चुपचाप पीछे चल रहे हैं।

चलते गये दोनो भाई सखाओंके साथ। चलते रहे उनके पीछे गोपकुमार और उनके भी पीछे शतश नगरके सामान्य नागरिक। गली प्राय समाप्त होगयी। एक साधारण-सा अन्तिम भवन और उससे लगा पुष्पोद्यान आया। श्रीकृष्णचन्द्र उस भवनके द्वारपर पहुँचे और बिना रुके अग्रजके साथ भवनमे चले गये। गोपकुमारोंने देखा एक-दूसरेकी ओर—'किसका भवन होगा ? कन्हाई तो कहीं किसीके घरमे ऐसे ही जा सकता है, किन्तु दाऊ भी प्रसन्न जा रहे हैं तो किसी परिचितका भवन होना चाहिये।'

गोपकुमार भीतर चले गये, किन्तु नागरिकोको रुकना था द्वारपर। उनमे चर्चा चल पड़ी—'अक्रूरजी वसुदेवजीके भाई होते हैं, वे रथपर वैठाकर इन्हे व्रजसे ले आये। वालक बतलाते थे कि रोकर चरण पकड़कर उन्होंने दोनो भाइयोंसे अपने भवन चलनेकी प्रार्थना की, पर इन्होने स्वीकार नही की और इस भवनमे ये विना वुलाये स्वय चलकर आये हैं! इस गृह और इसके गृहपति सुदामाके सौभाग्यकी कोई सीमा है! वह राजपथ तक भी इन्हे वुलाने नही गया और ये ऐसे आये जैसे यह भवन सदासे इनका परिचित हो।'

अब लोगोमे सुदामाकी चर्चा चल पडी। वाहर द्वारपर खड़े-खडे वे कह रहे थे—'मथुराके वे दिन भी थे जब सुदामाके करोकी गूँथी माला मन्दिरोमें श्रीविग्रहपर चढानेको मिल जाया करती थी। वैसा माल्य-ग्रन्थन फिर देखनेमें नही आया। सुमन सुदामाका कर-स्पर्श पाकर मानो वोलने लगते थे। वहाँ किस रङ्गका, कितना वडा पुष्प लगाना—यह कम ही माली जानते हैं।'

'किस ऋतुमे और किस समय कौनसे रङ्गोकी माला या कुसुम-स्तवकमे प्रधानता होनी चाहिये– सुदामा इसका विशेषज्ञ है। उसकी मालाकी सुरभि मथुरा में प्रसिद्ध थी। बिना माला देखे सुरभिसे बताया जा सकता था कि माला सुदामाके यहाँसे आयी होगी।'

'अद्भुत माल्य-ग्रन्थन कला, किन्तु अद्भुत आग्रही भी था सुदामा' एक वृद्ध कह रहे थे—'उसके लिए मूल्यका कोई महत्व कभी नही था। माला या स्तवक लेने जाओ तो पहिला प्रश्न—'क्यो चाहिये आपको यह ?'

'दूसरोकी बात तो छोड़ दो, सुदामाकी माला महारानीको भी शृङ्गारके लिए अप्राप्य थी।' बड़ी श्रद्धासे एकने कहा—'स्वय महाराज उग्रसेन सम्मान करते थे सुदामाकी कला और भावनाका। वह केवल भगवत्पूजन हो या यज्ञमे आवश्यक हो, तभी माल्य-प्रदान करता था। देवप्रतिमाके शृङ्गारकी अत्यावश्यक सामग्री थी सुदामा द्वारा ग्रथित माला और भगवान नारायणके वक्षको इसीकी गूँथी वनमाला सदा भूषित करती थी। सुदामा स्वय दे आता था मन्दिरमे नित्य।'

'किसने क्या दिया या देगा, न सुदामाने कभी पूछा—न देखा, किन्तु कौन उसकी मालाका क्या करेगा, इस विषयमे सदा सतर्क रहा है यह माली।' एक विप्र बोल रहे थे– 'जबसे कस सिंहासनपर आया, इसने सुमनोंसे सन्यासप्राय ले लिया है। बहाना बना दिया इसने—शरीर बहुत वृद्ध होगया। अगुलियाँ अब ठीक काम नही करती। वैसे पुष्प तो इसे सगे-पुत्र जैसे लगते है। दिन भर अब भी अपनी वाटिकाओंमे वीरुधो, लताओंको सीचने, निराने, सँवारनेमे लगा रहता है।'

'अच्छा, तो यह निष्ठा है जो भगवान वासुदेवको यहाँ खीच लायी है।' एक तरुणने कहा—'सुदामा जब सदासे उनका जन है, उनके लिए ही माल्य-ग्रन्थनमे लगा रहा है तो उसका गृह इनके लिए अपरिचित कैसे हो सकता था। मथुरामे इनके श्रीचरण इस भवनमे सर्वप्रथम आने ही चाहिये। धन्य मालाकार सुदामा।'

भवनमे भीतर सुदामाकी विचित्र दशा थी। उसने कल सुना था—अक्रूरजी व्रज गये है वसुदेवजीके पुत्रोको ले आने।'

'मेरे स्वामी! मेरे आराध्य कल आवेगे।' सुदामाको तो कभी सन्देह नही हुआ कि वे परमपुरुष हैं या नही। उसके प्राण तो उन्हीका मार्ग देख रहे हैं।

कल दिन भर वह अपनी वाटिकाको सीचता रहा। वीरुधोमे पता नही क्या-क्या मसाला डालता रहा। पुष्पोको बडा बनाने, शीघ्र खिलानेके असख्य प्रयोग जानता है वह, और कल पूरे दिन यही सब करता रहा।

रात्रिमे सुदामा सोया कहाँ ? उसकी दीर्घकालसे परित्यक्ता सूचियाँ, सूत्र आदि—सबको स्वच्छ किया उसने और फिर पूरे गृहको स्वच्छ करनेमे लग गया। उसने भवनका कोना-कोना स्वच्छ कर डाला और रात्रिमे ही सजा डाला। उसे क्षण भरको भी विश्राम नही था—'मेरे स्वामी कल यहाँ पधारेंगे।'

कल साय ही वह नगरके बाजारमे देखा गया था वर्षोंके पश्चात्। उसने नवीन सूत्र लिये अनेक रङ्गोके। सूचियाँ ली। ढेरो फल, कन्द, मेवे लिये और टोकरी भरकर स्वय सिरपर उठाये लाया।

रात्रि बीतते-न-बीतते तो वह अपने पुष्पोद्यानमे पहुँच गया था और वहाँ पहुँचकर स्वय चकित, प्रसन्न हो उठा था। सुदामा पुष्प-वीरुधोंसे बातें किया करता है। कल वह एक-एकको सीचते-सँवारते कहता रहा था—'मेरे बच्चो ! कल मेरे स्वामी आवेंगे। तुम्हे धन्य कर दूँगा कल। आज रात जी भरकर खिलना भला !'

सुदामाके सुमन-तरु सम्भवत उसकी बात समझते हैं। उसने देखा कि वीरुध, लताये पुष्पोके भारसे लद उठी हैं। इतने पुष्प इस वाटिकामें उसने जीवन भरमे नही देखे थे। पत्ते दीखते ही नही थे। पुष्प-पुष्प, जैसे प्रत्येक टहनी पुष्पोसे ही बनी हो।

सुदामा डलियोपर डलियाँ भरता गया पुष्पोसे। रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प और पुष्प-गुच्छ। सुकोमल किसलय एव मञ्जरी सहित तुलसी-दल सग्रह किये उसने। दिन चढा तो वह अपने पुष्पो, दलो आदिसे घिरा बैठ चुका था। तबसे अब तक वह स्तवक, सुमनगुच्छ, वनमालाये, सिरोभूषक मालायें बनानेमे लगा है। बहुरङ्गी, अतिशय सुन्दर मालाये—इतना मनोहर माल्य-ग्रन्थन कि कलाकी अधिदेवता मानो उसकी अगुलियोमे आ बैठी हैं। वह स्वय नही जानता कि कितनी मालाये बनाना है। वह बनाता चला जा रहा है। तन्मय कलाकार मात्र ही अपने सृजनमे शरीरकी सुधि भूल जाता है और सुदामा तो आज जीवनके चरम सौभाग्यके सृजनमे लगा है।

राम-श्याम आये। सखा आये सब, और कुछ क्षण सभी शान्त देखते रहे मालाकारको, उसकी चलती लम्बी-लम्बी अगुलियोको और उसके समीप छड़ियोपर सजी अतिशय सुन्दर मालाओको।

'माली !' कृष्णचन्द्रने बहुत स्नेहपूर्वक पुकारा।

'माली !' स्वर जैसे सुदामाके कानोसे हृदय तक अमृतरस उड़ेलता चला गया।

'मेरे स्वामी !' विह्वल कण्ठ सुदामाने कहा और आतुर हो उठा। उसने एक बार दृष्टि उठायी। तनिक हटा और पुष्पराशिसे हटकर दण्डवत पड गया दोनो भाइयोंके सम्मुख भूमिपर।

'माली !' श्याम-बलराम आगे बढ आये। दोनोके कर एकसाथ मालीके मस्तकपर पहुँचे।

सुदामाके नेत्रोसे अश्रुधारा चल रही है। उसका शरीर रोमाञ्चित है। कण्ठसे स्वर नही निकल रहा है, किन्तु शीघ्रता की उसने। झटपट आस्तरण बिछाने लगा। उसने उसपर पाटलदल बिखेर दिये। अग्रज और सखाओके साथ श्रीकृष्णचन्द्र बैठ गये उस आस्तरणपर।

सुदामाने चरण धोये सबके। चन्दन-अक्षतादिसे पूजन किया और फल, कन्द, मेवे रखकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'करुणावरुणालयने जब इतनी कृपा की इस नगण्यपर, तो जो इस कङ्गालके यहाँ सम्भव है, उसे स्वीकार करे।'

इस अनुरोधकी आवश्यकता नही थी। जो सदासे प्रेमका भूखा है, उसने प्रार्थना पूरी होनेसे पहिले ही प्रारम्भ कर दिया था। बड़े भाईके मुखमे दे दिया था उसने फल और गोप-बालकोने कहाँ सङ्कोच करना सीखा है। तृतीय प्रहरका अल्पाहार पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे।

सबने सन्तुष्ट होकर भोग लगाया। आचमन किया। ताम्बूल ग्रहण किया। सुदामा हाथ जोडकर स्तुति करने लगा—'आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज धन्य हुआ यह गृह। आज लगा कि मेरे परमोदार स्वामीने इस क्षुद्रजनको अपना स्वीकार किया। आपका परमानुग्रह होता है तब किसीको आपकी सेवाका सुअवसर मिलता है। मैं आपका दास हूँ, मुझे आज्ञा दे।'

'माली ! हम तो तुम्हारी मालाओके लिए आये हैं।' श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर कहा।

सुदामा भूल ही गया था कि वह प्रात से इनके लिए ही माल्य-ग्रन्थनमे लगा था। वह स्वागत-सत्कार एवं स्तवनमे मालाओंका अर्पण तो विस्मृत ही होगया था। उसे अपनी ही सुधि नही थी अब तक।

सुदामाने मालायें पहिनानी प्रारम्भ की। मोटी-मोटी घुटनोसे नीचे तक लटकती वैजयन्ती मालाये। केशोमे मालायें तथा पुष्प-गुच्छ सजाये। भुजाओमें, कलाइयोमें माल्य-सज्जा की और करोमे पुष्प-स्तवक दिये सवको।

'माली! वडी सुन्दर हैं तुम्हारी मालाये हम वहुत प्रसन्न है। माँगो, क्या लेना है तुम्हे।' श्रीकृष्णचन्द्रने माल्य-सज्जाके पश्चात् अपने सम्मुख अञ्जलि वाँधकर आ वैठे मालीके मस्तकपर दक्षिण कर रखा।

गोपकुमारोने प्रशंसाकी दृष्टिसे अपने सखाकी ओर देखा। यह हुई व्रजराज-कुमारके योग्य वात। माली कुछ भी माँग ले—व्रजपतिके यहाँ अलभ्य क्या है। लौटकर उन्हें कह मात्र देना है। मालीका घर तो वे रत्न-राशिसे कल भर देंगे।

'आपके इन चारु चरणोमे अविचल अनुराग। जो आपके जन है, केवल उनसे मेरा सौहार्द हो और सव प्राणियोके प्रति सदा हृदयमें दया-भाव वना रहे।' मालीने किसी प्रकार गद्गद् कण्ठसे कहा। वह भला क्या माँगे। ये त्रिभुवनेश्वर स्वय तो उसके मस्तक पर अभय कर रखे खड़े है। इन करोकी छाया प्राप्तकर दुर्लभ क्या रह जाता है।

मालीने क्या माँगा—यह सखा नही समझ सके। वे केवल इतना समझ सके कि माली बहुत सीधा, वहुत ही भला है। वह कुछ भी लेनेको प्रस्तुत नही है।

'अच्छी वात!' कृष्णचन्द्रने गम्भीर स्वरमें कहा और सुदामाके प्राण परितृप्त होगये।

'मैं अपनी ओरसे जो देता हूँ, उसे भी स्वीकार करो।' श्यामसुन्दर उसी स्वरमे कहते गये—'वल, दीर्घायु, कान्ति, सुयश और ऐसी सम्पत्ति जो तुम्हारे वशमे वढती रहेगी, ये मेरे उपहार।'

माली सुदामा प्रेम-समाधिमे पहुँच गया था। उसके मस्तकपर अभय कर रखे परमपुरुष—वह इस छविमे ऐसा मग्न हुआ कि उसे पता ही नही लगा कि कब श्रीबलराम-घनश्याम सखाओके साथ जैसे चुपचाप इस गृहमे आये थे, वैसे चुपचाप ही इससे बाहर निकले।

मालीके हृदयमे बसी वह छवि—एक वार हृदयपे आनेपर वह क्या निकला करती है? वह नित्य छवि—वह एक बार आनी मात्र चाहिये और वह सौभाग्य मालाकार सुदामाका स्वत्व बन चुका था।

●—●

कुब्जा सुन्दरी

अग्रजके साथ श्रीकृष्णचन्द्र सखाओको लिये राजपथपर आ गये हैं। राजपथपर ही आगे बढ रहे है वे। सुदामाकी मालाओसे सजे, करमे कुसुम-स्तवक लिये सवके सव गोप-बालक—बडी मनोहारी शोभा है सबकी।

अचानक एक वीथीसे एक नारी निकली—कूबड़ी नारी। वह किसीकी ओर नही देखती। हाथमें उसने एक सोनेकी डलिया ले रखी है। डलियामे स्वर्ण कटोरियाँ है अनेक रङ्गोके अङ्गरागोसे भरी हुई। वह कही शीघ्रतामे अपने ढङ्गसे चली जारही है। वह निकलती है जिधरसे—अङ्गरागोकी सुरभि विखेरती जाती है।

कुब्जाको अभ्यास है दृष्टि नीचे किये चलनेका और लोगोकी बातोपर ध्यान न देनेका। उसे विधाताने कूबड़ी बनाया। बालक उसके चलनेका नाट्य करके उसे चिढाते रहते है। कभी कोई तरुण उसपर व्यग्य भी कर देता है। इसलिए कुब्जा किसी ओर मार्गमे ध्यान नही देती। किसीकी बातपर कान नही दिया करती। वह अपने ढङ्गसे सिर झुकाये चलती है।

विधाताने एक कृपा की है कुब्जापर। उसे अङ्गराग बनाने और लगानेकी कला मिली है। इस कलाने उसे कङ्गाल नही रहने दिया। वह राजसेविका बन गयी। महाराजके अङ्गोपर अङ्गराग लगानेकी सेवा मिल गयी उसे। फलत वह सम्पन्न है। मथुरामें उसका सुन्दर-सा भवन है, किन्तु भवन और धनमात्र ही मिला बेचारीको।

कुब्जा सुन्दरी है। बडा मनोहर मुख है उसका। बड़े-बडे नेत्र, अधर, उज्वल दन्तावली, टेढी भौहे, घुँघराले लम्बे केश, सिन्दूर घुले दुग्ध-सा वर्ण, किन्तु—कुब्जा अपने कूबडका क्या करे? कभी कोई तरुण रस-परिहास करता है तो वह जल-भुनकर रह जाती है। जानती है कि बोलेगी तो लोग उसे और अधिक चिढावेंगे।

'सुन्दरी कौन हो तुम? किसकी हो? किसके लिए यह अङ्गराग ले जा रही हो?' कृष्णचन्द्रने कुब्जाको देखा तो तनिक आगे बढकर पूछ

गोपसखा मुस्कराये। उनका यह श्याम सदाका चपल है। चाहे जब, चाहे जिसको छेड़ने लगता है। किन्तु कहता ठीक है—यह सचमुच सुन्दरी है। कही इसके कूबड न होता—बेचारी! दया आयी उन सरल बालकोको।

'सुन्दरी' कुब्जाके श्रवणोमे यह सम्बोधन गया। किसी मनचले व्यग्य करने वाले तरुण जैसा तो यह स्वर नही है। यह तो श्रवणोसे अन्तर तक रसधारा प्रवाहित करता आया है। चौककर कुब्जाने देखा और देखती ही रह गयी।

'तुम किसकी हो? कौन हो? किसके लिए यह उत्तम अङ्गराग ले जा रही हो?' ये कमलनयन—इन्दीवर सुन्दर, मुस्कराते हुए सम्मुख ही खड़े पूछ रहे हैं। ये कहते हैं—'यह अङ्गराग हमे दो! इससे तुम्हारा अविलम्ब कल्याण होगा।'

कुब्जा किसकी बतलावे अपनेको। किसीकी होनेका सौभाग्य उसके इस कूबडने छीन लिया है उससे। वह तो मात्र दासी है—कसकी दासी, उसमे खेद, दु ख, ग्लानि कुछ नही इस क्षण। वह रसमयी होउठी है।

'भुवनसुन्दर! मैं महाराज कंसकी दासी हूँ। मेरा नाम त्रिवक्रा है।' कुब्जाने सरलतासे कहा—'महाराजको मेरे हाथके बिना दूसरे किसीका लगाया या बनाया अङ्गराग रुचता नही। इसलिए वे इस दासीको मान देते है; किन्तु आप दोनोंके अतिरिक्त इस अङ्गरागका योग्य पात्र दूसरा कोई कैसे हो सकता है।'

'कसके रङ्ग वस्त्र ले लिये और अब उसके लिए जाता अङ्गराग भी।' नागरिकोको आश्चर्य नही हुआ, अच्छा लगा।

कुब्जा आगे बढी तो अग्रजको ओर सकेत कर दिया कन्हाईने। सम्पूर्ण शरीर तो वस्त्रोंसे ढका है। उसपर मालायें लहरा रही हैं। केवल भाल और कपोल मण्डित्त करने हैं कुब्जाको, किन्तु कुब्जाके करोंमे सचमुच कला है। कपोलोपर पत्रावली, भालपर अद्भुत खौर वह कितनी त्वरासे बना देती है।

श्रीबलरामजीके भाल-कपोलको श्वेत चन्दन, कस्तूरी एव कुकुम बिन्दुओसे भूषित किया कुब्जाने और श्यामसुन्दरके कपोल केशर मिश्रित

चन्दन, कुंकुम विन्दुओंसे भूषित हो गये। तनिक-सी देरमें तो वह सब गोपकुमारोंको अलकृत करके श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आ खड़ी हुई।

'तुम चञ्चल मत होना।' कृष्णचन्द्रने कहा और कुब्जा कुछ समझे इससे पहिले आगे बढकर अपने चरणाग्र उसके पैरोंपर रखकर पैर दवा लिये उसके। दक्षिण करकी मध्यमा और अनामिका उसकी ठुड्डीमे लगायी और एक हल्का-सा झटका, एक कड़कनेका शब्द हुआ—वस।

कहाँ गया कुब्जाका कूवड़? वह तो सीधी खड़ी होगयी। ऐसी सीधी कि मानो कभी कुवडी थी ही नही। प्रसन्न होकर गोपकुमारोने तालियाँ बजायी।

'तुम्हारा अविलम्व कल्याण होगा।' नागरिकोंका ध्यान इन शब्दोंपर अव गया। कुब्जा केवल सीधी ही तो नही हुई है। उसपर तो सौन्दर्यकी घटा वरस गयी है। इतना रूप! इतना सौकुमार्य! स्वर्गकी कोई देवी जैसे मथुराके राजपथपर उतर आयी हो। नागरिकोके कण्ठसे अकस्मात् निकला—'भगवान वासुदेवकी जय।'

यह मथुराका राजपथ! ये शत-सहस्र नागरिक? इतने गोपकुमार और श्रीवलराम; किन्तु कुब्जाको यह कुछ नही दीखता। उसे दीखते हैं ये इन्दीवर सुन्दर और उसके रोम-रोममे इनका स्पर्श वस गया है। वह उन्मादिनी हो उठती है—'ये इतने समीप आकर फिर हट गये।'

'वीर! तुम अव यहाँ इस प्रकार क्यो खड़े हो?' कुब्जाने उत्तरीय पकड लिया श्यामसुन्दरका—'प्यारे! आओ! हम घर चलें। मैं तुमको छोडकर नही जासकती। पुरुषर्षभ! मेरा चित्त तुम्हारे लिए मथित हो रहा है। मुझपर कृपा करो। आओ—घर चलो।'

श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजकी ओर देखा। सखाओंकी ओर देखा और खुलकर हँस पड़े। हँसते हुए बोले—'सुन्दरी! तुम इतनी शीघ्रता मत करो! बहुत अच्छी हो तुम। बहुत अतिथि-वत्सला हो। हम पथिकोंपर तुम्हारा अपार अनुराग है। तुम अपने घर लौटो। मैं तुम्हारे यहाँ आऊँगा। अवश्य आऊँगा तुम्हारे घर।'

'अवश्य आऊँगा तुम्हारे घर!' कुब्जाके लिए इतना सुनना—इतना वचन पर्याप्त था। वह दासी है—इनके चरणोंकी दासी है अब तो। उसे

आज्ञा पालन करना चाहिये। वह हठ करे तो ये रूठ सकते है। वह हठ नही करेगी—आज्ञा पालन करेगी। आज्ञा पालन ही उसका कर्तव्य है।

कुब्जा—नही, सैरन्ध्री सुन्दरी लौट गयी वहीसे। लेकिन गृहोके गवाक्षोमे जो पुररमणियाँ नेत्र लगाये थी—उनकी क्या अवस्था हुई? कुब्जा दासी थी—उसे इन त्रैलोक्य विमोहनका इतना सामीप्य—इनका स्पर्श मिला, किन्तु वे कुल-ललनाये हैं, मार्गपर वे कैसे निकल सकती है। दुरन्त लज्जासे वे मूर्छितप्राय होगयी। उनका रुदन बहुत रोकनेपर भी सिसकियाँ बननेसे रुक नही सका।

—×—

धनुर्भंग

'वह धनुष कहाँ है, जिसका कल भोजराज पूजन करेंगे?' श्रीकृष्णचन्द्रने समीपके एक वृद्ध नागरिकसे पूछा।

नागरिकोका भय, सङ्कोच अब बहुत कुछ दूर होगया है। 'ये भगवान हैं, किन्तु कितने उदार, कितने दयालु, कितने सरल! वायक गुणकने इनके वस्त्र ठीक किये। सुदामा मालीके घर स्वय गये। कुब्जाको अलौकिक सुन्दरी बना दिया। ये किसीको पराया कहाँ मानते हैं?'

नागरिक समीप आगये है। उनकी चन्दन लगाने, आरती करनेकी अर्चना अब बढ गयी है। अब वे उपहार लिये आगे भी आ खड़े होते है।

गोप बहुत प्रशसा करते थे धनुषकी। वह अत्यन्त विशाल है। बहुत भारी है। बहुत सुन्दर है। भगवान शङ्करका त्रिपुरघ्न पिनाक तो त्रेतामे श्रीरामने जनकपुरमे तोड दिया था। उसे उन आशुतोषने निमिको दिया था। उन वृषभध्वजने अपना निज धनुष अपने प्रिय शिष्य परशुरामजीको दे दिया। भगवान परशुरामने उसे दे दिया कसको। कंस स्वय उसकी अर्चना करता है। कैसा होगा वह धनुष? कृष्णचन्द्रके मनमे कौतूहल होना स्वाभाविक है। उनके पूछते ही गोपकुमार भी धनुष देखनेके लिए उत्सुक हो उठे।

'धनुष राजभवनके ही एक भागमें विशाल प्राङ्गणके मध्य रखा है।' नागरिकने वतलाया—'सैनिकोंका एक दल सशस्त्र प्रमादहीन होकर उसकी रक्षा करता रहता है। नागरिक द्वारपर-से उसका दर्शन करके प्रणाम कर सकते हैं। धनुषके समीप तक किसीको जाने नही दिया जाता; किन्तु आप द्वारपर-से उसे देख सकते है।'

'धनुष-यज्ञ क्या है?' श्यामसुन्दरने पुन उसी नागरिकसे पूछ लिया।

'महाराज कभी जव उनकी इच्छा हो या उनके पुरोहित सत्यकजी आदेश करे, यह महोत्सव करते हैं। इधर अनेक वर्षोसे यह नही हुआ है।' नागरिकने कहा—'सत्यकजी कहते है कि यह एक प्रकारका माहेश्वर यज्ञ है।'

'होता क्या है इसमे?' सहज प्रश्न था।

'एक ओर भूतेश्वरका अभिषेक पूजन चलता रहता है। वहाँ वहुतसे पशुओकी वलि दी जाती है।' उस नागरिकके स्वरमे वितृष्णाका भाव स्पष्ट था—'दूसरी ओर रङ्गशालामें धनुप लाया जाता है वेदपाठ, स्तवन तथा वाद्यघोपके साथ। महाराज उसका अर्चन करते है। इसके अनन्तर राजकीय घोपणा होती है—'कोई अपनेको समर्थ समझता हो तो शाम्भव धनुप उठाने आगे आ सकता है; किन्तु यदि धनुप उससे भूमिसे नही उठा तो उसकी वलि दे दी जायगी धनुषको।'

'आज तक किसीने धनुपके स्पर्शका साहस नही किया है।' नागरिक कह रहा था—'इतना भारी धनुष है कि उसे भूमिसे तिल भर भी उठा पाना कठिन लगता है सवको। लोग कहते हैं कि मगधराज जरासन्ध सम्भवत उठा सकते हैं। उठा सकते होंगे, किन्तु वे कभी आये नही अपने जामाताके इस महोत्सवमे।'

गोप-वालक वड़ी उत्सुकतासे यह सव विवरण सुनरहे थे। वे सव चलते-चलते खड़े होगये थे। नागरिकने कहा—'थोड़ी प्रतीक्षाके पश्चात् महाराज स्वयं उठते हैं। धनुप उठाकर उसे ज्यासज्ज करते हैं और उसपर वाण चढाते है।'

'वाण चढाते है?' एक गोपकुमारने पूछा। स्पष्ट तात्पर्य था कि जव शर-सन्धान होता है तो लक्ष्य भी कुछ होता ही होगा।

'महाराज कहते हैं कि इस महाधनुपको वलि चाहिये। वलि दिये विना इसकी ज्या उतारी नही जा सकती।' नागरिकने सिर झुका लिया— 'महाराज वाण छोड देते हैं और दर्शकोमें-से कोई चीत्कार करके गिर पड़ता है। किसीको पता नही होता कि कौन वलि-पशु वन जायगा। इस महोत्सवमे आना सवका अनिवार्य है। न आनेपर राजदण्ड मिलेगा और आनेपर कोई नही जानता कि कल उसीकी मृत्यु होगी या नही।'

सहसा उस नागरिकके नेत्र भर आये। वह भीडमें पीछे हट गया। एकसाथ सवके मनमे एक ही वात आयी—'कसने इन्हे धनुर्यागमे वुलाया है। इन्हे मारनेका प्रयत्न वहुत कर चुका है वह। कल वह यह कुटिल प्रयत्न करने वाला है?'

वात कंसके मनमें न आयी हो, ऐसा नही था। उसने भी सोचा था—'मल्ल-क्रीड़ाके पश्चात् धनुषोत्तोलन करेगा। उसका अपने लक्ष्यवेधपर विश्वास है। दूसरा कोई सफल न हो सका तो वह स्वय करेगा यह प्रयत्न।'

'लेकिन कंस अपने प्रयत्नके सम्वन्धमे सशङ्क है। धनुष बहुत भारी है। उसे उठाने, चढानेमे वह अधमरा होजाता है। स्वेदसे लथपथ हो उठता है। उस समयके शर-सन्धानपर भरोसा करना वह ठीक नहीं मानता। इसीलिए उसने किसीसे--पुरोहित सत्यकजी तकसे अपने इस प्रयत्नकी चर्चा नही की है।

'हम धनुष देखेंगे।' गोपकुमारोंको नागरिककी वात सुनकर कोई भय नही लगा

'धनुप क्या अपने गिरिराजसे भारी होगा?' अर्जुनने ऋपभसे धीरेसे पूछा।

'हम सब मिलकर उठा लेंगे उसे।' तेजस्वीने वृद्धो जैसी गम्भीरतासे कहा---'दाऊ दादा अकेले ही उठा लेंगे।'

'तुम सव झगडना नही, यह वावाने चलते समय कहा है।' भद्रने सवको सचेत किया—'कन्हाई ही उठा ले तो इसे उठाने देना। अन्यथा झगडेगा कि मैंने ही उठाया है।'

गोप-वालकोको सदा लगा है कि उनका यह इन्दीवन सुन्दर सुकुमार सखा सवसे दुर्वल है, किन्तु सबसे नटखट है प्रत्येक कार्यमे यह आगे

कूदता है। कोई दूसरा सम्मिलित होजाय तो उससे झगड़ेगा। अतः इसको पहिले अवसर दे देना ही अच्छा रहता है।

'हम धनुष देखेंगे।' कृष्णचन्द्रने बड़े भाईकी ओर साभिप्राय देखा। वहाँ तो अनुजके लिए नित्य स्वीकृति है।

नागरिकोंसे कई बार पूछना पडा। पता नही क्यों नागरिक अब धनुषकी चर्चासे डरने लगे थे। सम्भवत. उन्हें भय था कि महाराज कंस इन कुमारोका धनुष तक पहुँचाया जाना सुनकर रुष्ट होंगे; किन्तु ये पूछते है तो मार्गका सकेत करना ही पड़ता है।

'हत्यासे कलङ्कित उस धनुषको देखनेका इतना उत्साह क्यों है इनमे?' कई हृदयोमे आशङ्का उठी—'कही महाराज कंसके अभिमानकी इस रीढपर ये अभी ही तो आघात नहीं करेंगे?'

'इन्होंने स्पर्श भी कर दिया तो धनुप पवित्र होजायगा। फिर पता नही क्या होगा उसका। अन्तत. शिव-धनुष है। जड़ द्रव्य तो नहीं है।' एक वृद्ध विप्रने समीपके व्यक्तिने कहा।

'इन्हें धनुष तक प्रहरी जाने देंगे?' उस दूसरेने सन्देह किया।

'वे इन्हें रोक सकेंगे?' वृद्ध हँसे—'ये कुछ करना चाहेंगे तो कोई रोक पावेगा इनको?'

नागरिकोमे अनेक प्रकारकी चर्चा चल पडी थी। श्रीराम-श्याम सखाओंके साथ बाल-गजराजके समान झूमते-घूमते बढे जारहे थे। धनुष जिस विशाल भवनके प्राङ्गणमे स्वर्ण-वेदिकापर रखा था, उसका दुर्गके समान उच्च, विस्तृत, सुसज्जित द्वार आगया सम्मुख।

'वह रहा धनुप!' सुबलने सकेत किया। इन्द्रधनुपके समान अनेक रङ्गोंमे मण्डित, रत्नखचित, अकल्पनीय विशाल धनुप। पुष्पमाल्य, ढेरो सुमन, चन्दन, कुंकुम आदिमे पूजा हुई थी धनुपकी।

'अपने गिरिराजसे भारी नही है।' नन्हा तोक उछला; किन्तु भद्रने इस छोटे भाईको सम्हाल लिया। गोपकुमारोको भद्रकी चेतावनी स्मरण है।

नागरिक द्वारपरसे ही धनुपको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करनेके अभ्यासी हैं। प्रहरियोंने समझा—ये ग्रामीण बालक आये हैं, यहाँकी मर्यादा-

सीमाका इन्हे पता नही है। ये थोडा भीतर आकर धनुष देखना चाहते हैं तो देख ले। कितने सुन्दर बालक हैं।

प्रहरी सावधान हो, रोके, इससे पहिले ही कृष्णचन्द्र लगभग दौड-कर धनुषके समीप वेदिकापर जा चढे।

'दूर ! दूर रहो। हटो !' प्रहरी पुकारते बढे—'स्पर्श मत करना।'

किन्तु इतनी देरमें तो कृष्णने धनुष उठा लिया। वेदिकापर उसकी एक नोक टिकाकर, उसे झुकाया। दक्षिण कलाईमे लपेटकर ज्या धनुषपर चढा दी और वामहस्तसे धनुषको उठाकर उसकी ज्या दक्षिण हस्तसे खीचने लगे—खीचते ही चले गये।

लिखनेमे—कहनेमे बहुत देर लगती है। प्रहरी उस प्राङ्गणमे ही थे—विशाल प्राङ्गण सही, किन्तु सशस्त्र थे, सावधान थे और कृष्णचन्द्रके वेदिकापर चढ़ते-चढते दौड़ पड़े थे, किन्तु वे आधे प्राङ्गण भी नही पहुँचे थे कि श्रीकृष्णके करोमें धनुप मण्डलाकार हुआ और भयानक शब्दके साथ जैसे सैकडो वज्रपात एक साथ हुए हो टूट गया।

टूट गया कंसके अभिमानका मेरुदण्ड। उसी क्षण कसकी राजसभामे सिहासन पर लगा छत्र टूट गिरा। प्रहरियोके हाथसे शस्त्र छूटकर गिर पडे। वे स्वय गिरते-गिरते बचे। भवनोकी भित्तियाँ हिल उठी। पशु चीत्कार करके इधर-उधर भागने लगे। पक्षी वृक्षोपर-से चीखकर गगनमें उड चले।

श्रीकृष्णने हाथके धनुष-खण्डको देखा। समीप आ गये अग्रजकी ओर देखा और इस प्रकार धनुषके टुकड़े फेक दिये कि भङ्गी कहती थी—'यह तो बहुत जीर्ण था। व्यर्थ ही इतनी प्रशसा करते थे लोग इस धनुषकी।'

गोप-बालक तालियाँ बजाने लगे थे। उनके सखाने तो धनुषको तोड ही डाला। नागरिक द्वारसे दूर हटने लगे। वे स्तब्ध रह गये थे। इतना बल—इतना पराक्रम ! कल्पनासे बाहर बात थी उनके; किन्तु अब भयने उन्हे दूर जानेको विवश किया—'पता नही, कस अब क्या करेगा ?'

'धनुष टूट गया !' प्रहरियोका तो मानो रक्त सूख गया। 'अब पता नही, महाराज क्या करेंगे।' कुछ क्षण वे स्तब्ध खड़े रह गये। मुख श्वेत पड़ गये थे उनके।

'पकड़ो ! पकड़कर बाँध लो इन्हे । ये भाग न जायँ ।' हाथसे गिरे शस्त्र उठाकर वे सब दौडे—'कोई भी बालक कही भाग न जाय ।' वे अब सबको पकडकर अपने महाराजके सामने उपस्थित कर दे, यही मार्ग बचा उनके लिए ।

'अच्छा !' श्रीबलरामके नेत्र अङ्गार हो उठे—'ये दुष्ट उनके छोटे भाईको पकडना चाहते हैं ।' कूदकर वे अपने भाईके पास वेदीपर पहुँचे और धनुषका एक खण्ड उठा लिया । दूसरा खण्ड श्रीकृष्णने झुककर उठाया ।

'कनू ! डरना मत !' भद्रने द्वारपरसे पुकारा और लकुट उठाया ऊपर । गोप-बालकोंके मुख लाल होगये क्रोधसे । सबके करोंके लकुट उठ गये—'ये दुष्ट उनके सखाको पकडेंगे ।'

'ये तो राक्षस हैं ।' कृष्णने वहीसे हँसकर कहा । श्रीबलरामने भी नेत्रोंके संकेतसे रोका ।

'राक्षस है !' गोप-बालकोका यही विश्वास है कि राक्षस चाहे जितने मोटे हो, बहुत दुर्बल होते हैं । बहुत गुर्राते हैं, बहुत उछलते हैं, किन्तु सबसे सुकुमार कन्हाई ही उन्हे मार देता है तो बल कहाँ होता है उनमे ।

'राक्षस है ! बुरे-बुरे, भयानक आकार वाले ये सब राक्षस ही तो हैं ।' बालकोंने लकुट उठाये हाथ नीचे कर लिये । राक्षस हैं तो चिन्ताकी बात नही है । इन्हे अकेला श्याममुन्दर ही मसल डालेगा और इस समय तो दाऊ दादा भी है । बालकोको अब यह क्रीड़ा देखनी है । पहिली बार उनके इन दोनो सखाओंने हाथमे शस्त्र—दण्डके समान धनुष-खण्ड उठाया है । इनके हाथ देखने हैं अब मित्रोको ।

देखनेको कुछ अधिक नही मिला । यमराज अपना यमदण्ड उठाते तो भी इतनी शीघ्रता कदाचित ही कर पाते । प्रहरियोके मस्तक, कन्धे, भुजा—जहाँ धनुष-खण्ड पड़ा वह अङ्ग चूर-चूर होगया । प्राङ्गणमें लोथड़े बिछ गये उनके ।

'क्या हुआ ?' धनुष टूटनेके भयानक शब्दसे कस चौंककर सिंहासनसे कूद पड़ा था । उनके मस्तकसे मुकुट गिर गया था राजसभामें । भयके कारण उनका शरीर काँपने लगा था । उसने अपनी भारी गदा उठा ली

थी। वह कैसे भूल सकता है कि 'वसुदेवके पुत्र मथुरा आगये हैं। वे बालक पता नही क्या कर रहे हैं।' वह चर भेजने ही जारहा था।

'महाराज ! व्रजसे आये बालक धनुषशालामे ··।' रक्तसे लथ-पथ, भग्नशिर, टूटे हाथ एक धनुपका प्रहरी किसी प्रकार भागता आया और कसके पैरोपर गिर पडा।

'क्या कर रहे हैं वे वहाँ ?' कसने चिल्लाकर पूछा।

'धनुष तोड डाला। प्रहरियोको मार रहे हैं।' अब कैसे मार रहे हैं, इसका उदाहरण तो सदेश-वाहक स्वय सम्मुख खडा है।

'सेनापति !' कसने पुकारा—'शीघ्रता करो। सेना ले जाओ। उनमे कोई बचकर निकल न जाय।'

सेनापति इतनी शीघ्रतामे जितने भी सैनिक प्रस्तुत मिले, उन्हे लेकर चल पडे। भवनके भीतर बालकोसे युद्ध करना था उन्हे। गजसेना, अश्वसेना व्यर्थ थी। शतघ्नी, भुशुण्डी आदि अस्त्र ही नही, धनुष भी अनुपयोगी थे। भल्ल-त्रिशूल, मुद्‌गर, तोमर, खड्‌ग जैसे अस्त्र लिये पदाति सेनाके सैनिक दौड पडे।

यमदण्ड उठाये अकेले यमराज त्रिभुवनके लिए भयङ्कर होते है और वहाँ तो दो दण्डधर थे—यमराज भी जिनके भ्रूभङ्गसे काँप उठे, ऐसे दण्डधर। घूम रहे थे उनके करोमे धनुप-खण्ड—आघात, चीत्कार, रक्त-की फुहारें—सैनिकोको हाथ उठानेका भी अवकाश तो नही मिला।

कोई एक भी भाग नही सका। भागनेका उद्योग और भी भयानक था। कोई द्वारकी ओर आया भी तो उसे शतश बालक लकुट लिये दीखे। दो ही बालक प्रलय मचाये थे और द्वार घेरे थे सैकडो दण्डधर—प्राङ्गणमे ही उसे भागना था और वहाँ मृत्यु-वर्षा होरही थी।

कोई खडा नही, कोई कराहता भी नही। शव बिछ गये—पट उठे एकपर-एक उस प्राङ्गणमें सैनिकोके। उनके शस्त्र छिन्न पडे रहे। घडी भर भी नही लगा और वहाँ शान्ति—मृत्युकी शान्ति होगयी।

दोनो भाइयोने अब धनुप-खण्ड फेंक दिये हाथसे उन्ही शवोके मध्य। दोनो वेदीसे कूद आये। दोनोके वस्त्रोसे रक्त टपक रहा था। सखाओने बढकर बारी-बारीसे दोनोको अङ्कमाल दी।

वहाँके स्वच्छ जलसे श्याम-बलरामने, सखाओंने भी कर-चरण भली प्रकार धोये। कंसके रङ्गकारसे छीने वस्त्र वहीं उतार फेंके। वे वस्त्र दोनों भाइयोंके और उनको अङ्कमाल देनेसे गोपकुमारोंके भी रक्त-दूषित होचुके थे। उस भवनसे जब वे निकले, वैसे ही वेशमें थे जैसे व्रजराजके पाससे चलते समय थे। बिखरी अलकें, कटिसे कछनी, कन्धोंपर पटुके। वस्त्र, अङ्गराग, माल्य, अलकोंके सुमन सब उस भवनमें ही विसर्जित होगये।

'कंसकी संसारमें प्रसिद्ध अजेय सेना आयी थी।' नागरिकोंमें जब बात फैलती है, प्रायः बहुत बड़े रूपसे ही कही जाती है। मथुरामें शीघ्रतासे चर्चा फैलने लगी—'पूरी सेना आयी थी इन्हें मारने और वह भवन प्राङ्गण ऊपर तक उन सैनिकोंके शवोंसे भरा पड़ा है। जल निकलनेकी नालियोंसे भलभलाता रक्त बहता ही जारहा है। मथुराकी प्रायः पूरी सेना दोनों भाइयोंने मार दी।'

'इन्हें भवनमें कितनी देर लगी। ये तो भीतर गये और मानो घूमकर निकल आये।' अब लोग आतङ्कसे दूर खड़े देखते हैं—'इनके शरीरोंपर न कहीं कोई खरोंच है, न रक्तका एक बिन्दु! श्रमका चिह्न—स्वेद तक तो इनके भालपर नहीं है।'

'यह सौन्दर्य, यह शील, यह पराक्रम!' नागरिक अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाते हैं। उनका रोम-रोम कहता है—'भगवान वासुदेव! भगवान वासुदेव!'

मथुराके लोग अब उस स्नेहसे समीप नहीं आरहे हैं। देर भी बहुत होगयी है। सूर्यास्त होने ही वाला है और आज द्वादशी है—अन्धकार होजायगा शीघ्र। वहाँ बाबा और गोप प्रतीक्षा करते होंगे। बालकोंके पद शीघ्रतापूर्वक उठने लगे हैं। अब उन्हें कुछ देखना नहीं है। अपने पड़ावपर पहुँचनेकी शीघ्रता है।

श्रीव्रजराज और गोप बहुत चिन्तित थे। वह भयानक शब्द हुआ तबसे और अधिक चिन्ता होगयी थी। बालक मथुरामें गये हैं। राजा कंस क्रूर है। सब बालक ही हैं। पता नहीं सब क्या करें। मार्ग भी तो भूल सकते हैं वे सब। सन्ध्या होनेको आगयी।

गोपोमे-से कई नगरमे जानेको उठ पडे थे, इतनेमें बालक आते दीख पडे। दौड़ते ही आये सबके-सब। दौडते-हँसते राम-श्याम आकर नन्दरायसे लिपट गये। बाबाने भुजाओमें भर लिया दोनोको।

'राम! तुम लोगोंने कोई उत्पात तो नही किया?' बाबाने स्नेहपूर्वक अलकोपर कर फेरते पूछा—'श्याम! किसीने तुम लोगोसे कुछ कहा तो नही?'

'बाबा! मथुरा बडी अच्छी है।' यह कृष्णचन्द्र सदा अपनी धुनमें रहता है। बाबा जानते हैं कि बालक भूखे हैं। कन्हाईको वर्णन करने दिया गया तो वह देर तक कहता ही जायगा।

बाबाने रोका—'अच्छा! अच्छा! पहिले सब भोजन करो।' बालकोको पायस भोजन कराया। सब बहुत थके थे, झट सो गये।



जय जननायक

मथुरामे उस रात्रि कदाचित ही कोई सोया हो। सोये थे आम्रोपवनमे निश्चिन्त गोपकुमार और गोप। नगरमे तो लोग उनकी चर्चामें या चिन्तामें जाग रहे थे। गृहोमे, सभागृहोमे, देवमन्दिरोमे—लोग स्थान-स्थानपर एकत्र होगये थे। स्त्रियोमे वृद्धाये, प्रौढाये और तरुणियोने अपने समुदाय पृथक्-पृथक् बना लिये थे। पुरुषोमे भी आयु तथा वर्णके अनुसार लोगोके समूह पृथक्-पृथक् एकत्र हुए थे। मनुष्य समान वय-व्यवसाय एव शीलवाले-से ही तो हिल-मिल सकता है।

सर्वत्र एक ही चर्चा थी—'मथुराके वास्तविक स्वामी आ गये।' मथुराके अधीश्वर को पहिचानने-मे अब किसीको कोई सन्देह नही रहा था। 'कसकी पूरी सेना मार दी दोनो भाइयोंने आज ही। कस गया नही था, अन्यथा उसकी भी आज समाप्ति होजाती। कल सही—कल रङ्गशालासे बचकर कस नही निकलेगा।'

'बडा गर्व था कसको धनुषका। उस धनुषको मूलीके समान तोड़ दिया उन्होने। लोगोंने चाहे जितनी अतिशयोक्तियाँ गढ ली—'धोबीको तो

हाथसे मारा था, किन्तु सैनिक गये तो अंगुलीसे संकेत किया और सैनिकोंके सिर एकसाथ टूट गिरे।'

'वे वासुदेव भगवान हैं। उनके लिए सङ्कल्प करना ही पर्याप्त है।' किसी भी बातपर कोई शङ्का नही कररहा था। सब सोचते थे—'किसीको स्पर्श करके भी मारा होता तो उनके वस्त्रोपर, शरीरपर रक्तका छींटा नही पडता। भवनकी नालियोंसे पानीके समान रक्त बहता रहा है।'

'भगवान वासुदेव!' इसके साथ ही वसुदेवजीके साथ अपने दूर-दूरके सम्बन्ध भी लोगोको स्मरण आने लगे--'वसुदेवजी मेरे भाई होते है। क्या कहा होगा वासुदेवने अक्रूरको ?'

'चाचाजी कहेगे।' दूसरा कुछ कह भी कैसे सकते है। कोई चाचा है, कोई ताऊ और कोई पितामह। यदुवृद्धोमे वात्सल्य उमड़ रहा है। यादव-तरुणोमे भी स्नेहकी बाढ आयी है--'वे हमारे छोटे भाई हैं।'

'वे सत्यकके नही, महर्षि गर्गाचार्यके यजमान हैं।' ब्राह्मण वर्गमें चर्चाका ढङ्ग है—'हमने गर्गाचार्यजीके आचार्यत्वमे यज्ञ कराया है। अथवा 'हमने गर्गाचार्यजीसे अध्ययन किया है।'

'वे कितनी श्रद्धासे विप्रोको कल मस्तक झुका रहे थे।' ब्राह्मणोके हृदय और उनकी वाणी दोनो भाइयोको अब तक आशीर्वाद देरही है। ऐसा लगता है कि दोनो भाई अब भी मस्तक झुकाये नेत्रोंके सम्मुख ही हैं। ब्राह्मणोमें-से अनेकोंने रात्रिमे दोनो भाइयोके कल्याणके लिए पाठ या जप विशेष किया।

'वे हमारे स्वामी हैं।' वैश्य और शूद्रोमे एक-सा निश्चय है।

'दोनो भाइयोमे सम्राट कौन होगा ?' किसीने पूछ लिया था।

'यह भी पूछना है ? इस कुलमें बडे भाई सिंहासन स्वीकार नही करते।' वे नवनीरदसुन्दर—लेकिन वे सिंहासन स्वीकार करे या न करे, जन-जनके हृदयासनके अधीश्वर तो वे हो चुके।

'वायक गुणक उनके स्पर्श करते ही तरुण होगया।' वृद्ध परस्पर परिहास करते है –'वे स्पर्श न करे, उनके चरणस्पर्श कर लेना और तरुण होजाओगे तत्काल।'

'सुनते हैं सुदामा माली—बुढापेसे काँपते करो वाला अब युवको जैसा बन गया है।' दुर्बलोके लिए बहुत प्रलोभन होगया यह।

'मथुरामे अब कोई कङ्काल नही रहेगा। ज्येष्ठा देवी कोई दूसरा स्थान ढूँढने आज ही चली गयी।' वैश्यवृद्ध भी ऐसी ही चर्चा कर रहे है—'गुणक और सुदामा दोनोके घरोमे पादुकायें तक स्वर्णकी होगयी है। स्वर्णसे भर गये हैं उनके गृह। भगवान वासुदेव हमारे अधीश्वर होगे तो क्या प्रार्थना करनेपर हमारे गृह अपने श्रीचरणोसे पवित्र करने नही पधारेंगे।'

'उनके आनेकी भी आवश्यकता कहाँ है?' लोग श्रद्धासे पूर्ण है—'गुणकके गृह कहाँ गये थे वे। केवल उनकी ओर दृष्टि उठाकर देख लिया था उन्होने।'

'उन्होने स्पर्श क्या किया, कुब्जापर रूपका अम्वार उतर आया।' स्त्रियोमे कुब्जाकी ही चर्चा अधिक है। 'वह दासी—ओह, कदाचित वे दासी स्वीकार कर लेते अपनी।' असख्य अन्त करण आकुल हो रहे है आज।

'वे भैया हैं दोनो हमारे।' यादव-कन्यायें उमङ्गमे है—'हमे बहिन कहेगे। कल उन्हे मथुराका अधीश्वर तो होने दो।'

'हमारे देवर लगते हैं।' कुलवधुओमे उमङ्ग कम नही है।

'भाभी! तुम अभीसे ऐसी होने लगी हो।' कन्याये छेडने लगी है—'हम भैयासे कह देंगी।'

'कह दो कि वे और विवाह कर ले।' कुलवधुओमे यहाँ एकान्तमे परिहास चल रहा है—'हमारे दोनो देवर सकुशल रहे, बस।'

'सकुशल रहे गौर-श्याम।' वृद्धाओमे अपार वात्सल्य उमड रहा है। उनको दोनो भाई बहुत छोटे लगते हैं। इतने छोटे कि अङ्कमे लेकर दुग्धपान करानेको हृदय मचल रहा है। बडी-बूढियोके भी अञ्चल आज टपकते दूधसे भीग रहे हैं।

'धन्य देवकी बहू।' वृद्धाओमे देवकीजीकी, रोहिणीजीकी प्रशसा भी चल रही है। 'कितनी तपस्या की उन्होने। कितना कष्ट उठाया वर्षों तक।'

'इस नाते ये कभी हमारे अङ्कमे भी आ बैठेगे।' वृद्धाओमे वात्सल्य उमड रहा है। वाणी आशीर्वाद देते थकती नही है।

'भगवान वासुदेव ! हमारे स्वामी ! हमारे प्रतिपाल !' मथुराके स्त्री-पुरुष, बालक-युवा-वृद्ध उन दोनो भाइयोकी ही चर्चामें लगे हैं। उनके रूप, शील, विनय, पराक्रमकी ही चर्चा है सर्वत्र। मथुराके जन-नायक हो गये वे आज सन्ध्याकाल ही। सबका—सब सात्विक जनोका हृदय, सबकी प्रीति सम्पादित कर ली श्याम-बलरामने कुछ घड़ीके नगर-भ्रमणमे।



कंसका भयोन्माद

'जो इसे तोड देगा उससे विरोध करेगा तो मारा जायगा।' धनुष देते समय भगवान परशुरामने कंससे कहा था। यह आज उसे स्मरण हो रहा है।

'अभी परसो आचार्य सत्यकने कहा था' कंस व्याकुल होकर सोच रहा है 'धनुष किसी भी प्रकार टूट गया तो यजमानका नाश निश्चित है।'

'धनुष टूट गया—तोड दिया उसे वसुदेवके पुत्रोने। अब—अब क्या होगा ? माहेश्वर यज्ञका क्या होगा ?' कंसने दूत भेजा सत्यकजीको बुलानेके लिए।

कंस युवराज था तबसे गर्गाचार्यसे दूर-दूर ही रहता आया है। कंसके हिंसाप्रधान यज्ञोमे गर्गाचार्यजी भाग नही लेते। उनकी निष्ठा शुद्ध श्रौतगार्गीय है। कंसको तत्काल सिद्धि चाहिये थी। उसने शाक्त सिद्ध एवं विद्वान सत्यकजीको अपना पुरोहित बनाया।

सत्यकजी सिद्ध पुरुष थे—सन्देह नही। वे आगमके प्रसिद्ध विद्वान थे। बलि-प्रधान शाक्त एवं माहेश्वर अनुष्ठान करानेमे उन्हे आपत्ति नही थी। ज्योतिष एवं शकुनशास्त्रके उत्तम ज्ञाता थे। अपने यजमानपर उनकी प्रीति स्वाभाविक थी। कंस भी उनका सम्मान करता था।

दूतने लौटकर समाचार दिया—'धनुष भङ्गका शब्द होते ही सत्यकजी अपने आश्रमसे निकल पड़े। वे मथुरा छोड़कर कही चले गये।'

कंसके नेत्रोंके सामने पृथ्वी मानो घूमने लगी। उसने संकेतसे दूत को चले जाने को कह दिया—'सत्यक भी छोडकर चले गये मुझे ? अब अपनी ही बुद्धि और बल पर भरोसा करना है !'

कंस असावधान नही था। उस पर यह दोष कभी किसी ने नही लगाया। वसुदेवके पुत्रोके आते ही उसने उनके पीछे गुप्तचर लगा दिये थे। नगरजनोंके मध्य वे चर भी राम-श्यामके साथ रहे थे। पूरा समाचार कंसको मिलता रहा है।

कंसका रङ्गकार प्रमुख मार दिया गया। कलके महोत्सवके लिये जो वस्त्र वह ला रहा था, उसे लूट लिया उन दोनो बालकोने। वायक गुणकके यहाँ वस्त्र लेने जो राजसेवक गया, उसने लौटकर सूचना दी—'गुणक तो पागलोकी भाँति गुमसुम बैठा है। किसी बातका उत्तर ही नही देता। अवश्य ही वह युवा जैसा दीखता है और उसकी दूकानके तो द्वार, पीठ, सब स्वर्णके बनवा डाले उसने।'

'हूँ !' कंस क्रोधसे जलता-भुनता रहा सुन-सुनकर—'दोनो बालक जादूगर होगये हैं। दोनो चमत्कार दिखाने लगे है। उस दासी कुब्जाको सीधी कर दिया। वह रूपवती बनकर मटकती अपने घर लौट गयी। आज उसे अपने महाराजको अङ्गराग-लेपनका भी स्मरण नही रहा।'

'भगवान वासदेवकी जय बोलने लगे है नागरिक।' कंस दाँत पीसता है—'वसुदेवका छोटा पुत्र अब भगवान बन गया है। अब ये नागरिक—दासी तक मेरी उपेक्षा करने लगे है। कल मैं इन सबको एकसाथ मार दूँगा।'

'धनुष टूट गया।' इस समाचारने सबसे बडा धक्का दिया और उसपर जो सेना भेजी गयी, सेनापति सहित वह पूरी सेना दो बालकोंने मार दी। एक भी कोई उनमे-से संहार का समाचार देने कंस तक नही लौटा।

'सत्यक भी भीरु ही निकला। अन्तत. है तो वह भी ब्राह्मण ही।' कंस मुट्ठियाँ बाँधकर इधरसे-उधर कक्षमें घूमने लगा।

अन्धकार हो चला। कक्षमें सेवकने प्रदीप जला दिये। कंस सहसा चौंका—'उसकी छायामे ये इतने छिद्र ! छायाके तो मस्तक ही नही है।' घबड़ाकर सिर टटोला उसने—'सिर तो अपने स्थानपर ही है।'

बाहर आगया कक्षसे वह, किन्तु आज उसके नेत्रोको क्या हो गया है ? उसे सब तारे दो-दो दीखते हैं। वृक्षोके पत्ते ऐसे स्वर्णिम लगते हैं, जैसे वृक्षोंमे आग लगी हो। वह फिर कक्षमे आया और फिर चौका—'उसको छायापर दो सिर कैसे ?' फिर अपना सिर टटोला उसने।

'ये बहुत बुरे अपशकुन हैं।' कंसको अब स्मरण आया। उसने कान बन्द करके भीतर होनेवाला शब्द सुननेका प्रयत्न किया, किन्तु बहुत प्रयत्न करके भी प्राण-घोष सुनायी नही पडा। उसने नासिकाग्र और भ्रू देखना चाहा। इनमे-से एककी तनिक-सी भी झलक उसे देखनेको नही मिली।

अपशकुनो से घबडाकर वह शय्यापर जालेटा। कहला दिया उसने कि उसे कोई जगावे नही। रात्रि का आहार किये बिना पहली बार सोया और स्वप्न देखने लगा—'भूत-प्रेत-पिशाच भयङ्कर वीभत्स आकार वाले उसका आलिङ्गन कर रहे हैं। उसका मस्तक मुण्डित है, सर्वाङ्गमें तेल लगा है। गधोंके रथपर दिगम्बर बैठा दक्षिण जारहा है। उसके गलेमे किसी काली स्त्रीने शवके ऊपरसे उठाकर माला डालदी है। वह विष खारहा है।' कंस नीदमे ही चीत्कार कर उठा।

फिर पलकें लगी। फिर स्वप्न—'सूर्य पृथ्वीपर टूटकर गिरा और उसके चार टुकडे होगये। चन्द्रमा भी टूट गिरा और दस खण्ड होगया। एक वृद्धा, विधवा पके खुले बालकी नग्न स्त्री खप्पर, तलवार लिये उसकी ओर दौडी आरही है।'

कंसने कई बार भयसे चीत्कार की। कई बार सो जाने का प्रयत्न किया। सुन रखा था—फिर निद्रा आ जाय तो उससे पहिले देखा स्वप्न निष्फल होता है, किन्तु उसे प्रत्येक बार दु स्वप्न ही दीखते गये—'भयंकर घोषके साथ बड़ा भारी कुम्हारका चक्र घूम रहा है और उसपर कंस स्वय बैठा है। तेलीका एक बहुत बडा कोल्हू चल रहा है। कंस उसमें पड गया है और पिस रहा है। कही अधजले काष्ठो की ढेरी है। एक मस्तकहीन कबन्ध नृत्य कर रहा है। उसका कटा सिर गगनमें चिल्लाता घूम रहा है। एक सरोवर है, किन्तु उसमे भस्म भरी है ऊपर तक। एक नग्न शूद्र, जो गलित कुष्ठमे सड़ रहा है, अट्टहास करता उसे आलिङ्गन करने आ रहा है।

कंस ने घबडाकर शैया-त्याग कर दी। जागनेपर भी उसे चैन कहाँ है। उलूक अपने कर्कश स्वर मे उसके ही कक्षपर बैठा उसका नाम लेकर

उसे पुकार रहा है। कुत्तों का समूह रो रहा है। रात्रिमे शृगाली और मार्जारी रो रही हैं। चारो ओर अपशकुन—मृत्यु के दूत अपशकुन !

कंस उठकर फिर वाहर आया। ओससे नङ्गे पद भीग गये। कक्षमे लौटा और उसके पदचिह्न क्यो नही वन रहे हैं ? अव नही—अब और एकान्तमें वह नही रह सकता। भयसे वह पागल हुआ जा रहा है। उठ पड़ा वह अपने भयसे सामना करने का साहस करके।

———

शिवरात्रिका सवेरा

फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी तिथि थी। सायकाल चतुर्दशी हो जानेसे महाशिवरात्रिका दिन था।

अरुणोदय प्रारम्भ ही हुआ था कि कसने दूत भेजकर पीठ, पैठिक, असिलोम आदि मन्त्रियो को वुलवाया। उसने आज्ञा देनी प्रारम्भ की—'रङ्गशाला को फिर से सजा दिया जाय। माल्य, किसलय-तोरणादि शीघ्र लगाये जायँ। सुगन्धित धूप जलायी जाय वहाँ चारो ओर। मल्लक्रीडा महोत्सवकी घोषणा करो। राजकीय वाद्य-वादक-गण अविलम्ब वहाँ वादन प्रारम्भ करे।

थोड़े ही क्षणो मे रङ्गशालासे सुमधुर वाद्यो की ध्वनि आने लगी। धनुप टूट चुका था, सत्यकजी नगरमे नही थे। अत धनुर्यज्ञ अथवा माहेश्वर महामखकी चर्चा व्यर्थ थी। कसने नगरमे मल्लक्रीडा महोत्सवकी घोपणा करवा दी प्रात काल।

'देवकी-वसुदेवको तथा उग्रसेनको भी कारागारसे ले आओ।' कसने आदेश दिया—'ये सुरक्षित मञ्चोपर पृथक्-पृथक् बैठाये जावेंगे। नगर में घोपणा करो कि समस्त नागरिकोको महाराज मल्लक्रीडा देखनेको आमन्त्रित करते हैं। सवको अवश्य आना चाहिये। कोई गृहोमें न रहे। भवनोंकी—नगरकी रक्षाकी व्यवस्था की गयी है। यह कार्य राजपुरुष करेंगे।'

'सम्मानित नागरिको, राजसभाके मण्डलेश्वरो, सामन्तो के समीप विशेप दूत भेज दो।' कस ने कहा—'मैं रङ्गशाला पहुँच रहा हूँ। सव लोग वहाँ आनेकी शीघ्रता करे।'

'महाराज रङ्गशाला पहुँच रहे हैं।' सबको इतने प्रात काल नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर शीघ्रतामें वस्त्रादि पहिनकर भागना पडा।

'महामात्र! तुम प्रस्तुत रहो।' कसने कुवलयापीडके हस्तिपको सावधान किया बुलाकर—'नन्दादि गोपोके रङ्गशालामे पहुँचते ही महागजको द्वारपर ला खडा करना। उसे भरपूर सुरापान करा दो।'

मल्लोको भी सन्देश भेज दिया गया। इतने सवेरे उत्सव प्रारम्भ हो जायगा, यह किसी को आशा नही थी, किन्तु महाराजके रङ्गशाला पधारनेका समाचार पाकर सबका आलस्य भाग गया।

राजसेवकोने वहुत अल्पकालमे रङ्गशाला सजा दी। उसकी सज्जा तो कल ही हो चुकी थी केवल पुष्पमाल्य, पत्रतोरण बाँधना था। सुगन्धित धूप जला दी गयी। मल्लभूमि अलकृत कर दी गयी अनेक रङ्गोंसे।

नागरिक आने लगे। अपने-अपने वर्ण एवं पदो के अनुसार स्त्री-पुरुषो को पृथक्-पृथक् बैठनेके लिए मञ्च वनाये गये थे। राजमञ्चके दोनों ओर गोलाईमे ये मञ्च थे और राजमञ्चके ठीक सम्मुख मुख्य द्वार था। राजमञ्चपर पहुँचने के लिए एक और द्वार वना था औप उस मार्गसे केवल महाराज को आना था।

मल्लोंके प्रवेशका द्वार राजमञ्चके पार्श्वमें था। नारियोंके आनेका द्वार पृथक् था और पुरुपोमें भी सामन्तो, मुख्य पुरुपोके अतिरिक्त राजसेवकोंके आने का द्वार राजमञ्चके दूसरे पार्श्वमें वनाया गया था।

राजसेवक आनेवाले नागरिकोको उनके उपयुक्त मञ्चो पर पहुँचाने लगे। महिलाओको उनके मञ्चो तक जानेका मार्ग वे निर्देश कर रहे थे।

सामन्तगण—कसके अधीनस्थ नरपतिगण आने लगे। रङ्गशालाके वाहर तक उनके वाहन आये और वहाँ उनको उतारकर लौट गये। कंसका आदेश था कि उसके आने पर रङ्गशालाके आस-पास कोई रथ, अश्व या गज नही रहना चाहिये। वह जानता था कि सुरापानसे मत्त महागज वहाँ कोई रथ, गज आदि देखेगा तो उत्पात करने लगेगा।

सामन्त, मण्डलेश्वर, नरपतिगण आकर बैठने ही लगे थे कि दो रथ आये कारागारसे। एक में हथकडी-वेडीसे जकडे वसुदेव-देवकी और दूसरे मे भूतपूर्व महाराज उग्रसेन। पुत्र ही आज पिताको इस प्रकार सम्मुख ताडित—अपमानित करनेपर तुला था तो कोई क्या कर सकता

था। दो पृथक्-पृथक्, छोटे मञ्च थे दोनों रथोसे आये वन्दियोंके लिए। वे वहाँ बैठाये गये और सशस्त्र प्रहरी दोनो मञ्चोको घेरकर खडे होगये।

कस केवल इतना ही नही चाहता था कि माता-पिता अपने पुत्रोका वध अपनी आँखो देखें। वह तो आज यही इसी रङ्गशालामें सबको–लगभग सव यदुवशियोको ही ममाप्त कर देनेपर उतारू था। उसे मथुराके उन सव नगर-जनोको मार देना था यहाँ जो कल वसुदेवके पुत्रोका स्वागत कर रहे थे।

'कल धनुप-शाला मेरे सैनिकोंके शवोसे भर दी उन्होंने।' कंसका पैशाचिक निश्चय था—'आज उनके और उनके सम्पूर्ण स्वजनो-सेवकोंके शवोसे मैं रङ्गशाला भर दूँगा।' महासंहारकी भयानक योजना उसने अपने मनमें बना ली थी, किन्तु वह योजना उसके मनमे ही रह जायगी—यह कहाँ पता था उसे।

कंसके सगे भाई आये और राजमञ्चको घेरे हुए अत्यन्त निकट मञ्च वना था, उसपर वैठ गये। लगभग सब नागरिक, सामन्तादि सूर्योदय होते-होते आ गये और अपने स्थानोपर वैठ गये।

'महाराजाधिराज पधार रहे हैं।' राजकीय वन्दीने उच्चस्वरमें पुकार की। मभी लोग उठ खडे हुए अपने स्थानोपर।

दस हाथ ऊँचा बना था कसका मञ्च। उसपर चारो ओर जाली-दार पर्दे लगे थे। मन्त्रियोंसे घिरा कस आया। उसने श्वेत वस्त्र पहिना था। श्वेत मुकुट लगाया था। श्वेत चन्दन धारण किया था। श्वेत पुष्पोकी माला थी उसके कण्ठमे। पता नही, इस श्वेत शृङ्गारमे वह अपने काले अभिप्राय को छिपाना चाहता था या भयानक काले अपकुशनोके भयसे वचनेका उसका यह प्रयत्न था।

कसने सवका अभिवादन स्वीकार किया। वह बैठ गया तो दूसरे सव लोग बैठ गये। उसके मन्त्रियोने भी उसके भाइयोके मञ्चपर पीछेकी ओर स्थान ग्रहण किया।

अव सामन्त-मण्डलेश्वर, प्रमुख नागरिक अपने-अपने क्रमसे उठकर राजमञ्चके सम्मुख आने लगे। वे अपने उपहार अर्पित करके अपने स्थानोपर लौट जाते थे। प्रधान समारोहके अवसरपर नरेशको उपहार देनेकी प्रथा वहुत प्राचीन है।

'नन्दराय और उनके साथके गोपोको वुला लो।' कसने इधर-उधर देखकर मन्त्री पीठसे कहा—'उनसे कहना, महाराजने कहा है कि बालक

पीछे आ जायेंगे। व्रजराज आ जायँ तो मल्लक्रीड़ा महोत्सव प्रारम्भ हो। मैं यहाँ उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

बहुत आदरका भाव-सम्मान दिखलाया कसने अपने शब्दोमे। राजदूत तत्काल चला गया। इसी समय चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशलादि मल्लोंसे घिरा उनका अग्रणी कूट रङ्गशालामें प्रविष्ट हुआ। इन वज्रकाय मल्लोंने राजमञ्चके सम्मुख आकर मस्तक झुकाया।

कस अब तक किसी अभिवादन करने, उपहार देनेवालेकी ओर दृष्टिपात भी नही करता था। उसने किसीके अभिवादनका उत्तर नही दिया था। वह हृदयमे कितना उद्विग्न है, इसे छिपानेके प्रयासमे इधर-उधर देख रहा था और कुछ आदेश मन्त्रियोको दे रहा था। मल्लोको उसने स्नेहपूर्वक देखा। मुस्कराकर उनके अभिवादनको उसने स्वीकार किया।

महाराजका सस्मित अभिनन्दन पाकर मल्लगण हर्षित हुए। मल्लभूमिके समीप आकर उन्होंने शरीरपर-के वस्त्र उतार दिये। लँगोटे कसे, विशाल देह, अत्यन्त पुष्ट पाषाण भित्तिके समान शरीर, एक-एक पेशी उभरी-चमकती हुई। लोगोंकी दृष्टि स्वत आकर्षित होगयी उधर।

वाद्योंने ध्वनि बदल दी। मल्लयुद्धका स्वर उठने लगा उनसे। मल्लोंने हर्षित होकर मल्लभूमिका उपस्थान करना प्रारम्भ किया। पुष्पाञ्जलि दी वहाँ। बद्धाञ्जलि मस्तक झुकाया और तब क्रमश एक-दूसरेको श्रेष्ठताके क्रमसे अभिवादन करने लगे।

'महाराज रङ्गशाला पहुँच गये हैं।' व्रजराजको सन्देश मिला। उन्होंने और गोपोने अरुणोदय होते ही स्नान कर लिया था। यह उनकी नित्यकी चर्या थी। अपने आह्निक कृत्य वे लगभग समाप्त ही कर चुके थे कि राजसेवक पहुँचा--'आप सबकी महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं। बालक पीछे आ जायँगे। आप सबके पहुँचते ही मल्लक्रीड़ा प्रारम्भ होजायगी।'

'महाराज पहुँच गये है। प्रतीक्षा कर रहे हैं।' गोपोने केवल उपहार छकड़ोपर रखे। शीघ्रतामे पगड़ियाँ धारण की, कञ्चुक पहिने।

बालक कल नगरमे देरतक घूमे थे। बहुत थके थे। वैसे भी अभी शीत पड़ता है प्रात.काल। श्रीबलराम, कृष्ण और गोपकुमार कुछ देरसे ही उठे थे। बालकोंने अभी कठिनाईमे स्नान किया था। उनको प्रस्तुत होनेमें विलम्ब होना स्वाभाविक था। सचमुच वे पीछे ही आ सकेंगे।

'बाबा तुम चलो।' कृष्णचन्द्रने कहा—'मैं दादाके तिलक कर दूँ। इनकी अलकोमे थोडे पुष्प लगा दूँ। हम सब एकसाथ तनिक-सी देरमे आरहे है।'

कृष्णको अभी अग्रजका शृङ्गार करना है। वह अपने कई अनुजोको भी सजावेगा। उसका शृङ्गार दूसरे करेंगे। बाबा इन बालकोको शीघ्रता करनेको कह ही सकते हैं। इस समय महाराजका सन्देश पाकर रुका नही जा सकता।

'तुम सब साथ ही आना। कोई धूम मत करना।' बाबाने कहा—'बल! छोटे भाईको तथा सखाओको लेकर वहाँ सीधे हमारे पास आ जाना। हम तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे। तुमने रङ्गशालाका मार्ग देखा है ?'

'वह—वही तो इतने वाद्य बज रहे हैं।' भद्रने हँसकर कहा—'उस ओर जानेवाला पूरा पथ सजाया गया है।'

बालक कल नगर घूम आये है। पथ इनका देखा लगता है। नागरिक रङ्गशाला पहुँच गये है। स्वय बालकोमे उत्सुकता है मल्लक्रीडा देखनेकी। ये देर नही करेंगे और आज इन्हे प्रातराश तो करना नही है। यह सब सोचकर व्रजराज गोपोके साथ चल पड़े। रङ्गशालाके द्वारपरसे छकड़ोसे उपहार-भाण्ड उठाये। नवनीत और दधिके भाण्ड राजमञ्चके सम्मुख उपहार निवेदन करके सब गोप राजाको अभिवादन करके एक ही मञ्चपर जाकर बैठ गये। कसके सकेतसे वे दधि, नवनीत-भाण्ड नागरिकोके यथेच्छ उपयोगके लिए रङ्गशालामे यत्र-यत्र रख दिये गये।



गज-वध

'यह पर्वत जैसा हाथी !' श्रीराम-श्यामके साथ गोप-बालक बड़े उत्साहसे हँसते, बातें करते आये थे, किन्तु व्रजराज जब गोपोंके साथ रङ्गशालामे चले गये, महामात्रने कुवलयापीडको लाकर मुख्य द्वारपर खडा कर दिया था। 'यह तो द्वार रोके ही खड़ा है।'

कुवलयापीड असाधारण ऊँचा था। इतना बडा हाथी देशमे दूसरा नही था। दस सहस्र हाथियोका बल उसमे बताया जाता था। कंसने मगधराज जरासन्धसे इसे पुरस्कारमें--दहेजमें कहना ठीक होगा—पाया था। भौमासुरके पास ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुए चार दाँतवाले श्वेत गज थे; किन्तु उनमे भी इतना विशाल कोई नही था।

कुवलयापीडको पालना भी साहसका काम था। वह वाहन कम ही बनता था। मनुष्यकी आकृतिसे उसे चिढ थी। उसके गण्डस्थलोंसे मद झरता रहता था। प्राय मतवाला रहता था वह। वह योधा गज था—युद्धके कामका गज। कसको कभी उपयोगमें वह नहीं आया, किन्तु इतना विशाल, इतना शक्तिशाली गज उसकी गजसेनामे है, यही पर्याप्त था आतङ्क बनाये रखनेके लिए।

कुवलयापीड केवल अपने हस्तिप और महाराज कंसको ही समीप आने देता था। उसके आठो पाद-रक्षक भी उससे सावधान ही रहा करते थे। आज उसका शृङ्गार हुआ था। उसका मस्तक सिन्दूरसे चर्चित किया गया था। उसकी सूँडपर कई रङ्गोंमे पत्रावली बनी थी। उसपर स्वर्णिम झूल डाला गया था, किन्तु हौदा नही कसा था। उसे डटकर सुरापान कराया गया था। हाथीके नेत्र लाल-लाल होरहे थे। लाल-लाल नेत्र थे उसके महावतके भी। उसने भी सुरा पी रखी थी।

'द्वारपर इस प्रकार यह गज !' श्रीकृष्णचन्द्रने देखा। सखाओंके साथ तनिक रुक गये। पटुका कटिमें लपेट लिया। घुँघराली अलकोंको समेटने लगे। छोटे भाईकी ओर देखकर बड़े भाईने भी कटिमें पटुका लपेटा।

'अम्वष्ठ ! अरे ओ अम्वष्ठ !' मेघ गम्भीर वाणीने ललकारा—'तूने रङ्गशालाका द्वार क्यो रोक रखा है ? अपना हाथी अविलम्व हटा यहाँसे। हम लोग भीतर जायँगे।'

'अम्वष्ठ !' इस सम्वोधनसे हस्तिप जल उठा। उसे उसके महाराजाधिराज भी मित्रकी भाँति मानते हैं। उसे 'महामात्र' कहते है और यह गाँवसे आया उद्धत वालक उसे अम्वष्ठ कहकर इस प्रकार डाँट रहा है ! उसे --महाराज कंसकी गजसेनाके प्रधान महामात्रको ?

'तुझे कुछ दीखता नही और बहिरा होगया है तू ?' श्रीकृष्णचन्द्रने कठोर स्वरमें फिर डाँटा—'इस हाथीको झटपट हटा ले, नही तो हाथीके साथ तुझे भी यमराजके घर भेज दूँगा।'

हस्तिपके पैर हाथीके नेत्रोके पासकी ग्रन्थिको अँगूठेसे दवाने लगे। हाथी हूल दिया उसने श्रीकृष्णके ऊपर। लेकिन हाथीके पाद-रक्षक एक ओर हट गये थे। उनका काम सशस्त्र लोगोके आक्रमणसे हाथीके पैरोंको आहत होनेसे वचाना है। इन वालकोमे किसीके पास शस्त्र नही हैं। उन्होने सुना है कि कल धनुषशालामे इन दोनो भाइयोने पूरी सेना मार दी है। पाद-रक्षकोको मरनेकी कोई उतावली नही है। हाथीपर सङ्कट न आवे, तब तक उन्हे तटस्थ रहना चाहिये।

फुङ्कार करता गज दौडा। कृष्णचन्द्र कुछ पद आगे बढ आये थे। सूँडसे पकड लिया उन्हे हाथीने, किन्तु वालकोको भयके स्थानपर यह खेल लगा। उनका नवनीत स्निग्ध सखा हाथीकी सूँडकी पकड़से सरक गया और सूँडपर कसकर थप्पड जमाकर हाथीके पेटके नीचे इधरसे उधर कूदता वच रहा था।

वहुत कडा थप्पड था और वह भी सूँडपर। भले कुवलयापीड पर्वताकार हो, नाकपर लगी इस चोटसे वह तिलमिला उठा था। बहुत क्रोध आया उसे। वडी कठिनाईसे अपने पेटके नीचे सूँड बढाकर वह श्यामको पकड सका।

'चल हट !' कृष्णचन्द्र फिर सरक गये सूँडकी पकडसे और इस बार पीछे जाकर उन्होने गजकी पूँछ पकड़ ली। पूँछ पकड़कर वछडोके साथ खेलनेका अभ्यास तो इन नीलसुन्दरको अपने शैशवसे है। हाथीकी पूँछ पकड़कर वे ऊँची भूमिकी ओर उसे खीचने लगे।

हाथी सूँड़ उठाकर चिग्घाड़ने लगा। इतने सङ्कटमें कुवलयापीड कभी नही पडा था। कसने उसे सूँड पकड़कर आगेको घसीटा था और वह आगे दौडता गया था, किन्तु इतना भारी शरीर, ऊँचाई पर जाना सामने चलकर भी हाथीको भारी पड़ता है और उसे पीछे घसीटा जारहा था। वहुत छोटी, पतली पूँछ होती है हाथीको। शरीरका सबसे दुर्बल अङ्ग और लगता था कि उसकी यह इकलौती पूँछ उखड़ जायगी यदि तनिक भी रुकनेका प्रयत्न किया उसने। विवश चिग्घाड़ता, घसिटता चला गया वेचारा हाथी।

गोपकुमारोने ताली बजायी, किन्तु तत्काल सशङ्क होगये। हाथीकी पूँछके वाल कॉटो जैसे होते हैं। अत्यन्त सुकुमार है श्यामके कर। पच्चीस धनुप तक पीछे खीचकर कृष्णचन्द्रने उसे छोड़ा। हाथीकी सूँड काम नही आयी। वह जिधर सूँड वढाता—कृष्ण दूसरी ओर होजाते। कभी दाहिने, कभी वाये। हाथी तो तव सम्हला जव उसकी पूँछ छोड़ दी गयी। भयङ्कर क्रोधसे फुङ्कारता वह घूमा। तड़ापसे एक थप्पड पड़ा उसपर।

वालक स्तब्ध देखते रहे। कृष्णचन्द्र भाग चले और हाथी दौड़ पड़ा है उनके पीछे। सहसा श्याम भूमिपर गिर पडे। लगा वालकोका धड़कता हृदय बन्द होजायगा। किन्तु उन्हे उसी क्षण अपने चञ्चल सखाकी चतुराई समझमें आगयी। वह तो जानवूझकर गिरा था और उठकर वह दूर जाकर खडा होगया है।

हाथीने गिरते देखा श्रीकृष्णको। उसने दौडकर पूरी शक्तिसे भूमिमे दाँत मारे। दाँत धँस गये पृथ्वीमे। 'कोई नही है यहाँ।' हाथीने अपनी भूल समझ ली। वल लगाकर उसने अपने दाँत निकाल लिये।'

हाथी स्वय क्रोधसे पागल होरहा है। ऊपरसे हस्तिप अंकुश मारकर मस्तक छेदे डालता है। क्रोधमे भरा हस्तिप पूरी शक्तिसे अंकुश मार रहा है। दूसरा समय होता तो कुवलयापीडने अव तक उसे सूँडसे पृथ्वीपर पटककर चीर फेंका होता। अंकुशकी मार उसपर कभी नहीं पड़ी। किसीने इतना साहस नही किया; किन्तु आज तो यह उसे पीछे घसीटने वाला, थप्पड—वज्र जैसे थप्पड़ मारनेवाला सामने है और उससे छल करके वच गया है। दौडा हाथी।

'कनूँ ! कनूँ !' सखाओके व्याकुल कण्ठसे हाहाकार निकला।

दाऊ दादाकी मुट्ठियाँ बँध गयी है। उनका मुख लाल-लाल हो उठा है। वे झपटने ही वाले हैं। उन्होंने एक थप्पड या घूसा धर दिया तो लेकिन बहुत होगयी यह क्रीडा। बडे भाईको क्यो कष्ट करना पड़े ?

हाथी दौडा आया, पर कृष्णचन्द्र हिले तक नही इस बार। हाथीने सूँड बढायी और श्यामने दाहिने हाथसे वह सूँड पकड ली। सूँड ऐसी उमेठी कि भारी धमाकेके साथ हाथी ढह पडा।

सचमुच यह क्रीडा और नही चल सकती थी। श्रीबलरामके पद बढ चुके थे। हाथीके मस्तकपर चरण रखकर उन्होने दोनो हाथोसे पकड़-कर उसका दाँत उखाड लिया। छोटे भाईने उसी प्रकार दूसरा दाँत उखाडा। दोनो भाइयोने उन दाँतोसे धुन डाला हाथीको। उसका मस्तक फट गया। मर गया वह महागज।

हस्तिप कूद पड़ा था हाथीसे, जब हाथी गिरने लगा। वह कूद न गया होता तो हाथीके शरीरके नीचे दबकर पिस गया होता। लेकिन मृत्यु आगयी थी उसकी और हाथीके पाद-रक्षकोकी भी। चाहिये तो यह था कि वे प्राण बचाकर भाग खड़े होते, किन्तु उन्होने उलटा काम किया। अंकुश तथा तलवार लेकर वे झटपट दौड़ पड़े राम-श्यामको मारनेके लिए। दोनो भाइयोके हाथोमे भारी गजदन्त थे ही। एक-एक हाथ ही बहुत था। वे भग्न सिर हाथीके पास ही मरे पड़े थे।

अब सखा दौड़े। श्रीकृष्णचन्द्रको उन्होने—प्रत्येकने अङ्कमाल दी। 'तेरे कर तो देखूँ।' भद्रने कन्हाईके दोनो कर बारी-बारीसे देखे। इतने कड़े बाल हाथीकी पूँछके, कर बहुत अरुण होगये है। यही कुशल है कि उनमे कोई खरोच नही आयी है।

'दादा !' कृष्णचन्द्रने बड़े भाईकी ओर देखा और सखाओने जो गजदन्त उनके हाथसे गिरा दिया था, उठाकर कन्धेपर लाठीके समान रख लिया। श्रीवलरामने भी वैसे ही दन्त कन्धेपर रखा। क्या पता भीतर कस बैठा है, इन दाँतोका उपयोग ही करना पड़े।



'ये आये हमारे शासक—हमारे स्वामी।' जो नरेश थे वहाँ, उनको लगा कि उनके सच्चे सम्राट् तो आज उनके सामने आये हैं। इनके करोका गजदन्त—क्षितीशेश्वरका राजदण्ड भी हतप्रभ है इनके सम्मुख। सभी राजाओंने अञ्जलि बाँधकर वहीसे मस्तक झुका दिया है। उनके नेत्र कहते है—'अवसर मिलते ही उपहार लेकर हम श्रीचरणोमे अवश्य उपस्थित होंगे।'

'ये दण्डधर!' दुष्ट नरेश काँप रहे है—'ये इस मल्लभूमिको इसी समय न्याय-सभा बनाकर उनके क्रूर-कर्मोका कही विवरण तो नही माँगने लगेंगे? कौन रोक लेगा इनको? क्षमा स्वामी! अब अपराध नही होगा। आप आगये, अब हम आपकी शरण है।'

'ये अपने बालक आये।' वसुदेवजीने देखा और देखते रह गये। 'इतने बड़े होगये ये?' दोनोको अङ्कमे बैठा लेनेको हृदय मचल रहा है और माता देवकीजीका वात्सल्य तो उनके वक्षको भिगोने लगा है। टपक रहा है उज्वल दूध बना वह उमड़ता वात्सल्य।

'ये मेरे काल!' कस बहुत मनस्वी माना जाता था, किन्तु अत्यन्त उद्विग्न होरहा है—'कुवलयापीड मारा गया। उनके दाँत कन्धेपर धरे ये दोनो मुझे ही ढूँढ रहे है। अब आये—आये ही मेरी ओर।' वह ढाल-तलवार सम्हालने लगा है। मल्लोपर मन ही मन रुष्ट होरहा है कि ये सब चुप क्यो बैठे है। दोनोको पकड़कर मल्लभूमिमे क्यो नही खीच लेते?

'ये कौन है? भगवान वासुदेव?' जो वहाँ विप्रवर्ग बैठा है—कर्म-निष्णात विप्रवर्ग, वह निश्चय ही नही कर पाता कुछ—'अनन्त सौन्दर्य, अनन्त पराक्रम, अनन्त तेज—पूर्वमीमासा शास्त्रमे तो ऐसे किसी कर्म-देवताका कही प्रतिपादन नही है। यह विराट्.' पण्डितगण चकित-थकित देख रहे है। कोई निश्चय नही कर पारहे है वे।

'ये—यही तो श्रुतिप्रतिपाद्य परमतत्त्व है।' महर्षि गर्गाचार्य और उनके शिष्योंको, दूसरे ऋषियोंको भी कोई सन्देह नही है। 'समाधिमे—अन्तरकी सम्पूर्ण एकाग्रतामे जो चिन्मय परज्योति प्रकाशित होती है, वही तो यह इन्दीवर सुन्दर नेत्रोंके सम्मुख आ खड़ा हुआ है।' परमानन्द निमग्न, सर्वथा निस्पन्द, निर्निमेष दर्शन कर रहा है यह वर्ग।

'भगवान वासुदेव—अपने आराध्य परमदेवता भगवान नारायण आ गये।' वृष्णिवंशियोंको भी कोई सन्देह नही है। 'वही नीलवर्ण, वही

विशाल वक्ष श्रीवत्साङ्कित, वही कौस्तुभ कण्ठमे और उन्हे तो श्रीकृष्ण द्विभुज नही दीख रहे हैं। क्या हुआ कि एक करमे गदाके स्थानपर ये आज गजदन्त उठाये हैं। ये शङ्ख, चक्र, पद्म—ये चतुर्भुज श्रीहरि।' सबने अञ्जलि बाँध रखी है। सब साश्रु नेत्र हैं। सबके ओष्ठ अस्पष्ट स्तुतिमे हिल रहे हैं।

कंससे लेकर सबकी—सज्जन-असज्जन, साधु-असाधु, रागी-द्वेषी, स्त्री-पुरुष सबकी दृष्टि लगी है—एकटक लगी है दोनो भाइयोपर। कही कोई तनिक-सा भी शब्द नही। कोई हिल नही रहा। ये दोनो भाई भी और गोपकुमार भी चारो ओर देख रहे है। पूरी रङ्गशालाको देख रहे हैं।

'ये बडे श्रीरोहिणीनन्दन सङ्कर्षण और छोटे श्रीकृष्ण नवघन सुन्दर।' स्त्रियोंमें, नागरिकोमे समीप बैठे लोगोसे मन्द स्वरोमे चर्चा चल पडी—'वसुदेवजीने इन्हे गोकुल पहुँचा दिया था मथुरासे। ये तो साक्षात् नारायण हैं। पिता न पहुँचा आये होते तो उसी दिन मार देते कसको, किन्तु पिताने शिशु माना तो शैशवकी लीला करने लगे।'

'गोकुलमे इन्होने सूतिका-गृहसे निकलते ही पूतनाको मार दिया। वह अदृश्य रहनेवाला राक्षस उत्कच गया गोकुल और तबसे सदाको अदृश्य होगया। तृणावर्त भी इनके पास मृत्युका मारा ही पहुँचा था।' लोगोकी चर्चा फुसफुसाहटके स्वरोमे ही थी— नन्दराय इन्हे लेकर गोकुलसे वृन्दावन चले गये। वहाँ वत्सासुर, बकासुर, व्योमासुर, प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, अघासुर, केशी आदिको कस भेजता गया और किन्हीको छोटे और किन्हीको बडे कुमार परलोक भेजते गये।'

'असुरोकी अच्छी चलायी! अरे, सुरराज इन्द्रका भी गर्वमर्दन कर दिया इन्होने गोवर्धनको सात दिन हाथपर उठाये रखकर।' सस्नेह देखते किसीने कहा—'कालिय जैसा महानाग इनके पदोसे कुचला जाकर यमुना त्यागकर भाग गया।'

'सुनते हैं कि यदुवशको ये विश्वप्रसिद्ध कर देगे।' उमङ्गमे यादववृद्ध कह रहे थे—'यश, ऐश्वर्य, लक्ष्मी अब यादवोके चरण चूमेगी इनके अनुग्रहसे। यादवोंके ये सौभाग्यसूर्य प्रकट होगये है।'

—x—

मल्ल-युद्ध

सबसे पहिले कस सावधान हुआ—'हाथी मार दिया इन्होने तो हो क्या गया।' इसकी सम्भावना तो पहिलेसे उसे थी। उसने अनुमान कर लिया था। इसीसे यह मल्लयुद्धका उसने आयोजन किया। 'इस हाथीको सूँड पकडकर दूर तक वह तव घसीटता लेगया था जब हाथी युवा था। उस दिन भी उसे मार दिया जा सकता था। अव तो वह गज लगभग वृद्ध हो चुका था।'

कसने अपनेको आश्वस्त किया—'यह ठीक है कि इन्होने हाथी मार दिया, किन्तु यह नही हो सकता कि हाथीने इन्हे थका न दिया हो। आज शिवरात्रिके दिन ये उपोपित भी होगे। मल्लशालामे इतने मल्ल है। इनमे अनेक है जो उस महागजको मार दे सकते थे। कितनोको झेल सकेंगे ये ?'

कसने वाये हाथसे सकेत करके मल्लशालाके सब द्वार वन्द करा दिये। उसे आज यहाँ सब निर्णय कर लेना है। किसीको भागनेका अवसर वह नही देना चाहता। ये दोनो किशोर हैं। थक जानेपर भाग सकते है। पता नही दौडनेमे इन्हे कोई पकड़ पावे या न पावे। इनके भाग जानेका अवसर नही होना चाहिये।

कस अव झुँझला रहा है कि 'उसके मल्ल चुप क्यो खड़े है। वे इन दोनोको अखाड़ेमे क्यो खीच नही लेते हैं। नागरिकोकी कानाफूसी बढती जा रही है। इन्होने भी गोपोको देख लिया है। अव उसी मञ्चकी ओर मुड़ने ही वाले हैं।' कसने मल्लोको संकेत किया।

कसके सकेतको चाणूरने देख लिया। वह करूप देशमे उत्पन्न है। मुष्टिक आन्ध्रदेशीय था, किन्तु दोनों युवावस्थासे ही माहिष्मती नरेशकी मल्लशालामे आगये थे। कंस वहाँसे इन्हे लाया था।

चाणूर इस वातके लिए बहुत कुख्यात था कि वह प्रतिद्वन्द्वी मल्लको पकड़कर मार डालता है। वह तनिक आगे बढा। गोपोंके मञ्चकी ओर मुड़ते राम-श्यामको उसने सम्बोधित किया—'कृष्ण, सुनो! बलराम, तुम भी सुनो! हम सब लोग तुम्हारी ही प्रतीक्षा कररहे है। बडा अच्छा

हुआ कि तुम लोग समयपर आगये। तुम लोग मल्लयुद्धमें वहुत कुशल हो, यह सुनकर महाराजने तुम्हारा नियुद्ध देखनेके लिए तुम्हे बुलवाया है। महाराज तुम्हारी मल्लक्रीड़ा देखना चाहते हैं।'

'यह कैसी बात? क्या षड्यन्त्र है यह?' गोप उद्विग्न हो उठे। नागरिक भी चौंके—'ये वालक मल्लयुद्धमे कुशल हैं, ऐसा किसने कहा? कंसको यह स्वप्न कैसे आया?' सवके हृदय आशङ्कासे व्यथित होने लगे।

'प्रजा यदि मन-वाणी-कर्मसे राजाका प्रिय करे तो उसका कल्याण होता है।' चाणूर उपदेश करने लगा है—'राजाका अप्रिय करके किसीका कल्याण नही होता। तुम लोग गोपाल हो। गोप गाये चराते हुए वनमे मल्लक्रीडा करते ही रहते हैं। गोप जाति मल्लयुद्धमे सदासे प्रसिद्ध है। अत तुम लोग और हम भी महाराजाधिराजको प्रसन्न करें। महाराजके प्रसन्न होनेमें सवका भला है, क्योकि राजा तो सर्वदेवमय—सर्वभूतमय होता है।'

राजाके सेवकके मुखसे जैसी स्तुति सुनी जा सकती है, चाणर उसके अनुरूप ही वोला था। श्रीकृष्णचन्द्रने गोपकुमारोकी ओर देखा। सजी हुई मल्लभूमिकी ओर देखा—'वहुत कोमल मृत्तिका है, सुगन्धित है। है तो यह मल्लक्रीडाके ही उपयुक्त।'

'तुम लोग भोजपतिकी प्रजा हो और हम वनवासी है।' श्यामने सकेत कर दिया कि गोप पराधीन प्रजा नही हैं, वे स्वतन्त्र काननवासी हैं—'महाराजका अनुग्रह है कि उन्होने हमको अपना प्रिय कार्य करनेका सुयोग दिया। लेकिन तुम लोग मल्लसभाके सभासद हो, इसके नियमोको जानते ही हो। मल्लयुद्धमे कोई अधर्म नही होना चाहिये। हम बालक हैं, अपने समान वलवाले वालकोंसे भली प्रकार मल्लक्रीडा करेगे।'

'तुम दोनो वालक हो?' अट्टहास करके चाणूर हँसा—'कोई इस वातपर विश्वास करेगा कि तुम वालक या किशोर हो? सहस्र गजवल वाले कुवलयापीडको तुमने अभी-अभी मार दिया, अत. तुम दोनो तो वलवानोंमे सर्वश्रेष्ठ हो। अव टालो मत! मेरे साथ तुम्हे स्वच्छन्द मल्लयुद्ध करना है और वलरामके साथ मुष्टिक लडेगा।'

चाणूरने थाप दी जङ्घापर और पीछे मुडकर देखा। मुष्टिकने भी वढकर थाप दी और दोनोने दाहिना हाथ आगे वढ़ा दिया। ऐसी चुनौती सह लेना न श्यामके स्वभावमे है, न रामके स्वभावमे। दोनो भाइयोने गजदन्त वही फेंक दिये। दोमे एकने भी ध्यान नही दिया कि मल्ल लँगोट

बाँधे हैं और ये कछनीमे हैं। केवल वनमाला उतार दी दोनों भाइयोंने और अखाडेमें उतर गये। मल्लोंका हाथ पकड़ा इन्होंने और दोनों मल्लोंको लगा कि ऐसे वज्र करका स्पर्श उन्हे प्रथम वार प्राप्त हुआ है।

गोपकुमार वहीं खड़े रह गये। राजसेवकोंके कहनेपर मल्लभूमिके समीप ही बैठ गये। उनके सखा मल्लयुद्ध कर रहे है—वे दूर कैसे जासकते हैं। उनके वही रहनेपर न मल्लोको आपत्ति हुई, न महाराज कंसको ही।

'हाथोसे हाथ, पैरोसे पैर, जाँघोंसे जाँघे, घुटनोसे घुटने, मस्तकसे मस्तक, छातियोसे छातियाँ रगड़ उठी—मल्लयुद्ध चलने लगा है। कंस उझककर देख रहा है। सबकी दृष्टि, सबके मन-प्राण मानों नेत्रोमे आ गये हैं।'

'कृष्ण ! तुम्हे इस मल्ल-दानवपर विजय मिले।' आकाशमें-से सप्तर्पियोका स्पष्ट आशीर्वाद सुनायी पड़ा।

'तो यह दानव है।' सखाओने परस्पर देखा और सन्तुष्ट होगये—'दानव भी तो राक्षसोके भाई ही होते हैं। तभी ये पर्वताकार भयानक रूप वाले हैं, किन्तु दानव है तो भयकी कोई बात नही है। राक्षसोमें बल ही कितना होता है। ये उछलेंगे, कूदेंगे, कदाचित गुर्रायेंगे भी, किन्तु मर जायँगे।

'मल्लभूमिमे दोनो जोडियाँ गुथी है। एक-दूसरेको घुमाते है, झटका देते हैं, पकडकर दवाते है कसकर, गिरा देते है, खींचते है किसी भी ओर, पीछे ठेलते हैं, ऊपर उठा लेते हैं, नीचे घुटनोसे दवाते हैं, धक्का देकर हटाते है या पकड़कर स्थिर कर देते हैं। दाँवपेच चल रहे हैं। चाणूर और मुष्टिक चकित हैं कि उनका कोई दाँव ऐसा नही निकलता जिसकी काट ये न जानते हों।'

'यह युद्ध नही—अधर्म युद्ध है। कहाँ ये कुसुम सुकुमार वालक जो अभी युवा भी नही हुए और कहाँ ये वज्रदेह, पर्वताकार दैत्य !' स्त्रियाँ वैसे भी मृदुल स्वभाव होती है। उनका और गोपोका व्याकुल होना तो उचित ही था, प्राय सभी दर्शक कसमसा रहे थे। भयके कारण ही वे शान्त बैठे थे।

'कंस तो क्रूर है ही। ये मल्ल हृदयहीन राक्षस हैं, लेकिन सब सभासद क्यो चुप हैं? ये बोलनेका साहस क्यो नही करते ?' स्त्रियाँ परस्पर बोलने लगी थी—'यदि बोलनेका साहस नही था तो यहाँ आये ही क्यों

और अब क्यों उठ नहीं जाते ? जहाँ अधर्म होता हो, वहाँ एक क्षण भी नहीं रुकना चाहिये। इस पूरे समाजको अधर्मका उत्तरदायी होना पड़ेगा, क्योंकि इनके देखते यहाँ विषम बलवालोंको लड़ाया जारहा है।'

'समझदार पुरुष ऐसी सभाओंमें जाते ही नहीं।' एक वृद्धाने कहा—'क्योंकि अधर्मका समर्थन करनेसे अथवा अधर्म होते देखकर भी चुप रह जानेसे मनुष्य पापका भागीदार बन जाता है।'

'अरी, शत्रुके चारों ओर उछलते, बल लगाते श्रीकृष्णचन्द्रका मुख तो देखो !' किसी तरुणीने कहा - 'स्वेदकी बूँदें झलमला आयी हैं और अरुणाभ होउठा है यह परमसुन्दर कमलमुख।'

'तुम रामका मुख नहीं देखती हो।' दूसरी बोली—'कितना लाल तमतमाया मुख है तप्तताम्र जैसा। नेत्र लाल-लाल हो उठे हैं। मुष्टिकके प्रति अमर्ष भरा यह हास्य ! अकल्पनीय शोभा है इस श्रीमुखकी।'

'धन्य है व्रजभूमि ! ये परमपुरुष वहाँ इस मानववेशमें छिपे, वनधातुओंके चित्रोंसे अङ्ग सजाये, वनपुष्पोंकी माला पहिने, वंशी बजाते, गायें चराते घूमते हैं अपने इन श्रीचरणोंमें।' भक्तहृदय पुलकित होरहे हैं—'ये श्रीचरण भगवान शङ्कर और भगवती श्रीके द्वारा अर्चित—इनसे अङ्कित होती है व्रजभूमि।'

'पता नहीं गोपियोंने पूर्वजन्ममें कितना तप, कितना भजन किया होगा कि वे इन त्रैलोक्य मोहनको नित्य देखती हैं।' नारियोंका अन्तःकरण उनके ही अनुरूप है—'त्रिभुवनमें दूसरा सम्भव नहीं, ऐसा यह लावण्यसार रूप, यह ऐश्वर्य-यश-शोभाका एकमात्र धाम श्रीअङ्ग, इस नित्यनवीन दुष्प्राप्य झाँकीको नेत्रपुटोंसे पान करनेका सौभाग्य मिला गोपकुमारियोंको।'

'धन्य गोप-बालायें ! उनका चित्त तो इन्हींमें अनुरक्त है।' बड़ी सात्विक स्पृहा जाग उठी है—'हम गोपियाँ होतीं ! गाय दुहते, गोबर उठाते, दही मथते, घर लीपते, झूलेपर झूलते, बालकको चुप कराते, लोरी देते, सब काम करते इन्हीं उत्तम श्लोकके यशका, गुणका, लीलाका गान करती रहती हैं वे।'

'आगे गायोंका अपार यूथ और पीछे अधरोंपर मुरली धरे उसमें मादक स्वर फूँकते, मत्तगयन्द जैसे झूमते, इधर-उधर देखते, मुस्कराते जाते ये अपने इन सखाओंके साथ प्रातः वनमें जाते और सायंकाल लौटते।' ध्यानमग्न कोई बोल रही है—'इसका यह स्मित शोभितानन !

धन्य हैं जो घरका कार्य जहाँका तहाँ पटककर दौड़ पडती हैं और गवाक्षोसे अपलक-लोचन इनकी झाँकी करती है।'

'गोपियोका सौभाग्य ! किन्तु हाय, हमें यहाँ इन्हे इस रूपमे देखना था।' लगता है, हृदय फटा जारहा है—'इन क्रूर दानवोंसे उलझे, थकते जारहे ये सौन्दर्यसिन्धु।'

गोप फटे-फटे-से नेत्रोंसे देखरहे है। श्रीव्रजपतिका मुख विवर्ण हो गया है। 'कंस तनिक बोलते ही पता नही क्या करे। बालकोंका क्या अमङ्गल करे' इस भयसे वे शान्त बैठे हैं। बस बैठे है मूर्तियोंके समान।

गोपकुमार उठ खडे हुए है सबके सब। सबने अलके समेट ली है। सबने पटुके कटिमें कस लिये हैं। कभी चञ्चल हो उठते हैं, कभी सन्नसे हो जाते है। कभी इनके मुख खिल उठते हैं, कभी पीताभ होजाते हैं। इधर-उधर झुककर झाँकते हैं। इनका सखा लड़ रहा है। इनकी दृष्टि श्यामपर लगी हैं।

'दाऊ दादाकी चिन्ता नही, किन्तु कन्हाई लड रहा है राक्षससे।' कृष्णचन्द्र नीचे आते हैं तो ये अलके समेटने लगते हैं। अखाड़ेमें कूदनेको उतावले हो उठते हैं। ओष्ठ फडकते है। मुट्टियाँ बँध जाती हैं। मुख अरुण हो उठे है। सुबल, भद्र, वरूथप ही नही, अंशु, तेजस्वी, तोक जैसे नन्हे बालक तक अधीर हो उठे है श्यामकी सहायता करनेको।

'बहुत देरसे कन्हाई लड रहा है।' सखाओके धैर्यकी सीमा बहुत छोटी है—'वह थकने लगा है। भद्र अब और नहीं रुक सकेगा। वह कूदना ही चाहता है।'

'तनिक रुको !' श्यामने देख लिया मित्रोंकी ओर। मुस्कराते नेत्रोकी भाषा उसके सखा समझते हैं; किन्तु अब उन्हे देर तक नही रोका जा सकता। यह क्रीडा बहुत होचुकी।

चाणूर और मुष्टिककी बुरी दशा है। दोनो नही समझ पाते कि उनके प्रतिद्वन्द्वी वज्रसे बने हैं या उससे भी कठोर धातुसे। उनके अङ्ग-अङ्ग फटने लगे हैं। बार-बार मूर्छित होनेसे अपनेको बचाना पडता है उन्हे।

जब कृष्ण छातीसे दबाते हैं, चाणूरकी पसलियाँ चरमरा उठती हैं। जब थाप देते हैं, लगता है मुद्गरका भरपूर हाथ पड गया। वह बार-बार भूमिपर गिरता है; किन्तु कृष्ण तो घुटनेसे ऐसा दबाते हैं कि मेरुदण्ड टूटता जान पड़ता है। वह उठता है, छूटना चाहता है, पर छूट

नही पाता। गिरता है तो पूरी श्वास भी नही ली जापाती है। वह हाँफ रहा है और हाँफ रहा है मुष्टिक भी

चाणूर अब प्राण बचानेका प्रयत्न कररहा है। वह लड नही रहा, लडना नही चाहता। फिर यह कृष्ण उसे छोड कहाँ रहा है। ऐसे कहीं कोई कृष्णकी पकडसे छूटा है। 'प्राण बच जाते' अन्तिम प्रयत्न झटका देकर किसी प्रकार चाणूरने अपनेको छुडा लिया।

'यह तो फिर झपटा पकडने।' चाणूरने देखा और ऊपर छलाँग ली उसने। कूदकर, बाजकी भाँति झपटकर दोनो हाथोकी मुट्ठियाँ बाँधकर पूरी शक्तिसे उसने श्यामके वक्षपर प्रहार किया।

श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीवत्साङ्कित वक्षपर असुरने घूसा मारा। यह देखने-समझनेका अवसर किसीको नही मिला। कृष्णने चाणूरके दोनो हाथ पकड लिये और उसे मस्तकके चारो ओर घुमाने लगे। उनकी वज्र मुष्टिकाये जकड़े हैं चाणूरके हाथ।

चाणूरका विशाल देह घूमरहा है। केश बिखर गये है। माला बहुत पहिले टूट गिरी थी। अब नेत्र फटे-फटे जारहे है। पूरा विश्व उसे घूमता लगता है कुम्हारके चक्रपर चढेके समान। अब अन्धकार—उसके नेत्रोके आगे अन्धकार छाने लगा है। वह 'गो-गो' जैसा अस्पष्ट चीत्कार करने लगा है। गोप-बालक ताली बजाने लगे है। यह पटक दिया श्यामने दैत्यको—ऐसे पटक दिया जैसे धोबी वस्त्रको घुमाकर पत्थरपर पटकता है। चाणूरका लगभग पूरा शरीर चिथड़े होगया। वह तडप भी नही सका। रक्तसे मल्लभूमिमे कीच होनेलगी है।

लगभग उसी समय—प्राय साथ-साथ ही दूसरी जोडीका मल्लयुद्ध भी समाप्त हुआ—ऐसे ही हुआ। मुष्टिककी भी वही दशा थी। वह भी प्राण बचानेको ही छटपटा रहा था। उसके भी अङ्ग-अङ्गका कचूमर बन चुका था। उसने भी झटका देकर किसी प्रकार अपनेको छुडाया और कूदकर श्रीबलरामके वक्षपर दोनो हाथोसे मुष्टि-प्रहार किया।

'मल्लयुद्ध करते-करते यह घूसाबाजी!' दाऊका मुख तमक उठा। उन्होंने एक थप्पड धर दिया मुष्टिककी कनपटीपर।

'तड!' इतना भयानक शब्द हुआ कि रङ्गशाला काँप उठी। कसके मुकुटसे प्रधान मणि गिर पडी भूमिपर। लोग अपने मञ्चोपर उझक पडे। श्रीबलरामका थप्पड लगते ही सुरापायीके समान लडखडाता, काँपता

मुष्टिक गिर पडा। उसका सिर फट चुका था। मुखसे वह रक्त-वमन करता गिरा। थोडा-सा छटपटाया और ठण्डा होगया।

'पकडो इन्हे !' मल्लोका प्रशिक्षक, मल्लशालाका अग्रणी कूट झपटा क्रोधोन्मत्त दाँत पीसता। इन लडकोने उसके दो मुख्य मल्ल मार दिये।

श्रीवलराम—वे अनन्त। अब रोष आगया है उन्हे और जब उनको रोष आ जाय, महाकाल भी तो उनके सम्मुख क्षण भर नही टिकता। कूट पूरा उठ भी नही पाया था। उपेक्षासे उसके मस्तकपर बायें हाथसे घूसा जमा दिया उन्होंने। जैसे कच्चे घडेपर कोई मुद्गर पटक दे। कूटके मस्तककी खील-खील विखर गयी।

कूटके लगभग साथ ही उठा था शल; किन्तु कृष्णने उसके दोनो कर पकडे और वैसे ही घुमाना प्रारम्भ किया जैसे अभी-अभी चाणूरको घुमाया था। अवश्य इस वार वहुत वेगसे घुमा रहे थे। सौ चक्कर देकर शलको भी पटक दिया उन्होंने।

शलका भाई तोशल टूट पडा, किन्तु व्यर्थ। उसे कृष्णने पटका उठते ही। उसके एक पैरपर पैर रखकर दूसरा पैर हाथसे उठाते गये। तोशलको चीरकर दो टुकड़े कर दिये। अव एकसाथ सव मल्ल भागे। भडाभड द्वार खोलकर वे जिधर भाग सके, उधरके द्वारसे निकले और भागते ही चले गये। सम्भवत मथुरासे वाहर जाकर ही उन्होने पीछे देखा होगा।

वे मल्ल फिर कभी मथुरामे नही देखे गये। सच तो यह है कि कही भी फिर मल्लशालामें नही देखे गये। वे उस दिनसे मल्लशालासे ही भाग गये। मल्लयुद्ध देखने तक कही नही गये वे कभी। वे जहाँ भी रहे हो—उन्होंने लँगोटको नमस्कार कर लिया था। मल्लशाला या मल्लयुद्धके नामसे उन्हे कँपकँपी छूटती थी।

'वाप रे! कूटका मस्तक कच्चे घड़ेके समान फट्से फोड़ दिया। तोशलको चीर डाला—दो टुकड़े कर दिये।' उन मल्लोको लगा कि राम-श्यामका अवतार भूभार-हरणके लिए हुआ है—यह ठीक सुना है उन्होंने। मोटे-मोटे मल्ल ही सम्भवत सवसे वडे भार हैं धरापर और अव वे एक भी मल्ल जीवित नही छोड़ेंगे।

मल्लभूमिमें कसके प्रधान महामल्लोके पाँच—नहीं, छ टुकडे पड़े हैं। मल्लभूमिका वडा भाग रक्तसे लथपथ होरहा है। राम-श्याम ऐसे खड़े होगये हैं जैसे अभी उनका व्यायाम भी पूरा नहीं हुआ है। 'अभी कोई और वचा हो कसके पास तो वह भी आ जाय।' इस मुद्रामे, इस प्रतीक्षामे दोनो भाई स्वस्थ खड़े हैं।

कंसारि

गौर-श्याम शरीरोपर जहाँ-तहाँ धूलि लग गयी है। कमलमुखपर स्वेदकण झलमला रहे हैं। कर और पद अरुण हो गये हैं रक्तसे। देहपर कही-कही रक्तके लाल बिन्दु हैं और कही-कही गजमदके विन्दु सूख गये हैं। अखाडेमे—पाँच शवोंके छ टुकडोके पास ही खडे हैं दोनो भाई।

कसने कुढकर संकेत किया कि वाद्य वन्द कर दिये जायँ। उसके मल्ल-मारू ध्वनिमे बजते वाद्य वन्द होगये, किन्तु उसी क्षण गगन देव-वाद्योकी ध्वनिसे गूँजने लगा।

'कंसका तो कोई अव लडने नही आता।' श्रीकृष्णचन्द्रने देखा कुछ क्षण, और बढकर सखाओमे-से भद्रको हाथ पकडकर खीचने लगे।

'मैं नही लडता।' भद्रने मना किया। उसे लगता है कि 'कन्हाई वहुत थक गया है। अब इसे विश्राम करना चाहिये।'

'मैं पटकूँगा आज तुझे।' श्रीकृष्ण तो लिपट गये हैं भद्रसे। उनकी ठीक जोडी श्रीदामा है, किन्तु नही, आज श्रीदामासे लडकर यहाँ लज्जित नही होना। वह पटकेगा—वह तो पटक ही लेगा। भद्र है कि कुछ सङ्कोच करेगा।

'तूने राक्षस क्या मार दिये—वडा वीर वन गया!' भद्र झुँझलाकर अखाड़ेमे उतर आया।

दाऊ दादाने वरूथपको खीच लिया है। वरूथप ही थोडी देर उनसे वल लगा पाता है।

अव शेष बालक दर्शक क्यो बने रहे। सव उतर पड़े हैं अखाड़ेमे। सवने जोडियाँ वना ली हैं। वालकोकी मल्लक्रीडा—मञ्जु मल्लक्रीडा चलने लगी है। उनके नूपुर वजरहे हैं। उत्साहित करनेके स्वरमे झमाझम देववाद्य वजरहे हैं और बालक कूदते है, किलकते हैं, परस्पर वल लगाते हैं। उच्च स्वरसे वोलते है—'अब पटकता हूँ तुझे।'

'साधु साधु!' नागरिक प्रसन्न होगये है। गोप अव बालकोका नाम ले लेकर उन्हे उत्साहित करनेलगे हैं। वास्तविक मल्लक्रीडा तो अव आरम्भ हुई। 'जय हो! जय हो!' कभी गगन गूँजता है, कभी मल्ल-शालाकी दर्शक-दीर्घासे जयनाद उठता है।

'बन्द करो वाद्य।' कंस उठ खडा हुआ मञ्चपर और क्रोधसे चिल्लाया। उसे स्मरण ही नही कि उसके वाद्य कबके बन्द होचुके। ये देववाद्य उसकी आज्ञामे नही हैं। लेकिन आतङ्क मानते हैं उसका सुर भी। देववाद्य बन्द होगये। इस कर्कश चीत्कारसे चौंककर बालकोंने एक-दूसरेको छोडा और घूमकर कंसकी ओर देखने लगे।

'सब लोग सामने ही उसके शत्रुकी प्रशंसा कररहे हैं! ऐसे शत्रुकी जिसने उसके पाँच-पाँच मल्ल मारदिये हैं।' कंशके नेत्र अङ्गारोंके समान जलरहे हैं। असह्य है उसे यह प्रशंसा। यह जयनाद वह नहीं सह सकता।

'वसुदेवके ये दोनो पुत्र बडे दुष्ट हैं। इन्हे पकडकर अभी नगरसे बाहर निकाल दो।' सेना कल भागी जाचुकी। मल्ल जो जीवित बचे, प्राण लेकर भागगये। थोड़े सशस्त्र प्रहरी अवश्य हैं रङ्गशालामें; किन्तु उनमे किसीके धडपर पराया सिर नही है कि उसे कच्चे घडेके समान फोड़ देनेको वे आगे बढा दें। अखाडेमें केवल दो ही थे जब पाँच प्रधान मल्लोका शव बिछादिया इन्होंने और अब तो इनका पूरा समूह अखाड़ेमें ही खड़ा है।

'निकालो इन्हे। शीघ्र निकाल दो यहाँसे।' क्रोधसे उन्मत्त कंस नही देखता कि उसकी आज्ञा कोई सुनता भी है या नही। उनके मन्त्रियों तकमे किसीने हिलनेका नाम नही लिया।

कंस कितना भी क्रोधमें पागल होचुका हो, स्वयं इनके समीप जानेका सङ्कल्प उसके मनमे कभी नही उठा। न पहिले यह साहस था—न अब आया। उसके मनकी बडी कामना अब यही रहगयी है कि ये नगरसे निकाल दिये जावें—निकाल दिये जासके।

'दुर्बुद्धि नन्दको बांध लो। गोपोकी सब सम्पत्ति छीन लो।' कंस चिल्लारहा है। गला फाडकर पूरी शक्तिसे चिल्ला रहा है। उसकी आज्ञा कोई सुनता है या नही, यह देखनेकी शक्ति अब उसमें नही है।

'क्या बकवाद है? कौन चिल्लारहा है?' बालक खड़े होकर, चौंककर देखनेलगे थे। उनका मुख तमका - 'यह दुष्ट बाबाको बाँधनेको, कहता है?' बड़ा ऊँचा मञ्च है कंसका। बालक वहाँ तक लकुट भी नहीं फेंक सकते। वे क्रोधमें भरे घूररहे हैं।

'वसुदेवको भी मार दो। बड़ा दुर्जन है वह। बहुत कुटिल है।' कंस चिल्लाये जारहा है—'मेरे पिता उग्रसेनको उसके भाई और अनुचरोंके

साथ मारदो । वह भी मेरे विरोधीजनोका ही पक्षपाती है । मारदो । इन सव वृष्णिवशियोको मारदो ।'

'यह वकता ही जारहा है । सभी गुरुजनोको अपशब्द कहरहा है ।' श्रीवलरामने हुङ्कार की और छोटे भाईकी ओर देखनेको घूमे , किन्तु तव तक तो कृष्णचन्द्र उछलकर कसके उस ऊँचे मञ्चपर पहुँचचुके थे । उनके धक्केमे सामने लगा मञ्चका दुर्वल पर्दा टूट गिरा था ।

'मेरा काल ! मेरा शत्रु आगया ।' कसने झपटकर ढाल-तलवार उठाली और मञ्चपर ही एक किनारे कूदकर खडा होगया । वह पैतरे लेनेलगा । इधरसे उधर कूदता है और आघात करना चाहता है । लेकिन आघात तो तव करे जव अवसर मिले । दो क्षण भी तो नही मिले ।

श्रीकृष्णने वाँये हाथसे झपटककर उसका मुकुट फेक दिया ।झनझनाता मथुराका असुर-मुकुट मल्लोके शवके समीप आ गिरा । दाहिने हाथसे कंसके केश पकडकर उसे मञ्चसे नीचे फेंका श्रीकृष्णने , और स्वय उसकी पीठपर कूदगये । मुखसे रक्त फेकदिया कसने । उसकी छातीकी हड्डियाँ चूर-चूर होगयी । वह विना चीत्कार किये मरगया ।

क्रोध—असह्य क्रोध आया है कृष्णको । पता नही , कवका क्रोध है । उनका मुख लाल-लाल होरहा है । उनके मुखकी ओर देखना इस समय असम्भव है । 'इसने माताका केश खीचा था ?' कृष्ण केश पकडकर कंसके प्राणहीन शवको मल्लभूमिमे घसीटरहे हैं । इतने क्रोधमे घसीटरहे हैं कि सहमकर सखा तक मल्लभूमिसे वाहर एक ओर जा खडेहुए है ।

कसके नेत्र वाहरको निकलपड़े हैं । जीभ मुखसे निकली है । रक्तकी धारा चलरही है मुखसे । घूलिमे—रक्तसे कीचड वनी घूलिमे भुवनको आतङ्कित करनेवाले कसका शव सम्पूर्ण मथुराके नागरिकोके सम्मुख केश पकडकर घसीटा जारहा है । जैसे महामत्त गजको मारकर सिह लथेडता है , कृष्ण उस शवको लथेडरहे हैं ।

कृष्ण रुष्ट हैं । इनके ओष्ठ फडकरहे है । भौंहे चढी हैं । कोई समीप आनेका साहस नही करता , किन्तु लोग 'हाय ! हाय !' करनेलगे हैं । कस तो मरगया । अव भला शवकी दुर्गति क्यो ? अन्तत राजाका शव है ।

कर लो शवकी दुर्गति ! कसका अव क्या वनता-विगडता है । यह शव है—कोई इसपर पुष्प चढावे या इसे लात मारे । जो जिसके जीमे

आये, इसका करलो। कंस तो असुर होकर भी भाग्यवान रहा। भयसे, शत्रुतासे सही, इन नवनीरद-सुन्दर चिद्घनवपुका ही स्मरण रात-दिन करता था वह। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते उसे एक ही धुन थी—'कृष्ण आया।' प्रत्येक समय श्यामका चिन्तन करतेरहे उसके प्राण। इन श्यामघनको देखते, इनके द्वारा मारागया। वह तो इनके सारूप्यको प्राप्त होगया। चिन्मय मेघश्याम दिव्य देह मिला उसे। अब इस कुत्सित पार्थिव शवसे उसका क्या सम्बन्ध। इसका क्या मोह उसे।

कसके भाई नही सह सके। उसके आठो भाई झपटे एकसाथ दाँत पीसते, शस्त्र उठाये, चिल्लाते हुए। कङ्क, न्यग्रोध, सुनामा, शकु, सुहुत, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान—ये उग्रसेनके आठो पुत्र श्रीकृष्णके ऊपर एकसाथ टूटे। इनके साथ ही कंसके मन्त्री पीठ, पैठिक, असिलोमादिने भी शस्त्र उठाये और अपने मञ्चोसे कूदे।

श्रीबलरामने इनको दौड़ते देखा तो वहाँ पहिलेका फेका गजदन्त उठालिया। वनमे जब क्रुद्ध वनराज मृगोके यूथपर कूदता है—क्षण लगते है मृगोके शव गिरनेमे? श्रीसङ्कर्षणके हाथका गजदन्त—जिसपर एकबार पडा, उसके मुखसे आह भी नही निकलसकी। केवल शव—कुचले, फटे, भग्नशिर शव दीखे सबको उन झपटनेवालोंके।

'छिः! क्या करता है तू?' भद्रने झिड़का। कृष्णने सखाकी ओर देखा और सकुचित होकर शवका केश छोडदिया। श्रीबलरामने भी रक्त टपकता गजदन्त फेकदिया। गगन और सभा-भवन गूँजा—'भगवान वासुदेवकी जय।'



यादवेन्द्र उग्रसेन

उस नीरव-निस्तब्ध रङ्गशालामे राजकुलकी महिलाओंके मञ्चसे एक क्रन्दन-ध्वनि उठी। कसकी माताकी क्रन्दन-ध्वनि और उसी समय कंस तथा उसके भाइयोकी पत्नियोकी उच्च रुदन-ध्वनि मिलगयी उससे। वे महिलाये मञ्चसे उतरनेलगी थी।

अपने मञ्चसे महाराज उग्रसेन उठे। वे अत्यन्त गम्भीर मुद्रामे थे। यद्यपि अव भी सशस्त्र प्रहरी उनके मञ्चके समीप खडे थे, किन्तु अव उन्होने सम्मानपूर्वक मस्तक झुकाकर मार्ग देदिया। अव तो परिस्थिति ही भिन्न होगयी थी।

शोक सन्तप्त रुदन करती, मस्तक-छाती पीटती महिलाओको उग्रसेनजीने मल्लभूमिमे जानेदिया। वे स्वय श्रीकृष्णकी ओर चले। उनको आते देखकर श्रीकृष्णचन्द्र आगे वढे। सम्मुख जाकर मस्तक झुकाया उन्होने और मलिन मुख, अत्यन्त खिन्न स्वरमे वोले—'मुझे वहुत दु.ख है। वहुत पश्चाताप है। मैंने वहुत-सी स्त्रियोको विघवा वनादिया, किन्तु दूसरा कोई विकल्प नही था। कसका वध उचित था, वह धर्मद्रोही था।'

रङ्गशालामे वैठे सभी नागरिक श्रद्धावनत होगये—'यह शील! इन्होंने नही कहा कि अपनी प्राणरक्षाके लिए कसको मारना पड़ा मुझे। यह भी नही कहा कि कसको मैं मार न देता तो वह आपके वधकी आज्ञा दे चुका था। कोई वचाव, कोई तर्क नही दिया। केवल धर्मद्रोही था—धर्मरक्षा आवश्यक है, इसलिए कसको मारना पडा।'

'मुझे इस सम्वन्धमे कुछ नही कहना है।' उग्रसेनने कुछ काँपते स्वरमे कहा—'मैं तुम्हे दोष नही देता। कोई भी तुम्हे दोष नही देगा।'

'कसका राज्य, कोप, सेना अव तुम ग्रहण करो। कसके वाहन, दास, दासियाँ—सव स्वीकार करो। प्रजा, मन्त्री, व्राह्मण तुम्हारी स्तुति करेंगे।' महाराज उग्रसेन रुदन दवाये वोलरहे थे—'अव विग्रह समाप्त होगया। तुम्हारा यहाँ मथुरापर अधिकार होगया। हम सभी यादवोकी अव एकमात्र गति तुम्ही हो। कस पापी सही—पर वह मरगया। अनुमति दो कि इसका प्रेतकर्म हो। मैं पुत्रोकी अन्त्येष्टि करके अपनी पत्नी तथा पुत्रवधुओके साथ वनमे चलाजाऊँगा।'

'तात ! आप समयोचित बात कहरहे है। जो हो चुका, वह वैसा ही होनेवाला था। कस अपने कर्मोसे कालके द्वारा मारागया। मैं निमित्त मात्र हूँ, किन्तु कसके शरीरका राजोचित सत्कार होगा।' श्रीकृष्णचन्द्र वैसे ही खिन्न, पर गम्भीर स्वरमे बोलरहे थे—'मुझे न राज्यका लोभ है, न राज्यके लिए मैंने आपके पुत्रको मारा है। लोक-हितके लिए यह अप्रिय कर्म करनापडा मुझे।'

'आप मेरे पूज्य हैं। आप नीतिकी बात कहरहे हैं, किन्तु कृष्णको नीति नहीं, आपका वात्सल्य अभीष्ट है।' अब श्रीकृष्णचन्द्र और समीप आ गये—'आप जानते ही हैं कि महाराज ययातिके शापसे यदुकुलमे अग्रज एव उनकी सन्तान राज्यसिंहासनपर नही बैठ सकती। आप मुझसे रुष्ट हैं—मैं इसके योग्य हूँ। आप मुझे अपना स्नेह नही देगे तो मथुरा आज ही त्याग दूँगा। गोपोके साथ मैं अबतक जहाँ रहा हूँ, जीवनभर वहाँ रहूँगा।'

धक्से होगया हृदय सम्पूर्ण लोगोका। स्वय उग्रसेनने आश्चर्य, क्षोभसे श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा। इतना अकल्पित अकस्मात् आया आघात—इतना विचित्र निश्चय ! और श्रीकृष्णके स्वरमे जो स्पष्ट सुदृढ निश्चय है !

'आप यदुवशके स्वामी है। आप मेरे सम्मान्य है। आप राजा हैं। आप सिंहासन स्वीकार करें। आपकी जय हो। यदि आपके मनमे मेरी ओरसे रोष एव व्यथा न हो तो इस राज्यको दीर्घकालके लिए आप ग्रहण करें।' श्रीकृष्णने पीछे मुडकर मल्लभूमिमे पडा राजमुकुट उठालिया और आगे आगये उग्रसेनके—'अभिषेक पीछे मुहूर्त देखकर आचार्य करावेंगे। किन्तु राजसिंहासनको सूना नही रहना चाहिये। आप इसे स्वीकार कर लें तो आपकी आज्ञाके अनुसार आगेका कृत्य सम्पन्न हो।'

उग्रसेन लज्जित होगये। उन्हे बहुत सङ्कोच हुआ। यह आशङ्का भी उन्हे अतिशय भयभीत कररही थी कि ये मेरे सिर राज्य-भार डालकर स्वय चले न जायें।

महाराज उग्रसेनने अबतक बड़ी मनोव्यथा झेली थी। वे शान्त, सात्विक भगवद्भक्त पुरुष थे। उन्हे यह व्यथा वर्षो व्याकुल कियेरही—'मैं कस जैसे क्रूर, निर्दय, नृशस पुत्रका पिता हूँ। धिक्कार है मुझे।'

राज्य गया, सुख गया, सम्मान गया, अपने पुत्रने ही उन्हे बन्दीगृहमे डालदिया, किन्तु उन्हे इस सबका दुःख कभी नही हुआ। कंस चाहता

था कि वे कारागारमें पर्याप्त सुविधापूर्वक रहे। सेवक उनके प्रति विनम्र ही बनेरहे, किन्तु स्वय उन्होने तपस्वीका जीवन अपनालिया था। वे अत्यल्पमे सन्तुष्ट रहने लगे थे।

'भोगका काल बीतचुका था। राज्य तो कसका ही था। वह युवराज था। उसे सिंहासन देकर वनमें चलाजाता और नारायणका भजन करता।' महाराज कारागारके एकान्तमे सोचा करते थे—'श्रीहरि दयामय हैं। उन्होने कसके पापोके दायित्वसे मुझे बचालिया। मैने उसे राज्य दिया होता तो दायित्व होता मेरा।'

'कसने देवकीका पुत्र मारदिया।' जब-जब यह समाचार मिला—उग्रसेनने सच्चे हृदयसे प्रार्थना की—'कस स्वार्थी-पिशुन है! प्रभो, इस मूर्तिमान पापसे पृथ्वीका परित्राण करो।'

'पुत्रके कर्मोमे पिताका भी भाग होता है।' यह सोचकर बहुत व्यथा होती थी महाराज को—'यह भोजवशका कलङ्क। इससे यदुवशका त्राण कैसे होगा!' यह चिन्ता उनका पिण्ड नही छोडती थी।

'मुझमें कही पाप है—घोर पापी हूँ मैं। अन्यथा ऐसा पुत्र मेरे कैसे होता।' अपनेको वे धिक्कारतेरहे हैं।

'यदुवश उत्पीडित होरहा है। लोग भागरहे है। मथुराके सब सम्मानित जन चलेगये। कसके अनुचर ऋषि-मुनियोके आश्रम ध्वस्त कर रहे हैं।' कारागारमे समाचार आते थे और उग्रसेन छटपटाकर रहजाते थे। 'जिन यदुवश-भूपणो का आजीवन सम्मान-सत्कार किया उन्होने, वे निर्वासित होरहे है? प्राण-भय से भागनेको विवश है आज वे। जिन भुवनवन्द्य विप्रो, ऋषियोकी सेवामे शरीर अर्पण कर देना भी वे अपना सौभाग्य मानतेरहे हैं, वे उत्पीडित किये जा रहे हैं। उनपर अत्याचार होरहा है और वह भी उन्हीके पुत्र द्वारा।'

'देवकीके अप्टम पुत्र नही, कन्या हुई। वह देवी—अप्टभुजा कहगयी कि कसको मारनेवाला उत्पन्न हो गया।' जिस दिन यह समाचार मिला था, उग्रसेनने सन्तोषकी साँस ली थी। उस दिन उन्होने आराध्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी—'इस नृशससे प्रजाकी रक्षा तो हो।'

'साक्षात् नारायणने वसुदेवके यहाँ अवतारलिया। वसुदेव उन्हे किसी प्रकार गोकुल पहुँचा आये। कंसके प्रधान अनुचरोको—पूतना, बक, अध आदिको मारदिया उन्होने।' यह समाचार भी बन्दीगृहमें मिला।

'आराध्य अवतीर्ण हुए। इस अवमपर भी वे कृपा करेंगे ? इसे भी उनके श्रीचरणोंके दर्शन होगे ?' महाराज उग्रसेन सोचते थे—'ऐसा सौभाग्य कहाँ ? परन्तु धरा पावन हो ! असुर नष्ट हो।'

'अरिष्ट मारा गया। केशी मर चुका। कसने अक्रूरको भेजकर उन्हे मथुरा बुलवाया है।' समाचार मिला तो मन उल्लसित हुआ—'प्रभु मथुरा आगये। धन्य होगयी मधुपुरी। अब कसका भय मिटेगा। अवश्य अधर्म मिटकर रहेगा।'

कल अचानक धनुर्भङ्गका धमाका सुनायी पड़ा था। महाराज उग्रसेनने तभी समझ लिया था कि उनके पुत्रकी आयु अब समाप्तप्राय है। उन्हे प्रसन्नता हुई थी। कंसके प्रति उनके मनमें कही मोह नही।

आज प्रात वे कारागारसे लायेगये रङ्गभूमिमे। पुत्रने पिताका यह अपमान भी किया। समस्त मण्डलेश्वरोंके मध्य उन्हे वन्दीके रूपमें बिठाया गया। कोई ग्लानि, कोई खेद नही मनमे। उग्रसेनके नेत्र भी सबके समान द्वारपर ही लगे थे—'मेरे आराध्य आनेवाले है।'

वह गजदन्त लिये श्री राम-श्यामका प्रवेश। सबके साथ महाराजने भी सम्पूर्ण उल्लसित कण्ठसे जयघोप किया था—'भगवान वासुदेवकी जय।'

मल्लयुद्ध हुआ और अचानक कल्पनासे परेकी घटनाएँ शीघ्रतासे घट गयीं। कस तो मारा ही गया, महाराज उग्रसेनके शेष आठो पुत्र भी मारे गये। निःसन्तान मारेगये सब। अब उग्रसेन का वश नष्ट होगया। कोई जलदाता नही रहा उनके कुलमे। अन्तत वे पिता है। नौ पुत्रोके शव सामने पडे हैं और विधवा पुत्रवधुएँ उन शवोंमे लिपटकर वक्ष कूट-कूटकर क्रन्दन कर रही हैं। उग्रसेन का हृदय शोकसे व्याकुल है तो आश्चर्य क्या।

'ये नवजलधर सुन्दर सामने खड़े हैं। ये परमाराध्य। जिनके श्रीचरणोंके दर्शन की कामना जीवनभर हृदयमें पलतीरही, वे सम्मुख है। कैसी विकट परिस्थितिमे सम्मुख हैं।' महाराज उग्रसेनका हृदय मथ उठा—'ये कहते हैं कि सदा के लिए मथुरा मे चलेजायेंगे।'

'मैं वृद्ध हूँ। असमर्थ हूँ। जो वन्दी रहचुका, उसका प्रभाव तो अस्त हो चुका।' किसी प्रकार उग्रसेनने कहा—'उसका शासन कैसा ? शासन तो प्रभावसे चलता है। अब इनको—इन असहायको तो क्षमा करो।'

'कौन कहता है कि आप असहाय, असमर्थ, प्रभावहीन है।' श्रीकृष्णकी वाणीमे सहज तेज आया—'मै अग्रजके साथ आपके सिहासनके पार्श्वमें भृत्य होकर खडा रहूँगा। किसका साहस है कि आपके आदेशका अतिक्रमण करे। आपके चरणोमें महेन्द्र, वरुण, निधिपति और यम भी उपहार अर्पित करना अपना सौभाग्य मानेंगे। आपके चरणोमे प्रणत होकर सुर भी धन्य समझेंगे अपने को।'

'श्रीकृष्ण जायेगे नही, वे रहेंगे। सिहासनके पार्श्वमे बनेरहेगे।' महाराजको आश्वासन मिला। श्रीकृष्णके वचनोका सत्य तो त्रिभुवनको स्वीकार है। उग्रसेनने मस्तक झुकादिया। उस मस्तकपर मुकुट रखते कृष्णचन्द्रका उच्च घोप गूंजा—'यादवेन्द्र महाराज उग्रसेनकी जय!'

— ० —

पितृ-मिलन

'अब यदि आप कुछ क्षणोके लिए हमे अनुमति दे।' श्रीकृष्णचन्द्रने हाथ जोडकर, मस्तक झुकाकर महाराज उग्रसेनसे कहा और वसुदेव-देवकी जहाँ बैठे थे, उस ओर दृष्टि उठायी।

'अरे, हाँ!' उग्रसेनजी सङ्कोचमे क्या वोले, यह समझ नही सके। उन्हे लगा कि वे अपनी ही चिन्ता मे पडगये थे और उनके पुत्रने जिन्हे इतना उत्पीडित किया, उनको तो भूल ही गये है। उनके भी तो हृदय है, उनके भी पुत्र हैं--ऐसे भुवनवन्द्य पुत्र। उनके छ पुत्र मारदिये कंसने, इसका कोई उलाहना नही और अब तक वे सशस्त्र प्रहरियोसे घिरे वन्दी बने बैठे हैं।

वसुदेव-देवकी वस्तुत अब वन्दी नही थे। महाराज उग्रसेन जैसे ही अपने मञ्चसे उठे थे और उस मञ्चके प्रहरियोने मस्तक झुकाकर उन्हे मार्ग दिया था, वसुदेव-देवकीके मञ्चके प्रहरी सचेत होगये थे। वे अञ्जलि बाँधकर, अत्यन्त दयनीय मुद्रामें, मानो प्राणोकी भिक्षा माँगरहे हो, इस प्रकार वहाँ खड़े थे।

वसुदेव-देवकी उठना चाहते तो उन्हे अब रोकनेका साहस करने वाला कोई नही था। प्रहरी तो अब उनके सेवक मात्र थे, किन्तु वे उठना

चाहते—उनसे उठा जापाता तब तो। उनका तो अङ्ग-अङ्ग जैसे जकडगया था। उठना तो दूर, बोल भी नही पारहे थे वे। उनके नेत्र खुले थे। नेत्रो से अविरल अश्रुधारा चल रही थी, केवल यही लक्षण था कि वे जीवित बैठे हैं।

'उनके पुत्र!' लेकिन कौन पुत्र उनके ? उनके हृदयमे तो मन्थन चल रहा था—'ये श्याम-गौर पुत्र हैं उनके ?'

'भगवान वासुदेवकी जय !' वसुदेव-देवकी इस जयघोषसे चौंक-चौंक पडे हैं—'भगवान साक्षात्-परमपुरुष परमात्मा ही तो हैं ये।

'इन्होने कसके सब असुर मारदिये !' कारागारमे और उससे पूर्व भी सुना था—'पूतना, उत्कच, तृणावर्त, वत्स, अघासुर, व्योमासुर, धेनुक, अरिष्ट और केशी। कालियनागको यमुनासे निकाल दिया। गोवर्धनको सात दिन हाथपर उठाये रहे और इन्द्रका गर्व नष्ट करदिया। भगवान हैं ये।'

कहाँ महागज कुवलयापीड और कहाँ इनका यह सुकुमार श्रीअङ्ग ! अभी-अभी सामने पडे है इनके मारे भूधराकार कसके महामल्ल और स्वयं कसका शव पडा है वह अपने भाइयोके शवके मध्य मल्लभूमि मे। धराका भार दूर करते श्रीनारायणने अवतार लिया है। ये साक्षात् श्रीनारायण।'

वसुदेव और देवकीके हृदय मे वह सूतिकागृहमे देखी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज, वनमाली मूर्ति प्रकट होगयी है। उन्हे सम्मुख द्विभुज खडे श्रीकृष्ण चतुर्भुज होनेलगे है।

'वसुदेव की जय! महाभागा देवकीकी जय!' नागरिकोके कण्ठ अब इस जयघोष मे उल्लसित लगने लगे हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रने महाराज उग्रसेनका सङ्कोच समझलिया था। मुडकर बडे भाईका हाथ पकडा। श्रीबलराम अब तक मल्लभूमिमे शान्त खडेरहे हैं। उनका यह अनुज क्या करता है, इसे वे चुपचाप देखतेरहे हैं। वे अपने छोटे भाईके साथ हैं। यह मथुराका सिंहासन अपनावे तो, व्रजराजके साथ फिर वृन्दावन चल दे तो, और उग्रसेनको सम्राट बनाकर उनके पार्श्वमे खडा हो तो—प्रत्येक दशामे वे छोटे भाईके साथ हैं। उन्हें कुछ कहना-करना नही। कृष्ण जो करें, चुपचाप उनके साथ रहना है। अब भाईने हाथ पकडा तो वे चलपडे।

'माँ! पिताजी!' दोनो भाइयोंने आकर मातापिताके चरणोंमे मस्तक रखा। महाराज उग्रसेन दो पद चलकर रुक गये है। उन्हे इस

मिलनमे व्याघात नही बनना चाहिये । नागरिकोको राजसेवकोने मञ्चोपर-से उठनेसे रोकदिया है । विनम्र होकर—हाथ जोड़कर रोकदिया है । अब वे नम्रताकी मूर्ति बनगये हैं , किन्तु उनका अनुरोध उचित है । चिर वियुक्त माता-पितासे पुत्रोके इस मिलनमें किसीको बाधा नही देना चाहिये ।

'ये भगवान ! साक्षात् परमपुरुष श्रीहरि !' वसुदेव-देवकी स्तब्ध रह गये हैं । 'ये चरण-वन्दन करते हैं ? यह इनकी लीला—इनकी मर्यादा ; किन्तु ये नररूप तो हुए थे हमारे ही अनुरोधसे ।'

एक अज्ञात भय भी हृदयको उन्मथित कररहा है—'ये श्रीहरि है ! धराका भार दूर होगया । कस और उसके असुर मारे जाचुके ! अब ये अदृश्य तो नही होजायेगे ?' वसुदेव-देवकी वैसे ही मूर्तिके समान स्थिर बैठे रहगये हैं । वे आशीर्वाद देनेको हाथ तक नही हिला सके । केवल देख रहे हैं । अपलक देखरहे हैं ।

'जो समस्त भुवनोको अपने भीतर लेकर अनन्तशायी होजाता है, मैं उसकी माता !' देवकीजी पतिसे कुछ अधिक सटी सकुचित बैठी रह गयी है ।

'पिताजी ! हमे आप क्षमाकर दो ।' श्रीकृष्णचन्द्रने सिर उठाया । हाथ जोडा और उनके कमललोचन भरआये ।

'माँ ! हमे क्षमा नही करोगी ?' देवकीके पदोपर सिसकते हुए मस्तक धरदिया उन्होने ।

'हमारा दैव विपरीत था । हम आपके समीप नही रहसके ! हमारे शैशव , पौगण्ड और कैशोरका आनन्द आपको एव आपका लालन-पालन सदैव उत्कण्ठित रहनेपर भी हमको नही मिलसका ।'

'सम्पूर्ण पुरुषार्थोको देनेवाला यह देह जिनसे मिलता है , जो इसका लालन एव पोषण करते हैं , सौ वर्षकी पूर्ण आयुमे भी उनके ऋणसे पुरुष उऋण नही होसकता ।' श्रीकृष्ण कह रहे थे—'जो समर्थ होकर भी अपने शरीर और सम्पत्तिसे माता-पिताकी सेवा नही करता , उसे मरनेपर अपना ही माँस खाना पडता है ।'

'वह श्वास लेता हुआ भी मरा ही हुआ है जो वृद्ध माता-पिता , साध्वी स्त्री , शिशुपुत्र , गुरु , ब्राह्मण और शरणागतकी रक्षा नही करता । लेकिन हम समर्थ कहाँ थे ।' कृष्णचन्द्रका कण्ठ भरा आरहा है—'दुष्ट कसके भयसे उद्विग्न रहते हमारे इतने वर्ष व्यर्थ चलेगये , हम आपकी कोई

सेवा नही करसके। इस क्रूर कंससे त्रस्त हम आपकी शुश्रूषा करनेमें असमर्थ रहे। आप दोनो हमें क्षमा करदे।'

'श्रीकृष्ण क्षमा माँगरहे है। प्रार्थना कररहे है। इनके कमलदृगोमे अश्रु हैं। ये रोरहे हैं।' माता देवकीका हृदय और नही सह सका। उनका वात्सल्य उमडपडा। उन्होंने हाथ बढाकर खीच लिया श्यामसुन्दरको अङ्कमे। उनके अश्रुओसे अलके भीगनेलगी। उनका वक्ष दूधसे आर्द्र होनेलगा।

'पिताजी! क्षमा करदें आप।' वसुदेवजी भी विह्वल होगये। मातासे पृथक् होकर कृष्णने पिताके पदोपर मस्तक रखा तो वसुदेवजीने भी उन्हें भुजाओमे भरकर हृदयसे लगालिया। इस समय श्रीबलरामको माताने अङ्कमे समेटलिया था।

राम-श्याममें कभी एक—कभी दूसरे माता या पिताके वक्षसे सटे, लिपटे जारहे हैं। माता-पिताके नेत्रोसे आनन्दाश्रुकी धार चलरही है। वर्षोंके विछुडे पुत्र मिले हैं उन्हे। इस वात्सल्यको—इस मिलनकी कोई तुलना है? नागरिक देखरहे हैं—मुग्ध देखरहे हैं और उनके कण्ठोंसे वार-वार जयघोष होता है—'महाभाग वसुदेवजीकी जय! माता-देवकीकी जय! भगवान वासुदेवकी जय!'



वैर-बीज

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ गीता १६ १३

अस्ति और प्राप्ति जरासन्धकी—प्रौढतारुण्यकी पुत्रियाँ हैं और उन्मत्त राजस अहंकी – कंसकी पत्नियाँ। कंस मरगया—चिता जलगयी उसकी, किन्तु अस्ति और प्राप्ति ? उनका पिता जरासन्ध ?

'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभञ्जन।' (भीमसेन भी हनुमानजीके समान पवन-पुत्र ही हैं।) वे 'कालोऽयस्मि' कहनेवाले श्रीकृष्णका आश्रय लेकर जबतक जरासन्धको चीर न फेंके तबतक चलेगा--चलता रहेगा अस्ति-प्राप्तिसे प्रेरित उत्पात। यह बहुत लम्बा--देरतक चलनेवाला उपद्रव है। श्रीकृष्णको भी इससे त्रस्त होकर मथुरा त्यागकर द्वारिकाके महादुर्गका आश्रय लेनेको बाध्य होनापडा।

× × ×

कभी-कभी परिस्थिति व्यक्तिको विवश करदेती है। कोई भी कुछ करनेमें समर्थ नही होता। कंसकी माताके नौ पुत्र मारेगये। उनकी पुत्रवधुएँ अपने पतियोके कुचले, अङ्ग-भङ्ग शवोसे लिपटी क्रन्दन करती रही और उन्हे दो शब्द आश्वासन कहने वाला कोई नही था। जिनके आतङ्कसे दो घड़ी पहिलेतक मथुरा काँपती थी, उनके रुदनपर ध्यान देनेवालातक कोई नही। भरी रङ्गशालाके मध्य वे सिर पीटती, चिल्लाती रही--किसीने उनकी ओर देखातक नही।

महाराज उग्रसेन उनके साथ चले थे, किन्तु श्रीकृष्णसे बात करनेके पश्चात् वे चिर-विछुडे माता-पितासे पुत्रोका मिलन देखनेमे भूलगये अपनेको, अपने पुत्रोके शवोको, क्रन्दन करती पत्नी तथा पुत्रवधुओको। उनको एक ही ध्यान रहा—'उनका प्रथम कर्तव्य है वसुदेव-देवकीसे क्षमायाचना। अब क्षमा ही माँगी जासकती है। उनके पुत्रने इनके नवजात शिशु मारे हैं। इन्हे बन्दी रखा है। इनसे क्षमा माँगना चाहिये प्रथम।'

दूसरे सब नागरिक-राजसेवक भी वसुदेवजीके मञ्चकी ओर देखनेमे तन्मय थे। सब उस मिलनको देखकर अपनेको विस्मृत होगये थे।

जिनका कोई नही, विपत्तिमे जिन्हे आश्वासन देनेवाला भी नही, उन असहायोका जो सदा सहायक हुआ है, होता रहेगा, वह भूला नही था, किन्तु उसे भी परिस्थितिने विवश कररखा था। वर्षोंसे वियुक्त माता-पिता मिले थे। उनका उमडता वात्सल्य--देरलगी, पर्याप्त देरलगी उनके प्रेमावेशको किञ्चित् शिथिल होनेमें। इस किञ्चित् शिथिल होनेसे पूर्व उनसे कुछ कहा नही जासकता था।

वसुदेवजी-देवकीजी एक पुत्रको छोडते तो दूसरेको अङ्कमे खीच लेते थे। पता नही, कबतक चलता यह क्रम, किन्तु तनिक-सा अवकाश मिलते ही श्रीकृष्णचन्द्रने कहा--'पिताजी! महाराज प्रतीक्षा करते खडे है। उनके पुत्रोंके शवोका अन्तिम सस्कार होना चाहिये।'

'चलो! चलो!' वसुदेवजी लगभग व्याकुल होकर, चौंककर उठ पडे। उन्हे लगा कि यह कार्य तो उनको प्रथम स्मरण आना चाहिये था।

'हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! आपके न रहनेसे हम मृत होगयी। ध्वस्त होगये हमारे गृह। नष्ट होगयी प्रजा।' नारियाँ सिर और वक्ष पीट-पीटकर रोरही थी। उनके केश बिखरे थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। आभूषण नोच-नोचकर उन्होंने फेक दिये थे। असूर्यम्पश्या-राजवधूएँ, किन्तु जब सिन्दूर ही पोछदिया गया तो अब शेष क्या रहा।

'सब उत्सव--सब मङ्गल समाप्त होगये आपके बिना आपके स्वजनोंके।' शवोसे वे लिपट-लिपट जाती है। उनके अङ्ग और वस्त्र भी पतियोंके शरीरके रक्तसे सनरहे हैं। 'यह अवस्था आपकी! परन्तु आपने निरपराध प्राणियोसे शत्रुता करली थी। उसका परिणाम अन्तमे आकर ही रहा।'

'श्रीकृष्ण समस्त विश्वको उत्पन्न करनेवाले और नष्ट करनेवाले हैं, यह किननोने समझाया था आपको। उन सर्वसमर्थ--सबके पालकके शत्रु बनगये आप। किसीकी बात आपने नही सुनी।' ये अबोध नारियाँ प्रात भली प्रकार शृङ्गार करके यवनिकाके पीछे बैठकर मल्लक्रीड़ा देखने आयी थीं। उन्हे क्या पता था कि भाग्य आज उन्हें क्या दिखानेवाला है।

सहसा श्रीकृष्णचन्द्र समीप आगये। वही समीप आसकते थे। महाराजा उग्रसेन, वसुदेवजी--किसीको भी इस अस्त-व्यस्त दशामे उनके पास नहीं आना चाहिये था। कमल-लोचन करुणासे भरे, सकुचित होते, आगधी-से बने श्रीकृष्णचन्द्र आये समीप।

'आप सब राजकन्यायें हैं। राजवधुएँ है। बुद्धिमती हैं। आप जानती है कि जीवन और मृत्यु पूर्व निश्चित है। जिसका शरीर जब जाना है, जैसे जाना है, उसी समय और वैसे ही जायगा। इसे कोई टाल या परिवर्तित नही करसकता। अत इसके लिए शोक करना उचित नही है। आप सब मुझे क्षमा करे।'

त्रिभुवन सुन्दर अञ्जलि बाँधे, पद्मपलाश दृगोमे अश्रु भरे सम्मुख खडे है। उनके श्रीमुखपर दृष्टि गयी और नारियाँ इस असह्य व्यथाके क्षणमे भी उन्हे देखती रहगयी। उनके सिर और वक्ष पीटते कर रुकगये। उनका क्रन्दन सिसकियोमें वदलगया। वे अपने वस्त्र सम्हालने लगी।

'अव आप सव पधारे। अनुमति दे कि सम्पूर्ण सम्मान सहित हम इन देहोका अन्तिम संस्कार सम्पन्न करे।' कृष्णचन्द्रने अञ्जलि बाँधकर फिर कहा—'आपने यदि मुझे क्षमा करदिया है तो मुझे सेवा करनेका अवसर भी आप देनेकी कृपा करे।'

माता देवकी, वसुदेवजीकी दूसरी पत्नियाँ दूसरे मञ्चोंसे उतरकर समीप आगयी। उन्होंने उन सिसकती विधवाओंको सम्हाललिया। स्नेहपूर्वक उन्हें लेकर यमुना स्नान कराने चलीगयी।

श्रीवलराम और श्रीकृष्णचन्द्र व्यस्त होगये। वसुदेवजी, महाराज उग्रसेन, व्रजराज नन्द गोपोके साथ-साथ आगये और सब व्यवस्था करनेमे लगगये।

'धन्य है कस और धन्य हैं उसके भाई!' नागरिक इस सौभाग्यकी कल्पना नही करते थे—'इनके शवोको अग्रजके साथ भगवान वासुदेवने कन्धा दिया! तपस्वियो, ऋषियो, बडे-वडे पुण्यात्माओंके लिए भी यह परम सौभाग्य अप्राप्य है।'

कौशेय वस्त्रोमे आच्छादित शव। अर्थी सबकी सब भली प्रकार सजायीगयी थी, किन्तु कसके शव सम्राट्के शवको समान सजायागया था। उसके भाइयोके शव उसके पीछे थे। जीवन भर अनुगत रहे वे और इस महायात्रामे भी वे बड़े भाईके अनुगत ही थे।

दोनो ओर पंक्तिबद्ध सैनिक खडे थे। जीवनमें जिसने ब्राह्मणोका सम्मान नही किया, उसके सब अपराध भूलकर ब्राह्मण पथके दोनो ओर खड़े उसपर पुष्प डालरहे थे। यह श्रीकृष्णके साथ रहनेका प्रत्यक्ष परिणाम था।

विशुद्ध चन्दनकी चिन्तायें बनी यमुना किनारे। महाराज कंसकी, उनके आठ भाइयोकी पृथक्-पृथक् नौ चितायें। मल्लोका मथुरामे कोई स्वजन नही था। उनके पाँच शवोके छः भाग एक ही विशाल चितापर धर दियेगये थे। कसके मन्त्रियोंके स्वजनोको अनुमति मिलगयी थी। उन्होने मृत मन्त्रियोके शव लाकर चितायें बनाकर उनपर रखदिये थे।

कहते हैं कि महाशिवरात्रि कालरात्रि है। उस दिन प्रदोष कालमें सूर्यास्तके लगभग मथुरामे यमुना-तटपर चिताओकी पंक्ति धू-धू करके जलरही थी। कसके पाप-उत्पीड़नकी चितायें जलगयी उसी दिन।

मुकुटधारी नरेशको सूतक नही लगता। श्रीकृष्ण नही चाहते थे कि मथुराका सिंहासन दस दिन रिक्त रहे। महाराज उग्रसेनके मस्तकपर उन्होने इसीसे मल्लशालामे ही राजमुकुट रखदिया था। अपने पुत्रोका अग्नि-संस्कार उग्रसेनको ही करना था; क्योकि उनके सब पुत्र निःसन्तान मरे थे, किन्तु मुकुटधारण करके अन्तिम संस्कार करनेसे उन्हे सूतक दोष नही होना था।

रक्त, स्वेद, गजमद, मल्लशालाकी धूलि—ये सब अब तक श्याम-बलरामके शरीरपर थे। सूखकर भी गजमद और रक्तके चिह्न दीखते ही थे। इनसे दूषित, प्रातसे अब तकके लगातार श्रमसे क्लान्त-श्रान्त शरीर यमुना स्नान करके सायंकाल दोनो भाइयोका स्वस्थ हुआ। यादवोने, गोपोंने, प्रायः सभी नागरिकोने यमुना स्नान किया। नारियोंने पृथक् स्नान किया कस और उसके भाइयोकी विधवाओके साथ।

यमुना-तटसे लौटते ही महाराज उग्रसेन व्यस्त होगये। बलराम-श्रीकृष्ण छायाकी भांति साथ होगये उनके। इस समय पुत्रशोक-सन्तप्त महाराजको इस साथकी अत्यन्त आवश्यकता थी। वे वसुदेवजीसे मिलनेके लिए जाते; किन्तु वसुदेवजी तो श्मशानसे राजसदन साथ ही आये। दोनोको ही दोनोंसे क्षमा मांगनी थी। दोनो परम विनम्र। दोनोने विगतको भूल जाना ही श्रेयस्कर माना।

उग्रसेनजीने आग्रह करके व्रजराजको गोपोंके साथ नगरमें एक विशाल भवनमें ठहराया। वहां उनके साथके छकड़ोंके रखने तथा वृषभोकी पूरी व्यवस्था की। स्वयं सदे रहकर उस व्यवस्थाका निरीक्षण करते रहे।

यादव कुलाचार्य महर्षि गर्गसे, ब्राह्मणोसे, प्रमुख यादवो तथा नागरिकोंसे महाराज रात्रिमें ही मिले। सबकी समुचित व्यवस्थाका आश्वासन दिया।

सब हुआ; किन्तु कसके हृदयमें जो कृष्ण एव यादवोके वैरका वीज था, वह नष्ट नही हुआ। कस मरगया; किन्तु उसका वह वैर उसकी पत्नियोके हृदयमे जमकर बैठगया और मगध जाकर विशाल विष-वृक्ष बना।

कंसकी पत्नियाँ समर्थ पिताकी पुत्रियाँ थी। उनका हृदय जलरहा था—'हमारे स्वामीका शव पड़ा रहा, हम विखलती रही और कोई दो शब्द आश्वासनके कहने देरतक नही आया। यह बूढा—इसके सब पुत्र मरे पडे थे और इसे अपने राजमुकुटकी पडी थी। हमारे स्वामीका वश समाप्त होगया। हम यदुवंशको समाप्त करवाकर रहेगी। हमारे नाथके कुलमें कोई जलदाता नही तो पूरे यदुकुलमें कोई जलदाता नही बचेगा।' वैरका यह वीज लेकर कंसकी अन्तिम क्रिया पूरी होनेपर, तेरह दिन बाद ही वे मगध चलीगयी।

—×—

मथुरा सुख बसी

'कौन-कौन चलेगये हैं? कहाँ चलेगये है?' श्रीकृष्णचन्द्र व्यस्त हो उठे यह पता लगानेमें।

कसके भयसे यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दशार्ह, कुकुर आदिके वशज यादवगण, उनके परिजन, सेवक, सुहृद, सम्बन्धी—बेचारे स्वगृह, स्वदेश त्यागकर पता नही कहाँ-कहाँ भटकरहे थे। कितना कष्ट, कितनी यातना सहनीपडी उनको।

पता लगाना सरल नही था। सरल होता तो कस क्या पता न लगा लेता। लोग छिपकर गये थे। छिपकर रहरहे थे। पता ही नहीं लगाना था, पता लगाकर सम्मानपूर्वक, आग्रह करके उन्हे लौटाना था। उन्हे सब सुविधा देकर बसाना था। मथुरासे प्रतिदिन चर विभिन्न स्थानोपर भेजे जाने लगे।

वेदज्ञ ब्राह्मण, तपस्वी, भगवद्भक्त—बडी संख्यामे सपरिवार चले गये थे। कस और उसके अनुचर स्वभावसे इस वर्गके शत्रु थे। त्याग ही जिनका भूषण है, उनके कौनसे भारी भवन थे। कुटिया, छोटा-सा आश्रम, उसमे दो-चार फलोके वृक्ष, कुछ पुष्प, बहुत हुआ तो एक या दो गायें। इतनी सम्पत्ति थी इनकी। ये जब चलेगये स्थान त्यागकर—इनका क्या ठिकाना कि कहीं फिर आश्रम बनावेंगे या तीर्थाटन करते रहेगे।

देश धार्मिक, श्रद्धावान आश्रयदाताओसे सूना तो नही होगया था। अहोभाग्य मानते थे नरेश कि उनके नगरमें—राज्यमे कही कोई वेदज्ञ विद्वान, कोई तपस्वी, कोई ऋषि-मुनि या भवगद्भक्त रहता है—अथवा रहेगा।

अब जो विप्रवर्ग चलागया मथुरा छोडकर, उसने जहाँ भी आश्रय लिया, आश्रम बनाया—उसे क्यो दे? दस-ग्यारह वर्षका काल कम नही होता। पाँच-सात वर्षमें ही नवीन वृक्ष फल देनेलगते हैं। पुष्प उसी वर्ष लगजाते है। इस वर्गको ले आना फिर मथुरा सबसे कडा काम था। लेकिन यही वर्ग न आवे—मथुराकी शोभा होगी?

एक ही आधार, एक ही आकर्षण था—'भगवान वासुदेव बुलाते हैं।' श्रीकृष्ण स्वय बुलावें, उनके समीप रहनेका सुअवसर मिले, यह ऐसा प्रलोभन था जो विद्वान ब्राह्मणो, तपस्वियो, भगवद्भक्तोको लौटआनेको विवश करता था।

मथुरा कसने लगभग उजाड करदी थी। अच्छे सात्विक व्यापारी, उत्तम कलाकार मथुरा त्याग गये थे। जिनपर भगवती वीणापाणि प्रसन्न होती हैं—वे मानधनी होते हैं। उन्हे सम्मानपूर्वक रखना पडता है। कस जैसे अहमन्य, रूक्ष व्यक्तिकी सेवा करते वे? उनके लिए क्या देशमें स्थान नही था? वे जहां गये, हाथोंपर लेलिये गये। उनको लौटाना था—वहांसे लौटाना था जहां विपत्तिमें उन्हे आश्रय, सम्मान, सम्पत्ति भी मिली थी। सरल था उनको लौटाना?

श्रीकृष्णके भेजे चर सन्देश लेजाते थे। लोगोका पता लगाकार आते थे और उनके लिए विशेष सन्देश लेजाते थे।

व्यक्ति चाहे जैसी विपत्तिमे घर छोडे—मातृभूमिसे उसके हृदयका लगाव होता है, किन्तु जहाँ जाकर वह रहने लगता है, वहाँ उसके नवीन

सम्वन्ध वनजाते हैं। नया व्यवसाय जमजाता है । इस सबको सहसा समाप्त कर देना उनके लिए सरल नही होता ।

श्रीकृष्णचन्द्रका सन्देश जाता है—'अपने सब सम्वन्धी, सेवक, सुहृद—नवीन सेवक-स्वजन भी लेकर आजायँ। जो हानि होचुकी है, जो वहाँ होगी, मार्ग-व्यय आदि सब राजकोषसे पूरा करदिया जायगा। भवन, उद्यान, पशु, व्यवसाय—जो भी सेवा अपेक्षित होगी, राज्य करेगा। मथुरा आपकी है। मथुरा-नरेश आपके स्वजन हैं। आप आवे ! अवश्य आवे ! हम आपके आगमनकी प्रतीक्षा कररहे है।'

लोगोको बुलाया जारहा है। आनेके लिए प्रोत्साहन दिया जारहा है। उन्हे कहा जारहा है कि 'वे अपने नवीन मित्रो, स्नेहियो, सम्बन्धियोको भी मथुरामे आकर बसजानेको प्रोत्साहित करे। उन्हे भी सब प्रकारकी सुविधा दीजायगी।'

लोग लौटनेलगे है। बुलाये हुए लोग तो आ ही रहे हैं, बिना वुलाये लोग भी एक-दूसरेसे पता पाकर स्वत लौटरहे हैं। ऐसे लोग भी आरहे हैं जो मथुराके नही थे, किन्तु श्रीकृष्णके सामीप्यका—उनकी प्रजा कहलानेका प्रलोभन जिनमे जागा है।

ऋषि-मुनि-तापस वड़ी सख्यामे आरहे हैं। वेदज्ञ-विद्वान ब्राह्मण आरहे हैं। साधक, सिद्ध, तापस आरहे हैं। भगवद्भक्त आरहे हैं। ऐसा वर्ग सुविधा कहाँ चाहता है। ये आते है, मिलते है और यमुनाके इधर या उधर स्वय अपनी झोपड़ियाँ अपने चुने स्थानोपर बनालेते हैं। पता लगा-लगाकर राजसेवक इनकी सुविधाकी व्यवस्था करते हैं—कररहे है ।

यदुवशियोके विभिन्न कुलोके लोग आते हैं। वे सपरिवार आते हैं। उनके सेवक, पशु—कुछ नवीन सुहृद भी आते हैं। ये सम्मानित जन हैं। इनमे-से अधिकाशके भवन है मथुरामे। कसने उनके भवनोमे कुछ परिवर्तन करदिया, कुछ ध्वस्त करदिये, कुछको अन्य किसी कार्यमे लेलिया। उनके भवन अविलम्व रिक्त करके देने ही नही है, उन भवनोको उपयुक्त वनवा देना है, भवनोमे आवश्यक सामग्री—वस्त्र, वर्तन, अन्न आदि पहुँचादेना है।

सवके सेवको तककी व्यवस्था करनी है। पशु-धन देना है सबको। साथ ही सबको उनके उपयुक्त कार्य देना है राजकीय सभामें, सेनामें अथवा

[illegible] व्यक्ति [illegible]

[illegible] देना है। [illegible] व्यवसाय [illegible], [illegible] सम्पूर्ण [illegible] है।

[illegible] आये व्यक्तिको [illegible] किये जारहे

[illegible] होता। श्रीकृष्णचन्द्र [illegible] आश्रमों, [illegible] करते हैं। [illegible] एक-एकके [illegible] मिलकर उनकी आवश्यकता, [illegible] जानकारी [illegible]

[illegible] त्यागी, सहज [illegible] वैश्य- [illegible], कलाजीवी—सबके-सब [illegible], शोक, [illegible] हैं। सब स्वयं उद्योगमें तत्पर हैं। [illegible] नहीं करता। सबको लगता है कि [illegible] धन, पदार्थ, पशु देरहे हैं।

[illegible] मनुष्यको पदार्थ पुष्ट नहीं करते। मनुष्यकी सबसे [illegible] होती है। उसे सम्मान मिले, समाजके मुख्य [illegible] तो वह अल्पमें सन्तुष्ट होजायगा। श्रीकृष्णचन्द्र प्रतिदिन [illegible] मिलते हैं और भगवती श्री तो उनकी सदाकी सेविका हैं। [illegible] किसीको नहीं लगता कि जो सम्पत्ति, भवन, सामग्री, सुविधा उसे मिली है, उसका [illegible] उसने स्वप्न भी देखा था। मथुरा सुख बसी—[illegible] सुखी होगयी।

व्रजराज विदा हुए

महाराज उग्रसेन पुन मथुराके सिहासनपर प्रतिष्ठित हुए। कस मारागया। असुरोके उत्पात समाप्त होगये। कसके जो अनुचर बच गये—भाग गये वे। घर-द्वार छोडकर जहाँ-तहाँ कंसके भयसे जा छिपे यदुवशी इतने दिनोके कष्ट, देश-निकाला भोगनेके पश्चात् घरोको लौट रहे है। उनका सत्कार होरहा है। उनको सब सुविधाये दीजारही हैं, यह सब हुआ श्रीकृष्णके द्वारा। श्रीकृष्ण—व्रजके इस युवराजने ही तो इस विपत्तिसे यदुवशका उद्धार किया है। व्रजराजके, गोपोके आनन्दकी सीमा नही है। मथुरामें उनका गौरव सदा प्रथम कोटिका रहा है और अब तो सभीके परम श्रद्धा-भाजन हैं। उनका आदर ही नही, अर्चा होती है नगरके प्रमुख जनो द्वारा।

महाराज उग्रसेनने चाहा था कि व्रजराज और गोप राजकीय अतिथि बनकर रहे। सिहासनको उनके सत्कारका सौभाग्य प्राप्त हो, किन्तु वसुदेवजीके सम्बन्ध, सौहार्द, स्नेहका अधिकार बहुत बडा है। आज-कल तो वसुदेवजीका भवन ही वास्तविक राज-भवन हो गया है। व्रजपति मथुरामे रहे और अन्यत्र रहे, यह सम्भव नही है। वे अपने भाईका सत्कार करनेमे आज तृप्त ही नहीं होरहे हैं।

श्रीवसुदेवजीके आग्रह-स्नेहके कारण दिन बीतते जारहे हैं। व्रज जाना है, अब वहाँसे प्रतिदिन सन्देश आनेलगा है। यहाँसे नित्य चर जाते हैं। प्रतिदिन प्रस्थानका उपक्रम होता है, किन्तु वसुदेवजीका प्रेमानुरोध तोडा नही जापाता।

श्रीकृष्ण अपने बडे भाईके साथ देवकीजीके भवनमे ही रात्रि-विश्राम करते है। गोपोको इसमे कुछ अटपटा नही लगा। वे वसुदेवको पिताजी और देवकीको माताजी कहते हैं, इसमें भी कुछ खटकनेकी बात नही थी। श्रीबलराम जैसा करते-कहते है, कृष्ण सदासे उनका अनुकरण करतेरहे हैं। अब भी करते हैं तो असङ्गति क्या? वे व्रजमे रोहिणीजीको भी तो 'माँ' कहते हैं। बड़े भाईसे पृथक् वे रह नही पाते।

आजकल कृष्णचन्द्र बहुत व्यस्त रहते हैं। महाराज उग्रसेन उनसे पूछे बिना कोई काम ही नही करना चाहते। बचपनसे कन्हाई बहुत चतुर,

वहुत वुद्धिमान है । निर्वासित यदुवशी प्राय. नित्य आते हैं और वही उनकी व्यवस्था करता है । उन्हे गृह, सम्पत्ति, वाहनादि दिलाता है । वही आज-कल यहाँ नगरकी, सेनाकी, सभासदोकी सम्पूर्ण व्यवस्थाका सञ्चालक हो रहा है ।

'कृष्ण अपना है । इस अत्यधिक व्यस्ततामें भी प्रतिदिन कई-कई वार मिलजाता है । पता नही क्या-क्या बतलाजाता है । इतनी अद्भुत वाते करता है । यह व्रजका युवराज मथुराका स्वत. सिद्ध सञ्चालक वन गया है ।'

'महाराज उग्रसेनका अतिशय स्नेह है श्यामपर । कसने राज्यकी सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त करदी थी । कृष्ण उसे सम्हालनेमे लगा है । वह इसमें प्रसन्न है तो कुछ दिन ऐसे ही सही । दो-चार दिनमें यह उत्साह अपने-आप शिथिल होजायगा और अभी मथुराको भी तो कृष्णके कार्योंकी—सहयोगकी आवश्यकता है ।'

'उजड़े तपोवन फिर वेद-ध्वनिसे गगनको पवित्र करनेलगे हैं । द्विजोंके सविधि अग्निहोत्रसे उठा धूम्र दिशाओको पावन करता है । भगवान नारायणके तथा दूसरे देवमन्दिरमे गूँजती शङ्खध्वनि, घण्टा-निनाद मानवके कलुषको अब ध्वस्त करता है । मथुरा सुख, सम्पत्ति, मङ्गलका निवास वनतो जारही है । सब पुरजन कहते हैं —'भगवान वासुदेवका यह अनुग्रह है ।'

'भगवान वासुदेव !' गोपोको यह प्रारम्भसे खटका है—'यह उनके कन्हाईको मथुराके लोग क्या कहते हैं—क्या बना देना चाहते हैं ?'

मथुराका वैभव श्रीकृष्णका अनुग्रह ; किन्तु श्रीकृष्णको अब घर भी तो चलना चाहिये । गोपियाँ, गायें, बछड़े,—व्रजभूमिका अणु-अणु, एक-एक तृण-पत्र उनकी आकुल प्रतीक्षा कररहा है ।

'कन्हाई वदलगया है—वदलता जारहा है ।' सखाओंका मन अव मथुरामें नहीं लगता । यह महानगर, ये राजभवन, इनका यहाँ यह नित्य नवीन सत्कार, किन्तु इनका अपना श्याम तो दूसरोंके स्वागत सत्कारमें ही थका जारहा है । वह आता है, कई वार दिनमें आता है, पर शीघ्र उसे भागनेकी पड़ीरहती है । वृन्दावनका वह स्वच्छन्द विहार, वह उन्मुक्त क्रीड़ा—वालकोंको लगता है कि यहाँ उनका कृष्ण दिन-दिन दुबला होता

जारहा है। श्याम चलता नही, अन्यथा ये तो छकडोकी भी प्रतीक्षा न करें, पैदल व्रज भागजायँ।

'अभी इतनी क्या शीघ्रता है?' वसुदेवजी प्रतिदिन व्रजराजको रोकते है। उनका प्रेम अपने भाईसे सीमातीत है।

'भगवान वसुदेव।' इस बराबरके जयघोषसे गोप सशङ्क होने लगे हैं—'वासुदेव श्रीकृष्ण! तो ये लोग श्रीकृष्णको वसुदेवका पुत्र बनाकर व्रजसे—गोपोसे छीनलेना चाहते हैं?'

'वासुदेवजी श्यामको भेजनेमे बराबर आनाकानी कररहे हैं। टालते जारहे हैं और कहते है—'कृष्ण तो है ही आपका।' इसका अर्थ? जब आशङ्का मनमे उठती है तो उसे पुष्ट करनेके कारण सर्वत्र दीखने लगते हैं।

'हम मर मिटेंगे! मथुराके नागरिकोको भी पता लगेगा कि गोपोकी भुजाओमें कितनी शक्ति है और क्रुद्ध गोप कैसा होता है।' तरुणोका रक्त उबलने लगा—'एक दिन सभीको मरना है। अमर होकर कोई नही आया ससारमे। हमारे कृष्णको ये नगरजन हमसे छीनलेना चाहते हैं?'

उत्तेजना सीमा पार करनेलगी। जब विचारवान वृद्धोका चिन्तनशील मस्तक चिन्तासे झुकजाता है, जब उनकी अनुभव-पक्व मेधा कोई मार्ग नही पाती, तभी तरुणोके सबल रक्तकी उत्तेजना प्रज्वलित वाडवाग्नि-सी फुङ्कार करती पथ प्रशस्त करदेती है। युवकोंका आवेश ही निराशाके अन्धकारमे प्रदीप्त प्रकाशलाता है।

'कन्हाईको लिये बिना कौन जायगा व्रज? युवक उत्तेजित होरहे हैं—'ये मथुराके लोग हमारे युवराजको ही हमसे छल करके छीनलेना चाहते हैं? व्रजके जीवनधनको खोकर व्रजवासी जीवित रहेगे?'

'आज—आज ही रात्रिमें कृष्णको भगादेना है। व्रजपति उन्हे लेकर चले जायँगे। एक सशक्त दल जायगा उनके साथ।' तरुणोने निर्णय कर लिया—'हम शस्त्र-सज्ज यहाँ सावधान रहेगे। देखलेंगे कि कौन आते है व्रजयुवराजको रोकने, छीननेके लिए।'

'श्रीवसुदेवजी मेरे भाई है। वे परम सुहृद हैं। उनसे हम कलह करेंगे?' श्रीनन्दरायको जब गोप-तरुणोका निर्णय ज्ञात हुआ, व्याकुल हो गये। उन्होंने सबको समझाया—'आप सब मुझे एक अवसर दे। मैं आज

स्पष्ट पूछता हूँ। जिसने सत्यकी रक्षाके लिए अपने नवजात शिशु क्रूर कसके हाथोमे सौपदिये, वह मिथ्या तो नही बोलेगा।'

'मथुराके लोग कुछ कहे, वसुदेवजी झूठ नही बोलेंगे।' गोपोको भी विश्वास है।

वसुदेवजीसे पूछा नन्दरायने—'सच-सच ही बता दें, गोप बहुत उत्तेजित हैं। मथुराके लोग कृष्णको वासुदेव कहते हैं। बात क्या है ?'

'मैं किस मुखसे कहूँ कि कृष्ण मेरे है ?' वसुदेवजीने दोनो हाथोसे सिर पकडा, रोते-रोते बोले—'वे देवकीकी गोदमे आये। उन्हे अँधेरी अर्ध-रात्रिमे उठाकर मै गोकुल गया और व्रजरानीके अङ्कमे रखकर वहाँसे नवजात बालिकाको उठालाया। चोरकी भाँति मैं आपकी कन्याको उठा लाया और मुझ अधमने अपने पुत्रके प्राण बचानेके लिए अपने भाईकी एकमात्र सन्तानकी बलि दे दी।'

'आपने श्रीकृष्णको पाला, अपने प्राणोके समान उसकी रक्षा की। उसके लिए कसके कोप-भाजन बने।' वसुदेवजी फूट-फूटकर रोनेलगे हैं—'मैं कृतघ्न! मैं विश्वासघाती नीच! मुझे धिक्कारो! मेरा तिरस्कार करो! आज तक मैं आपसे कपट करतारहा। अपने स्वार्थकेलिए अपने आदरणीय सीधे-सरल भाईको धोखा देतारहा! मैं क्षमा पानेके योग्य नही हूँ।' वसुदेवजीने नन्दरायके चरण पकड़लिये।

'कृष्ण अपना नही है!' व्रजपति सुनते ही मूर्छित होगये।

'कृष्णचन्द्र अपने नही! नही है कोई व्रजका युवराज।' गोपोका हृदय कोई निकाल फेकता तो भी इतनी व्यथा उन्हे नही होती। उनके प्राण इस आघातसे नही गये—इसे योगमायाकी सतत सावधानीका चमत्कार ही मानना पडेगा।

'कनूँ अपना नही।' बालकोका मुख श्वेत होगया। क्षणार्धमे सज्ञा खो दी उन्होने।

'भाई!' वसुदेवजीने क्या-क्या कहा, किसीने नही सुना। कोई सुननेको-समझनेकी स्थितिमे नही था। वसुदेवजी भी व्याकुल क्रन्दन ही कररहे थे। जब उन्होंने व्रजपतिके चरण पकडलिये, श्रीनन्दराय सज्ञामे आये। चौंककर वसुदेवजीको हृदयसे लगालिया। रोते-रोते कहनेलगे—'भाई! कृष्ण तुम्हारा ही है। महर्षि गर्गाचार्यने नामकरणके समय ही सकेत करदिया था; किन्तु मैं समझ नहीं सका उस समय।'

'अब मथुरामे रुकनेको क्या रहगया ?' गोप उठे—अन्तत व्यक्ति श्मशानमे स्वजनकी चिता जलाकर भी तो लौटता ही है। गोप ऐसे ही उठे ओर छकड़े जोड़नेलगे।

महाराज उग्रसेन आगये। नागरिक आगये। राम-श्याम आये और उन्हे व्रजपतिने अङ्कमे भरलिया। एक शब्द मुखसे नही निकला। केवल दोनोकी अलके भीगती रही अश्रुओसे। एक-एक गोप, एक-एक मित्रने उन्हे गले लगाया रोते-रोते।

'आपने पितासे भी अधिक स्नेहसे हमारा लालन-पालन किया। अपने प्राणोसे अधिक माना हमे।' कृष्णचन्द्रका कण्ठ भरआया है व्रजपतिसे यह कहते। श्रीबलराम तो बोल ही नही पाते। अन्ततक उनके कण्ठसे एक शब्द नही निकल सका। वे केवल नन्दरायके वक्षसे लगे अश्रुसे उस वक्षको भिगोते रहे।

'कौन कहता है कि मैं आपका पुत्र नही हूँ।' कृष्णचन्द्र कहते गये—'लोग कुछ भी कहे, मैं आपका ही हूँ। वही तो पिता है, वही तो वास्तविक माता है जो असमर्थ माता-पिता द्वारा त्यक्त शिशुओका पोषण अपने पुत्रके समान करते हैं।'

'आप व्रज पधारे।' कृष्णचन्द्रने अपने पटुकेसे बाबा के अश्रु पोछे—'हम दोनो अपने स्नेहकातर व्रजके स्वजनोको देखने, अपने जाति-बान्धवोसे मिलने वहाँ शीघ्र आवेगे। केवल कुछ दिन यहाँके दु खी लोगोकी व्यवस्था मुझे और करलेने दे। हम दोनो भाई शीघ्र आवेंगे।'

यही आश्वासन, यही वाणी व्रजवासियोके जीवनका आधार बनी। इसी शब्द-सूत्रके सहारे व्रजके लोग लौटे और जीवित रहे। श्रीकृष्णने एक-एक गोप, एक-एक गोपकुमारके अश्रु पोछे। दाऊ एक-एकसे भुजा फैलाकर मिले।'

उपहार—महाराज उग्रसेनने राजकीय उपहार सीधे व्रज भेजदिया। वसुदेवजीके, देवकीजीके, वसुदेवजीकी पत्नियोके उपहार भी इतने हैं कि उनकी गणना नही की जासकी। वे उपहार भी व्रज भेजदिये गये। भले व्रजमे उनका उपयोग कोई करे तो स्नेह, आदरके कारण ही करेगा।

उपहार है राम-श्यामके अव। इनके उपहारोको कोई कैसे अस्वीकार करदेगा—'ये हमारी प्रसन्नताके लिए।' बाबाको, गोपोको, गोप-

कुमारोको अपने करोसे इन्होने उत्तरीय, उष्णीष, आभरणोसे भूषित किया। मैयाके लिए ही नही, एक-एक सेवक-सेविकाके लिए भी इनके उपहार हैं और इन्होने तो गायो, वृषभो, बछड़ो तककी, पाले पक्षियोकी, तरु-पुष्पोकी, वावलियो तककी, सुधि लेने—सम्हाल रखनेको कहा है। सबका स्मरण किया—सब कुञ्जो-तरुओ—लताओ तकका।

महाराज उग्रसेन तथा नगरवासियोंको अनुरोध करके श्रीकृष्णचन्द्रने ही थोडी दूरसे लौटादिया। महाराज व्रजपतिसे मिलकर किसी प्रकार लौटे। श्रीकृष्णने सबको ऐसे लौटाया जैसे वे बड़े भाईके साथ स्वय व्रज जारहे हो।

'अब आपको भी लौटना चाहिये।' श्रीनन्दरायने वासुदेवजीको अङ्कमाल दी। पता नही, क्या-क्या कहना है, किन्तु न कण्ठ साथ देता है, न स्मृति। कठिनाईसे कह सके—' आपका यह कृष्णचन्द्र बहुत सङ्कोची है। इसे कष्ट न हो।'

उस मिलनका वर्णन सम्भव नही है। वसुदेवजीने गोपोको अङ्कमाल दी। गोपकुमारोको हृदयसे लगाया। फिर मिले व्रजराजसे और खडे रह गये।

राम-श्याम ? लेकिन राम-श्यामको विदा करके क्या व्रज लौटा जा सकता है ? जो भगवान वासुदेव हैं, सङ्कर्षण हैं, उन्हे मथुरा लौटना ही था; किन्तु गोपोको, गोपकुमारोको, व्रजपतिको लगता है कि उनके दाऊ-कन्हाई तो उनके साथ ही है। वे कही वनसे आये और उनके छकड़ोपर बैठगये है।



माता रोहिणी आयीं

माता रोहिणी व्रजसे मथुरा आयी—पूरे साढे बारह वर्ष बाद मथुरा आयी।[1] श्रीवसुदेवजीने रथ भेजा और बुलवाया, उन्हे आना ही था, इसलिए आयी। पतिसे—पुत्रसे भी दूर वे कैसे रह सकती थी। लेकिन मथुरा आकर वे प्रसन्न हुईं? कहना कठिन है। अपनी बड़ी बहिनसे[2] दूर जो बडी होकर भी सदा छोटी बनीरही, रोहिणीजी खोयी-खोयी-सी हो गयी थी।

कितना सम्मान दिया उन्हे ब्रजपति और व्रजरानीने। वे दोनो जैसे सेवक थे—अनुजा थी व्रजरानी, ऐसे रही। इतना स्नेह, इतना सम्मान![3] अन्तत. वे जेठानी थी, किन्तु सदा अनुगता रही। लगा ही नही कि व्रजमें दूसरेके घरमें वे रही है।

१—एकादश समास्तत्र गूढार्चि सबलोऽवसत्॥ —भागवत ३ २ २६ श्रीकृष्णचन्द्र ग्यारह वर्ष ६ महीने (महाशिवरात्रि तक) व्रजमे रहे। श्रीबलराम एक वर्ष बड़े थे।

२—माता रोहिणीजीके पुत्र थे—बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृत (भागवत ६ २४ ४६)। इसमे-से बल—श्रीबलराम प्रथम हैं। इनका जन्म व्रजमे हुआ। अत शेष पुत्र रोहिणीजीके व्रजसे आनेपर हुए। यदि देवकीजीके समान उनके भी प्रति वर्ष सन्तान हुई हो तो भी श्रीबलरामजीसे उनके सबसे छोटे भाई कृतको कमसे-कम लगभग १६ वर्ष छोटा होना चाहिये। वसुदेवजी श्रीकृष्ण-जन्मसे तुरन्त बाद मथुरा आये नन्दरायसे कहा—'प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत,' (भागवत १० ५ २३)। श्रीनन्दरायकी आयु पुत्रोत्पादनकी सीमा पार कररही थी—पर वसुदेवजीके तो उसके २० वर्ष पीछे भी पुत्र हुए। अत वसुदेवजी-रोहिणीजीकी आयु कमसे-कम २० वर्ष नन्दराय एवं यशोदाजीसे कम होनी चाहिये।

३—वसुदेवजीके पिता सूरसेनजी और नन्दजीके पिता पर्जन्यजी एक ही पिताके पुत्र थे; किन्तु देवमीढजीकी गोपपत्नीके पुत्र थे पर्जन्यजी। इस नाते—वर्णके कारण नन्दजी वसुदेवजीको बडा मानते थे, यद्यपि वसुदेवजी आयुमे पर्याप्त छोटे थे। इसी वर्ण-श्रेष्ठत्वके कारण लगभग बीस वर्ष छोटी रोहिणीजीको यशोदाजीने सदा बड़ी बहिनके समान आदर दिया।

श्याम मथुरामें हैं—व्रजरानीने, सबने ही तो हठ करके भेजा माता रोहिणीको। 'सचमुच माता होनेपर देवकीको क्या पता कि उसके पुत्रको कब कैसा व्यञ्जन, कैसे वस्त्र, कैसा अङ्गराग रुचता है। कृष्ण कितना सङ्कोची है, यह दूसरोको—मथुरामें किसीको क्या पता। वह कष्ट सहता रहेगा, किन्तु किसीसे कहेगा नही।'

माताका कहना है—'कृष्णको स्वयं अपनी रुचि, अपने सुख, अपनी सुविधाका पता नही होता। वह तो बाल्यकालसे देना ही देना जानता है। उसे सदा दूसरोकी ही धुन रहती है। उनका पूरा ध्यान न रखो तो भूखा ही घूमेगा। भूखा ही सोजायगा। उसे तो यह भी नही ध्यान रहता कि शीतकालमें शीतल जलसे हाथ-पैर धोनेपर उसके कर-चरण कैसे ठिठुरते और अधिक लाल होजाते हैं।

'इन दिनो कृष्णका ध्यान रखना सबसे अधिक आवश्यक है। वह किसीका भी दु.ख सह नही पाता और मथुरामें कसके सताये—वर्षोंसे परदेश रहे लोग चले आरहे है। कृष्ण उनकी चिन्ता-व्यवस्थामे भूला ही रहेगा कि उसे भी क्षुधा या पिपासा लगती है। उसे भी थोड़ा विश्राम चाहिये।

'श्यामका स्वभाव विचित्र है। उसकी ठीक रुचिका भोजन न हो, कहेगा कुछ नही; किन्तु दो-चार ग्रास मुखमे डालकर उठ जायगा।' माताका अनुभव है—'कन्हाई तो गन्धसे पहचान लेता है कि नवनीत किसके हाथसे निकालागया। भोजन किसने बनाया। अङ्गराग किसने प्रस्तुत किया। वह प्रस्तुत करनेवाले करको प्रिय या अप्रिय मानलेता है और तब उसे पदार्थ प्रिय या अप्रिय लगने लगता है। मथुरामें किसे पता है इन सब बातोका।'

माता रोहिणी मथुरा आयी। वे कहती है—'बलका कुछ नही। वह छोटे भाईके साथ लगा रहेगा। भूख लगेगी तो भरपेट खालेगा। नीद आवेगी तो कही भी सोजायगा। उसे कभी कहीं असुविधा नही हो सकती। उसका ध्यान रखनेको उसका अकेला छोटा भाई ही बहुत है। उसे बिना प्रयोजन भी धुन चढी रहती है—'यह दादा लेगा! यह दादाके लिए! अभी दादाको यह चाहिये।'

'सबसे कठिन है कृष्णका ध्यान रखना। वह मनाने पुचकारनेपर तो कहीं भोजन करने बैठेगा और फिर बीचमे ही उठ भागेगा। उसे तो

बहलाकर, फुसलाकर भोजन, नवनीत आदि खिलाना पडता है। सुलाना पड़ता है। उसके विश्रामका ध्यान रखना पडता है।'

'देवकीको क्या पता कि कृष्णको कब वोलनेसे रोक देना चाहिये। कैसे रोकना चाहिये।' माता रोहिणीका कहना है—'कृष्ण वहुत बातें वनाता है। उसकी वात कोई सुननेवाला चाहिये। वह खाते-खाते रुक जायगा या सोते-सोते उठ बैठेगा और कुछ सुनाने लगेगा। उसे तो रोकना—फुसलाते रहना पड़ता है।'

माता रोहिणी पतिकी आज्ञासे—पतिके वुलानेपर मथुरा आयी है; किन्तु आयी हैं अपने कृष्णके लिए। वे अव भी अत्यन्त उदार होजाती है। उनकी चलती तो वे व्रजसे कभी आनेका नाम भी न लेती। आज भी वे मनसे नन्दभवनमे ही रहती हैं। मथुरामें मानो उनके लिए कही कोई आकर्षण ही नही रहगया है।

'कृष्णको अव इसकी आवश्यकता होगी।' माता रोहिणीको सदा पता होता है। कृष्णको उन्होने ही तो शैशवसे पाला है। यशोदाकी अपेक्षा उन्हे ही तो कृष्णकी व्यवस्था सदा करनी पडी है।

'कृष्ण इसे पसन्द करेगा।' माता रोहिणीके प्राणोंमे वसगया है यह कृष्ण। उन्हे कृष्णकी चिन्तासे कभी क्षण भरको अवकाश नही—कृष्णके लिए! कृष्णको! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!'

यह अच्छा ही है। ऐसा न होता तो माता जीवित नही रह पाती व्रजसे वियुक्त होकर। उनको कृष्णकी चिन्ताने ही जीवित रखा है; अन्यथा व्रजका स्मरण करते ही वे सुधि-वुधि खो वैठती हैं। तव उनके नेत्रोंमे गङ्गा-यमुनाकी धारा चलने लगती है। तव उनका शरीर ऐसा विवर्ण हो उठता है कि अनेक वार देवकीजी या कोई और तत्काल दासी दौड़ती है श्रीकृष्णके समीप घवडाकर। वे आते हैं और तभी उनकी यह माँ चैतन्य हो पाती हैं।

'माँ! माँ! माँ!' कृष्णको भी अव रात-दिन माँकी ही धुन रहती है। कुछ लेना हो तो 'माँ!' कुछ कहना हो तो 'माँ!' कुछ करना-कराना हो तो 'माँ!' अव जैसे वसुदेवजीके अन्त पुरमें कृष्णके लिए केवल एक माँ हैं और वे है रोहिणीजी। दूसरोको—देवकीको भी वे 'माताजी' कहते हैं।

'माँ!' को पुकारते, 'माँ' को पूछते आवेंगे अन्त पुरमे और माँसे ऐसे घुल-मिलकर वोलेंगे कि वस वैठी सुना करो। अव माँ सुलावे तो सोवें,

माँ खिलावे तो खायँ, माँ जल दे तो स्नान, माँ वस्त्र दे वह वस्त्र, माँ अङ्गराग दे वह अङ्गराग। सबकी साध है—सब श्यामको खिलाना, दुलारना चाहती हैं—कृष्ण किसीकी उपेक्षा ,नहीं करते ; माँ रोहिणीकी कही तुलना नही। उनसे कोई स्पर्धा नही। माँ वे हैं—अकेली वे कृष्णकी माँ हैं मथुरामें।

माता रोहिणी आगयी हैं। व्रजके—व्रजवासियोके शील, स्नेह, सौहार्द, सेवाकी चर्चा उनके मुखसे सुननेको मिलजाती है सबको। श्रीबलराम बचपनसे गम्भीररहे हैं। मथुरा आकर और गम्भीर होगये हैं; किन्तु कृष्ण व्रजकी चर्चा किससे करें ? माँका ही अङ्क है कि उसमे मस्तक रखकर कभी-कभी सिसकलेते है। माँ कुछ कहलेती, सुनलेती हैं और स्नेहसे सहलालेती हैं। वे आगयी--कृष्णको मानो सहारा मिल गया है।



उपनयन

'श्रीकृष्णकी आयुका यह बारहवाँ वर्ष है। श्रीबलरामको एक वर्ष और अधिक होगया। दोनो बालकोंका यज्ञोपवीत संस्कार पहिले ही हो जाना चाहिये था ; किन्तु....।' वसुदेवजीने श्रीगर्गाचार्यके चरणोमे प्रणिपात करके प्रार्थना की।

'खेदकी कोई बात नही है। असमर्थके लिए ही शास्त्रने आपद्धर्मका विधानदिया है।' आचार्यने प्रसन्नतापूर्वक उसी समय तारा बलादि देखकर उपनयनका उत्तम मुहूर्त निश्चित करदिया।

'राम-श्यामका उपनयन संस्कार होगा।' माता देवकीकी उमङ्ग तो ठीक ही है, महाराज उग्रसेनको अपने जीवनका यह सबसे बडा महोत्सव लगता है।

'भगवान वासुदेव अपने अग्रजके साथ ब्रह्मचारीके वेशमे भिक्षाटन करेंगे।' यादवकुलकी नारियाँ, यदुवृद्ध ही नही, मथुराके सम्पूर्ण नरनारियोंके हृदय इसी चिन्तनमें लगगये हैं—'क्या डालेंगे वे उनकी भिक्षा-झोलीमे ?' सब अपनी-अपनी भावनाके अनुसार तैयारीमें लगगये हैं। वैसे

उन त्रिभुवनके स्वामीको देने योग्य क्या है ? लेकिन जब वे भिक्षाकी झोली फैलायेंगे . ।

अद्भुत सज्जा है मण्डपकी । इतना सुरङ्ग, सात्विक विशद मण्डप और इतना कलापूर्ण । मथुराके कला-निपुणोको वर्षोंके पश्चात् अवसर मिला है । सभीने आन्तरिक अनुराग से अपना-अपना भाग सजाया है। धन्य हुई उनकी कला ।

'रामके उपनयनमें आपको मातृपदका भाग लेना है।' मङ्गल-स्नानके समय रोहिणीजीको प्रस्तुत न देखकर देवकी माताने उन्हे ढूँढा और अनुरोध किया ।

'राम भी तुम्हारा ही है ।' रोहिणीजीने स्पष्ट अस्वीकार करदिया भाग लेना। 'तुम दोनोका मातृत्व सम्हाल तो रही हो। मुझे रहने दो।'

श्याम व्रजेश्वरीका नही है—व्रजरानी केवल उसकी पालिका हैं, तव राम ही उनका कैसे है ? वे भी रामकी केवल पालिका ही रहेगी।' माता रोहिणीका मनोमन्थन दूसरा कोई कैसे समझेगा। उनका निर्णयहै— 'नन्दरानीसे अधिक वे कैसे स्वीकार करले। माताका गौरव—हाय, जव यह गौरव उन व्रजकी देवीका नही है तो रोहिणीका भी नही है। देवकीके, दोनो देवकीके ही पुत्र है। इस दुखियाके वहुत पुत्र मारेगये। इसे सन्तान-वती होनेका सौभाग्य तो मिले।' वे केवल दर्शिका रहगयी महोत्सवकी।

सव जानते हैं कि रोहिणीजी सामान्य उत्सवके अवसरपर भी विपण्ण होजाती हैं। वे व्रजसे आयी हैं, तवसे उदास रहती है। उन्हे आग्रह करके व्यथित करने का साहस किसीमे नही। राम-श्याम तकने अन्तमे भी उनके सम्मुख भिक्षा लेने जानेका कार्य नही किया। श्रीकृष्ण जानते है मॉंको—मॉंके हृदयको। माता रोहिणीने किसी कार्यमें भाग नही लिया। 'कैसी होगी यशोदाजी ? कैसा लगेगा उन्हे सुनकर ?' यही चिन्तन उन्हे मथित करतारहा।

माता देवकीने दोनो पुत्रोके साथ मङ्गल-स्नान करलिया। गर्गाचार्यजीने पूजन प्रारम्भ किया। सर्वतोभद्र, मातृका, नवग्रहादिके मण्डल स्वर्ण-वेदियोपर रत्नोसे वने पहिलेसे सुशोभित हैं।

गणपति पूजन, नवग्रह पूजनादिके अनन्तर पञ्च देवताओंका आवाहन-पूजन समाप्त हुआ। पूर्वाभिमुख भाईके साथ वैठकर श्रीकृष्णचन्द्रने तिलसे भरे रत्न-पात्रोंके साथ स्वर्ण-राशिका दान करदिया।

सुवदेवजीने पञ्च भू-संस्कार सम्पन्न करके तीन ब्राह्मणोको भोजन करानेका संङ्कल्प किया। भोजन तो तीन सहस्र ब्राह्मण करेंगे; किन्तु विधि तो तीन ब्राह्मणोंके लिए संङ्कल्प करनेकी है। राम-कृष्णके उपनयनमे भोजन करनेवाले ये तीन ब्राह्मण—देवर्षि नारद, महर्षि भृगु और महर्षि अङ्गिराने इस स्वत्वको अपना बताकर पहिलेसे सुरक्षित करा लिया है।

वसुदेवजीने आचार्य-पूजन प्रारम्भकिया तो श्रीगर्गाचार्यका शरीर पुलकित हो उठा। वे कर्पूर-गौरवर्ण, उज्वल वस्त्र, स्फटिकमाला-भूषित, श्वेतचन्दन-चर्चित—भगवान शङ्करके साक्षात् शिष्य, लम्बे, कृशकाय दूसरे शशिके समान तेजस्वी—आजके सौभाग्यकी ही आशामे तो इन्होंने—इन परम विरक्तने यदकुलका पौरोहित्य स्वीकार किया—परम पुरुष निखिल-भुवननायक, सच्चिदानन्दघन आचार्य बनावेंगे मुझे।' महर्षिके आनन्दकी सीमा नही है।

सुरगुरु वृहस्पति, विद्या एवं ज्ञानकी अधीश्वरी देवी सरस्वती और स्वयं भगवती सावित्री—जिनकी दीक्षा देकर महर्षि आचार्य बनेंगे, इनमे कोई आज महर्षिके सौभाग्य, उनके गौरव, उनकी महिमासे स्पर्धा नही कर सकता। आज वे कृष्णचन्द्रके आचार्य होगे। भगवान वासुदेव जिनके पदोंमे प्रणत होंगे—सुर, लोकपालादि सभी तो उसके पादपद्मोमे प्रणतिसे अपनेको परिपूतही मानेंगे।

विधि वहुत निष्ठुर होती है। दिगम्बर राम-श्याम जब आचार्यके आदेशसे नापितके सम्मुख आबैठे—उसका सम्पूर्ण शरीर काँपनेलगा। उसने कल ही प्रार्थना की थी—यह कार्य वह नही करसकेगा। यम भी इतना निष्ठुर कार्य नही कर सकता। उसे भले प्राणदण्ड देदिया जाय-, किन्तु....' किन्तु करे क्या वह। महाराज उग्रसेनकी, वसुदेवजीकी भी आज्ञा वह टाल सकता था—टालनेका निश्चय करचुका था—परिणाम चाहे जो होता, किन्तु उसके पास तो महर्षि गर्गाचार्यका शिष्य गया था महर्षिका आदेश लेकर। महर्षिकी आज्ञा कोई कैसे अस्वीकार करदे।

'राम-श्यामके ये सघन, मृदुल, घुँघराले काले केश—इनपर उस्तरा चला पायेगा वह?' रोते-रोते उसने महर्षिके चरण पकड़लिये।

'भद्र! तुम्हारा परम कल्याण होगा।' महर्षि गम्भीर स्वरमें बोले-'तुम विलम्ब करोगे तो सब कार्योंमें विलम्ब होगा और ये उपोषित है।'

सृष्टिकर्ताने उसे पता नही किस कर्मका यह दण्ड दिया। इतना निष्ठुर कार्य—लेकिन नापितको करना तो पडा। पता नही कैसे करसका वह। राम-श्याम ही अनुरोध करनेलगे। 'छुद्र नापितके सम्मुख भगवान वासुदेव स्वय आ बैठे हैं और उससे अनुरोध कररहे है। इनका आदेश टाल देनेकी शक्ति तो सृष्टिकर्तामे भी नही होगी।'

प्राण उन्मत्त होतेजाते है। शरीरका पता नही, किन्तु करोमे कम्पन तो नही ही आना चाहिये। ये नवनीत सुकुमार सम्मुख बैठे हैं। किसी प्रकार नापितको अपना कर्तव्य पूरा करनापड़ा और फिर वह वही उन्मादग्रस्तके समान अपने शस्त्र तोडनेलगा। अब वह यह कर्म नही करेगा। जिन करोसे राम-श्यामकी अलके उतारी हैं, वे कर अब और किसीका शरीर स्पर्श नही करेंगे। नापितका कार्य सदाके लिए त्यागा उसने। भगवान वासुदेवके उत्तमाङ्गका स्पर्श करनेवाले कर अब क्या किसी अन्यकी सेवा करेंगे ?

अब उसे किसीकी सेवाकी आवश्यकता भी क्या। उसे जो न्योछावर मिली है, उसे देखकर धनाधीश कुवेर भी चकित ही रहसकते हैं, किन्तु इन चमकते पत्थरोका मूल्य कहाँ है नापतिकी दृष्टिमे। उसके अन्तरमे इन गौर-श्यामने जो आनन्दकी राशि उडेल दी है—कल्प-कल्पकी तपस्या, युग-युगके साधनोसे महर्षिगणोंके मानस उसकी छायाभी कदाचित ही पाते है। वह कहाँ रहा अब नापित। वह गद्‌गद्‌ कण्ठ, पुलकित तन, अश्रु नयन—वह तो परमहसोकी सहज स्थितिको प्राप्त होगया।

केशरपीत मुण्डित मस्तकके मध्य गोखुर दीर्घ शिखा, दिगम्बर वेश—बलराम-श्रीकृष्ण स्नान करके आचार्यके दाहिने अग्निके सम्मुख पूर्वाभिमुख आबैठे है। अग्रजकी ओर देखकर श्रीकृष्ण मुस्करारहे है। दिशाएँ और गगन वाद्योंके मङ्गल स्वरसे गूँजनेलगे। विप्रोने मन्त्रपाठ, नारियोने मङ्गल-गान, वन्दियोने स्तवन प्रारम्भ किया था, किन्तु एक साथ सब रुक गये। अत्यन्त नीरवता—सर्वथा शान्ति।

महर्षिने गद्‌गद्‌ स्वरमें सङ्कल्प पढा। यजमानोकी कुल परम्परामे प्राप्त राम-कृष्णको वे अपने शिष्यके रूपमे स्वीकार कररहे हैं। ब्रह्माका वरण हुआ, ब्रह्मोपवेशन हुआ और महर्षिने स्रुवासे अग्निमे धारावद्ध, स्तम्भाकार आज्याहुति दी।

'ब्रह्मचर्यमाग ।' महर्षिने आदेश वाक्य दुहराने प्रारम्भ किये । अत्यन्त श्रद्धा, नम्रतासे दोनो भाई उनको स्वीकार करके बोलते जारहे है ।

महर्षिने पीत कौपीन दी दोनों नवीन ब्रह्मचारियोके करोमे । मौञ्जी मेखला—इन सुकुमारोकी कटिमें यह मूँजकी मेखला—महर्षिके कर भी कम्पित होगये मेखला देते समय । मेखला बाँधकर दोनो भाइयोने कौपीन धारण किया । तीन वेष्टनसे घुमाकर प्रवर ग्रन्थि युक्त मेखला और उसमे बँधी पीली कौपीन । आचार्यने अपने हाथों प्रणवपूवक गायत्री मन्त्रसे दोनोकी शिखाये बाँधदी ।

स्वर्णकलशमें स्थापित यज्ञोपवीतका अभिमन्त्रण, प्रक्षालन और दस वार गायत्री जपसे उसका स्थापन हुआ । सर्वदेवमय यज्ञोपवीतमें देवावाहन पूजन—प्रणव, अग्नि, सर्प (शेष), सोम, सूर्य, पञ्चपितर, प्रजापति, यम, वायु, विश्वेदेवा और ग्रन्थिदेवता भगवान ब्रह्मा, अनन्तशायी विष्णु, भगवान रुद्रका साङ्ग-सविधि-पूजन कराया आचार्यने और तब—

ॐ यज्ञोपवीत परमं पवित्रं प्रजापतेयत्सहज पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रय प्रतिमुञ्चशुभ्र यज्ञोपवीत बलमस्तु तेजा ॥

पढते हुए, कलशमे अपने कर-सम्पुटमे लिये, अभिमन्त्रित किये यज्ञोपवीतको भगवान भास्करको दिखाकर आचार्यने बलराम-श्रीकृष्णको पहनादिया । पीतकौशेय, हरिद्रारञ्जित यज्ञोपवीतकी अद्भुत शोभा है राम-श्यामके श्रीअङ्गपर ।

मौन रहकर ऐणेयाजिन परिधान, वाज्याजिन ग्रहण हुआ और आचार्यने अपने करोंसे दोनों भाइयोको पलाश-दण्ड दिये । दण्ड उछालना ही इतनी देरमे एक रुचिका कर्म मिला । श्रीकृष्णचन्द्रने जिस उल्लाससे दण्डोच्छ्रय किया, उसे देख सबको हँसी आगयी ।

आचार्यने अञ्जलिमे जल लेकर राम-श्यामकी अञ्जलियाँ भर दी और सूर्यदर्शन कराके, दक्षिण-स्कन्धपर हाथ रखकर हृदयका आलभन किया । प्रजापतियोको, पञ्चभूतोको अपने इन ब्रह्मचारियोंकी रक्षाका भार दिया । जो भूभार-निवारणार्थ हो धरापर अवतीर्ण हुए है, उनकी रक्षाका भार वहन करेंगे देवता और पञ्च महाभूत ? लेकिन इनको भी कृतार्थ होना है । श्रुतिका चरमोन्वेष्य जब श्रुतिकी परम्परामे अपनेको

आवेष्टित करनेकी लीला करने आया है तो उसे समस्त विधियोको गौरव भी तो देना है ।

कदली शत स्तम्भ शोभित , कौशेय कला-वितान रत्न-झालरोसे युक्त मण्डपमे दिक्पालोकी पताकाये लहरारही है । गगनमे और धरापर सर्वत्र गान , मङ्गलवाद्यध्वनि , स्तवन , मन्त्रपाठ , नृत्य चलरहा है ।

दिशाओमे दीप-सज्जित , सुपूजित , स्वर्णकलश हैं । नाना रङ्गकी स्वर्णवेदियोपर सुरोने प्रत्यक्ष आसन ग्रहण करलिया है । अपनी-अपनी पूजा स्वीकार करली है । राम-कृष्ण आचार्यके वाम भागमे बैठकर भगवान हव्यवाहके आवाहनका आयोजन कररहे है । ब्रह्माका वरण हुआ , कुश-कण्डिका हुई और करोमे स्रुवा लिये ये काञ्चन गौर तथा नीलकान्त जैसे द्विधा रूप धरे साक्षात् यज्ञपुरुष ही यजन करने आबैठे हैं ।

श्रीसङ्कर्षण और श्रीकृष्ण—लगता है कि ये सदाके अभ्यस्त है । यह स्फूर्ति , यह मञ्जु सावधानी , यह क्रियाशीलता—कोई कर्मकाण्ड निष्णात इतना निपुण कहाँ होपाता है ।

भगवान हव्यवाहको हविका क्या वहन करना है ? मूर्तिमान देवता कबसे आतुर प्रतीक्षा कररहे हैं कि इन दोनो भाइयोके हाथसे हविर्भाग मिले । आह्वानकी अपेक्षा किसी सुरको कहाँ है ।

हवन , प्रतिष्ठा-पूजन , प्रायश्चित्तात्मक हवन , पूर्ण पात्र-दान , स्वस्ति-पाठ , प्रोक्षण , बर्हि-हवन—गर्गाचार्यजी केवल सकेत करते गये । उनको मात्र मन्त्रपाठ करना है । जिनकी नि.श्वास श्रुति है , उन यजमानोको कुछ समझानेकी आवश्यकता नही होनी थी ।

'तुम दोनो आजसे ब्रह्मचारी हुए ! प्रमादहीन होकर नियमोका पालन करना । दिनमे शयन मत करना । वाणीको नियन्त्रित रखना । नित्य समिधाये लाना । जलाशयोंमे तैरना मत ।' महर्षि अपने यजमान ब्रह्मचारियोको अनुशासित करने लगे हैं । बद्धाञ्जलि , नतमस्तक , दोनो भाईयोने श्रद्धासहित अनुशासन ग्रहण किया ।

लग्नदान हुआ और राम-श्यामने महर्षिका गुरु-रूपसे वरण किया । महर्षिका रोम-रोम उत्थित हो उठा , सर्वाङ्ग स्वेद स्नात होगया जब दोनो भाई उनका पूजन करनेलगे । जो ज्ञानघन हैं , सबके परम गुरु हैं , जिनके पावन पदोकी आराधना महर्षिके गुरु भगवान इन्दुमौलिका सर्वस्व है ,

उनका गुरु पद—उनके द्वारा यह अर्चा ! कितनी श्रद्धा, कितनी उमङ्गसे दोनों भाई पूजन करनेमे लगे है।

महर्षि गर्ग राम-श्यामके गुरु होगये। वाद्योंके घनघोष, तुमुल जयनाद, मङ्गलगानके मध्य दोनो यजमानोके दक्षिण कर्णके समीप बारी-बारीसे मुख लेजाकर तीन तीन बार गायत्रीका उच्चारण करदिया महर्षिने। भूमिमे पड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया राम-श्यामने उन्हे। पुष्प और फलोसे भरी अञ्जलि महर्षिके पावन पदोपर अर्पित करके वहाँ मस्तक रखा। महर्षिका आशीर्वाद—आज ही तो नाभिसे उठनी आशीर्वादकी परावाणी कृतार्थ हुई।

सावित्री-दान और गुरु-दक्षिणा—रत्नोकी अपार राशि, लक्ष-लक्ष गाये, वस्त्र, आभरण, तिल—गणना सम्भव नही। वसुदेवजी कहाँ सन्तुष्ट होरहे हैं आज देते हुए।

पञ्चायतन दीक्षा हुई और व्याहृत सन्ध्या, अग्नि समिन्धन किया दोनो भाइयोंने। ब्रह्मचारी समिद्-हवन ही करते हैं। जलसे अग्निका आवेष्टन करके एक समित् ली, कानसे लगायी और आहुति दे दी। समिधाकी केवल तीन आहुतियाँ। मौन होकर हवनीय अग्निसे कमलदलारुण कर तनिक उष्ण किये गये और मुखका मार्जन करलिया। सात बार यह मुख-प्रोञ्छन हुआ। राम-श्यामने विशाल भालपर भस्म-त्रिपुण्ड लगाया और अपने कान पकड़कर भूमिमे मस्तक रखकर तीन-तीन बार वन्दना की अग्निदेवकी। ये लीलामय अपने ही आदर्शोका पालन करनेमे लगे हैं, अन्यथा अग्निदेव आज्ञा पाते तो स्वय कान पकड़कर तीन सहस्र बार इनकी चरण-वन्दना करनेमें अपना परम सौभाग्य मानते।

'सौम्य ! भिक्षा ले आओ ! वृथालापमे समय नष्ट मत करना !' आचार्यको विधिके अनुसार आदेश देना था।

गौर-श्याम अङ्ग, मुण्डित मस्तकपर बँधी बडी-सी शिखा, विशाल भालपर भस्म-त्रिपुण्ड, उत्तरीयके स्थानपर वामस्कन्धसे आकर वक्ष-पृष्ठ-देशको आच्छादित करता बँधा कृष्णमृगचर्म, वामकुक्षिमे दबा अश्वाजिन, वामकरमे पलाश-दण्ड, दक्षिण स्कन्धपर पीत कौशेय वस्त्रकी झोली, कटिमे तीन बार लपेटी मौञ्जी मेखलामे बँधी पीत कौपीन—ये राम-श्याम भिक्षा लेने चले हैं—

'भिक्षा भवति देहि मात ।'

प्रथम भिक्षा देनेका स्वत्व माता देवकीका। माता किन रत्नोसे भरे ये झोलियाँ। रत्नधानके सब रत्न उन्हे तुच्छ लगते हैं। एक क्षण माता

अपने इन नवीन ब्रह्मचारियोको देखती रहगयी। उनके करोने कब उनकी झोली भर दी, उन्हे पता नही। वे तो मुग्धनेत्र इस शोभाको देखरही हैं।

माताओको, महाराज उग्रसेनको, नागरिकोको, नगरकी वृद्धाओको—सभीको तो भिक्षा देनी है। सबने कितने समयसे कितनी लालसासे क्या-क्या संजोया है इन झोलियोंके लिए। किसीको निराश कैसे किया जासकता है। बहुत छोटी हैं झोलियाँ, किन्तु अनन्तकी झोलियाँ हैं वे। सबकी श्रद्धा सार्थक-सफल करनी है।

लौटकर महर्षि गर्गाचार्यके सम्मुख उनके इन शिष्योंने अपनी झोलियाँ धर दी। महालक्ष्मी जिसके इङ्गितकी सदा प्रतीक्षा करती हैं, उसने आज भिक्षा माँगी है। वह दोनो हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये प्रार्थना कररहे हैं—'गुरुदेव! इस तुच्छ भिक्षाको स्वीकार करनेकी कृपा करे।'

महर्षिने हाथ बढ़ाकर झोलियाँ उठायी और रख ली। इनमे क्या है—देखनेकी आवश्यकता? क्या नही है इनमे? महर्षिके लिए राम-कृष्णकी श्रद्धासे बडा क्या होगा। उन वीतरागके लिए स्वर्ण या रत्नोका कहाँ महत्व है; किन्तु इन झोलियोका एक कण पानेको सनकादि भी समुत्सुक बन सकते है। महर्षिने तो आज इन शिष्यो को पाया है—इन पद्मराग पीत और नीलमणिको पाकर कुछ पाना रह भी जाता है।

'अबसे तुम लोग भूमि-शयन करोगे सौम्य! केवल मृगचर्मका आस्तरण रखोगे। दण्ड सदा साथ रखना। मन लगाकर गुरुकुल मे अध्यन करना। गुरुकी आज्ञाका सावधानीसे पालन करना। उनके लिए नित्य पवित्र समिधाये लाना। प्रमादहीन होकर नित्य समयपर अग्निदेवकी आराधना करना।' हाथ जोडे सम्मुख खडे अपने शिष्योको महर्षिने आचारका उपदेश किया। छोटे-बडे जाने कितने नियम बतलाये। सब नियम वही तो समझावेगे।

उपनयन सम्पन्न हुआ। महर्षिने उन्हे मङ्गल आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण दान-मानसे सन्तुष्ट हुए और उनकी वाणी आशीर्वाद देते थकती नही।

अब वसुदेवजी सम्मुख आगये हैं महर्षिके और अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना करने लगे हैं—'कंसने मेरी गाये, मेरा धन अधर्मपूर्वक हरण कर लिया था। मैं कारागारमें विवश बन्दी था। पुत्रोंके जन्मके समय इनके षष्ठी, नामकरण, चूडाकरणादिका समय अनुमान करके मै केवल मानसिक

सङ्कल्प करसकता था। अब आप कृपा करे, मेरे उस सङ्कल्पित दानको स्वीकृति देकर मुझे असत्-सङ्कल्प होनेसे बचाले।'

वसुदेवजी वन्दीगृहमे केवल राम-श्याम का ही तो स्मरण करते रहते थे। कारागारसे बाहर थे, तब भी यही करते रहे। पुत्रोंके किसी संस्कारका समय ध्यानमे आया और उन्होने गोदान, स्वर्णदानकी एक महाराशिका सङ्कल्प किया। उन्हे सब स्मरण है। महर्षिको भले उसे बाँटना पडे, आज तो यजमानके सङ्कल्पको सत्य करने के लिए लक्ष-लक्ष गौये, अपार धनराशि, रथ, वस्त्र, अन्न—सब स्वीकार करने हैं उन्हे तथा आगत विप्रवर्गको भी।

आज व्रतका दिन है—पूरी मथुराके लिए व्रतका दिन है। श्रीवलराम और कृष्ण तो अब गुरुगृह जायेंगे। परम मङ्गलका अवसर है यह। अश्रु नही आना चाहिये किसीको, किन्तु इनका वियोग—वहुत कठिन कार्य है यह अश्रु-निरोध इस समय, पर करना है—इनके मङ्गलके लिए करना ही है।



गुरुकुल पहुँचे

विद्याकी सनातन पुरी है काशी। भगवान विश्वनाथके इस धाममें भगवती वीणापाणि सदासे विराजती रही है। अध्ययनके लिए उत्सुक अन्तेवासियोका चिर पावन धाम है वाराणसी। लेकिन काशिराज पौण्ड्रकके मित्र हैं। कससे उनका सौहार्द था। महाराज उग्रसेनसे कभी उनकी बनी नही। अब कसको जिन्होंने यमधाम भेजा, उन्हीको काशी भेजना कैसे उपयुक्त होसकता है। ऐसी आशङ्काके स्थानके सम्बन्धमे सोचना ही व्यर्थ था।

दूसरी भी बात थी। काशीके सर्वश्रेष्ठ, सर्वमान्य सर्वशास्त्रपारङ्गत परमतापस महर्षि सान्दीपनि काशीमे नही थे। जब वे काशीमे नही तो काशी कोई क्यो जाय?

महर्षि सान्दीपनि परम शैव है, किन्तु सात्विक शैव। काशीनरेशको अभिचारके विशेषज्ञ प्रिय हैं। उन्हें नारायण का नाम तक सह्य नही। कोई भी आराधक द्वेषके इस कलुष भरे वातावरणमे कैसे रहसकता था।

द्वेष, हिंसा, उत्पीडनके कुत्सित सङ्गको महर्षि सान्दीपनिने त्याग दिया। भगवान विश्वनाथ न सही, महाकाल सही। विश्वनाथ ही तो महाकाल हैं। भगवान महाकालकी पुरी उज्जयिनीके समीप अपना आश्रम बनाया महर्षिने और तबसे—सम्भवत तबसे सदाके लिए उज्जयिनी विद्या-बुभुक्षु ब्रह्मचारियोकी आराध्यपुरी होगयी। भगवती हसवाहिनीने तबसे फिर इस पुरीको छोडा नही।

महर्षि सान्दीपनिकी लोकोत्तर ख्याति और भगवान महाकालका सान्निध्य। मथुरा और अवन्तिका स्नेह-सम्बन्ध भी है। श्रीवसुदेवजीकी बहिन राजाधिदेवी ही राजमाता है अवन्तिकाकी। राम-श्याम बुआकी राजधानीके समीप निवास करे, महर्षि सान्दीपनिके आश्रममे रहे—यह वसुदेवजीने महाराज उग्रसेनसे सम्मति करके निर्णय करलिया था।

अवन्तिका दूर है मथुरासे। इतनी दूर पैदल नही भेजा जासकता था कुमारो को, इसलिए रथ भेजना पडा। वैसे उपनयनमे जो भिक्षाटन कर चुका, गुरु-गृहमे रहकर विद्याकी अधिदेवताका आशीर्वाद पानेसे पूर्व वह राजकुमार कहाँ है। वह यो नियमस्थ ब्रह्मचारी है, क्या दरिद्र और क्या राजकुमार।

मार्गमे सुरक्षा– कैसी सुरक्षा ? गुरुगृह जाते ब्रह्मचारीपर आक्रमण या आघात करनेकी नीचता कोई असुर भी नही करसकता। ब्रह्मचारी तो सबका रक्ष्य है। उसकी सुरक्षा क्या ' सेना या सैनिकका संरक्षण लेकर कही साधु या ब्रह्मचारी चलाकरता है।

महाराज उग्रसेन – अथवा वसुदेवजी पहुँचाने नही आसके। कोई सूचना नही दी गयी अवन्तिकाकी राजमाताको। उनका कोई स्वजन स्वागतके लिये आवे—यह उचित नही था। गुरुकुलसे लौटनेके पूर्व ब्रह्मचारीका कोई स्वजन, सेवक, सहायक नही होता। ब्रह्मचारीका पहिला कर्तव्य—प्रथम नियम है कि वह सर्वथा गुरुके आश्रित स्वावलम्बी एकाकी होता है।

महर्षि सान्दीपनि अपने नियमोके पालनमे अत्यन्त कठोर हैं। वे प्रसिद्ध है इसमे कि उनके आश्रममे प्रमाद नियम-च्युति को क्षमा नही मिलती। उनका अन्तेवासी होना बडे सौभाग्यकी बात है। केवल अधिकारी छात्र ही वहा आश्रयपाता है।

आश्रम-भूमिसे पर्याप्त दूर ही सङ्कर्षण और श्रीकृष्णने रथ त्याग दिया। अब रथ अवन्तिकामें जायगा और वही इनके अध्ययन-काल तक रुका रहेगा। प्रतीक्षा करेगा सारथि बनकर आया मथुराका वह मन्त्री। ब्रह्मचारी सदा गुरु-चरणोमे एकाकी ही पहुँचता है।

उसी उपवनसे राम-कृष्णने थोड़ी सूखी आम्र-समिधाये एकत्र की। रिक्तहस्त गुरुका दर्शन नही किया जा सकता और ब्रह्मचारीके समीप हो भी क्या सकता है! उसके लिए तो पत्र-पुष्प लानेका भी विधान नही है। वह गुरुके अग्निहोत्रके लिए समिधा लाता है। मानो प्रार्थना करता है—'मैं इन काष्ठोके समान रसहीन हूँ। आपकी कृपा ही मुझमे रस-सृष्टि करनेमे समर्थ है।'

गुरु-सेवा, सयम और कठोर तपसे ही भगवती हसवाहिनी प्रसन्न होती है। उपकरणोकी आवश्यकता नही होती ब्रह्मचारीको। उत्तरीय बना ऐणेयाजिन, आस्तरणके लिए कुक्षिमे दबा अश्वाजिन, पलाश-दण्ड करमे, कन्धेपर भिक्षाकी झोली, करमे जल-पात्र और कौपीन—इतना ही उपकरण होता है अन्तेवासी बननेको आये ब्रह्मचारीके समीप। गुरुके सम्मुख रखनेको थोडी-सी सूखी समिधाये साथ लेकर आता है वह।

'यह वृष्णिगोत्रीय यादव वासुदेव कृष्ण श्रीचरणोमे प्रणत है।' अग्रजने इसी प्रकार नाम लेकर प्रणिपात करलिया, तब बड़े भाईके समान ही समिधाय सामने रखकर श्रीकृष्णचन्द्रने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया गुरुदेवको। नाम, कुल, गोत्र सूचित करते ही तो प्रणाम करनेकी भारतीय परम्परा है।

महर्षि सान्दीपनि प्रात कृत्य सम्पन्न करचुके थे। वे अपने यज्ञधूम सुरभित, गोमयोपलिप्त स्वच्छ, सुन्दर आश्रममें यज्ञशालाकी वेदिकापर कृष्ण मृगचर्मके ऊपर दूसरे अग्निदेवके समान विराजमान थे। अनेक देशोमे आये तपस्वी ब्रह्मचारी चारो ओर बैठे थे महर्षिके। विद्याके इन परम-गुरुकी कृपा ही तो युवकको योग्य बनाती है।

श्वेत-श्मश्रु केश, शुभ्र वलीपलित कृश काया, त्रिपुण्ड शोभित विशाल भाल, सुदीर्घ कृपापूर्ण लोचन—लगता था कि भगवान महेश्वर स्वय द्विनयन होकर, चन्द्रको छिपाकर ऋषिवेश बनाये वेदीपर आ बैठे है।

'वासुदेव कृष्ण श्रीचरणोमे प्रणत है।' जलद गम्भीर स्वर सुधा-स्निग्ध। अन्तेवासी छात्रोने मुडकर देखा और महर्षि उठ खडे हुए वेदिकासे। उनका उत्तरीय वना ऐणेयाजिन खिसककर भूमिमे गिरपड़ा। दोनो वलीपलित, रजतरोम भुजाएँ बढाकर दोनो भाइयोको उठाया उन्होने और हृदयसे लगा लिया आशीर्वाद देते—'आयुष्मान् भव।'

गद्‌गद् कण्ठ, अश्रुधारा सिञ्चित होते श्मश्रु। राम-श्यामकी अलके उन विन्दुओसे सिञ्चित होगयी।

भगवान हव्यवाह आवहनीय कुण्डमे विना आहुति पाये ही लाल-लाल लपटों सहित प्रज्वलित होगये। दिशाये सुरभित धूम्रसे झूमउठी। तरु-लताओमे एकसाथ नवपल्लव-कुसुम स्तवक और फलभार शोभित होनेलगा। अभी-अभी ही जिन्हे दुहागया था—उन आश्रम-धेनुओके स्तनोसे उज्वल दुग्धकी धारा झरनेलगी। वछड़े, मृग, आश्रम-पशु और पक्षी भी एकत्र होआये वही। वे सब मानो इन नवीन आगन्तुकोको सूंघ लेना चाहते हो।

महर्षि शान्त, निष्कम्प खडे है दोनो भाइयोको हृदयसे लगाये। उनका रोम-रोम उत्थित होरहा है। कण्ठ गद्‌गद् है।

'ये सौन्दर्यघन हमारे साथ अध्ययन करेंगे।' आश्रमके अन्तेवासी अपलक लोचनोसे समीप खड़े देखरहे हैं।

'आज ही शुभ मुहूर्त है!' महर्षिने स्वस्थ होते ही छात्रोको सकेत किया। ज्योतिर्विद्याके परमाचार्य महर्षि गर्गका शोधित मुहूर्त है यह। इससे उत्तम मुहूर्त कहाँ मिलना है। ये राम आये हैं पढने, कृष्ण आये है अध्ययन करने—मुहूर्त अब न आवे तो कब आवेगा? 'आज ही इनका वेदाध्ययन प्रारम्भ होजायेगा।'

अतिथिके आनेपर अनध्याय होता है, पर राम-कृष्ण तो अन्तेवासी होकर आये है। छात्रोके अभ्यस्त कर लगगये है प्रस्तुतिमे। आश्रम उपलिप्त हुआ पुन। राम-श्याम सध्या-तर्पणमे लगे स्नान करके। उन्हे अभी देवार्चन करना है, हवन करना है। हवनके पश्चात् ही गुरुदेव वेदाध्ययन प्रारम्भ करेंगे।

पुष्प, फल, दूर्वांकुर, तुलसी, विल्वपत्र, समित्, कुश आदि सभी एकत्र करना है। छात्र लगगये है वहुत उत्साहपूर्वक। हविष्य प्रस्तुत करना है। माल्य-ग्रन्थन करना है। वेदियोंपर देवताओके मण्डल वनाने हैं। सबमें अभ्यस्त कर जुटगये हैं।

राम और श्याम आज ही आये हैं। क्या हुआ कि वे साधारण आनेवाले नूतन ब्रह्मचारीसे-वयमे पर्याप्त बड़े है। वैसे पाँचसे सात वर्षके बालक गुरु-आश्रम आया करते हैं। ये कई वर्ष पूर्व आये छात्रोके समवयस्क हैं; किन्तु हैं तो अपरिचित ही यहाँके स्थलोंसे, नियमोसे। सभी प्रयत्नमें हैं कि इन्हे शीघ्र प्रसन्न कर ले। इनसे मित्रता स्थापित कर ले दूसरोसे पूर्व।

इनको उचित कार्य समझाने हैं। आवश्यक सामग्रियाँ देनी हैं। स्थानोका परिचय कराना है। अपना परिचय देना है इन्हे। लेकिन आज तो गुरुदेवका वात्सल्य उमड़ उठा है। वे स्वय इनकी सुविधाओंके आयोजनमें लगे है। इन्हे कहाँ स्नान करना है, शिप्रामें कहाँ जल कैसा है, तर्पण कहाँ करना है, कौनसे पुष्प या दल किस कार्यमे आवेंगे, यह सब स्वय गुरुदेव समझाने-दिखलानेमे लगगये हैं। वे स्वय सब बतलादेना चाहते हैं।

—×—

शिक्षण-प्रशिक्षण

'भगवन्! आज्ञा हो तो मैं कलका पाठ सुना दूं!' दूसरे दिन प्रात हवन सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर गुरुदेव जब अपने अध्यापनके आसनपर बैठे और उन्होंने राम-कृष्णको ही पहिले पाठ देनेका उपक्रम किया तो श्रीकृष्ण उनके चरणोमे सिर झुकाकर हाथ जोडकर खड़े होगये।

अन्तेवासियोंने सहास्य एक-दूसरेको ओर देखा—'ये दोनो भाई सुन्दर बहुत हैं, किन्तु यह कृष्ण कुछ अधिक ही चपल है। अब क्या सुनावेगा यह? कल ही तो इनका अध्ययन प्रारम्भ हुआ है। महर्षिने गुरुका सम्मान करनेके लिए वेदोकी चारो मूल संहिताओके कुछ मन्त्र पढ दिये। छः वेदाङ्गोंके थोड़े सूत्र बोल दिये। मध्याह्नोत्तर धनुर्वेदका श्रीगणेश करदिया। 'अन्नारम्भा क्षेमान्ता.' यही तो था कल। अब इस कृष्णने कहाँसे पुराने मन्त्र स्मरण करलिये हैं और सुनाने उठखड़ा हुआ है।'

'सुनाओ वत्स !' परम गम्भीर सान्दीपनिजीके मुखपर भी स्मित आया। उन्होने अनुमति देदी।

'कौन हैं—कौन है ये ?' अचानक सब छात्र और अन्तेवासी भी चौक गये—'कृष्ण क्या माताके उदरसे ही सब पढकर आया है ?'

कृष्ण तो सुनाते ही जारहे हैं। सस्वर ऋग्वेदकी ऋचाएँ—वे सब ऋचाएँ भी जो विद्यार्थियोने प्रयोजनवशात् पाठ की थी। सविधि सामगान। यजुर्वेदका मुद्रा सहित पाठ। अथर्वके मन्त्रका उच्चारण। निष्कम्प स्वर, स्पष्ट उच्चारण, निर्दोष मुद्राये, अद्भुत करचालन ? महर्षि और उनके अन्तेवासी अपलक देखते रहगये—'कृष्ण तो बोलता जारहा है। इसने केवल एक बार सुनकर क्या पूरे वेद कण्ठ करलिये ?'

'भगवन् ! मैंने मथुरामे आचार्य और विप्रवर्गको कई प्रकारसे ऋचाओका पाठ करते सुना है।' अब कृष्णका घनपाठ, जटापाठ, माला-पाठ, शिखापाठ, पताकापाठ चलनेलगा है। सब स्वर, सव शैलियाँ क्या कृष्णके कण्ठमे ही निवास करती है ? यही तो श्रुतिपुरुष नही है ?

'वत्स कृष्णचन्द्र !' महर्षि दोनो भुजाएँ फैलाकर उठे और उन्होंने अपने इस शिष्यको हृदयसे लगालिया। 'यह उनका शिष्य है ?' महर्षिके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु झरनेलगे।

'गुरुदेव ! इतना तो मैं भी सुना सकता हूँ।' मस्तक भूमिमें रखकर अञ्जलि बाँधकर राम खडे हुए।

'अवश्य सुना सकते हो आयुष्मन् !' जब छोटे भाईने सुनादिया तो वडा सुना देगा, इसमे किसीको सन्देह भला कैसे होसकता है। महर्षिने कहा—'किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं नूतन पाठ देरहा हूँ। तुम दोनों पढो।' महर्षि समझ चुके कि ये पढने आये हैं केवल मर्यादा-रक्षाके लिए। इनको पढा कौन सकता है। लेकिन जब ये पढने आये हैं, ऐसे श्रुतधर छात्र मिले हैं तो शिक्षक अपनी विद्याको सार्थक क्यो न करलें।

'आज गुरुदेव यह क्या करने लगे है ?' सब अन्तेवासी आश्चर्यमे पडगये। महर्षि तो मन्त्रसहिता, उनके ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्र, शुल्वसूत्र, धर्मसूत्र, गुह्यसूत्र, मूल-मूल बोलते जारहे हैं—धाराप्रवाह बोलते जारहे है। वे अध्यापन कररहे हैं या स्वयं परीक्षा देरहे है ? लेकिन राम-श्याम तो ऐसे एकाग्र-तन्मय सुनरहे है मानो सब समझते जा रहे हैं।

मध्याह्नोत्तर क्षत्रिय-कुमारोको धनुर्वेद तथा अन्य वेदाङ्गोका, उपवेदोका प्रशिक्षण दियाजाता है। कृष्णने इस बार स्वयं नही कहा। गुरुदेवने ही कहा और रामसे कहा—'वत्स ! कलके अध्यापनका जो स्मरण हो, सुना दो !'

'राम मूर्तिमान धनुर्वेद हैं क्या ?' मूल कारिकाये सुना दी चारो उपवेदोकी। लेकिन प्रयोगके लिए रामको आश्रमका लघु धनुष रुचा नही। महाधनु भी दोनों भाइयोको किसी प्रकार काम चलाने योग्य लगा।

'इनकी यह व्याख्या मुझे लगती है।' कभी राम और कभी कृष्ण व्याख्या करने लगते हैं सूत्रोंकी, आरण्यक-उपनिषदोकी या धर्मसूत्रोकी। अर्थवेद, स्थापत्यवेदकी भी इनकी अपनी व्याख्या है। इतनी सुस्पष्ट, साङ्गपूर्ण व्याख्या तो महर्षिने भी कभी सुनी या सोची नही। छात्र अब परस्पर कहने लगे हैं—'ये दोनो भाई ज्ञानके ही दो रूप लगते हैं।'

गान्धर्ववेदका समय सायंकाल है। यही कलाओंके प्रशिक्षणका काल है। विद्यारम्भके प्रथम दिवस महर्षिने कृष्णचन्द्रसे पूछा था—'वत्स ! तुम्हे वाद्य कौन-सा प्रिय है ?'

श्रीकृष्ण मौन रहगये थे दो क्षण। राम अनुजका मुख देखनेलगे। वे सोचने थे—वह झटपट कहेगा—'वंशी', किन्तु नही—वंशी तो रहगयी व्रजमे। व्रजके वे भावप्राण न हो, कृष्ण वंशी कैसे स्पर्श करेंगे। उन्होंने धीरेसे कह दिया—'तन्त्री।'

दूसरे दिन सायंकाल श्रीकृष्णने तन्त्री उठायी। कल इसके सिद्धान्त सुना दिये थे महर्षिने और आज अब श्रीकृष्णके करोमे वीणा पहुँची—देवी वीणापाणि भी प्रशिक्षण लेने आबैठी होती तो प्रसन्न होजाती। समय, स्थान, शरीर तक विस्मृत होगया सबको और स्वरने जो-जो चमत्कार प्रकट किये, कुछ सीमा है उन आश्चर्योंकी। लेकिन महर्षि बहुत सावधान, बहुत कठोर है अपने नियमोंमे। उन्होने वीणा-वादन रुकनेपर सावधान होते ही स्नेह स्निग्ध स्वरमें कह दिया—'वत्स ! ब्रह्मचारीके लिए सङ्गीत-नृत्यप्रियता विलासिता है।'

'स्मरण रखूँगा गुरुदेव।' श्रीकृष्णने चरण पकडलिये और तबसे फिर यह मधुर तन्मयता नहीं आयी। महर्षि प्रत्येक सायंकाल एक कलाके सूत्र बोलनेलगे और राम-श्याम उनकी व्याख्या करदेते हैं। बहुत कम प्रयोग प्रस्तुत करते हैं किसी कलाका। केवल तब प्रस्तुत करते हैं जब गुरुदेव किसी सहाध्यायीको समझा देनेकेलिए ऐसा करनेकी आज्ञा देते है।

'अभी ये कल आश्रममें आये हैं। कुसुम सुकुमार है दोनों कुमार और आप इन्हे ब्राह्ममुहूर्तसे लेकर रात्रिके प्रथम प्रहरतक लगाये रहे है। इतना थका देना इन्हे क्या उचित है?' पत्नीने रात्रिमे महर्षिके चरण दबाते हुए उलाहना दिया। अत्यधिक अनुराग उनका इन दोनो कुमारोंपर है। ये दोनो सम्मुख जाते हैं, चरणवन्दना करते हैं तो गुरुपत्नी भूल ही जाती हैं कि वे इनकी सगी जननी नही है। इन वृद्धाके सूखे वक्षमे वात्सल्यके आधिक्यसे कल ही दुग्धस्राव होनेलगा था।

'तुम इन्हे साधारण बालक समझती हो?' गुरुदेवने कहा—'वे मेरी विद्याको धन्य करने आये हैं। मैं समर्थ नही हूँ—एक ही दिनमें अपना सब अध्ययन सुना नही सकता, अन्यथा वे कल ही प्रत्यावर्तनके योग्य हो जाये। कुछ दिन वे रहे आश्रममें, इस लोभसे मैंने केवल एक कला प्रतिदिन प्रशिक्षणका क्रम बनाया है। कुल चौंसठ दिन लगते है इन्हे और उसमे दो दिन व्यतीत होगये। इतने समयमें ये वेद, उपवेद, वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास पुराणादि समस्त शास्त्रोंके प्रकृष्ट पारङ्गत होजायँगे।'

'आप अभीसे इन्हे विदा करनेकी बात सोचने लगे?' महर्षिकी पत्नी व्याकुल हो उठी।

'देवि! इन्हे रख सकना सम्भव हो तो जीवनमें एक क्षणको भी इनका सान्निध्य कोई त्यागना चाहेगा?' महर्षि गद्गद् स्वर बोले—'लेकिन योग्य अन्तेवासीको विद्या-दानमें विलम्ब करना ब्राह्मणके लिए अपराध है। ऐसा पाप मैं कैसे करसकता हूँ। जितनी मेरी शक्ति है--उतना सुना रहा हूँ। मेरी ही शक्तिका प्रश्न है। इन दोनोकी धारणा-शक्ति और मेधाकी कोई सीमा नही है।'

महर्षि त्रिकाल सन्ध्या, हवन, देवार्चन करते हैं और उसपर यह श्रम। प्रात भगवान हव्यवाहको आहुतियाँ देनेके पश्चात् उनके भालका स्वेद देवी वीणापाणि ही पोछती हैं। मध्याह्न सन्ध्यासे पूर्व तक उनकी वाणी अविराम श्रुति, पुराण, दर्शन, सूत्रग्रन्थ आदिका पाठ करजाती है। पता नही, कितनी विद्याओके मूल सूत्र वे प्रतिदिन सुनाजाते है। अद्भुत हैं उनके ये दोनो शिष्य भी। इनकी स्मरण-शक्ति जैसे इनके कर्ण-कुहरोंमें ही निवास करती है। श्रवण—केवल एक बार श्रवण करलिया मूल सूत्रोका, मन्त्रोका और इतना इनके लिए बहुत अधिक है।

'वत्स कृष्णचन्द्र ! तुम अपने सहाध्यायियोंको सूत्रका मर्म समझा दो।' गुरुदेव श्रान्त होजाते हैं तब विश्रामका यह अवसर निकालते है। आजकल उनका लगभग पूरा समय इन दोनो भाइयोको मूल ग्रन्थ सुना देनेमें जाता है। छात्रोका समय नष्ट नही होना चाहिये, किन्तु दूसरे छात्र भी तो उत्सुक रहते हैं राम या कृष्णके द्वारा ही अध्ययन करनेके लिए। ये दोनो भाई जितनी सरल, सुस्पष्ट, विशद शैलीमे व्याख्या करते है—कोई भी भाष्य या व्याख्या कहाँ इतनी पूर्ण मिलती है। कौन-सा ऐसा रहस्य है जो इनकी वाणीसे छूटगया हो। स्वय मूल सूत्रकार कदाचित ही इतना स्पष्ट समझा पाते। कोई प्रश्न, कोई सन्देह नही रहजाता उस विषयमे जिसे इन दोमे-से किसी भी एकने एक बार समझा दिया।

मध्याह्न सन्ध्या पूर्ण हुई और गुरुदेवने पुकारा—'राम ! अपने अनुजके साथ आ जाओ। धनुर्वेदका नूतन पाठ देना है तुन्हे।'

गुरुदेव आहार-ग्रहण करनेके पश्चात् विश्राम भी नही करते। वे केवल लेटजाते हैं। राम-कृष्ण उनके चरण दबाते है और गुरुदेवका अध्यापन कार्य चलता रहता है। धनुर्वेदके अङ्ग-उपाङ्गोकी सैद्धान्तिक बातेंवे सुनाजाते हैं। राम-श्यामका आग्रह न हो अत्यधिक तो गुरुदेव यह विश्राम भी न करें। सीधे प्रयोग-भूमिपर पहुँच जायँ। अन्तत: धनुर्वेद प्रायोगिक विद्या है।

राम जब धनुपपर प्रत्यञ्चा चढाकर खडे होते हैं, मूर्तिमान धनुर्वेद भी इतना शौर्यशाली नही हो सकता। गुरुदेवको केवल सकेत करना रहता है। राम और कृष्णके कर तो प्रयोग-सिद्धकर है। इनका हस्तलाघव, लक्ष्यवेध, प्रयोग भङ्गी क्षत्रियकुमार आश्चर्यसे देखते रहजाते हैं।

अनेक बार आचार्य उमङ्गमे आकर स्वय धनुप लेलेते हैं और दिव्यास्त्रोका प्रयोग देना आरम्भ करदेते हैं। वर्षोंकी सेवा, कठोर निष्ठाके पश्चात् कोई गुरु किसीको गिने-चुने दिव्यास्त्र देता है; किन्तु इन दोनो भाइयो जैसा योग्यतम अधिकारी मिले तो गुरुमें विद्या-कार्पण्य रहेगा? आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, पार्वतास्त्र, वारुणास्त्र, सम्मोहनास्त्रकी चर्चा व्यर्थ है। गुरुदेव ने तो विना पूछे, विना याचनाके इन्हे ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र और नारायणास्त्र तक देदिये।'

लोग कहते हैं—'चिलम्नि वाणोका सन्धान कर सकें, विश्वमे ऐसे दो-चार ही शूर होसकते हैं।' बात ठीक है। ये छोटे बाण धनुपकी ज्यापर

लगकर धनुर्दण्ड तक तो पहुँचते नही। बिना आधार के इनको कोई लक्ष्यपर कैसे स्थिर करे, किन्तु उस दिन जब गुरुदेवने इन्हे ये नन्हे वाण दिये, लगा दोनो भाई इनसे खेलनेके सदासे अभ्यस्त हैं। दोनोंने पृथक्-पृथक् धनुपलिये और दो दिशाओंमें वितस्ति वाणोकी वर्षा प्रारम्भ करदी।

आनन्द, आशङ्का, आश्चर्य—तृतीय प्रहर इन सबका सामञ्जस्य ही है। सायंकालकी सन्ध्या तनिक विश्राम देती है। रात्रिके प्रथम प्रहरमें गुरुदेव कला-प्रशिक्षण प्रारम्भ करते हैं। एक दिन एक कला अपने भेदोपभेदोके साथ साङ्गपूर्ण होजाती है। जवकि कहा जाता है—एक कलाके लिए सहस्रवर्षका सम्पूर्ण जीवन भी थोडा होता है।

कृष्णकी सुकुमार अँगुलियोंके स्पर्शसे कलाको भी सार्थक होना रहता है। दिनभरके श्रमसे श्रान्त गुरुदेव, समुत्सुक सहपाठी, आतुर-से आश्रमके पशु—मलयमारुतके पद भी झूमने लगते हैं। झूमने लगते हैं तरु, लता कुञ्ज। वाद्य, नृत्य, गीत, चित्र, मूर्ति—पता नही, कृष्णने यह सब कब सीखा होगा। कला भी क्या सिद्धान्त सुनलेनेसे आती है? गुरुदेव तो सिद्धान्त मात्र सुनादेते हैं; किन्तु ये दोनो भाई जब महर्षिके निर्देशोको आकार देनेलगते हैं, प्रकृति जैसे निस्पद-मुग्ध रहजाती है। श्यामका स्पर्श स्वयं कला है। इसके कर सहज भावसे चलते है, किन्तु तुम्बरू इसके वीणा-वादनसे स्पर्धा कर सकेगा? कृष्णचन्द्र और राम सीखते हैं? ये तो प्रत्येक कला-क्षेत्रमे, उसके प्रत्येक अङ्गमे नित्य मौलिकताओकी श्रेणीवद्ध परम्परा स्थापित करते चलते हैं। यह इनका प्रशिक्षण है? प्रत्येक कलाको अभिनव वरदान देने ये दोनो भाई इस ओर प्रवृत्त हुए हैं।

कृष्णचन्द्रने केवल कलाके क्षेत्रमे ही नही, विद्याओके क्षेत्रमे नूतन स्थापनायें करदी हैं। नवीन तर्क, नवीन शैली, नवीन योजना—राम-कृष्ण प्रतिदिन ही प्रत्येक क्षेत्रको दिव्य वरदान देरहे है। आमूल नवीन उद्भावना-नवीन चेतना दोनो भाई देते हैं किसी भी कलामे, विद्यामे और ऐसे देते हैं जैसे यह गुरुदेवकी कृपासे—उनके आशीर्वादसे होगया हो।

'इतनी मेधा, यह ज्ञान किसी लोकपालमे भी सम्भव नही है।' महर्षि सान्दीपनिने निश्चय करलिया है—समझलिया है कि निखिल ज्ञानघनैक परमपुरुषके अतिरिक्त कोई दूसरा ऐसा हो नही सकता।

'इन्होंने मुझे गौरव दिया।' अब महर्षि एकान्तमे पत्नीसे कहते हैं—'मुझमे जितनी शक्ति, जितनी विद्या है, उससे मैं इनकी सेवाका प्रयत्न करु

रहा हूँ।' महर्षिका कण्ठ अपने इन शिष्योकी चर्चा करतेसमय भरआता है। वे भाव-विह्वल होउठते हैं।

अध्ययनकी ऐसी भी निष्ठा होती है--हो सकती है--यह महर्षिके अन्तेवासियोंने इन दोनोको देखकर जाना है। कितने तत्पर, कितने श्रमशील, कितने एकाग्र रहते हैं दोनो भाई। दोनो ब्राह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें ही उठजाते हैं। गुरुदेवके उठनेसे पूर्व इनका स्नान भी होचुका होता है। जब जिस विषयका अध्ययन चलना है, उसके उपयुक्त सामग्री वहाँ प्रस्तुत रखनेमे ये किसी सहाध्यायीको सहयोगका सौभाग्य देते कभी ?

'आप यह विषय ग्रहण कररहे हैं। मैंने भी गुरुदेवके अनुग्रहसे इसमे यत्किञ्चित् जाना है। आप बडे हैं, पहिलेसे गुरुचरणोकी सेवामे हैं। मेरा पाठ सुनलेनेकी कृपा करेंगे ? कृष्णचन्द्रको लगता है कि किसी सहपाठीको अपने अध्ययनके किसी विषयमे कही कठिनाई होरही है तो वह इस प्रकार उसके पास जाबैठता हैं, मानो स्वयं उसे सहायताकी अपेक्षा है।

'आप अनुग्रह करना चाहते है और पूछनेका मिस करते हैं।' राम तक अपने अनुजके समान विनम्र बनगया है। उससे कुछ पूछो तो ऐसे बोलेगा जैसे पूछनेवालेने कृपा की है। दोनो भाई इतने स्नेहसे —सम्मानसे, निपुणतासे समझाते हैं कि वर्षोंमे प्राप्त होनेवाली विद्या इनके सामीप्यसे क्षणोमे हृदयङ्गम होने लगगयी है।



गुरु-सेवा

जबसे बलराम, श्रीकृष्ण आश्रममें आये, वृक्ष फलोसे लदगये हैं। लताओमें पत्रोंसे अधिक पुष्प ही दिखलायी देते हैं। आश्रम-धेनुओंके स्तनोंसे दूधकी धारा चला ही करती है। दिनभर वे उटजके द्वारपर हुङ्कार ही करती रहती हैं कि उन्हे दुह लिया जाय। कितनी बार दुहाजाय उन्हे ?

मृग, केशरी, वाराह, भल्लूक, कपि, शशक, मयूर, हंस, शुक्र—ये छोटे-बडे वन-पशु और पक्षी दिनभर आश्रममे ही एकत्र रहते हैं—इतने शान्त, इतने संयमित—ये उपद्रव कभी नही करते थे, किन्तु ऐसे शान्त भी कभी नही थे।

कोई मृग नीवारोको सूँघता तक नही। कोई कपि आश्रम तरुओके फल नही छूता। उनकी डालियोपर उछलता तक नही। पता नही, ये सब आहार क्या करते हैं। दिनभर यही घिरे रहते हैं और इतने स्वस्थ, इतने प्रसन्न—आश्रममे तो आनन्द उमड आया है आजकल।

राम और कृष्ण जबसे आये हैं, गुरुपत्नीकी व्यस्तता बढगयी है। कपियो, भल्लूको, वनगजोके उपहार वे कहाँ तक सम्हाले। ये वनपशु उटज प्राङ्गणको फलो, कन्दो, मधुछत्रोसे भरे ही रहते हैं। कितने अद्‌भुत सुस्वादु उपहार लाते हैं ये सब।

राम और कृष्णके ही उपहार कहाँ कम है। ये दोनो भाई बहुत मना करनेपर भी वेदाध्ययन समाप्त करके मध्याह्नके पूर्व झोली कन्धेपर रखकर निकलते है, किन्तु किसीके घरमे ये कब किस दिन गये। वनपशुओंके उपहारोसे ही इनकी झोलियाँ भरजाती है। ये तो तरुओ तकसे भिक्षा ले लेते हैं। इनके अरुणकर फैले और पक्वफल चू पडा। वृक्ष जैसे इनकी प्रतीक्षा ही करते रहते हो।

ये दोनो भाई जबसे आये है, छात्रोका भिक्षाटन बन्द होगया है। मध्याह्नमे महर्षिके चरणोमे जब ये अपनी झोलियाँ अर्पित करते हैं—महर्षि और गुरुपत्नी कितना आग्रह करती हैं कि ये अपने लिए कुछ फल लेले उसमें-से। ये तो अनुमति मिलते ही छाँटने लगते है—'ये कन्द-फल गुरुदेवके लिए। ये गुरुपत्नी स्वीकार करनेकी कृपा करे। यह अमुक

सहपाठीके लिए और यह अमुकके लिए।' आश्रम-धेनुओ, बछड़ो, कपियो और मृगो तकके लिए। पता नही, कितने प्राणियोको इनको तृप्त करना रहता है। गुरुपत्नी स्वय आग्रह करके न खिलावे तो दोनो भाइयोको अपने भोजनका स्मरण ही नही।

ये दोनो भाई गुरु-सेवाकी मूर्ति हैं। गुरुदेवके स्नान, हवन-पूजनकी सम्पूर्ण सेवा, मध्याह्न तथा रात्रिमें गुरुदेवके चरण दबाना और गुरुपत्नीकी सुविधाओकी व्यवस्था इन दोनोंने ऐसी सम्हाल ली है कि दूसरे छात्रोको कुछ करने ही का अवसर नही देते। जल ये लायेंगे, फल-पुष्प, समिधाएँ, कुश ये वनसे सग्रह करेंगे। काष्ठ दूसरेको लाने देनेसे रहे। गो-सेवाके लिए कह देंगे—'यह कार्य तो हमने जन्मसे किया है। यह हमारा स्वत्व है।'

उटज और आश्रम प्रात. सन्ध्यासे पूर्व स्वच्छ करदेंगे ये दोनो। गोमयसे सब उपलिप्त करदेगे और तब आचार्यके चरणोमें ऐसे उपस्थित होंगे जैसे इन्होने कुछ किया ही न हो। कितने सरल, कितने विनयी हैं। इतने सुकुमार और इतना परिश्रम—कोई तो नही रोक पाता इन्हे।

गुरुपत्नी बहुत आग्रह करके दोनोको कुछ फल प्रात खिलापाती हैं जब ये उनकी चरण-वन्दना करने पहुँचते है। फिर तो ये लग जायँगे अध्ययन या सेवामे। इनको देखते रहना—बस यही कार्य रह गया है। महर्षि परम तापस हैं। उनके लिए आजकल नीवार-रन्धन भी नही करना पडता। राम और कृष्णके लाये अद्भुत स्वादिष्ट फलोसे तो आश्रममे आये पशु-पक्षी तक तृप्त हो जाते हैं।

'कोई सेवा मात.?' दोनो मस्तक झुकाये, भूमिमे दृष्टि किये पता नही, कितनी बार प्रति दिन पूछते है। कहनेको कुछ अवकाश भी मिले। ये तो कोई न कोई स्वयं ढूँढ लेंगे और उसे करनेमे व्यस्त हो जायँगे। गुरुपत्नी इन्हे एकटक देखती रह जाती हैं। इन्हे रोक भी नही पाती वे।

'ये सुकुमार अरुण कर क्या सेवाके लिए है?' सहपाठी इनके कर पकड़लेते हैं अनेक बार। वे कितना चाहते हैं कि ये दोनों भाई श्रम न करे। प्रतिभावान छात्र सहपाठियोंमे सदा सम्मान पाते हैं और इनकी प्रतिभा—इनका ज्ञान, ये तो आजकल वास्तविक शिक्षक है सबके, किन्तु इनकी तत्परता—पता नही ये दोनो कब सब कार्य करलेते हैं। आश्रम लिपापुता स्वच्छ, उटज-गोशाला स्वच्छ मिलेगी, जब तक कोई दूसरा छात्र इस कार्यको पहुँचे। गुरुपत्नी पूछनेपर कह देगी—'जल राम रख गया। पुष्प

और फल भी ले आया। समित्, कुश, दूर्वांकुर कृष्णने संग्रह करदिये।' जिस कार्यको जाओ, जहाँ देखो—राम या कृष्णने उसे पहिले ही करदिया है। गुरुदेवकी, गुरु-गृहकी, गायोकी कोई सेवा तो इनसे बचती ?

ये दोनो तो सहाध्यायियोकी बलात् सेवा करलेते हैं। उनके आसन यथास्थान बिछगये, समिधाएँ रखदी, सुमन पत्र-पुटकोमे सजा दिये। सूखे बल्कल यथास्थान उठाकर धर दिये।

'तुम दोनो भाई कमसे-कम हमपर तो कृपा करो। हम ब्रह्मचारियोको स्वय अपना सब कार्य करना चाहिये।' सहाध्यायी अनुरोध करते हैं। गुरुसेवा, गुरु-गृहकी सेवा तो प्रयत्न करके भी इनसे ली नही जा पाती। 'ब्रह्मचारी दूसरेसे सेवा ले, यह तो अपराध है।'

राम हँसकर टाल देता है। कृष्ण हँस देगा। सब कार्य कर डालेगा और मना करनेपर हँसेगा। बहुत कहो तो कह देगा—'आप हमसे पहिले आये अत हमारे बड़े है। हमारे लिए आप भी सेव्य हैं।' कृष्णचन्द्र कह देता है—'मैं कहाँ कोई सेवा किसीकी करपाता हूँ। कुछ सेवा बने—तो भगवती वीणापाणि प्रसन्न हो।'

राम कहता है—'अध्ययन तो गौण बात है। देवी हँसवाहिनीकी कृपा गरु एव सहाध्यायियोकी सेवा तथा आशीर्वादसे मिलती है।'

सेवा, सम्मान-दान और प्रीति—राम और कृष्ण इनकी मूर्ति हैं। दोनोको अपने लिए कोई सुविधा, कोई मान—कुछ भी तो नही चाहिये। ये आनन्द और अनुरागकी मूर्ति सबको तुष्ट, प्रसन्न सत्कृत करनेमे ही लगे रहते हैं। इनकी प्रशसामे कुछ कहो तो मुखपर हाथ धर देंगे। अत्यन्त सकुचित हो उठेंगे।

आश्रम-धेनुएँ हुँकार करती हैं—राम या कृष्णके करोसे तृण मिले तो उन्हे रुचे। मृगशावक और बछड़े तक दूसरोकी घास सूँघते नही। दूध इन्ही दोनोको दुहना है। सभी पशु-पक्षी इन्हे घेरे रहते हैं। सबको दाना-चारा इन्हे देना है। तरु-लताये इन्हे सीचना है। उनके आलवालकी निराई इन्हे करनी है। इनको इतना समय पता नही, कैसे मिलता है। गुरुदेव बराबर इन्हीका अध्यापन करते हैं। रात्रिके प्रथम प्रहर तक इनका अध्ययन चलता है और यह सेवा! नियमोका यह प्रमादहीन पालन। साथ ही जो देखे उसके ही समीप श्रीकृष्ण उसकी सेवामे उपस्थित हैं। किसी

कार्यके लिए, किसीकी कोई सेवाके लिए राम या कृष्णके पास समय न हो, सोचा ही नही जासकता।

'मात कोई सेवा ?' गुरुपत्नीके सम्मुख आया विप्र छात्र सुदामा। यह ब्राह्मण-कुमार श्रीदाम कृष्णसे पर्याप्त घनिष्ट हो गया है, अत. कृष्ण इसके सङ्ग उटजके पीछे छिपा आया है; यह गुरुपत्नी नही देख सकी। कृष्ण सोचता है कि उससे या रामसे गुरुपत्नी कोई कार्य लेना नही चाहती।

'उटजमे सूखा इन्धन नही है।' गुरुपत्नीने श्रीदामसे कहा। पावसमें सूखा इन्धन समाप्त होगया। अभी दिन है और गगन स्वच्छ है। गुरुपत्नी जानती हैं कि सायकाल भी राम या कृष्णको इन्धनके अभावका पता लगेगा तो वे उसी समय वनमे भाग जायँगे। इस वर्षा ऋतुका क्या ठिकाना। अत उन्होने कह दिया—'तुम और किसीको साथ लेलो। बहुत दूर मत जाना। जो भी थोड़ी-बहुत काष्ठ मिले, लेकर शीघ्र लौटना।'

'हम पर्याप्त काष्ठ ला सकेंगे मात।' कृष्ण भी छिपा है, यह कहाँ देखा था गुरु-पत्नीने और अब तो वह उटजसे बाहर दौड़ गया।

'कृष्ण वनमे गया, वह लौटा नही।' सम्भवतः दूसरे ही क्षणसे गुरुपत्नी प्रतीक्षा करने लगीं। सहसा मेघ घिर आये, बढने लगे। सूर्यास्त समीप आगया। गुरुपत्नी व्याकुल होनेलगी—'दोनो कहाँ गये ? कहाँ रहगये ? मैंने किस अशुभ मुहूर्तमे आदेश देदिया !' वे उटज-द्वारपर खडी दृष्टि लगाये हैं—'कृष्ण नही आया। कृष्ण वनमें है।' महर्षिको समाचार दिये बिना मार्ग नही था। छात्र दूर-दूर तक जाकर देख आये। उनकी पुकारका भी कोई उत्तर नही देता।

'यह मूसलाधार वर्षा ! यह रात्रिका अन्धकार। श्रीचरण वनमे कहाँ भटकेंगे। प्रकाश इस झञ्झामे नही जासकता।' रामने महर्षिके चरण पकड़ लिये—'श्रीदामके लिए कोई भय नही, क्योकि श्रीकृष्ण साथ है और श्रीकृष्णका—उनके जो साथ रहे उसका भी कोई अनिष्ट कभी हो नही सकता।' रामको अपने छोटे भाईपर उचित गर्व—उचित विश्वास है।

'यह वर्षा ! प्रबल प्रभञ्जन ! यह सूची भेद्य अन्धकार।' महर्षि अपनी पत्नी और सब छात्रोंके साथ उटजके द्वारपर ही खड़े है। वे पुकार रहे हैं—'कृष्ण ! कृष्णचन्द्र !' ऐसे पुकार रहे हैं जैसे अभी सम्मुखसे कृष्ण कहेगा—'आया भगवन्।'

'यह राम ! ये बालक !' गुरुदेव जानते है कि वे निकले तो इनमें किसीको रोका नही जासकता। इन्हे इस वर्षा और अन्धकारमे ले भी नही जाया जासकता। महर्षिके प्राण छटपटा रहे हैं। वे दोनो बालकोंके मङ्गलके लिए स्वस्तिपाठ करनेलगे है।

राम अद्भुत है। वह रोके है – रोकरहा है सबको—'कृष्णका, कृष्णके जो साथ हो उसका कुछ नही विगड सकता। आप सब विश्राम करे। प्रात. प्रकाश होनेपर हम सब चलेंगे।'

विश्राम ! विश्राम किसे सूझता है। गुरुपत्नी तो मूर्छित होने लगी हैं – 'कृष्ण नही लौटा ! मैंने उसे वनमे भेज दिया।' राम द्वार रोके न खडा होता तो वे एकाकी ही इस वर्षामे वन चलीगयी होती।

पावसमें सूखे काष्ठ सरलतासे नही मिलते। ब्रह्मचारीको वृक्षपर चढना नही चाहिये। तपोवनके समीपके वृक्ष तो हरित, फलभारसे झुके हैं। वहाँ शुष्क काष्ठ कहाँ। दूर हो जाना पडा था श्रीकृष्ण-श्रीदामको वनमें।

'कृष्ण ! बहुत वेगसे वर्षा आरही है।' उमड़ते-घुमडते मेघोको देखकर श्रीदाम चौंका था – 'हम शीघ्र लौट चलें। जितना काष्ठ-चयन हुआ, उसीपर सन्तोष करनेके अतिरिक्त उपाय नही है। वर्षा आरही है। अब लौटना ही है।'

'हम लोग मार्ग भूल गये लगते हैं !' श्रीदामने श्रीकृष्णसे कहा। अन्धकार बढता जारहा है। मेघ बढते जारहे हैं। वर्षाका वेग बढता जा रहा है। ऐसेमें बालकोका मार्ग भूल जाना क्या आश्चर्यकी बात है।

भीगी अलके। भीगे मृगचर्म। कक्षमे पलाश दण्ड। थोड़ी-सी समिधाये लिये दो कौपीनधारी बालक और वन प्रदेश, घोर अन्धकार, झञ्झा वायु, बार-बार मेघ-गर्जन—चपलाका प्रकाश ही रह-रहकर अन्धकारको चीरता है। अस्त-व्यस्त, एक-दूसरेका हाथ पकड़े एक वृक्षसे दूसरेके नीचे भागते ये दोनो बालक।

'मार्ग ! मार्ग ! मार्ग !'—अद्भुत लीला है। सम्पूर्ण मार्गोका स्रष्टा और अन्वेष्य मार्ग नही पारहा है आज। जलसे भरा कानन, इस अन्धकारमें मार्ग कहाँसे मिले। जो समस्त भवाटवीमे भटकते जनोका सदा-सदाके लिए निष्कण्टक राजमार्ग है, वह गुरु-सेवाके लिए भटक गया है। वनमे भटक गया है। चरण श्रान्त हो गये। अब इस वर्षा और अन्धकारमे चलना सम्भव नही। शरीर भीगकर काँपने लगा है। अनेक बार गिरते-

गिरते बचे हैं। एक विशाल वृक्षके मूलमें दोनो एक-दूसरेसे सटकर, सिकुडकर, किसी प्रकार बैठेरहे। बैठे ही रहना पड़ेगा अब रात्रिभर।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदयका मन्द प्रकाश हुआ और गुरुदेव बालकोके साथ निकलपड़े। उटज-द्वारपर ही रात्रि व्यतीत की उन्होंने। प्रात वर्षा रुकी और निकले वे। कृष्ण भी तो श्रीदामके साथ आश्रम पहुँचनेको चलपडा है।

'कृष्ण! कृष्णचन्द्र!' विह्वल, कातर स्वर। गुरुदेव पुकार रहे हैं। बार-बार पुकार रहे हैं।

'भगवन्! यह वृष्णिगोत्रीय यादव वासुदेव कृष्ण श्रीचरणोमे प्रणत है!' दौडता ही आया है कृष्ण, किन्तु उसे आज भूमिष्ठ होनेका अवसर नही मिला। गुरुदेवने उसे भुजाओमे लेकर हृदयसे लगा लिया।

'कृष्णचन्द्र! वत्स! देहधारी मात्रके लिए शरीर परमप्रिय है और तुम्हारा यह भुवनमोहन सुकुमार शरीर। तुमने इसे मेरे लिए घोर सङ्कटमे डाल दिया। रात्रिभर काननमें भीगते रहे। मैं अकिञ्चन ब्राह्मण आशीर्वाद ही दे सकता हूँ।' क्षणार्धमे महामुनि सान्दीपनिका गद्गद स्वर शान्त, स्थिर हो गया। आशीर्वादकी परावाणी उठी उस कण्ठसे—'तुम दोनो भाइयोको सम्पूर्ण विद्याएँ आजायँ। इस लोकमे और परलोकमे भी वे शाश्वत तुम्हारे साथ रहे।'

—+—

प्रत्यावर्तन

'तुम दोनोको इस लोक और परलोकमे भी सम्पूर्ण छान्दस ज्ञान—सम्पूर्ण श्रौत-स्मार्त विद्या तत्काल पढेके समान स्मरणरहे!' गुरुदेवने जब यह आशीर्वाद देदिया—अध्ययनके लिए अब क्या कुछ अवशिष्ट रह गया?

वनमार्गसे आश्रम तक महर्षि और कुछ भी नही बोलसके थे। जीवनमें प्रथम बार आज महर्षि सान्दीपनि और उनके शिष्योंके लिए स्नान-सन्ध्याके समयका अतिक्रम हुआ था। सूर्योदयके पश्चात् वनसे लौटे थे आचार्य—कुछ विलम्बसे ही लौटे थे। आते ही सब नित्य-कृत्यमे व्यस्त हो गये।

'राम और कृष्णका प्रत्यावर्तन संस्कार होगा।' आवहनीय कुण्डके समीप आसनसे उठते ही महर्षिने अपने अन्तेवासियोंको आदेश देदिया— 'आज प्रस्तुतिके लिए अनध्याय रहेगा। अवन्तिकाकी राजमाताको सूचना दे आओ उनके भ्रातृपुत्रोंके इस सस्कारकी।'

राम-कृष्णको आश्रममे आये पूरे चौसठ दिन हुए है। आचार्यचरण कहते हैं—'केवल एक कलाकी शिक्षा शेष रही है और वह आज पूरी हो जायगी। श्रुति एवं श्रुत्यङ्ग उपवेदादिका ज्ञान उनके आशीर्वादने दे दिया। स्वजन-स्वगृहसे वियुक्त ब्रह्मचारियोको शिक्षा पूर्ण होनेके पश्चात् एक दिन भी क्यो रोका जाना चाहिये ? महर्षि इसे निष्ठुरता मानते है।

'राम और कृष्ण चले जायँगे। बडी त्पीडक कल्पना है यह, किन्तु वे यहाँ वनमे शिक्षण पूरा करके भी तपस्वी बने रहे, कठोर जीवन व्यतीत करें—यह भी हृदयको कहाँ सह्य है। गुरुपत्नी, अन्तेवासीगण विचित्र स्थितिमे हैं। उनमे असह्य वेदना और अद्भुत उल्लास साथ-साथ जागता है।

राम-कृष्ण दोनोको ही अध्ययन कहाँ करना था। गुरुदेवने श्रुतियोंका, उपवेदोका तथा सूत्रग्रन्थोका केवल एक बार मूलपाठ सुना दिया। दोनो भाई श्रवण मात्रसे उन्हे धारण करलेनेमे दक्ष श्रुतधर हैं और व्याख्या उनसे उत्तम दूसरा कोई क्या करेगा। ये सर्वविद्यानिधान—इनकी क्या शिक्षा—मर्यादा रखनी थी गुरु-मुखसे श्रवणकी और वह पूर्ण हो गयी।

'राम-कृष्णका समावर्तन सस्कार है!' इस समाचारने अवन्तिकाको उल्लाससे भर दिया। राजमाता राजाधिदेवी स्वय सम्पूर्ण नगर-सज्जा एवं स्वागत-सत्कारका सञ्चालन करने लगी हैं। उनके भाई वसुदेवजीके ये भुवनवन्द्य पुत्र अब राजसदन आ सकेंगे। गुरुकुलसे निकलनेपर उनके प्रथम सत्कारका सौभाग्य अवन्तिकाको मिलेगा।

दोनो भाइयोके लिए वस्त्र, आभरण-उष्णीष, कञ्चुक, उपानह, रत्नदण्ड—पता नही, राजमाताको क्या-क्या जुटाना है और ऐसा जुटाना है जो दोनो भाइयोके उपयुक्त कुछ तो लगे। वे तो स्वय अपने करोसे उद्वर्तन, तैल, उप-लेपन, अङ्गराग, माल्य तक प्रस्तुत कर लेना चाहती हैं। उनको किसीपर इस समय भरोसा नही रहा। उनकी पुत्री मित्रविन्दाके मनमें भी सेवाकी कुछ साध है, वह भी भागी-भागी फिर रही है—इस ओर ध्यानदेनेका भी अवकाश नहीं उन्हे।

भुवन-सुन्दर, सुमन-सुकुमार ये राम-कृष्ण क्या तपोवनके उपयुक्त है! इनके स्वर्ण गौर एव घनश्याम अङ्गोंपर क्या ऐणेयाजिन शोभादेता है! इनकी ये घुँघराली मृदुल घनी अलके जो सवा दो महीनेमे वढ़गयी हैं, ये क्या रूक्ष रहकर जटा वनने योग्य हैं। रत्नमेखला धारण करने योग्य इनका कटिप्रदेश मौञ्जी-मेखलासे कितना व्यथित होता होगा। आज यह निष्ठुरा मेखला दूर होगी। गुरुपत्नी तथा छात्रोंके मनमे उल्लास है और तन-कर व्यस्त होगये हैं कार्यमे। नहीं—आज राम या कृष्णको अव कुछ नही करनेदेना है। एक नही सुननी इस विषयमे इन दोनोकी।

इनके सुकुमार अङ्गोपर नील-पीत कौशेय वस्त्र, कटिमे रत्नमेखला, स्कन्धोपर पटुके, कण्ठमे रत्नहार, वृक्षोपर झूलती वनमाला, चन्दन चर्चित अङ्ग, तिलकाङ्कित भाल, तैलसिञ्चित सुमन सज्जित अलके—इस झाँकीकी कल्पनामे ही सव मग्न होरहे है।

'प्रात सूर्योपस्थान करके दोनों भाई दन्तधावन करेंगे।' श्रीदामने उदुम्वरकी कोमल शाखा लारखी है। 'कल इनकी अलके सुगन्धित कटुतैलसे सिञ्चित होगी।' गुरुपत्नी अपनी प्रस्तुतिमे हैं।

'हम इनकी अलकोमे पुष्प-ग्रन्थन करेंगे।' महाध्यायियोकी कलाको भी तो सार्थक होना है।

'यवचूर्णसे उद्वर्तन, उष्णोदक-स्नान, मलयज-लेपन, हस्तोपलेपन, प्राणायाम और तिलक।' गुरुपत्नीने अनेक ब्रह्मचारियोका समावर्तन सस्कार कराया है—वडे वात्सल्यसे कराया है, किन्तु इस राम और कृष्णने तो उनके हृदयको जीत ही लिया है। इनकी सेवा, विनय, सुषमाकी कही तुलना है और महर्षि कहते हैं—'ये परमपुरुष हैं।'

'गुरुदेव मन्त्रपाठ करेंगे। हम सव सहायता करेंगे। देवार्चन, हवन होगा। दोनो भाई सहस्त्रधाराओसे स्नान करके मेखला-विसर्जन करेंगे और महहास धारण करेंगे। व्रत समाप्त हो जायगा।' छात्रोने सव प्रकारकी सामग्री प्रस्तुत करली है।

ब्राह्ममुहूर्तमें ही महर्षि अपने आसनसे उठ गये। गुरुपत्नीने सम्भवत. रात्रि-विश्राम किया ही नही। समस्त अन्तेवासी नदिस्त नित्यकर्म करके व्यग्न हो गये। पुष्पमाल्य, वन्दनवार, सुमन, अकुर, दल, कुश—सव सामग्री एकत्र की उन्होंने।

गोमयोपलिप्त, विविध मण्डलोंसे मण्डित, कदलीस्तम्भ, पुष्प रितन्यादिसे सज्जित हुई आश्रम-भूमि। लता-तरु, भूमि स्वत. पुष्पित-सज्जित

हो उठी। सहज विकच सुमन स्तवक, आनन्दोन्मत्त गुञ्जार करती भृङ्गावली, नृत्य करते मयूर, पक्षियोका कलरव—यह शोभा साम्राज्योके श्रृङ्गारमे भी कहाँ सुलभ है।

महाकालके मन्दिरमे अखण्ड दुग्धाभिषेक चलरहा है रुद्रार्चनके साथ। गूँज रहा है आश्रम शङ्खनाद एव श्रुतिमन्त्रोके सस्वर पाठसे। गगनसे पुष्प-वर्षा होरही है। सुरवाद्य, गन्धर्वोका गान, अप्सराओका नृत्य—किन्तु धरा आज अमरावतीसे कही धन्य है।

अमरावती—अवन्तिकाके सौभाग्यकी स्पर्धा आज अमरावती नही कर सकती। नगरजनोका सागर उमडा आरहा है। राजमाता राजाधिदेवी स्वय उपस्थित हैं। ब्रह्मचारी गुरु-दक्षिणा दिये विना माता-पिताके दर्शन नही कर सकता, किन्तु इसके लिए मथुरा-सम्वाद देनेकी आवश्यकता ? अवन्तिका कङ्गाल तो नही है। राजमाता सम्पूर्ण राजकोष अर्पणको उद्यत खडी हैं। नगरके समृद्धतम श्रेष्ठी हाथ जोड़े खड़े हैं कि उनका कोष भी आज कृतार्थ हो।

राम-कृष्णका समावर्तन सस्कार—रत्न-थालो की सख्या नही है जो नागरिक सजाये आखडे हुए हैं।

देव-पूजन-तर्पण, सहस्रधारा-स्नान, मेखला-विसर्जन सव सविधि सम्पन्न हुए। उद्वर्तन पूर्वक राम-कृष्णने स्नान किया आज। अलकें तैल स्निग्ध हुई। गौर-श्याम अङ्ग नील-पीत वस्त्रोसे भूषित हुए। उष्णीष, कञ्चुक, उपानह—रत्नाभरण, वनमाला—तृप्त हो गये नेत्र गुरुदेवके, गुरुपत्नीके, सहाध्यायियोके, राजमाता और नागरिकोके इस भुवनसुन्दर रूपकी छटाकी झाँकी करके।

'वत्स राम! आयुष्मान् कृष्णचन्द्र!' गुरुदेवने अपने शिष्योको अन्तिम शिक्षा देनी प्रारम्भ की—'दोनो भाई भगवान भास्करको नित्य अर्घ्य देना। नित्य हवन करना। ब्राह्मणो, गायो, अतिथियोकी रक्षा करना—उनका सत्कार करना। हमारे सद्गुण ग्रहण करना। मुझमे कोई त्रुटिच्युति हो तो उसे मत लेना।'

राम-कृष्ण बद्धाञ्जलि नतमस्तक खड़े हैं। कुछ कहना है—कुछ प्रार्थना करनी है, किन्तु महर्षि तो मानो गुरु-दक्षिणा पाकर अन्तिम आदेश देरहे हो, वे गद्गद् स्वर बोलते जारहे हैं।

—×—

गुरु-दक्षिणा

'तुम दोनोका मङ्गल हो ।' महर्षिने मस्तकपर दक्षिण हस्त रखकर आशीर्वाद दिया और विदा दे दी—'अब रथपर विराजो वत्स !'

'भगवन् ! आप पूर्णकाम हैं; किन्तु हमको आपकी किसी सेवाका सौभाग्य मिलना चाहिये ।' दोनो भाइयोंने गुरुदेवके चरणोमे साष्टाङ्ग प्रणिपात किया । दोनोके भाल, भृकुटि और नासिकाग्र धूलि-धूसर अधिक शोभित होगये ।

'श्रीचरणोके असीम अनुग्रहसे उऋण होनेकी बात भी सोची नही जा सकती । आपने ज्ञानका परमोज्वल प्रकाश हमें जिस स्नेह, अनुरागसे प्रदान किया, हम किङ्कर रहेंगे इन पावनपदोके जन्म-जन्म तक ।' अञ्जलि बाँधकर दोनो भाई नतमस्तक खडे हैं । श्रीकृष्ण कहरहे है—'लेकिन श्रीचरणोंके आदेश-पालनका गौरव चाहते हैं हम ।'

'राम ! वत्स कृष्ण !' महर्षिने दोनो भाइयोको अङ्कमें समेटलिया । उनका शरीर पुलकित है, कण्ठ भराहुआ है— 'तुम दोनोंने इस अकिञ्चन ब्राह्मणको गुरु होनेका गौरव दिया ! तुम्हारी सेवासे हम परम सन्तुष्ट है ।'

'किसी तुच्छ सेवाका तो सौभाग्य मिले हमे ।' रामने अतिशय आग्रहपूर्ण स्वरमे कहा—'हमे बहुत प्रसन्नता होगी कोई भी सेवा करके ।'

ब्राह्मण सदाके परम सन्तोषी और उसमे भी महर्षि सान्दीपनि प्रसिद्ध वीतराग । अब तक कहाँ किसी लौटते शिक्षार्थीसे उन्होंने कभी गुरु-दक्षिणा माँगी है । अधिक आग्रह किया किसीने तो शिथिल स्वरमें कह दिया –'दो पुष्प, थोड़े फल धर सकते हो ।'

जिनके त्याग, तप और ज्ञानने इन भगवान वासुदेवको उनका शिष्य बननेको प्रलुब्ध किया, उनके अन्तरमे लौकिक सम्पदाकी कामना कैसे स्थान पावे । लेकिन आज राम और कृष्ण आग्रह कररहे हैं । इनके आग्रहको टाल देना क्या सम्भव है ? इन्हे मथुरा जाना है और बिना गुरु-दक्षिणा दिये ये जाना नही चाहते—नही जायँगे, तब ?

अच्छा !' महर्षिने मस्तक झुकाकर दो क्षण सोचा । रामके श्रवण समुत्सुक हो उठे । लेकिन महर्षिने कहा—'मैं तुम्हारी गुरु-मातासे पूछता हूँ ।'

उटजमें गये महर्षि । द्वारपर खडी पत्नी पतिका संकेत पाकर भीतर गयी तो वोले—'देवि ! कुछ चाहिये तुम्हे ? त्रिभुवनमें ऐसा कुछ नही जिसे ये दोनो भाई न देसकें। तुम सङ्कोच त्यागकर कहदो।'

सरला ब्राह्मणी । वह इन दोनो भाइयोको प्राणोसे अधिक चाहने लगी ये आये उसी दिनसे । उनका वात्सल्य—लेकिन ये आज चले जायेंगे । वह रात्रिभर रोती रही हैं। अव उसके जीवनका कोई स्नेहाधार ? एक ही पुत्र था और वह प्रभासमें समुद्र ले गया । रोते-रोते कहा ब्राह्मणीने—'जव वही नही रहा, किसके लिए मैं कोई कामना करूँगी !'

महर्षि लौट आये उटजसे वाहर। उन्होंने स्वस्थ स्वरमें कहा—'वत्स ! तुम दोनो भाइयोके लिए कुछ अप्राप्य या अदेय नही है । मैं पत्नीके साथ प्रभास गया था। मेरे पूर्वजोकी आशाका आधार, मेरे पितरोको पिण्डदान करनेवाला एकमात्र मेरा अवोध वालक साथ था। समुद्रकी उत्ताल तरङ्ग आयी और उस जलराशिमे वालक अदृश्य होगया। मेरा गोत्र ही समाप्त होगया। अव हम दम्पत्ति किसके लिए कामना करे ?'

'हम गुरुपुत्रको श्रीचरणोंमें उपस्थित करदेंगे !' श्रीकृष्णने वात पूरी होनेसे पूर्व महर्षिके पदोमे मस्तक रखा और अगजके साथ आश्रमसे निकले। मथुरासे जो रथ उन्हे लेआया था, वाहर प्रतीक्षा कररहा था ।

राजमाता राजाधिदेवी, अवन्तिकाके नागरिक स्तब्ध खड़े देखते रहगये। मृतपुत्र गुरुदक्षिणामे लाना है और दोनो भाइयोने क्षणार्ध भी हिचकने या सोचनेमे नही लगाया । विना किसीसे कुछ कहे—विना किसीकी ओर देखे दोनो रथपर जावैठे है। यह क्या ऐसी गुरु-दक्षिणा है कि इसमे कोई कुछ भी सहयोग दे सके ।

'प्रभास !' सारथिको आदेश हुआ । रथ तो पूरे वेगसे चलपडा हैं। नागरिकोको महर्षिके सम्मुख प्रणत होकर लौटना है । वे लौट चले है—अपने लाये उपहार यों ही लिये लौटचलें हैं। उनमे दोनों भाइयोंकी ही चर्चा है—'ऐसी गुरु-दक्षिणा कोई मानव कैसे देसकता हैं ? कोई देवता भी साहस न कर सके, किन्तु दोनो भाई तो ऐसे गये हैं जैसे प्रभासमें समुद्र-तटपर वैठे गुरुपुत्रको रथपर वैठा लाना है ।'

सागर-तटपर ये रथसे उतरकर नील-पीतवसन गौर-श्याम जो वैठ गये हैं, इन दुरन्त विक्रमको पहिचाननेमे समुद्रके अधिदेवता क्या भूल कर सकते हैं ? क्या हुआ कि अव इनका तापसवेश जटा-जूट और वल्कल वस्त्र नहीं है,

क्या हुआ जो कपि-सेना साथ नही है और धनुष-वाण तथा त्रोण नही लाये हैं ये। इन्हे क्या सहायक अथवा अस्त्रकी आवश्यकता होती है ? ये एक तृण उठा लेंगे और वही महा अमोघ अस्त्र वन जायगा। त्रेतामे इन्होने केवल वाण चढाया था धनुषपर—उस रोषका सङ्कल्प अब भी समुद्रको वाडवाग्नि वनकर जलाता रहता है। इस बार तो गौर कुमार अग्रज होकर आये हैं। ये तेजोधाम—त्रेतामे इनका अनुरोध अग्रजने एक वार टाल दिया था; किन्तु इस बार ये आदेश दे तो ? इस वार ये स्वय उठ खडे हो—अनुज इन्हे वारित तो नही कर सकते। सागरमें साहस नही है इनकी उपेक्षा करनेका।

'इनके रोषकी एक झाँकी त्रेतामें मिल चुकी। इनकी कृपाकी याचना ही की जानी चाहिये।' अतल गम्भीर नील वर्ण, तरङ्गोज्वल वसन, मौक्तिकाभरण महासागर मूर्तिमान होगया। उत्ताल तरङ्ग उठी और राम-श्यामके चरणार्द्र होगये। उनपर राशि-राशि मोती विखरगये। लेकिन दोनो भाइयोकी दृष्टि महासागरपर है। वद्धाञ्जलि समुद्राधिदेवता सम्मुख उपस्थित हुए—'देव....।'

'तुमने ग्रहणके समय स्नानार्थ आये महर्षि सान्दीपनिके वालक पुत्रका अपहरण किया।' श्रीकृष्णने सागरको स्तवनका—कुछ कहनेका अवसर नही दिया। वे भर्त्सना कररहे हैं—'तुम्हारी उर्मियोने उस अवोध शिशुको अपना ग्रास वनाया। तुम्हे इसलिए इतना महान वनाया गया है कि तुम इतनी क्षुद्रता करो ? तुम्हे अपार शक्ति इसलिए दीगयी है कि तुम शिशु-हत्या करो ? तुम्हे लज्जा नही आती, तुम तीर्थ हो और ब्राह्मण-वालकका अपहरण करते हो ?' जैसे कोई सम्राट् अपने तुच्छ सेवकको प्रताड़ित करता हो ऐसा स्वर।

'स्वामी !' भयभीत सिन्धुकी सारी सरसता जैसे स्वेद वन जायगी। कम्पित कण्ठ—'मैंने वालकका हरण नही किया। मैं अपनेमे डालेगये पदार्थोंको भी पुलिनपर लौटादेता हूँ। मुझसे नही हुआ यह अपराध, किन्तु मेरे भीतर एक दैत्य रहता है पञ्चजन। वह शङ्खरूपधारी असुर जलमे ही विचरण करता है। वह क्रुद्ध करे—मैं विवश हूँ। मैं उससे पार नही पा सकता। मेरी तरङ्गको आवरण वनाकर उसीने वालकका हरण किया। वह मायावी है।'

श्रीकृष्णको और कुछ सुनना नही है। वद्धाञ्जलि सागर खड़ा रहा। पुलिनपर पड़े रहे उनके उपहार-रत्न। श्यामने अग्रजकी ओर भी नही देखा। वे वैसे ही उठे और अगाध जलमें कूद पड़े।

कुछ क्षण मात्र लगा उनको निकलनेमें। समुद्र उनके श्रीअङ्ग, वस्त्र आर्द्र करनेका साहस कैसे करता। चन्द्रोज्वल शङ्ख—पाञ्चजन्य शङ्ख था दक्षिण करमे। अग्रजके सम्मुख आकर बोले—'असुरके शरीरसे केवल यह मिला। उसे चीरकर द्विधा कर देनेपर भी उसके उदरमे गुरुपुत्रका कोई अवशेष नही दीखा। आप रथपर विराजें। हमें सयमिनी चलना पड़ेगा।'

'भद्र! तुम नेत्र वन्द रखो। अश्वोको स्वच्छन्द चलने दो।' सारथिको आदेश देदिया गया।

सयमिनी—यमराजकी पुरी। धरापर कोई कैसे भी मरे, धर्मराजके यहाँ ही तो पहुँचेगा। कर्मवश कही जाय भी तो यमपुरी होकर ही जायगा। जव कोई मरगया—उसका पता धर्मराजके अतिरिक्त कहाँ मिल सकता है?

श्रीकृष्णका सङ्कल्प—संयमिनी कोई स्थल पुरी है कि वहाँ रथ और अश्व जायँगे, किन्तु जिनका सङ्कल्प कोटि-कोटि भुवन निर्माण करता है, वे इच्छा करे—रथको संयमिनीके द्वारपर पहुँचनेमें क्षणार्ध लगा। दक्षिण दिशाके उन लोक भयङ्कर लोकपालकी महापुरीके द्वारपर पहुँचकर श्रीकृष्णने अवरोसे पाञ्चजन्य लगाया और उनका शङ्खनाद गूँजने लगा।

श्रीकृष्णके मुखका शङ्खनाद—नरकोकी महाज्वाला सहसा शान्त हो गयी। रुरु और महारुरु जैसे अत्यन्त क्रूर प्राणी अचानक वहुत सीधे वन गये। तप्त शाल्मली, वज्रकण्टकादि सम्पूर्ण नरकोमे नियुक्त यम-किङ्कर चकित देखते रह गये एक-दूसरेकी ओर। यातना प्राप्त समस्त जीव तो एक-साथ निकल गये और कही किसी दिव्यधाम चले गये। अव यहाँ यमदूत किसे यातना दे?

चौककर चित्रगुप्तने अपना कर्म-लेखा पटक दिया। उनकी महा-पुस्तकके समस्त पृष्ठ किन्ही अज्ञात शक्तिने पोछकर पलक झपकते श्वेत कर दिये। अव किसीका कोई कर्म-विवरण उनके समीप नही।

शङ्खनाद—यह आराध्यका शङ्खनाद। परम भागवताचार्य धर्मराजने यमदण्ड फेंका और अर्चाकी सामग्री उठाकर द्वारकी ओर दौड़े। उनका महिष वैठा ही रह गया। आराध्यके सम्मुख वाहनपर तो नही जाया जा सकता।

यमराज सर्वज्ञ हैं। वे श्रीकृष्ण चरणोके नित्य सेवक हैं। यह भी जानते हैं कि अभी कुछ ही काल पश्चात् ये नवघन सुन्दर हमारी सगी-

वह्निका पाणि-ग्रहण करनेवाले हैं। विनम्र यमराजने प्रणिपात किया— 'प्रभु पधारे और पुरी पावन हो।'

'महाराज! आपके दूत हमारे गुरुपुत्रको ले आये हैं यहाँ।' श्रीकृष्णको शीघ्रता है। वैसे भी श्रीकृष्णको—रामको भी यमपुरी नहीं जाना चाहिये। उनके चरणोंके चिन्तक तक इस पुरीकी ओर नही आते। द्वारपर, रथपर बैठे-बैठे ही आदेश दे दिया—'उसे उसके कर्मानुसार ही लायागया यहाँ। आपके सेवकोका कोई दोष नही, किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप उसे अब मुझे देदे।'

'प्रभुकी जैसी आज्ञा।' यमराजने मस्तक झुकाया। कर्मका बन्धन, कर्मके नियम श्रीकृष्णका स्मरण करनेसे ध्वस्त हो जाते हैं—जिसे वे स्वयं लेने आये, उसके कर्मका विवरण कैसा? उसके प्रारब्धका प्रश्न क्या? प्रारब्ध तो जीवका उसी दिन निष्क्रिय होजाता है जब वह कहता है 'कृष्ण तवास्मि।'

आज तो और भी अद्भुत बात है। चित्रगुप्तकी महालेखा पुस्तक स्वच्छ धरी है। किसीका कोई कर्म-विवरण उनके समीप नही। जो जीव नरकमे थे—पाञ्चजन्य ध्वनिने उन्हे दिव्य लोक भेजदिया। जिन जीवोका कर्म-निर्णय करना था, उनको अब केवल कर्मयोनि—मनुष्य योनिमें भेजना पडेगा, जिससे वे नवीन कर्म करसकें। उनके सञ्चित कर्म तो रहे ही नही और मुक्त वे हुए नही—अभी उनमे व्यष्टि अन्तःकरण बना है। तब उन्हे धरापर मानव-जन्म ही तो देना है। संयमिनीके स्वामीका क्या जाता है यदि महर्षि सान्दीपनिका पुत्र नवीन जन्म नही लेता। वह तो अभी विचाराधीन ही जीव था। श्रीकृष्ण उसका सूक्ष्मदेह यदि आतिवाहिक देहके साथ लेकर उसे सङ्कल्प द्वारा वैसा ही स्थूल देह देना चाहते है— यमको कहाँ आपत्ति है।

यमराजने आतिवाहिक देह लौटादिया गुरुपुत्रका और श्रीकृष्णके सङ्कल्पने उसे पूर्वके समान (समुद्रमे डूबनेसे अब तक व्यतीत समयमे जितना बड़ा होता, उतना बडा) स्थूल देह देदिया।

'भद्र! तुम नेत्र खोलकर अश्व सम्हाल लो। हम अवन्तिकाके समीप आचुके हैं।' श्रीकृष्णने आदेश दिया सारथीको।

'राम-कृष्णका रथ लौटा! वे महर्षिके पुत्रको रथपर बैठाये आरहे हैं।' उज्जयिनीमे समाचार फैल गया। ऐसे समाचारको फैलनेमे विलम्ब

कहाँ होता है। लोग दौड़े महर्षिके आश्रमकी ओर—'सचमुच ये तो ऐसे गुरुपुत्रको उठालाये जैसे वह समुद्र-तटपर इनकी प्रतीक्षा करता ही बैठा था।'

'राम-कृष्ण आरहे हैं। महर्षिके पुत्र भी रथपर हैं।' आश्रममें भी समाचार पहुँचा। अन्तेवासी बालक दौडे। महर्षि सपत्नीक आश्रम-द्वार तक आगये।

'तात! मातः!' गुरुपुत्रने उतरकर पिता-माताकी पद-वन्दना की। माताने अङ्कमे लगालिया उसे। लेकिन उनके नेत्र अपलक राम-श्यामपर लगे है।

'भगवन्!' यह वृष्णिवंशी यादव वासुदेव कृष्ण श्रीचरणोमें प्रणत है।' अग्रजके साथ कृष्णने प्रणिपात किया। महर्षिने दोनो भाइयोंको उठाकर हृदयसे लगाया। फिर वही श्रद्धा-विनम्र स्वर—'श्रीचरणोंकी सेवाका कोई सौभाग्य मिलपाता। कुछ आज्ञा करदेते श्रीचरण तो हम कृतार्थ मानते अपनेको।' जैसे गुरुदक्षिणा अभी दी ही नही गयी।

'वत्स! तुम दोनोका मैं आचार्य हुआ। मेरे अन्त करणमें कोई कामना शेष रह गयी?' गुरुदेवका यह भाव-विह्वल स्वर। सचमुच श्रीकृष्णके सेवककी भी जब समस्त कामनाएँ नष्ट होजाती हैं तो इनके आचार्यमे कामना रहेगी? 'मैंने क्या नही पाया? तुमने जिस प्रकार गुरु-ऋणकी निष्कृति सम्पादित की है, कौन समर्थ है इसमे। तुम दोनोका भुवनपावन यश लोकमें विस्तीर्ण हो! तुम्हारा मङ्गल हो!

दोनो भाइयोने गुरुदेवको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। प्रणिपात किया गुरु-पत्नीको। सहपाठियोंको अङ्कमाल दी। रथ-प्रतीक्षा कररहा है। आश्रमके व्यक्ति ही नही, पशु-पक्षी, लता-तरु तक व्याकुल होउठे हैं। स्वस्तिपाठ, आशीर्वाद, मङ्गल-गान—आज उनका सत्कार होना है अवन्तिकाके राजसदनमे। स्नेहमयी बुआका सत्कार स्वीकार करना है आज।

अवन्तिकासे विदा—अद्भुत नियम है ससारका। एक स्थान—एक वर्गका दु ख बहुधा दूसरेका सुख बनता है। रोयी अवन्तिका राम-कृष्णके वियोगमें। मथुरामे महामङ्गलका आगमन हुआ। राम-कृष्ण गुरुगृहसे लौटे। ऐसा लगा जैसे युगोपर-लौटरहे हैं। अब मथुराकी सज्जा, वहाँके उत्साह, उल्लास, महोत्सवकी सीमा कहाँ-रही है।

—×—

कुब्जाकी प्रतीक्षा

उस दिन राजपथपर उन नीलसुन्दरने कहा था —'मैं तुम्हारे घर आऊँगा।' उन्होंने वचन दिया था। उनकी वह मुस्कान, वह बङ्क विलोकन कमलनयनकी, वह त्रिभुवन-मोहनरूप और वह मधुरवाणी।

उनका उस दिनका वह चिवुक-स्पर्श—लगता है कि वे प्राणोको आन्दोलित करती अँगुलियाँ अव भी चिवुकपर ही लगी हैं।

कंस मारा गया—उस मूर्तिमान अहङ्कारको उन्ही भुवन-सुन्दरने मार दिया। सैरन्ध्रीके लिए तो कंस तभी मर गया जव हँसकर उन वनमालीने उससे अङ्गराग माँगा था। कंस—एक क्षुद्र घृणित कीट—उसकी स्मृति कुब्जाके मनमें तो फिर क्षण भरको भी नही आयी। वह दासी थी, दासी है—सदा-सदाकी दासी, किन्तु उन मयूर-मुकुटीकी दासी। कंसकी दासी थी कभी—वह कोई भारी अशुभ था जो कूवड़ वनकर उसकी कटिपर बैठा था। वह तो उनके स्पर्शसे ही अदृष्य होगया। अब तो वह बिना मूल्य क्रीत उनकी—केवल उनकी दासी है—जन्म-जन्मके लिए दासी है।

'मैं तुम्हारे गृह आऊँगा।' उन्होंने उस दिन वचन दिया था। कुब्जा कहाँ महारानी है कि उसे बुलानेको शिविका भेजनी पड़ती। वह स्वयं चली जाती—एक नही, सहस्र-सहस्र बार पैरो चलकर उनके द्वारके चक्कर काटती। दासीका क्या मान और क्या अपमान। द्वारपाल वहुत करते, झिडक देते। लोग परिहास ही तो करते—पहिले क्या कम परिहास किया है लोगोने उसका। इसमें नवीन क्या था उसके लिए। वह चाहे जव अपने हृदयहारी प्राणोंके स्वामीके चरण जाकर पकड़ लेती—अञ्चल फैलाकर गिड़गिड़ाती। वे घनश्याम उसे झिडक ही तो देंगे—झिडक लेगे। वे तो उस दिन भी उसे झिडक दे सकते थे, किन्तु वे परमोदार—उन्होंने तो सम्मान दिया—वचन दिया—'तुम्हारे घर आऊँगा।'

वह नहीं जापाती—वह तुच्छ दासी है, इसीलिए तो नही जापाती। उसके जानेसे उन्हें सकुचित होना पड़ेगा। लोग उन्हें पता नही क्या-क्या कहेंगे। उनका अयश हो—उन्हे सङ्कोच हो, यह कैसे कर पायेगी वह।

उन्होंने स्वय आनेको कहा है—वे आवेगे ही। वह प्रतीक्षा कर रही है। यही प्रतीक्षा करेगी वह।

'वे आते होंगे।' अद्भुत प्रतीक्षा है कुब्जाकी। प्रात. अँधेरे ही वह दासियोसे खीझने लगती है कि उसे शीघ्र क्यो नही जगाया उन्होने। अभी गृह परिमार्जित नही हुआ, कक्ष सज्जित करना है, शय्याके किसलय और कुसुम वदलने हैं, शृङ्गार करना है अपना। वह क्या उनके सम्मुख ऐसे ही चली जायगी? कितने कार्य पडे हैं अभी करनेको और उन्होंने कोई अपने आनेका समय वतलाया है! दासी इतनी धृष्टता कैसे करेगी। वे ब्राह्ममूहूर्तमें उठे होगे। कालिन्दी-कूल जानेसे पूर्व इधर होते जासकते हैं। उनके आनेका उपयुक्त समय है यह।

उनके आनेके लिए भी क्या कोई समय अनुपयुक्त हुआ करता है? वे कालिन्दी-तटसे नित्यकृत्य करके इधर होते निकल सकते हैं। कुब्जाको तो सब समय उनके आनेके उपयुक्त लगता है।

उन्हे मध्याह्नमे अवसर मिलता होगा और कुसुम तो म्लान होगये। उन्हे शीघ्र ही परिवर्तित कर दिया जाना चाहिये। स्वेदने अङ्गराग मलिन कर दिया। पुन शृङ्गार करना चाहिये मुझे। वे अभी आरहे होगे।

'मध्याह्नमें भोजन करके विश्राम किया होगा। अव इस तीसरे प्रहर आवेंगे। सायंकाल यमुना-तट जाते समय आवेंगे। यमुना-तटसे लौटते आवें किञ्चित् अन्धकार होनेपर। छि'! वे दिनमे कैसे आते। गुरुजनोका सङ्कोच होता होगा, रात्रिमें—सबके सो जानेपर आवेंगे।' कुब्जाको न दिनमे चैन है, न रात्रिमें। वे भुवन-भूषण अव आरहे होगे— यही उनके आनेका उपयुक्त समय है। उसे प्रहर वीतनेसे पूर्व ही शय्याके सुमन और अपना शृङ्गार मलिन लगने लगता है। इन्हे तत्काल वदला जाना चाहिये।

कल नही आ सके। किसी कार्यमे व्यस्त रहे होंगे। आज अव आते होंगे। वे आवेंगे ही—उन्होने स्वयं आनेको कहा है। निराशा स्पर्श ही नही करती है कुब्जाके प्राणोको। गृह, कक्ष, शय्या बार-बार सज्जित होती है। पूजाके उपकरण परिवर्तित होते है। वह पता नही, कितनी वार दर्पणके सम्मुख आकर अपनेको देखती है और शृङ्गार सुधारती-सँवारती है।

वे आते होंगे—अब आ ही रहे होंगे। एक अद्भुत उन्माद होगया है कुब्जाको। भोजन करना पडता है—न करे तो उसका रूप क्या उनको प्रसन्न करने योग्य रह सकेगा। स्नान तो आवश्यक है नूतन-शृङ्गार धारण करनेके लिए। भोजन या स्नानके लिए लगनेसे पूर्व दासीको अनेक बार सावधान रहनेको कहकर द्वारपर नियुक्त करती है और फिर भी दो-चार ग्रास मुखमे डालकर बीचमे ही हाथ धो लेती है—'शीघ्रता करो !' स्नान पूरा हुए विना ही शृङ्गार कर देनेका आग्रह करने लगती है।

कुसुम बहुत शीघ्र मुरझा जाते हैं। किसलय म्लान होते हैं। दिन आता है और चलाजाता है। रात्रिपर रात्रि बीतती जारही है; किन्तु कुब्जाकी प्रतीक्षा थकती नही है। सखियाँ खीझती है, दासियाँ दुःखी होती हैं, किन्तु उसे कहाँ शरीरकी सुधि है। उसे शरीर उनके अर्पणके योग्य-सुसज्ज रखनेकी ही चिन्ता है। उसे प्रतिक्षण लगता है—'वे आरहे होंगे ! अब आ ही रहे होंगे।'

'श्रीकृष्णचन्द्रका उपनयन होगया ! वे गुरुगृह चलेगये।' दासीने समाचार देकर समझा था कि कुछ कालको यह प्रतीक्षाका उन्माद शान्त होजायगा।

'उन्होंने इस दासीपर अनुग्रह करनेके लिए यह अच्छा बहाना बनाया। वे अब विना किसीके जाने चाहे जब आसकते हैं। कुब्जापर तो प्रत्येक स्थिति एक ही प्रभाव डालती कि 'उनके आनेका उपयुक्त अवसर है। वे आरहे होंगे।'

किसीका रथ आवे, किसीकी पद-चाप सुनायी दे—सैरन्ध्री चौंकती है—उठ खडी होती है— दौडती है—'वे आगये।'

वह बार-बार द्वारपर दौड़ जाती है। बार-बार छज्जेपर जाकर देखती है और फिर अपने कक्षमें आजाती है—'वे आते होंगे, शय्याके सुमन म्लान तो नहीं होगये ?'

'वे आयेंगे। उन्होंने स्वयं आनेको कहा है ! वे अब आ ही रहे होंगे !' व्याकुल प्राणोंकी प्रतीक्षा चलरही है।

'भगवान वासुदेवकी जय !' इस तुमुल घोषसे मथुराका गगन गूँज उठा। नगरके नर-नारी राजपथ या राजपथके भवनोंपर एकत्र होगये। राम-कृष्ण गुरुकुलसे अध्ययन समाप्त करके लौटे। वह नगर-सज्जा, वह

स्वागत-सम्भार। वह पथपर पुष्पोके साथ लाजा-दूर्वांकुर, पुष्प एवं केशर-चन्दनकी वर्षा, विप्रोंका स्वस्तिपाठ, शङ्ख एव वाद्योका तुमुलनाद—सब होता रहा; किन्तु कुब्जा कहाँ जाय। वह गृहसे निकले और वे यहाँ आ जायँ तो? उसे किसी महोत्सवमे जानेका अवकाश कहाँ। गृह-सज्जा, अर्चन-सामग्री, शृङ्गार सबतो उसे प्रस्तुत रखना है—'वे आते होंगे।'

'वे गुरु-गृहसे लौटे हैं। माता-पिता हैं, बन्धु-बान्धव हैं, सचिव-सभासद है, पता नही, कौन-कौन हैं। उनसे मिलनेको आतुर। वे बड़े सरल, बड़े उदार हैं। किसीको निराश नही करपाते। उन्हे अवकाश नही मिला अबतक। अब आवेंगे। क्या हुआ जो कुछ दिन नही आसके—अब आवेंगे ही।'

'उन्हे न आना होता तो आनेको कहते ही क्यो? वे आवेंगे-अवश्य आवेंगे। ऐसे हो नहीं सकता कि कहकर न आवे।' दिन बीतता है, रात्रि बीतती है; किन्तु कुब्जाकी प्रतीक्षा थकती नही।

'कितना सम्मान दिया उन्होने इस तुच्छ दासीको।' अभी कलकी ही तो बात लगती है—कितने स्नेहसे अङ्गराग माँगा था। कैसे भोलेपनसे सम्मुख आखड़े हुए थे। उनके भाल-कपोलोपर वह अङ्गराग-लेपन। कितनी त्वरासे उसके दोनो पैर दबालिये चरणोंसे और चिबुकपर उनकी अँगुलियोका स्पर्श—तनिक-सा झटका लगा और जन्मकी यह कूबड़ी सीधी होगयी। सम्मुख खड़े सस्मित उन त्रैलोक्य-सुन्दरने मुस्कराकर कहा था—'मैं तुम्हारे घर जाऊँगा।'

वह प्रतीक्षा कररही है—आतुर प्रतीक्षा। उस मयूरमुकुटीकी प्रतीक्षा ही तो की जासकती है। उस चिरचपलको कोई कहाँ ढूँढे। जीवका कोई भी साधन—कितना भी उत्कृष्ट, कितने भी दीर्घकालका साधन क्या उसे आनेको विवश करनेमे समर्थ है? युग-युगकी तपस्या-साधनसे भी तो तपस्वी, योगीन्द्र, मुनीन्द्र उसे पानेमें समर्थ नही होते। वही कृपा करके आवे तो मिले। उसकी—उसकी कृपाकी प्रतीक्षा ही तो करनी है। उस धन्य क्षणकी प्रतीक्षा—यह प्रतीक्षा ही तो समस्त साधनोका परम रहस्य है।

वह अनन्त करुणा-वरुणालय, वह अकारण कृपासिन्धु, सर्वसुहृद्—वह कब कृपा-कृपण हुआ है। वह नही आया, इसका अर्थ ही है कि अभी

उसको पानेकी पिपासा प्राणोमे जागी नहीं। प्राणोंमें प्यास जागे और वह न आवे, यह कभी सम्भव नही।

'मैं जाऊँगा! मैं तुम्हारे घर—तुम्हारे समीप स्वयं जाऊँगा।' उसने अग्रजके, सखाओके सम्मुख सैरन्ध्रीको वचन दिया है। किसे वचन नही दिया है उसने। श्रुति उसकी वाणी नही है? जीव मात्रको ही तो उसका वचन प्राप्त है। लेकिन प्रतीक्षा—आकुल प्राणोकी सतत जागरूक प्रतीक्षा कहाँ जगी। प्रतीक्षा जागे और श्याम न आवे, वह दूर बना रहे, यह उससे हो नही सकता।

कुब्जाके प्राणोमें प्रतीक्षा जाग चुकी है। उत्कट, अहर्निशि, अकथ, निराशाको पददलित करके प्रवृद्ध प्रतीक्षा! कब तक कृष्ण नही आवेंगे? वे आवेंगे ही। उन्होने वचन जो दिया है।



सैरन्ध्री सुन्दरी

रथ आया—सचमुच एक दिन एक राजकीय रथ आया और कुब्जाके द्वारपर रुका। उद्धवके साथ हँसता मयूरमुकुटी कूदा उस रथसे। धन्य हो गयी सैरन्ध्री—सफल हुई कुब्जाकी प्रतीक्षा।

कुब्जा—सैरन्ध्री उठी और दौड पडी। उसे भूल ही गया कि वह कर क्या रही है। आनन्दकी उस बाढमें वह नृत्य करने लगी—नाचने लगी। वस्त्र अस्तव्यस्त, माला टूट गिरी, शरीर स्वेद-स्नात होगया। कुसुमाभरण त्रस्त—कोई कही गिरा और कोई कही। उसे भूल ही गया कि इनको आसन देना है, अर्चा करनी है इनकी।

'छि.!' कुछ क्षण लगे और लज्जासे वह भाग खड़ी हुई। 'इस वेशमे इनका स्वागत करेगी? इनके सम्मुख जायगी?' वह तो स्नानागारमें भाग गयी।

सखियोंने सुअवसरपर सहायता की। आसन दिया, पाद्य, अर्घ्य, अङ्गराग, माल्य, पुष्पसे सत्कार किया इन त्रिभुवनमोहनका। वह तो यह सब कर ही नही पाती। उसका तो अङ्ग-अङ्ग काँपने लगा था। बड़ी

कठिनाईसे स्नान करके, नूतन वस्त्र धारण करनेपर वह सावधान हो सकी। उसे स्वागत तो करना चाहिये।

वह आयी—ओह ! सखियाँ इन मेघश्याम, इन्दीवर सुन्दरके सत्कारमें ही लग गयी हैं। उसने आसन उठाया और रखकर नम्रतापूर्वक उद्धवसे कहा—'आप खडे हैं—विराजें।'

'मैं अनुगृहीत हुआ।' उद्धवने आसनका हाथसे स्पर्श किया, मस्तक झुकाया और भूमिपर ही बैठ गये।

उद्धवको—अपने इन छोटे भाई, सखा वृहद्बलको श्रीकृष्णने अपना अन्तरङ्ग वनालिया है। देवगुरु वृहस्पतिके ये साक्षात् शिष्य—इनको व्रज भेजना है। इन्हे देख तो लेना चाहिये कि श्रीकृष्ण सैरन्ध्रीकी प्रीतिकी भी उपेक्षा नही करपाते। व्रजमे जो प्रेमैक मूर्तियाँ हैं, उनसे मिलनेके पूर्व एक झाँकी—अस्त-व्यस्त अपूर्ण ही सही; किन्तु एक परिचय तो इनको मिलना चाहिये।

भगवान वासुदेवका अपार अनुग्रह कि वे उद्धवको अपना सखा—अन्तरङ्ग सखा मानते है। यहाँ भी साथ लेआये हैं, किन्तु सुरगुरुके शिष्य उद्धव यहाँ आसन कैसे स्वीकार करले। यहाँका आसन तो उनका वन्दनीय ही हो सकता है।

'मैं अभी आऊँगा।' वङ्क दृगोंसे सहास्य वनमालीने देखा उद्धवकी ओर।

उद्धवने मस्तक झुका लिया—'पता नही किसके लिए, किसके प्रेम परवश आप कव क्या लीला करते हैं। आप पूर्णकामकी क्रीड़ा किन पिपासु प्राणोका प्रतिविम्ब है—आपकी कृपासे मैं देख सकता हूँ।' उद्धवके नमित नेत्रोंने ही मानो यह कह दिया। मस्तक झुकाये वे ऐसे बैठे रहे जैसे उन्हें पता भी न हो कि श्रीकृष्णचन्द्र वहाँसे उठकर भीतर चलेगये। वे तो अपनी ही चिन्ताधारामे निमग्न बैठे रहे।

सैरन्ध्री आज उन्मादिनी होगयी है। उन्मादिनी तो उसे इन्दीवर सुन्दरने उसी दिन वना दिया, जब इससे अङ्गराग माँगा था और आज तो ये उसके घर पधारे हैं। किसी प्रकार सत्कार करके वह भीतर भाग आयी है। उसे पुन. स्नान करना है—शरीर पता नही क्यो स्वेद-स्नात ही होता जारहा है। शृङ्गार किये बिना कैसे जायगी उनके सम्मुख वह।

स्नान, वस्त्रधारण, अङ्गराग, आभरण, माल्य, ताम्बूल, पुष्प-सज्जा—सखियोंने किसी प्रकार उसे सजादिया है। वे भुवन-सुन्दर आगये हैं। वे स्वय उसके कक्षमे आगये हैं और उसे पुकारने लगे है। कितने मधुर स्वरमे वे उसे बुलारहे है, लेकिन पता नही कहाँकी लज्जा आज उसे दबाये देरही है। उसके तो पद ही नही उठपाते है। सखियोंने उसे कक्ष-द्वार तक पहुँचा दिया है और वह वही सिकुड़ी-सिमटी खड़ी होगयी है।

वे कक्षमे है। अपने ही सदनमे उन्हे कहाँ पूछना था किसीसे। वे तो सीधे आगये और शय्यापर बैठे स्नेहसे उसे बुलारहे है। लेकिन सैरन्ध्री क्या करे। उसके तो पद उठते ही नही है।

वे उठे—उठे वे हृदयहारी और आकर अपने करोंमें उसका कर ले लिया—होगया पाणिग्रहण। कृष्ण क्या किसीका हाथ पकडकर उसे छोडना जानते है। सैरन्ध्रीका हाथ उनके हाथमे गया—वह स्पर्श—उस स्पर्शकी माधुरीमे वह मग्न होगयी। उसे पता नही, आगे क्या हुआ। यह दासी उनकी—जन्म-जन्मकी दासी। उन्होने स्वीकार किया—जीवन, प्राण, देह सब कृतार्थ होगये।

'मैंने कितनी-कितनी प्रतीक्षा की तुम्हारी! कमलनयन! अब मैं तुम्हारा सङ्ग छोडनेमे समर्थ नही। कुछ दिन तो रहो और धन्य करो इस दासीको।' सैरन्ध्रीका यह अनुरोध उस रसकी चरम निमग्नावस्थासे जागनेपर—श्रीकृष्ण उसके अन्तरसे, सदनसे जा कहाँ रहे हैं। जा कैसे सकते हैं। वह द्वारपर खडा रथ, उसपर उद्धवके साथ वे लौटे, यह नागरिकोका सत्य है। कुब्जाका सत्य तो यह नही है।



उद्धव व्रज गये

'आप आत्माराम, आप्तकाम महामुनीन्द्रोंके भी परमाराध्य हैं मेरे स्वामी ! साक्षात् सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण परमपुरुष।' उद्धव आज बहुत साहस करके एकान्तसे भगवान वासुदेवके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये हैं—'आपने मुझे—मुझ अपात्रको अपना स्नेह-भाजन बनाया, अन्तरङ्ग सखा बनाया। महाभागा सैरन्ध्रीको कृतार्थ करने जाते समय भी साथ लिया मुझे।'

बहुत दिनोंसे उद्धव उत्सुक हैं—व्याकुल है कहना उचित होगा। ये श्रीकृष्णचन्द्र उनके आराध्य हैं तबसे जब उद्धव शिशु थे। उद्धव अपनी शैशव-क्रीड़ामे भी कृष्णार्चनकी क्रीड़ा ही करते थे और इतनी तन्मयतासे करते थे कि माताके बार-बार बुलानेपर भी अर्चा छोडकर भोजन-प्रातराश आदिको नही आते थे। तब तो देखा भी नही था उन्होंने इन मयूर-मुकुटी वनमालीको। तब उद्धवका अन्त करण इनकी प्रीतिमे पगचुका था और अब तो इन कृपासागरने अपना बनालिया है। अपने साथ रखते हैं—अतिशय स्नेहसे रखते हैं। इनका प्रसाद चन्दन, इनकी पहिनी माला, इनके वस्त्र और इनके थालका उच्छिष्ट प्रसाद पानेका सौभाग्य मिलगया है—प्रतिदिन मिलता है।

'भाई बृहद्‌बल ! तुमसे भी मेरा कुछ रहस्य रहा है ?' श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेह स्निग्ध स्वरमे कहा—'तुमको भी मुझसे कुछ कहने-पूछनेमे सङ्कोच करनेको अवकाश रहा है ?'

'स्वामी ! जब कभी आपके समीप अचानक एकान्तमे पहुँचा हूँ—आपके वात्सल्यने मुझे यह अधिकार दे दिया है।' उद्धव बहुत व्यथापूर्ण स्वरमे बोलरहे हैं—'आपके कमल लोचनोसे अश्रु झरते देखताहूँ। आपको शोकग्रस्त-सा—अत्यन्त उदास, रुदन करते पाता हूँ। मेरे साथ रहते भी आप अनेक बार दीर्घश्वास लेनेलगतेहै। आप आनन्दघनके समीप यह व्यथा -?' उद्धव सिसकने लगे। उनके प्राण पता नही कबसे सिसकते हैं। उनके आराध्य श्रीकृष्ण, और कोई ऐसी पीडा है जो इनके चित्तको भी मथित किये रहती है।

'जानता हूँ—आपके प्रसादसे ही जानता हूँ आपकी महिमा ! निखिल ब्रह्माण्डमे ऐसा कुछ नही जो आपके श्रीचरणोंका स्मरण करनेवालेके लिए अप्राप्य रहजाय। ऐसा कुछ नही जो आपका संकल्प न करसकता हो। अभाव-दु ख, पीड़ा, आपके स्मरणसे नि.शेष होजाते हैं।'

'आप यमुना-तट पहुँचते—यमुनाका नाम लेनेपर भी अपनी सहज प्रफुल्लता खोदेते है। कोई गौ, कोई बछड़ा दीखा और लगता है कि आपके अन्तरमे कोई सुप्त पीडा जाग पडी है। अनेक रङ्गके वस्त्र हैं, अनेक पक्षी हैं, दधि-नवनीत तो जैसे प्रबल निमित्त हैं ही—अनेक अवसरोपर तो मैं कही कोई भी निमित्त समझ नही पाता। आपके श्रीअङ्गकी कान्ति सहसा म्लान होजाती है। आप हँसते-बोलते अचानक मौन होजाते है। अचानक अन्यमनस्क—दीर्घ नि श्वास छोडने लगते है और एकान्तमें मैंने जब देखा, इन दृगोको झरते ही देखा।'

'भक्तवत्सल—केवल भक्तवात्सल्य आपको व्यथित कर सकता है। दूसरा कोई निमित्त नही होसकता आपके अनमने होनेका। तनिक-सी आहट पाते ही आप पटुकेसे मुख पोछकर प्रसन्न बन जाते हैं; किन्तु मुझसे यह सहा नही जाता।'

'सच्चिदानन्दघन, आनन्दकन्द, पूर्णकाम, सर्वेश, सर्वमय, समदर्शी, निर्विकार, निर्लेप, निर्गुण—पता नही भगवान बृहस्पति आपका वर्णन करते क्या-क्या कहते थे और उन सुरगुरुने ही कहा मुझे—'वत्स ! इतना सब होकर भी भक्ताधीन, भक्तवत्सल, भक्त-दु ख-दु.खी है वह सर्वाधार, सर्वकारणकारण।'

'आप नित्य पूर्ण, नित्य निरीह, मन-बुद्धि-वाणीसे परे अचिन्त्य परम प्रकाश, परिपूर्ण परमानन्द—किन्तु प्रथम मैंने पद-वन्दनका उपक्रम किया, तभी आपने देखते ही दौड़कर इन विश्वको अभय देनेवाली विशाल भुजाओंमे भर लिया था—हृदयमे लगा लिया था। आपके वे स्नेह-विह्वल वचन—'मेरे भाई ! मेरे सखा !'—मैं जैसे जन्म-जन्मका इन चरणोंका स्वीकृत सेवक था।'

मुझमे कुछ अन्तर आगया ? कुछ दुराव दीखता है भाई बृहद्बल तुमको ?' श्रीकृष्णने हाथ पकड़ लिया उद्धवका।

'नही मेरे स्वामी ! किन्तु आपकी यह अव्यक्त व्यथा ?' उद्धवने कहा—'आपको अपनोंका तनिक भी क्लेश असह्य है। कौन है वे भुवनवन्द्य ?

ऐसी क्या पीडा है उनकी कि आप उसे दूर नही करपाते हैं ? कोई उपाय— कोई भी उपाय हो नाथ तो उद्धव प्राण देकर भी उसे करनेमे अपना सौभाग्य मानेगा।'

'भाई ! तुम मेरे अन्तरङ्ग सखा हो।' श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्र झरने लगे। उन्होने आज अश्रु पोछनेका भी उपक्रम नही किया—'तुम परम ज्ञानी हो। नीतिज्ञ हो। व्यवहार निपुण हो। तुम्ही यह कार्य करसकते हो। तुम करदो मेरा यह कार्य।'

उद्धव अञ्जलि बांधे हैं। चकित हैं—'ऐसा कौन-सा कार्य है जिसको कहनेमे—जिसका आदेश देनेमे ये मेरे नाथ मुझसे भी इतना सङ्कोच करते हैं। मुझसे भी ये अनुनय क्यो कररहे है आज ?'

'तुम व्रज चले जाओ। हमारे बाबा हैं। मेरी मैया है। मेरे गोप है। मेरी प्रियतमा गोपियाँ हैं और मेरे बालसखा।' कण्ठ भर-भर आता है। बहुत कठिन होरहा है बोलना—'वे कितने वियोगार्त हैं, मैं भी नही बता सकता। उनका प्राण, उनका मन, उनका तन, उनका सर्वस्व मेरा है— मेरे लिए है। वे सबके-सब जीवित ही इसलिए हैं कि जीवन उनका अपना नही है, मेरा है।'

श्रीकृष्णचन्द्र बडी देर तक बोलनेमे असमर्थ—भावमग्न बने रहे। उद्धव हाथ जोड़े प्रतीक्षा करते रहे। बडी कठिनाईसे अपनेको सचेत करके वे बोले—'तुम देखते ही हो कि मैं मथुरासे जा नही सकता हूँ। अब यदि वहाँ जाता हूँ तो मेरे लिए लौटना सम्भव नही होगा। मैं यहाँ हूँ किसी प्रकार—वहाँ जानेपर मथुरा मुझे फिर स्मरण भी नही आनी है।'

उद्धव तो भयभीत—चकित-स्तब्ध रह गये। 'यदि ऐसा है तो इन कमललोचनको भूलकर भी व्रज नही जाना चाहिये। इनके बिना मथुराका— मथुराके लोगोका क्या होगा ? कैसे रहेगे बाबा वसुदेव, माता रोहिणी या माता देवकी ? महाराज उग्रसेन, हम सब यदुवश ही इनके बिना कैसे रहेगे ?'

'तुम व्रज चले जाओ !' श्रीकृष्णने फिर उसी अनुरोध भरे स्वरमें कहना प्रारम्भकिया—'मेरा सन्देश लेकर जाओ। मेरे सन्देशसे उनकी चिन्ता दूर करो। तुम तो परम ज्ञानी हो, व्यक्तिके शोकको उसकी स्थितिके अनुसार समझाकर दूर करनेमे निपुण हो। उन्हे समझाओ। विशेषत गोपियोको—मेरी उन प्रेयसियोको समझाओ ! बाबाको, मैयाको, मेरे बालसखाओको....।' श्रीकृष्ण जानते है कि इनमे किसीको ज्ञानोपदेश करनेका

साहस भी उद्धव नही कर सकते—'इन सबको आश्वासन दे आओ कि मैं उनसे मिलूँगा अवश्य मिलूँगा उनसे।'

'मैं सबको समझा आऊँगा। सबका शोक दूर कर आऊँगा। आप चिन्ता न करें।' उद्धवने शीघ्रतापूर्वक कहा। उनको लगा--'श्रीकृष्ण जब वहाँ जाकर लौटने वाले नही हैं—इनके मनमे वहाँ जानेका किञ्चित भी सकल्प नही रहना चाहिये।'

'मुझे छोडकर उनका मन आधे पलको भी कही नही जाता। उनके प्राण मुझमें लगे है। मेरे लिए उन्होंने स्वजन, परिवार, देहके सब सुख—यह लोक—परलोक सब त्याग दिया। लोक-निन्दा सही, सबकी भर्त्सना सिर ली, सब धर्म मुझपर न्योछावर कर दिया। मैं उन्हे भूल सकूँ, यह सम्भव नही है।' श्रीकृष्णचन्द्र विह्वल कण्ठसे कहते गये—'हाय, वे मेरी गोपकुमारियाँ—मैं उनका परमप्रेष्ठ उनसे दूर बैठा हूँ। मेरे विरहसे व्याकुल होकर वे बार-बार मूर्छित होती है। मैं उनसे कह आया था—'लौट आऊँगा!' वे मुझपर कभी अविश्वास नही कर सकती। मेरे वचनोंपर विश्वास करके वे बड़े कष्टसे किसी प्रकार प्राणोंको रोके होगी। उनके आकुल प्राणोको जाकर आश्वस्त करो।'

'मेरे स्वामी बहुत सदय, अत्यन्त भक्तवत्सल हैं। अब चिन्ता त्याग दें।' उद्धवकी चिन्ता मिटगयी है—'श्रीकृष्णचन्द्रकी व्यथाका यह कारण है। गोप-गोपियाँ—बहुत सीधे—बहुत भोले लोग है वे। उन सीधे, पवित्र, श्रद्धालु लोगोको समझाना कठिन कहाँ है। वे कहाँ कर्कश तर्क कलुषित लोग हैं। उन्हे तो श्रवण समकाल ज्ञान प्राप्त हो जायगा और ज्ञान होनेपर शोकका क्या काम। उनका शोक—उनकी चिन्ता कठिन कहाँ है।'

उद्धवको नही सूझता है कि वे स्वय व्याकुल हो उठे इस आशङ्कासे ही कि श्रीकृष्ण मथुरासे व्रज चले जायँ तो लौटेंगे नहीं। इन परम ज्ञानीके लिए श्रीकृष्ण-वियोगकी सम्भावना असह्य है और व्रजके प्रेमिक प्राणोका वियोग-दुःख ज्ञानोपदेशसे दूर कर देनेकी आशा है उनके मनमे!

'आप आज्ञा दें और अपने इस सेवकपर विश्वास करें।' उद्धवने दृढ स्वरमे कहा—'आपके श्रीचरणोकी कृपासे मैं वहाँ सबका मनस्ताप दूर कर आऊँगा। आप इस चिन्ताको त्याग दें।'

'हाँ भाई! वही करना, जिससे उनका मनस्ताप कुछ कम हो। उनके अन्तरको शान्ति मिले।' बहुत कुछ कहना है। बहुतोको सन्देश देना

है। यह क्रम कभी समाप्त होनेवाला नही है। उद्धव अभी ऐसी मनः स्थितिमे भी कहाँ हैं कि पृथक्-पृथक् सन्देशोको स्मरण रखसके—उनकी महत्ता समझ पावें और ठीक-ठीक ढङ्गसे उन्हे सुनासके।

कुछ सन्देश—कुछ विशिष्ट प्राणोके लिए सन्देश दियेबिना रहा नही जासकता। बहुत संक्षिप्त—उद्धव जितना ग्रहण करसके उतने शब्दोसे, वैसे ही परोक्ष भाषाके सन्देश देने हैं—ये सन्देश तो देने ही है। उद्धवको वार-वार आदेश दिया—'इन सन्देशोको ज्योका-त्यो—बिना व्याख्याके सुनादेना उनको।'

उद्धव व्रज जारहे है। उन्हे ऐसे ही तो नही भेजा जासकता। उद्धव श्रीकृष्णके निजी सन्देश-वाहक होकर जारहे हैं। उन्हे महाराज उग्रसेन, वसुदेवजी देवकीजी अथवा माता रोहिणी या श्रीबलराम तकसे मिलकर नही जाना है। किसी दूसरेका कोई सन्देश—कोई उपहार किसीके लिए नही लेजाना है।

श्रीकृष्णचन्द्र भी राजभवन या अपने सदनसे कोई उपहार नही भेज सकते। ऐसा करनेपर पता लगेगा और पता लगेगा तो व्रजको जाते व्यक्तिके लिए उपहार-सन्देश भेजनेकी उत्कण्ठा कम कहाँ है उनके अपने सदनके ही लोगोंके हृदयमें।

अपने वस्त्र पहिना दिये उद्धवको। अपने आभूषण, अपनी वनमाला, अपना पटुका,—उद्धवका वही श्याम वर्ण, श्रीकृष्णने उन्हे अपने करसे, अपने समान वेशमे सज्जित करदिया और उसी रथपर बैठाया, वही अश्व-जोड़े जिसपर बैठकर वे व्रजसे मथुरा आये थे। दूरतक चलेगये उद्धवके साथ और जब विदा किया—जाते रथको देरतक खडे-खड़े देखते रहे। देखते रहे व्रजकी ओर जाते रथको। बेसुध-से—शिथिल पदो ही उस दिन लौटे वे प्रेमैकधाम।



उद्धव लौट आये व्रजसे

उद्धव व्रजसे लौट आये। पूरे चार मास—वसन्त और ग्रीष्म व्रजमें रहकर पावसके साथ उद्धव लौटे। पावस-मेघोके समान रसभीने, रसमत्त, झूमते—अश्रुवर्षा करते लौटे उद्धव व्रजसे। सर्वथा परिवर्तित—कुछ दूसरे ही वन आये।

उद्धव व्रजसे आये—धूलि-धूसर सर्वाङ्ग, विह्वल होकर वार-वार व्रज-रजमे लोटपोट हुए, डगमग पद, रोमाञ्चित देह, नेत्रोंसे चलती अजस्र वारि-धारा—जैसे कुछ देखते नही, कुछ सुनते नही, लाल-लाल लोचन, चकित होकर इधर-उधर देखते हैं—'कहाँ किस अपरिचित स्थानमें आगये।'

दौड पडे श्रीकृष्णचन्द्र। गिर गया पीतपट। स्रस्त वनमाला, तिरछा हुआ मुकुट। दोनों भुजाये फैलाकर उद्धवको—व्रज-प्रेम परिपूत उद्धवको हृदयसे लगा लिया। हृदयसे लगाये लेगये अपने सदनके भीतर।

'श्रीकृष्ण तुम—तुम इतने निर्मम हो?' उद्धवने घूर-घूरकर देखा। आज उद्धव कुछ दूसरे होरहे हैं। कुछ दूसरे वन आये हैं—अन्यथा परम विनीत उद्धव, श्रीकृष्णके नित्य सहचर, अपनेको दास कहने वाले उद्धव ऐसे वोल पाते—'तुम इतने निष्ठुर हो? व्रज नही जाता तो तुमको कभी पहिचान नही पाता।'

श्रीकृष्णका शरीर—रोम-रोम पुलकित होरहा है। इनके कमल-नयन भर आये हैं। ये सस्मित दृग देखरहे हैं उद्धवकी ओर और उद्धव लाल नेत्रोसे घूरते जारहे हैं। अद्भुत भङ्गीमे, वड़े कठोर ढङ्गसे मानो भर्त्सना कररहे हैं—'तुम व्रज छोडकर यहाँ आ वैठे हो अव तक? व्रज छोड़कर—व्रजकी उन प्रेमैकदेह पावन प्रतिमाओंको छोडकर तुम एक दिनको भी आ कैसे सके?'

'तुमको प्रेममय कहा जाता है? प्रेमको तुम पहिचान पाते हो?' उद्धव आज अपनेको भूल गये हैं। आज वे व्रजके वन चुके हैं। व्रजवासियोके प्रतिनिधि वन गये हैं। उन्हे स्वत्व मिल गया है कि श्रीकृष्णकी जी भरकर भर्त्सना करें—'यहाँ क्या कामहै तुम्हारा? क्यों हो तुम मथुरामें? तुम

किसके लिए यहाँ हो ? कंस मरगया। यदुवंशियोका संकट मिटगया। यह न भी होता, सृष्टिमें कोई प्रलय नही होरही थी कि तुम व्रज छोडकर दौड़े चले आये यहाँ।'

'तुम मथुरासे अभी चलो ! कल नही, परसो नही। आज भी नही, अभी चलो ! इसी समय चलो ! मेरे साथ !' उद्धवने हाथ पकडा—'विश्वास करो, तुम्हारे यहाँसे चले जानेपर भी यहाँ कोई मरेगा नही तुम्हारे वियोगमे। मथुराके लोगोमें इतना प्रेम नही है। ये लोग रोयेंगे—दो-चार दिन रोयेंगे और बस।'

उद्धव असत्य कहते हैं, ऐसा कहनेका साहस नही किया जासकता। वे अधिक स्पष्ट सत्य कहते हैं—'तुम चलो ! मथुराके लोग तुम्हारे साथ व्रजमे चलकर रहना चाहे, क्या बाधा है ? मथुरासे कम ऐश्वर्य है वहाँ ? कम सुविधा मिलेगी इनको ? व्रजपति आतिथ्य करनेमें, आवास देनेमे असमर्थ हैं या कृपण होगये है ? लेकिन श्रीकृष्ण यहाँसे कदाचित् चार-छ. जन जायँ वहाँ तुम्हारे साथ रहनेके लिए। तुम इन लोगोके लिए यहाँ हो ?'

'व्रजकी बात पूछोगे ? तुमको भी व्रजकी दशा पूछना है ?' उद्धव भगवान वासुदेवका हाथ पकडे रुदन करने लगे हैं—'यह वृहद्बल तुम्हारे सामने तड़पकर क्षणभरमें मर जापाता—कदाचित् ही व्रजके वियोगका कोई अंश तब भी तुम्हे समझापाता।'

'श्रीकृष्ण आवेंगे—उन्होंने कहा है तो आवेगे ही। किसी दिन तो आवेंगे।' व्रजके जन-जनमें यह दृढ विश्वास जमा बैठा है। वे जीवित ही केवल इसीलिए हैं—'वे आवेगे और देखेंगे कि हम उनके वियोगमें मर गये तो उनके कमल-लोचनोसे अश्रु वहेगे। वे दु:खी होंगे। उदास-निराश होंगे।'

'श्रीकृष्ण ! कुछ मत कहो। कोई वहाना मत करो।' उद्धव हाथ पकडकर मचल पड़े हैं—'उठो उठो ! और व्रज चलो अभी ! इसी समय। तुम्हारे यहाँसे जानेसे त्रिभुवनमे प्रलय होती हो तो हो जाने दो। तुम चलो !'

'उद्धव ! मेरे भाई !' श्रीकृष्णका मेघ गम्भीर स्वर—'कहाँ चलूँ मैं ? किनके समीप चलूँ ? व्रजकी कुमारियाँ, व्रजके गोपकुमार, व्रजजन मुझसे दूर हैं कि मैं उनके पास चलूँ ? मैं उनसे दूर हूँ कि वे यहाँ आवें ? तुमने किसी गोप-वाला—किसी गोपकुमारके श्रीअङ्गको ध्यानसे देखा

होता। उनके रोम-रोममे श्रीकृष्ण दीखता तुम्हें। तुमने नही देखा--देख नही सके। अव यहाँ श्रीकृष्णको ही ध्यानसे देख लो।'

'ओह ! मेरे स्वामी !' कुछ क्षण देखते रहे उद्धव श्रीकृष्णके श्रीविग्रहको और फिर चरणोंसे लिपट पड़े। रोम-रोममे गोपवाला, गोपकुमार, व्रजजन--श्रीकृष्ण व्रजमय। यही तो श्रीकृष्णचन्द्रका वास्तविक स्वरूप है।

व्रजका सन्देश है। व्रजके उपहार हैं--महाराज उग्रसेनसे लेकर सेवको तकके लिए उपहार है। उन्हे स्वय श्रीकृष्णचन्द्र वितरित करेंगे। वे स्वय देंगे सवको--वे उनके अपनोंके--व्रजके जनोंके उपहार है।

—x—

वसुदेवजीकी सन्तति

'पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम्।' भागवत १०.१.५६

वसुदेवजीके देवकीसे नौ सन्तान हुई। इनमे आठ पुत्र और अन्तिम कन्या। ये एक-एक वर्षके अन्तरसे होतेगये। इनके नाम हैं--१ कीर्तिमन्त, २ सुषेण, ३ भद्रसेन, ४ ऋजु, ५ सम्मर्दन, ६ भद्र। इन छ: को उत्पन्न होते ही कसने मार दिया।

सप्तम गर्भमें श्रीसङ्कर्षण आये। योगमायाने उन्हें माता रोहिणीके गर्भमे पहुँचा दिया। वही वल या वलराम नामसे रोहिणीजीके प्रथम पुत्र हुए। वसुदेवजीके जीवित रहने वाले पुत्रोंमें ज्येष्ठ ये राम ही हैं।

अष्टम पुत्र माता देवकीके श्रीकृष्ण स्वयं परिपूर्णतम परमपुरुष भगवान वासुदेव और इनसे एक वर्ष छोटी सुभद्रा।

श्रीसङ्कर्षण, श्रीकृष्ण, सुभद्रा--ये तीनों इसी क्रमसे वसुदेवजीके पुत्रोंमे--सन्तानोंमें वड़े हैं। सुभद्राके छोटे भाई विमाताओंसे वहुत हुए; किन्तु वडे भाई उनके दो ही हैं--श्रीवलराम और श्रीकृष्ण। देवकीजीके और कोई सन्तान नही हुई।

वसुदेवजीके अठारह पत्नियाँ थी। उनमें सबसे छोटी थी देवकीजी। वसुदेवजीका विवाह उनके पिता शूरसेनजी--ठीक कहना हो तो उनकी

माता मारिषा करती चलीगयी। इसलिए करती गयी; क्योकि उनके पौत्र नही होरहा था। वसुदेवजीकी किसी पत्नीको दीर्घकाल तक कोई पुत्र नही हुआ। वंश-परम्पराकी—ज्येष्ठ पुत्रके वंश-परम्पराकी रक्षा माताको आवश्यक लगती थी।

वसुदेवजी माता-पिताके भक्त, विनम्र सेवक। उनके लिए प्रतिवादका प्रश्न ही नही था। उग्रसेनजीके भाई देवकजीने अपनी ज्येष्ठा पुत्री दी वसुदेवजीको। उनके जव सन्तान नही हुई, दूसरे विवाहकी बात उठी—अपनी दूसरी पुत्री विवाह दी। इस क्रमसे उनकी पुत्रियाँ वसुदेवजीको ही विवाही जातीरही। जव देवकजीकी कन्याओसे सन्तान नही होती दीखी, देवी मारिषा अन्य कुलोंसे भी पुत्रवधुएँ लेआयी। परिणाम तब भी कुछ नही हुआ।

देवकजीकी सवसे छोटी कन्या देवकीजी। उनके विवाहकी कथा प्रारम्भमें दी जाचुकी है। वे आयी और वसुदेवजीके सन्तान होना प्रारम्भ होगया—किन्तु उनके विवाहके साथ ही एक अभिशाप लग गया। कंस उनकी सन्तानोंको मारता चलागया। उसने दम्पत्तिको कारागारमे रुद्ध करदिया। वसुदेवजीकी दूसरी पत्नियाँ मथुरासे इधर-उधर शरण लेनेको विवश हुईं।

देवकीजीके अष्टम पुत्र हो जानेके पश्चात् योगमायाकी वाणी सुनकर कंस आतङ्कित हुआ। उसने देवकी-वसुदेवको कारागारसे मुक्त किया। सुविधा देखकर वसुदेवजीकी अन्य पत्नियाँ मथुरा आयी, किन्तु रोहिणीजी व्रजमे ही रही। देवकीकी अन्तिम सन्तान सुभद्रा कारागारसे बाहर हुई, लेकिन वसुदेवजी अपने व्रजमे वसरहे पुत्रोके ही चिन्तनमे रहे। उनके किसी पत्नीसे उस कालमे—राम-श्यामके व्रज रहते कोई सन्तान नही हुई।

इस कालमे वसुदेवजीके भाइयोमे अनेकोके पुत्र हुए। मथुरामे और मथुराके वाहर जहाँ उन्होंने शरण ली थी, वहाँ भी हुए। वसुदेवजीके छोटे भाई देवभागके पुत्र वृहद्‌बलका ही नाम उद्धव है और वे श्रीकृष्णसे कुछ मास ही छोटे थे। देवभागजीपर कृपा करके देवराज इन्द्र उनके इस पुत्रको शैशव समाप्त होते ही अमरावती लेगये। वहाँ देवगुरु वृहस्पतिके द्वारा उद्धवको शिक्षा मिली। कस-वधके पश्चात् मथुरामे वे यादवोके प्रमुख मन्त्री और श्रीकृष्णके अन्तरङ्ग सखा बनगये।

माता रोहिणी व्रजमें लगभग साढे बारह वर्ष रहकर लौटी। मथुरा आनेपर उनके सन्तान हुई और उनके मथुरा लौटते ही वसुदेवजीकी अन्य पत्नियोंके भी सन्ताने होनेलगी।

गोपियाँ कहती थी—'देवी रोहिणीके श्रीचरण सन्तानका वरदान देते हैं। वे व्रज पधारी और व्रजरानी यशोदाकी कोख भरगयी। बूढ़े नन्दजीके पुत्र हुआ। नन्दजीके भाई सन्तानवान हुए।'

श्रीरोहिणीजीमें यह प्रभाव सम्भवत उनके सङ्कर्षण-माता बननेके साथ आया। अत जब वे व्रजसे मथुरा पतिके समीप आयी, उनके तो और पुत्र हुए ही, उनकी सपत्नियोकी गोद भी भरी। कई-कई पुत्र हुए उनके। उनमे-से कुछके पुत्रोकी थोड़ी नामावली मात्र प्राप्त है।

रोहिणीजीके श्रीबलरामके अतिरिक्त छ पुत्र और थे। १ गद, २ सारण, ३. दुर्मद, ४ विपुल, ५ ध्रुव, ६ कृत। इनमें गद महारथी और गदा-युद्धके लोकविख्यात वीर थे। इनके कारण ही श्रीकृष्णका एक नाम गदाग्रज पडगया, क्योकि गद अपने इन अग्रजके सदा अनुवर्ती और प्रीति-भाजन बनगये।

वसुदेवजीकी पत्नी पौरवीसे बारह पुत्र हुए। उनमे-से प्रधानोके नाम हैं—१ सुभद्र, २ भद्रवाह, ३ दुर्मद, ४ भद्र, ५ भूत आदि।

देवी मदिराके पुत्रोका नाम अपने भाई—अपने अतिशय सुहृद् व्रज-पतिका स्मरण करके वसुदेवजीने नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर आदि रखे।

देवी कौसल्याके एक ही पुत्र हुए केशिन। अत्यन्त सुन्दर केशोके कारण इनका यह नाम पडा था। ये अपने शौर्यके लिए प्रसिद्ध हुए।

रोचना देवीके हस्त, हेमाङ्गद आदि पुत्र हुए। देवी इलाके पुत्र उरु, वल्क आदि तो यादव-शूरोंमे प्रमुख गिनेजाते थे। देवी घृतदेवाके भी एक ही पुत्र हुए विपृष्ठ। शान्तिदेवाके पुत्र थे श्रम, प्रतिश्रुत आदि।

उपदेवाजीके दस पुत्र हुए। उनमे प्रमुख पुत्रोंके नाम हैं—राजान, कल्प, वर्ष। इसी प्रकार श्रीदेवाजीके छ पुत्रोंमे मुख्य हुए—वसु, हस, सुवंश।

देवी देवरक्षिताने नौ पुत्र पाये। इनके भी ज्येष्ठ पुत्रका नाम गद ही रखागया था। सहदेवाजीके आठ पुत्र थे। इनमे पुरु, विश्रुत—ये मुख्य है। ये आठों भाई इतने धर्मात्मा थे कि लोग इन्हे साक्षात् धर्मका अवतार एव अष्टवसुओंका अश कहते थे।

वसुदेवजीकी पत्नियोंके ये पुत्र मथुरामेही हुए। इनमे-से अनेकोकी आयुमें कुछ दिनोंका ही अन्तर था। वसुदेवजीका भवन उनकी पत्नियोकी सन्तानोंसे भरगया। उनके भाइयोकी पत्नियोके भी कई-कई पुत्र हुए। दीर्घकाल तक पौत्रो का मुख देखनेको तरसती रही थी देवी मारिषा और फिर उनको पितामहीका गौरव देनेवाले बहुत अधिक एकसाथ आगये उनके पुत्रोके गृहोमें। उनकी अभिलाषा भली प्रकार पूर्ण होगयी।



अक्रूरके भवनमें

अक्रूरके मनमें ग्लानि थी—'मैं कसका दूत बना। क्या होजाता यदि मेरे अस्वीकार करनेपर कस मुझे मार ही देता। मेरे मनमें देह-गेह-परिवार-प्रतिष्ठाका प्रबल मोह है। भगवान वासुदेव मेरे गृह कैसे आ सकते थे।'

अक्रूरने सुनलिया था कि श्रीराम-कृष्ण उसी दिन, बिना बुलाये सुदामा मालीके घर सखाओके साथ गये। वह महाभाग मालाकार धन्य है। मथुरामें रहते हुए भी तो उसने कसकी एक दिन भी सेवा नही की। कसके रुष्ट होनेकी ही कब चिन्ता की उसने। उसने तो अपनी आयके सब साधन स्वय त्याग दिये। भगवान वासुदेवसे अधिक कौन प्रीतिको पहिचान सकता है। वे उस मालाकारके घर स्वय गये तो क्या आश्चर्य। वह उनके सेवकका घर था।

श्रीकृष्ण गुरु-गृहसे लौटे और सैरन्ध्रीके घर गये। सर्वेश्वर—उनको किसीसे कुछ छिपाकर करनेकी आवश्यकता कहाँ है। दासी सही कुब्जा—उसके साहस, उसके त्याग, उसके समर्पणकी कोई स्पर्धा कैसे करेगा। कंस जीवित था—मथुराका सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अधिपति था और उसके लिए जानेवाला अङ्गराग कुब्जाने राम-कृष्णको दिया था। वह वहीसे घर लौट गयी। उसने तो ध्यान नही दिया कि कस प्रतीक्षा करेगा अङ्गरागके लिए उसकी। रुष्ट होकर कुछ अनिष्ट भी करसकता है। इतनी निर्भयता—इतना साहस—श्रीकृष्ण सैरन्ध्रीके इस समर्पणका सम्मान न करें तो उन्हे भक्तवत्सल कैसे कोई मानेगा?

कहाँ है अपनेमें साहस ! कहाँ है उनके श्रीचरणोमें प्रीति ! कहाँ है उनका विश्वास—उनपर निर्भरता ! अक्रूर ! तुमने तो सब कुछ जानते हुए उन्हे सङ्कटोंके मध्य—मृत्युके मुखमें पहुँचा देनेमे कोई बात अपनी ओरसे बाकी नही रहने दी। तुमने कसका अभिप्राय उन्हे वतलादिया—बडी कृपा की। तुम झूठ नही बोले, वस यही तुम्हारी महानता है। तुम कैसे आशा कर सकते हो कि वे भुवन-पावन तुम जैसे कंसके सेवकके भवन पधारेंगे ?

'हे अधोक्षज ! आप मेरे भवन पधारें।' कितनी धृष्टता थी तुम्हारी—तुमने यह प्रार्थना करनेका साहस किया और स्पर्धा तो तुम्हारी वहुत वडी है- तुमने दैत्येन्द्र वलि, सगरात्मजो तकका ही नही—भगवान गङ्गाधर तकका नाम लिया। तुम चाहते थे कि तुम भी इनके समान उन परमपुरुपके श्रीचरण-प्रक्षालनका सौभाग्य प्राप्त करो। तुमने पितर, देवता अग्नि सव एकसाथ परम तृप्त करलेने चाहे। अपने भवनको तीर्थ वना देनेकी कामना की—कंसके सेवकका भवन और तीर्थ वन जाय ! तुमको उन परम समर्थने तिरस्कृत नही कर दिया—सम्मान देकर विदा किया, यह उनका शील, उनका अनुग्रह; किन्तु तुम्हारी स्पर्धा तो तिरस्कार ही पाने योग्य है।'

अक्रूरजी महाराज उग्रसेनके राज्यमे दानाध्यक्ष थे। कसने भी उन्हे पदच्युत नही किया। कंस मरगया और महाराज उग्रसेन पुन सिंहासनपर आये। अक्रूरका पद ज्योका-त्यो वना है; किन्तु वे साहस नही करपाते भगवान वासुदेवके सम्मुख पडनेका। उनके मनकी ग्लानि—उनकी व्यथा ! अब कोई मार्ग भी तो ग्लानिसे निकलनेका उनके समीप नही रहगया है।

जो अन्तर्यामी है, करुणा-वरुणालय है, वह अकारण कृपालु भी तो है। उनसे प्रार्थना ही करनी पडे, यह कहाँ आवश्यक है। श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजको रथपर वैठाया और उद्धवको भी साथ लिया। रथ अकस्मात् अक्रूरजीके द्वारपर आखडा हुआ।

अक्रूरने रथसे उतरते देखा और दौड़े। श्रीसङ्कर्षण, श्रीकृष्णचन्द्र, उद्धव—तीनो ही उनके चरणोंमें प्रणत होने जारहे थे। किसी प्रकार अक्रूरने उन्हें बाहुओंमें लेकर हृदयसे लगाया। उन्हे भवनमें लाकर आसन दिया। अक्रूर अब दोनों भाइयोंकी चरण-वन्दना करते हैं और दोनो भाई उनको अभिवादन करते कहते है—' पितृव्य ! आप यह क्या करते हैं ?'

आज अक्रूरकी अभिलाषा पूर्ण हुई। आसनपर बैठाकर उन्होने दोनो भाइयोके चरण धोये। वे तो उद्धवके भी चरण धोते यदि उद्धवने अत्यन्त आग्रहसे रोका न होता। अर्घ्य, पाद्य, आचमन, वस्त्र, दिव्य गन्ध, माला, आभूषण—अक्रूरने विधिवत् पूजन किया दोनो भाइयोका।

राम-कृष्णका चरणामृत मस्तकपर चढाया। भवन सिञ्चित किया उससे, और अन्तमे उन चारु चरणोंपर मस्तक रख दिया। पादपीठके समीप बैठकर दोनो भाइयोके चरण अपने अङ्क मे लेलिये और उनको दवाने लगे।

शान्त-स्थिर बैठेरहे राम और कृष्ण। सुप्रसन्न पूजा स्वीकार की उन्होने अक्रूरकी। अन्तत वे आज अक्रूरके भवनमे अतिथि बने हैं। विना सूचना आये हैं। अतिथि छोटा कहाँ होता है। वह तो साक्षात् नारायणका स्वरूप है—पूज्य है। उसे धर्मत पूजा स्वीकार करनी चाहिये। गृहपतिके धर्ममें व्याघात बनना उसके लिए अधर्म ही होता है।

'वड़े सौभाग्यकी वात कि पापी कस अपने अनुचरोके साथ मारा गया और यह यादवकुल दुरन्त विपत्तिसे आपके द्वारा मुक्त किया गया—समृद्ध वना दिया गया।' अक्रूरके स्वरमे अपने कर्मके प्रति पश्चात्ताप और क्षमा-याचना स्पष्ट है।

'आप दोनो जगत्कारण, जगन्मय प्रधान एव पुरुष हैं। आप दोनोके अतिरिक्त कुछ है ही नही। न कुछ आपसे श्रेष्ठ है, न कनिष्ठ, न समान।' अक्रूर स्तुति करते रहे। वे विद्वान-शास्त्रज्ञ ठहरे। उनके अनुरूप ही उनकी स्तुति है।

'प्रभो! आपने ही कहा है कि जब-जब सनातन वैदिक मार्ग पाखण्डियो, असत्पुरुषोके द्वारा सङ्कट-ग्रस्त होता है, तब-तब आप सत्वगुणका आश्रय लेकर अवतार धारण करते है। अत इस समय अपने अशसहित महाभाग वसुदेवजीके घरमे आपने अवतार लिया है। पृथ्वीका भार दूर करना है आपको, अत. सैंकडो अक्षौहिणी असुर-नरेशोकी सेनाका आप सहार करेंगे ही। इस यदुकुलके यशका विस्तार करेंगे पृथ्वीमे।'

'आप सम्पूर्ण देवताओ, पितरो, मनुष्यो—समस्त प्राणियोके स्वरूप-सर्वरूप, सर्वमय हैं—आप जगद्गुरु अधोक्षज इस भवनमे पधारे। इससे वडा सौभाग्य इस गृहका और क्या होगा। आज यह घर भाग्यवान हुआ।'

अक्रूरजी कह रहे हैं कि अपने गृहोको परमपवित्र करनेकी उनकी उत्कट कामना आज पूर्ण हुई—'आपका चरणोदक ही तो सुरसरि है जो त्रिलोकीको पवित्र करती हैं।'

'कौन विद्वान है—समझदार है जो आपको छोडकर किसी औरकी शरण लेगा ? आप भक्त-प्रिय, भक्त-सम्मानदाता, सुहृद, परम कृतज्ञ—अरे आप तो ऐसे सुहृद् हैं कि अपना भजन करनेवालेकी सम्पूर्ण कामनायें तो पूर्ण करते ही हैं, अपने-आपको भी उसे देदेते हैं।'

'योगेश्वर भी जिनकी गतिको जान नही पाते, सुरेन्द्र तो जानेंगे ही कैसे, वे आप जनार्दन सौभाग्यसे आज मुझे प्राप्त हुए—आपने मुझपर विश्वास किया। मुझे स्वीकार है, मैं जानता हूँ कि मैं पुत्र, स्त्री, धन-भवनादिके मोहकी रस्सीसे जकड़ा हूँ, किन्तु यह आपकी ही तो माया है। करुणासागर ! कृपा करके अपनी मायाके इस वन्धनको काट दीजिये।'

अक्रूरकी स्तुति सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसपडे। उनका हास्य ही तो माया है। बोले—'आप हमारे बड़े हैं— पितृव्य हैं। कुलमे प्रशसनीय हैं। सदाके हमारे हितैषी हैं। हम तो आपके द्वारा रक्षणीय, पोषण-पालन करने योग्य हैं। आपके पुत्र हैं। हमपर आपको अनुकम्पा रखनी चाहिये।'

अक्रूरजीके मनकी ग्लानि—'वे कंसके सेवक, कसके दूत वने' इसका भी उपाय होना चाहिये और देवी कुन्ती—अपनी सगी बुआ अपने पुत्रोके साथ लगभग असहाय होगयी हैं। अन्धे राजा धृतराष्ट्र अपने कुटिल पुत्रोके वशमे हैं। अपने भ्रातृ-पुत्र पाण्डवोके साथ वे समानताका—स्नेहका व्यवहार तो नही करते, अनेक क्रूर प्रयत्न उन पितृहीन बालकोको मारनेका करचुके हैं। उनके ये प्रयत्न शिथिल तो हुए नही हैं। देवी पृथाको आश्वासन मिलना चाहिये कि कोई है—कोई समर्थ है जो उनके साथ है। उनकी विपत्ति उसके कृपापूर्ण नेत्रोसे वहिर्भूत नही और वह उपेक्षा नही करेगा। उसपर विश्वास किया जासकता है। उसपर निर्भर रहा जासकता है।

अक्रूरको श्रीकृष्णने अपना दूत बनाया। उनसे बडी नम्रतासे कहा—'चाचाजी ! आप हस्तिनापुर चले जायें। पाण्डवोको देख आवें। उनका समाचार ले आवें। पिताके परलोकवासी होनेपर वे बालक माताके साथ असहाय होगये। सुना है कि राजा धृतराष्ट्र उन्हें लेआये और वे

हस्तिनापुरमें ही रहते हैं। धृतराष्ट्र अपने शठ पुत्रोके वशमें है। दृष्टिहीन होनेसे स्वय कुछ देख भी नही पाते। वे पाण्डुपुत्रोके साथ विषम व्यवहार करते है। आप जाकर देख आवे कि इस समय उनकी क्या अवस्था है। उनका समाचार पाकर मैं अपने उन भाइयोंके मङ्गलका प्रयत्न करूँगा।'

अक्रूरको तो मानो वरदान मिला। राम-कृष्ण-उद्धव विदा लेकर, प्रणाम करके लौट आये। अक्रूर गये हस्तिनापुर और जब लौटे—पाण्डवोंके उत्पीडनका ही तो समाचार देनापडा उन्हे। धृतराष्ट्र समझने-समझानेकी स्थितिमे कहाँ थे।

—०—

जरासन्धका आक्रमण

कस मारा गया। उसकी पत्नियाँ अस्ति और प्राप्ति जरासन्धकी पुत्रियाँ थी। बडे बलवानकी पुत्रियाँ। वे पतिकी अन्तिम क्रियाके पश्चात् मगध चली गयी अपने पिताके घर। उन्होने किसीसे नही कहा, किसीसे नही पूछा। लगभग छिपकर ही रथपर मथुरासे निकल गयी। उनके मनमे प्रबल रोष था—'हमारे पतिको मारकर उनका शव घसीटते रहे कृष्ण और यदुवशी बैठे देखते रहे। किसीने मना नही किया। जैसे वह सम्राट् न होकर किसी पशुका शव हो—पशुके शवका भी ऐसा अपमान नही किया जाता।'

'हम रोती-बिलखती रही, हमारी ओर ध्यान देनेवाला ही कोई नही था। अब हमारा कौन बैठा है मथुरामे।' वे गयी और अपने पितासे उन्होने जितना बना, बढा-चढाकर ही कसके शवके अपमान और अपनी उपेक्षाकी बात कही। जरासन्धको भली प्रकार भडकाया।

'मथुराका नाम मिटा दूँगा मैं पृथ्वीपरसे।' जरासन्ध क्रोधोन्मत्त होकर बोला—'लोग भूल ही जायँगे कि धरापर कोई मथुरा नामका नगर भी था और कोई यदुवशी जाति भी रहती थी। मथुराके खण्डहरोका चिह्न भी नही रहने दूँगा।'

क्रोधावेशमे कुछ भी बक जाना एक बात हे और उसे कार्यरूप देना दूसरी बात। जरासन्ध बलवान था, मनस्वी था, अधिकाश नरेश उसे अपना अग्रणी मानते थे। वह विवेकहीन था, यह आक्षेप उसपर कभी किसीने नही किया। वह कसकी शक्ति जान चुका था। महागज कुवलयापीड उसीने कसको दिया था। उस गजको और कसको जिसने मार दिया समस्त सहायकोके साथ, उसकी शक्ति सर्वथा उपेक्षा करने योग्य मगधराज मान लेता तो मूर्ख सिद्ध होता। उसे मथुरापर आक्रमण तो करना था; किन्तु पूर्णत सुसज्ज होकर करना था। क्रोधके आवेशमे तत्काल नही चल पड़ना था। अपने सहायक, समर्थक सब राजाओको उसने समाचार भेजा। सबको अधिक-से-अधिक सेना लेकर जितनी शीघ्र होसके आनेको कहलाया। कहला दिया—'इस अवसरपर अनुपस्थितिको वह अमित्रता मानेगा।'

मथुरामे अस्ति-प्राप्तिके जानेकी उपेक्षाकी गयी। वे विधवा कुलवधुएँ थी। उनका मन यदि पतिहीन स्वसुरगृहमें नही लगता तो पिताके घर रहे। वे पिताको मथुराके सर्वनाशपर उतारू करदेगी, यह किसीने कल्पना नही की। फलत मगधराजके आक्रमणके विरुद्ध पहिलेसे कोई सुरक्षाका प्रबन्ध नही किया गया।

जरासन्ध और उसके सहायकोको सेना एकत्र करनेके लिए समय पूरा मिला था। राम और श्रीकृष्ण गुरु-गृह शिक्षा पाने अवन्तिका चले गये। दो-ढाई मास उधर लगगया। लौटे तो कृष्णचन्द्रने उद्धवको व्रजमे भेज दिया। चार-महीने—वसन्त, ग्रीष्म—व्रज रहकर उद्धव लौटे। पावसमे कोई सैनिक अभियान चलाया नही जासकता था। शरद ऋतुके प्रारम्भसे ही जरासन्धके सहायक नरेश सेनाके साथ आने लगे। शरद ऋतु समाप्त होनेपर मगधराजने मथुरापर चढायीके लिए प्रस्थान किया। उस समय तेईस अक्षौहिणी सेना तथा अनेक मित्र एव सहायक नरेश उसके साथ थे।

'जरासन्धने अपार सेना लेकर आक्रमण करदिया। वह प्रलयपयोधिके समान बढता आरहा है।' मगधराज जब बहुत समीप आगया तब मथुराके लोगोंको पता लगा। नगरमें आतङ्क छागया। रात्रिमें और दिनमें भी नगरद्वार बन्द रखे जाने लगे। विशेष अनुमतिपर ही कोई नगरमे आ पाता या नगरसे बाहर जापाता था। नागरिक स्त्री-पुरुष बहुत भयभीत होगये थे।

जरासन्धने मथुरासे कुछ दूरीपर ही रुककर व्यूह-रचना की । उसने साथ आये नरेशोको एकत्र करके आदेश दिया—'मद्रराज शल्य, कलिङ्गराज श्रुतायु, चेकितान, वाह्लीक कश्मीरराज गोनर्द, करूषराज दन्तवक्र, पर्वतीय किन्नरराज द्रुम—ये अपनी सेना लेकर मथुराके पश्चिम द्वारपर आक्रमण करेंगे और सावधान रहेगे कि उधरसे कोई नगरसे किसी भी समय, किसी भी वेशमे, किसी भी वहाने निकल न सके।'

'पौरव वेणुदारि, वैदर्भ सोमक, भोजाधिप रुक्मी, मालवराज सूर्पाक्ष, अवन्ती-राजकुमार विन्द और अनुविन्द, छागलि, पुरुमित्र, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त और पञ्चनद ये उत्तर द्वारको घेर ले।'

'शकुनि-पुत्र उलूक, सव्यसाची एकलव्य, क्षत्रधर्मा, जयद्रथ, उत्तमौजा, कैकय राजकुमार, विदिशा-नरेश वामदेव, सिनीपति साङ्कृति मथुराके पूर्वद्वारको लक्ष्य बनावे।'

'मैं स्वय दरद और चेदिराज शिशुपालके साथ दक्षिण द्वारकी ओरसे आक्रमण करता हूँ।'

'सम्पूर्ण नगरको—सभी भवनोको एक ओरसे ध्वस्त कर देना है। धूलिमे मिला देना है मथुराको।' जरासन्धने पूरे आवेशमे आदेश दिया—'मैं जानता हूँ कि नगरमे देव-मन्दिर हैं, बहुतसे अवध्य भी हैं, किन्तु इनके विनाशका प्रायश्चित्त हम पीछे करलेगे। मैं अपने जामाताका पूरा प्रतिशोध लूँगा। मथुरा नगर तथा यहाँ रहनेवाले किसीका चिह्न मत छोड़िये। कोई दया किसीपर भी नही। विनाश—केवल विनाशका महाताण्डव मैं यहाँ देखना चाहता हूँ।'

'आर्य! जरासन्ध पूरी तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र करलाया है। अपने अधीनस्थ सब नरेशोको और उनकी सेनाको एकत्र करके आया है वह मगधराज।' श्रीसङ्कर्षणको एक ओर लेगये श्रीकृष्णचन्द्र और उनसे बोले—'भूमिका भार ही दूर करनेके लिए तो आपका अवतार हुआ है धरापर। यह तेईस अक्षौहिणी भार तो अभी दूरकर देना, किन्तु जरासन्ध अच्छा माध्यम है। उसे छोड दिया जाय तो वह इसी प्रकार सैनिक एकत्र करके लाता रहेगा। अत उसे छोड ही देना उचित रहेगा।'

'यह लीजिये! आपका तालध्वज दिव्य रथ और आपके प्रिय आयुध हल-मुशल भी आगये।' श्रीकृष्णचन्द्रने केवल दृष्टि उठाकर गगनकी ओर

गम्भीर भङ्गीसे देखा था। दो प्रकाश-पुञ्ज उतरते दीख पड़े थे। क्षणभरमें तो दिव्य अश्वोंसे जुड़े, आयुधो सहित दो रथ उतरकर सामने भूमिपर खड़े होगये। तालध्वज रथसे सारथि सुमति उतरे और श्रीसङ्कर्षणके सम्मुख आये। चारो श्वेत, श्यामकर्ण अश्व, गरुडध्वज दिव्य रथसे उतरकर सारथि दारुकने हाथ जोडकर भगवान वासुदेवके चरणोंमें मस्तक झुकाया। साथही मूर्तिमान अत्यन्त विशाल दिव्यायुध आकर सम्मुख उपस्थित होगये। मांसभक्षी भयानक भूत-प्रेतोका दल आया था दोनो रथोके साथ। वे उछलते-कूदते ऐसे प्रसन्न थे, मानो महोत्सव मनाने आये हो।

श्रीबलरामजीने दाहिना हाथ बढाकर सावर्तक नामक अपना हल उठाया और फिर बाये हाथसे सौनन्द मुगल लेकर वे अपने रथपर जाबैठे। श्रीकृष्णके रथपर बैठते ही कौमोदकी गदा उनके दक्षिण करमे आगयी। उनका सहस्त्रार महाचक्र घूमने लगा भयङ्कर घरघराहटके साथ। श्रीकृष्ण आज इसी क्षणसे सबके लिए चतुर्भुज होगये। वैसे मथुराके लिए अधिकाश लोग तो अपने इन भगवान वासुदेवको प्रारम्भसे ही चतुर्भुज देखते आ रहे हैं।

'आर्य! नगरवासी—आपके ये आश्रित बहुत भयभीत हैं। इनका भय निवारण अब शीघ्र होना चाहिये।' श्रीकृष्णने अग्रजसे अनुरोधपूर्ण स्वरमे कहा।

'कृष्णचन्द्र! तुम्हारे आश्रितोकी छायासे भी भय दूर रहता है।' श्रीबलराम हंसकर बोले—'तुम लीला करना चाहते हो तो मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ।'

बात स्पष्ट थी। जिसके तनिक-सा भ्रूपर बल देनेपर महाप्रलय अनन्त-अनन्त ब्राह्मण्डोंको निगल लेता है, वह अपने आश्रितोंके भयकी चर्चा क्यो करे? वह केवल संकेत कर दे तो उसके ये अग्रज—महाप्रलयमे केवल इनकी हुङ्कारसे ब्रह्माण्ड सूखे गोबरके समान भस्म होजाता है। मगधराज और उनके साथकी यह सेना—इसके संहारके लिए अस्त्र-शस्त्रकी अपेक्षा है इन्हे? लेकिन ये छोटे भाई लीलामय हैं। इस समय ये रण-क्रीड़ा करना चाहते हैं तो अग्रजको कहां आपत्ति है।

दोनो भाइयोंके रथ बढे नगरके राजपथसे दक्षिणकी ओर। महाराज उग्रसेनतो पूरी यादव-वाहिनी साथ भेजना चाहते थे, किन्तु श्रीकृष्णने रोक दिया—'सेनाकी आवश्यकता नगरमें लोगोको शान्त-अनुशासित बनाये

रखनेके लिए है। लोग भयभीत होकर इधर-उधर भागने न लगें, उन्हे आश्वस्त रखना है। सैनिक शस्त्र-सन्नद्ध राजमार्गोपर सञ्चरण करते रहेगे तो लोगोका धैर्य बना रहेगा। हमारे साथ थोडेसे चुने हुए रथारोही जायँगे। जो विशाल वाहिनी चढायी करने आगयी है—उससे द्विगुण सेना जब युद्ध-क्षेत्रमे उतारी नही जासकती तो अत्यल्प सेना लेकर सूची-व्यूह ही सफल हो सकता है। अधिक सैनिक होंगे तो उनकी सुरक्षाकी चिन्ता हमे सम्पूर्ण शक्तिसे आक्रमण करनेमें बाधा देगी।'

बात उचित हो या न हो, भगवान वासुदेवका आदेश महाराज उग्रसेनके लिए भी सम्मान्य ही है। श्रीकृष्णने स्वय रथारोहियोको चुना और उनको लेकर चलपड़े। उन्हे भी मार्गमें ही आदेश मिल गया—'आप सब केवल मेरे और अग्रजके रथोके पृष्ठ-रक्षक रहेगे। आपमें किसीको न युद्धमे आगे बढना है, न स्वय कही आक्रमण करना है। हमारे रथोपर पीछेकी ओरसे कोई आक्रमण न करे, केवल इतनी सावधानी रखे।'

दक्षिण द्वार खुला और दोनो रथ थोडेसे दूसरे रथारोही सैनिकोके साथ बाहर आगये। द्वार बन्द होगया। जरासन्ध कुछ समझे, देखे तब तक तो श्रीकृष्णके अधरोंसे पाञ्चजन्य लगचुका था और उसका भुवन-घोषी नाद—ऐसा भी शङ्खनाद होता है? मथुराके साथ आये सैनिक भी चकित रहगये। शत्रु-सैनिकोका तो हृदय मानो बैठाजाता हो। वाहनोको सम्हालना उनके चालकोंके लिए अत्यन्त कठिन होगया। एक बार शूरोके करोंसे भी शस्त्र गिरपडे। लगा कि श्रवणोके पर्दे फट जायँगे।

मगधराज जरासन्ध भी चौंक गया। उसने भी समझ लिया कि उसके सैनिकोको तत्काल सम्हालने—उनके भयको दूर करनेकी आवश्यकता है। उसने अपना रथ लाकर राम-कृष्णके रथोंके सम्मुख खडा करदिया।

'कृष्ण! तू तो पुरुषाधम है। अपने सम्बन्धियोका हत्यारा और मृत शत्रुके शवपर शूरता दिखलानेवाला।' मगधराज कठोर स्वरमे बोला—'फिर भी अभी तू बालक है, अत. बच्चेसे लडना मेरे लिए लज्जाकी बात है। मूर्ख! बान्धवघाती! जा! सुरक्षित कही निकल जा। मैंने तुझे छोड दिया। मुझे मुख मत दिखलाना।'

'राम! यदि तुममे अपनी शक्तिपर विश्वास है तो धैर्यपूर्वक मुझसे युद्ध करो।' जरासन्धने श्रीबलरामकी ओर मुख किया—'या तो मुझे मारो

या मेरे वाण तुम्हारे शरीरको छिन्न-भिन्न करके तुम्हे स्वर्ग भेज देंगे। तुम यहाँसे अब सुरक्षित नही जासकते।'

'राजन्! शूर पुरुष बकवाद नही किया करते।' श्रीकृष्णचन्द्रका सहास्य मेघ गम्भीर स्वर पूरी सेनामे गूँज गया—'तुम आतुर हो! मृत्यु तुम्हारे मस्तकपर आचुकी है। अत तुम्हारी बकवादपर हम ध्यान नहीं देते।'

क्रोधसे काँपता चिल्लाया जरासन्ध—'इन दोनो दुर्विनीतोंको घेरकर मार डालो।'

मथुराके भवनोंके ऊपर चढे स्त्री और पुरुष नगर-द्वार—दक्षिण द्वारके समीप ही दृष्टि लगाये खडे थे। सहसा रथों, हाथियों, अश्वोकी शत्रु-सेना दौड पडी—भयानक घटाके समान उमड पड़ी। गरुड़ध्वज एव तालध्वज, दोनो रथ उस घेरेमे पता नही कहाँ अदृश्य होगये। 'हाय!' मथुराके लोगोके मुखसे 'हाय' भी ठीक नही निकली। लगा कि वे मूर्छित होकर गिर पड़ेगे।

'वे! वे रहे दोनो रथ!' कोई चिल्लाया। मानो प्राण जाते-जाते शरीरमे लौट आये। दोनो रथ—बडा कठिन होगया था दोनो रथोको लक्षित करना। दो विशाल ज्योति पुञ्ज शत्रु-सेनामे बड़ी तीव्र गतिमे घूमते ही दीखते थे—वे ज्योति पुञ्ज ही दोनो रथ हैं, यह समझनेमें थोडा समय लगा। लेकिन जब यह बात समझमें आगयी—उन ज्योति.पुञ्जोको देखना सरल होगया।

जरासन्धका व्यूह शीघ्र ध्वस्त होगया। मगधराजने असंख्य युद्ध किये और जीते हैं, किन्तु आजका युद्ध—ऐसे कुम्भकार चक्रके समान घूमते वायुवेग रथ और दोनो रथोंसे बाणोकी अनवरत वृष्टि—शत-सहस्र झडी एकसाथ चारो ओर।

विशाल गजसेना—मगधराजकी गजसेना भारतमें अजेय मानी जाती थी, किन्तु आज वही सबसे पहिले अपने ही दलके लिए आतङ्क बनगयी। सूँड़ कटे, दाँत टूटे, अतिशय घायल गज भागने लगे और अपने ही रथोंको, अश्वारोही पदातियोंको रौंदने लगे। अत्यन्त घायल—उन्मत्त गज-दल। प्राणोके समान जिसे पाला था जरासन्धने, किस प्रकार कठोर—वज्र हृदय बनाकर उसे आज्ञा देनी पड़ी अपने सैनिकोंको—'आहत गजोंको अविलम्ब मार दो।'

दूसरा कोई उपाय नही रहगया था। वसुदेवके इन दोनों पुत्रोके रथ नगरकी परिक्रमा करते दौडरहे थे और चक्राकार गतिसे घूमरहे थे। इन्होने सम्पूर्ण गज-सेनाको इस प्रकार आहत करदिया था कि गजोको मार न दिया जाता तो वे अपनी ही समस्त सेनाको नष्ट करदेते। उन्हे तो मरना ही था। वे इतने आहत थे कि उनको किसी प्रकार बचाया नही जा सकता था।

रथ, अश्व, मनुष्य—चारो ओर दोनो ज्योति पुन्ज बने रथोंसे मृत्यु-वर्षा होरही थी। किस क्षण किसकी भुजा, पैर या मस्तक कट गया, किसका उदर फट गया, कौन दो टुकडे होकर गिरा—किसीको देखनेका अवकाश नही था। चीत्कार—मरते आहत कण्ठोकी चीत्कार और उन्मादी भूत-प्रेतोका दारुण अट्टहास गूँजरहा था चारो ओर।

रथ, अश्व ही नही, भागते-दौड़ते पदाति सैनिक भी गिरे आहतोको कुचलते दौडते थे। जो गिरा—बैठनेका फिर क्या काम। अपनी ही जव सुधि न रहे—जरासन्धको भी अपनी सुधि तक नही रही थी। वह स्वय कुछ समयमे ही आक्रान्ता नही रहगया था।

सूर्यास्त होगया। मगधराज और उनके साथियोंको मानो प्राणदान मिला। रात्रिमे पीछे हटकर वे अपने शिविरपर एकत्र हुए। पहिले दिनके ही युद्धमें सम्पूर्ण गजसेना समाप्त होगयी थी। कदाचित् ही कोई वचा हो कि उसे कही वाण न लगा हो। उपचारकी समुचित व्यवस्था—यही आश्वासन था।

श्रीराम अपने अनुज और सैनिकोंके साथ नगरमे चलेगये रात्रिके प्रारम्भमे ही। इनके किसी सैनिकको एक भी वाण नही लगा था। किसीको युद्धका किञ्चित् भी अवसर नही मिला था। वे केवल दर्शक रहे थे। उन्हे नगर-वासियोको भगवान वासुदेवका अद्‌भुत रण-पराक्रम सुनाना था। घेर लिया उनमे प्रत्येकको नगरके लोगोने और वे भी पूरी रात वडे उत्साहसे सुनाते रहे।

प्रभात हुआ। स्नान, सन्ध्या, अल्पाहार। शीघ्रही मगधराजकी सेनाने नगर घेर लिया। अग्रजके साथ श्रीकृष्ण रथारूढ हुए। इस दिन अपने साथ जाने वाले सैनिक परिवर्तित कर लिये उन्होंने। सवको अवसर मिलना चाहिये। युद्ध न सही, युद्ध-दर्शनका तो अवसर मिले सव रथ-वाहिनीके वीरोको। वे भी तो देखे कि रथारोहीको कैसे युद्ध करना चाहिये।

मगधराजने व्यूह परिवर्तन करलिया था। नगरको घेर लेनेका प्रयत्न व्यर्थ था। सम्पूर्ण नगरद्वारोको ध्वस्त करके घुस पडनेकी आशा धूलिमें मिल चुकी थी। अब सबको मिलकर वसुदेवके दोनों पुत्रोंसे ही युद्ध करना था। इन दोनोको भागनेको भी विवश किया जासके तो नगर-विजय सरल है।

मथुराके चारो ओर शव बिछ गये थे। रक्तकी कीच जम गयी थी। शरत्काल सही—दुर्गन्धि उठने लगी थी। शृगाल, श्वान, गीध, कौवे तथा भूतप्रेतोंका असख्य समुदाय रात्रि-भर स्वच्छता न करता होता, दूसरे दिन क्या वहाँ सैनिक खडे भी हो पाते?

दारुण युद्ध—पाञ्चजन्यके उसी शत्रु-सन्तापी निनादसे युद्धका श्रीगणेश और पूरे दिन वही दोनो रथोसे मृत्यु-वर्षा। वही चीत्कार, क्रन्दन। वही—वही सैनिको, अश्वो, रथोकाकटना, टूटना, मरना। सूर्यास्त ही आश्वासन, विश्राम बनता था मगधराजके लिए, और प्रतिदिन सेना घटती जाती थी। प्रतिदिन व्यूह परिवर्तित करना पड़ता था।

महामनस्वी मगधराज—वह क्या दो बालकोसे पराजित होकर लौट जाय? उनके साथ आये नरेश जानते थे कि भागनेपर जरासन्ध लौटकर पहिले उन्हे कारागारमे बन्द करेगा। युद्ध अब विवशता बनगया था। वह दारुण युद्ध पूरे सत्ताइस दिन चला।

सत्ताइस दिन—थोडे तो नही होते सत्ताइस दिन। जरासन्धके साथ नरेशोंका धैर्य अन्ततः कब तक उनका साथ दे। सत्ताइसवें दिन उन्हे लगा कि श्रीकृष्णके शारङ्गकी शर-वर्षा आजका सूर्यास्त देखनेको उन्हे जीवित नही रहने देगी। सैनिक, सेना-नायक जब सब मारे जाचुके, राजा भाग खडे हुए। उनके रथ इधर-उधर भागे। बहुत दूर जब वे मथुरासे निकल गये—एकत्र हुए। उन्हे अब परस्पर मिलकर कोई निश्चय करना था। उस निश्चयमें पूर्व प्रतीक्षा करनी थी कि आज मगधराजका क्या होता है।

जरासन्ध भिड़ा था श्रीबलरामके साथ संग्राम करनेमें। उसे आज पता नहीं कि कब सेना मारी गयी। कब उसके सब साथी भाग गये। स्वयं उसका सारथी, अश्व मारे जाचुके थे—श्रीकृष्णने मार दिये थे। रथसे गदा लेकर कूदा था वह, और श्रीबलराम रथसे कूदकर सम्मुख आगये थे। इस द्वन्द्व-युद्धमें प्राणोंकी बाजी लगाकर वह भिड़ा था।

गदायुद्धका आचार्य जरासन्ध। किन्तु गदायुद्धके परमाचार्यसे उसका पाला पडा था। उसकी गदा अन्तमे टूट गिरी। श्रीबलरामने झपटकर उसके केश पकड़ लिये और वारुणपाश तथा रस्सीसे बाँधने लगे।

'आर्य! इसे छोड दे।' श्रीकृष्णने दौडकर बडे भाईका हाथ पकड लिया—'यह तो अपने प्रयोजनकी पूर्तिका माध्यम हैं—उत्तम माध्यम।'

श्रीबलरामने अनुजका मुख देखा। जरासन्धको धक्का देकर दूर फेंक दिया। जरासन्व उठा और मस्तक झुकाये पैदल चल पडा।

दोनो भाइयोने अब अपने सैनिकोको आदेश दिया। मगधराजके शिविरमें जो अन्न, धन, अस्त्र थे, वह तो तब विजेताकी सम्पत्ति थी। वह सम्पत्ति महाराज उग्रसेनके सम्मुख उपस्थित होनी है। रणभूमिकी स्वच्छता अब होगी ही। नगरमे तो हर्षोन्मत्त नागरिक उमड पड़े है दोनों भाइयोके स्वागतके लिए। वहाँ विजय-महोत्सव प्रारम्भ होगया—'भगवान सङ्कर्षणकी जय! भगवान वासुदेवकी जय।'



कोल-वध

त्रेताके अन्तमे मर्यादापुरुषोत्तम जब स्वधाम पधारे, अयोध्या प्राण-हीन होगयी। कोई पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, तरु-लता-तृण नही रहगया। जिसने उन लोकमनोरम श्रीरामको देखा था, जिसपर उन कमलनयनकी दृष्टि पडी थी, जिसको भी उनके श्रीअङ्गकी वायु लगी थी, वे सब चर-अचर मायासे मुक्त होकर उनके साथ ही उनके धाम साकेत चलेगये थे। सीधे शब्दोमे—धरापर श्रीरघुनाथके अवतरणसे पूर्व साकेत अभिव्यक्त हुआ और जब साकेतके अधीश्वरने नर-लीलाका उपसहार किया—उनका दिव्यधाम भी अन्तर्हित होगया। धाम अन्तर्हित हुआ तो उसके सम्पर्कसे धन्य बना धराका वह भाग एक बार सर्वथा प्राणिहीन मरुप्राय रहगया।

उन अयोध्या-नाथने अपने आत्मज कुशका अभिषेक किया था अयोध्यामें, किन्तु प्राणि-हीन अयोध्यामे कुश रह पाते? उन्होंने गङ्गा-

यमुनाके मध्यके परम पावन भागमे ही कौशम्वी वसायी। कालान्तरमे अयोध्याके अधिदेवताका स्वप्नादेश पाकर कुश पुन अयोध्या आगये। लेकिन कौशाम्वी एक समृद्ध नगरी बनगयी थी।

द्वापरान्त—इस श्वेतवाराह मन्वन्तरकी वर्तमान अट्ठाइसवी चतुर्युगीमे जो द्वापर वीत गया है, उसके अन्तमे कौशाम्वीके नरेश थे कौशारवि—परम सात्विक, सरल, धर्मात्मा, प्रजापालक और भगवान अनन्तके परम भक्त।

द्वापरान्त शान्त, सत्वगुणी, सरल नरेशोके लिए मुखदकाल नही था। कसका मित्र एक कोल वलवान होनेसे उद्धत होउठा। अपनी जातिके लोगोको साथ लेकर उसने कौशाम्वीपर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। वहाँके नरेश वनमे भागनेको विवश हुए।

महाराज कौशारविके लिए राज्य करनेकी अपेक्षा वनमें रहना अधिक सुखद था। उन्हे वहाँ अपने आराध्यकी आराधनाका एकान्त अवसर मिलगया था। वे वनमे तपस्या करनेमें लगगये—'मेरे आराध्य जव धरापर अवतीर्ण होचुके हैं, इस तुच्छ जनको भी अपने दर्शनसे धन्य करेंगे ? उन चिन्मय वपुके दर्शनका पात्र भी तो होना चाहिये मुझे।'

वन्य जाति कोल—नीति, धर्म, सदाचार शासन, सुव्यवस्थासे उसका क्या परिचय ? फिर असुर इस जातिमें अवतीर्ण हो—प्रजा प्रतिदिन उत्पीडित होनेलगी। राजा और राजकुलके लोग—उन कोलोने तो लूटना, हत्या करना, धन तथा स्त्री-हरण ही सीखा था। किसीका कुछ स्वत्व भी होता है—स्वत्व क्या ? वलवान जिससे जो चाहे, छीन ले। जब चाहे, जिसे मारकर अपना मनोविनोद करले—यही तो वन्य जातिका स्वभाव है। ऐसे स्वभावके लोग जव शासनका स्वत्व प्राप्त करलें—प्रजा तो हत्यारोंके हाथमे पडे पशुओंके समान होगयी।

तपस्वी, वेदज्ञ, विद्वान ब्राह्मण, देव-मन्दिर, गायें आदिकी महत्ता क्या कोलके लिए ? उसे शूकर, शशक या गौ समान। उसके लिए अपना कोलदेव पर्याप्त। यज्ञ, व्रत, तप, आराधना आडम्वर लगते थे उसे ब्राह्मणोंके। यज्ञोपवीतधारी मात्रसे उसे चिढ थी। स्वभावसे वह हिंसा-विनोदी था। लोगोंका समूह अग्निमें जलता हाहाकार करे, एक वडी भीड—निरस्त्र भीड सहसा सैनिकोंकी शरवर्षासे आहत चिल्लाती भागे, इसमें उसे प्रसन्नता होती थी। वह अट्टहास करके हँसता था।

प्रजा भागरही है तो भागजाय—कोलको भला क्या चिन्ता। वह वन्यमानव—उसे तो नगरोंको ध्वस्त करके,, खेतो-उपवनोको उजाड़कर सर्वत्र वन बनाना है। वह प्रजाकी चिन्ता क्यो करे ? प्रजाके कुछ प्रमुख लोग ब्राह्मणोंको साथ लेकर अरण्यमे तप करते अपने नरेशके समीप गये। नरेशने उनकी व्यथा सुन ली सहानुभूति-पूर्वक।

'मैं स्वयं उन निखिल लोकपालके दर्शनोकी लालसासे तप कररहा हूँ।' नरेशने कहा—'जब वे सर्वेश्वर धरापर आचुके, प्रजातो सब उन्हीकी है। आप लोग उन नीलाम्बरधारीकी शरण ले। उन्हीको मथुरा जाकर अपना कष्ट निवेदन करे। एकमात्र वही आर्तजनोंके परम रक्षक हैं।'

वे लोग मथुरा चल पडे। दूसरा कोई उपाय भी तो नही था उनके समीप। उन्हे लगा कि प्रभुने उनके प्राणोकी पुकार सुनली है। मथुरा पहुँचनेसे बहुत पूर्व ही उन्हे भगवान सङ्कर्षण मार्गमे ही मिलगये। वे आश्वारूढ होकर, उद्धव तथा कुछ चुने यादव अनुगतोके साथ आखेटके लिए निकले थे। जबसे जरासन्ध लौटा था, राम या कृष्णके लिए आखेट एक आवश्यक कार्य बनगया था। दूर तक वनमे जानेसे मगधराजने पुन यदि आक्रमण किया तो उसका पता पर्याप्त पहिले पाया जासकता था। यह आखेट सावधानीका अङ्ग होचुका था।

ब्राह्मणोके साथ कौशाम्बीके वे नागरिक भगवान सङ्कर्षणको देखते ही जयनाद करनेलगे। अश्व रुक गये यादव-वीरोके। उन आगतोने भूमिमे पडकर प्रणिपात किया, स्तुति की और अञ्जलि बाँधकर खड होगये। उनका वेश, उनकी अवस्था ही उनके उत्पीड़ित होनेकी बात पुकार-पुकार कर कहरही थी।

'मैं आप लोगोकी क्या सेवा—क्या सहायता कर सकता हूँ?' भगवान वलरामने पूछा—'आप अपना कार्य निर्भय सुना दे। मैं आप सवकी कोई भी सहायता करके प्रसन्न हो जाऊँगा।

'आप सर्वज्ञ है। सकल लोकमहेश्वर हैं। हम और हमारे नरेश राजा कौशारवि आपकी ही प्रजा है।' लोगोने पुन भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया—'हमारे राजाका राज्य कोलने बलपूर्वक छीन लिया है। वे वनमें आपकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए तप कर रहे हैं। कोल कंसका सखा है, असुर है। उनके लिए प्रजाकी हत्या एक विनोद है। उसके दारुण

अत्याचारोंसे सन्त्रस्त हम आपकी शरणमें आये हैं। जब तक कोल जीवित है, आप कसको मरा मत माने।' लोगोने रोते-रोते अपनी व्यथा सुनायी, अपने उत्पीड़नका विस्तृत वर्णन किया।

कोलके पास दस अक्षौहिणी सेना है, यह श्रीबलरामके लिए कोई महत्त्व देने जैसी बात नही थी। वहीसे मथुराको संवाद—केवल अपने देरसे लौटनेका संवादमात्र भेजना उचित लगा उन्हे। वहीसे, उन आगत लोगोको भी अपने अश्वोपर ही पीछे बैठाकर चल पड़े कौशाम्बीकी ओर। कोई आर्त, उत्पीडित शरण आवे तो उसकी रक्षामें विलम्ब क्यो हो?

कोल प्रमत्त नही था। वह जानता था कि किसी क्षण उसपर आक्रमण होसकता है। आर्य-नरेश किसी कोलको शासनारूढ़ सहज ही नही सहलेंगे। कोई भी कभी भी कौशाम्बिकी सहायताको आसकता है। उसके कोल दूर-दूर तक फैले थे। वनमे, वनपशुओसे सदा सतर्क रहना उनके स्वभावमें था। केवल विचित्र ढङ्गसे किलकारी मारकर दूर-दूर तक संवाद फैला देनेकी उनकी अपनी पद्धति थी। कोलोको शस्त्र-सन्नद्ध होनेमें क्षण लगते थे।

अचानक कोलोकी किलकारी गूँजनेलगी। शस्त्र-सन्नद्ध अश्वारोहियोको कौशाम्बी की ओर आते देखलिया था उन्होने। यह किलकारी पर्याप्त थी उनके राजा तथा साथियोके लिए। कोल-नरेश अपनी पूरी सेना लेकर नगरसे बाहर आगया।

कोलोकी अपनी युद्ध-पद्धति थी। वे सब पदाति युद्ध करनेवाले थे। उनके बाण विष-बुझे थे। वे गोफनसे पाषाण फेंकनेमे निपुण थे। उनके भालेके एक आघातमे सिंह भी केवल तड़पकर शान्त ही हो सकता था। वे केवल रस्सीका फन्दा फेंककर अश्वोको उलझाकर गिरा देते थे। यम उनके भल्लोकी मारसे भागते थे। आर्य-सैनिकोका उनको किञ्चित भी भय नही था।

अवश्य कोल वन्यमानव थे। उनके लिए अरण्यमें युद्ध करना सरल था। वे कपियोंके समान वृक्षोपर चढ तथा कूद सकते थे। झाडियोमे शशकके समान दुबके रह सकते थे। उनके लिए सपाट, स्वच्छ मैदानका युद्ध अनभ्यस्त था। उससे भी अधिक यह कि वे जानते ही नही थे कि दिव्यास्त्र क्या होते हैं। कोई उनको हलमे खींच-खींचकर उनकी खोपड़ी मूसलसे चूरकर देगा—यह उनकी कल्पनामे बाहर था। जब श्रीसङ्कर्षणका

यह रूप उन्होने देखा—वे भयके कारण दिशाओमे भागने लगे। वे अन्ध-विश्वासी लोग—उन्हे लगा कि मृत्युका देवता मुशल लेकर स्वयं आगया है। वे गृह, नगर आदि छोड़कर वनोमें भाग गये। वहाँ भी उनका भय बहुत दिनोमें गया। उनमे-से अधिकाश भयोन्मादसे मर गये या जीवनभर पागल बने चीखते-चिल्लाते रहे। उनमें—उनके वशजोंमे प्रवाद चल पड़ा—'नगरमे राजा बनने कोल जायगा तो वनका मृत्यु-देवता उसे कैसे क्षमा कर देगा ? कोलको वनमे रहना चाहिये, अन्यथा घोडेपर बैठा नीलवसन मृत्युदेवता आवेगा ओर हलसे खीचकर अपने मुशलसे खोपडी चूर्ण कर देगा।'

कोल-राज असुर था। अकेलाही ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चतुर्दन्त गजपर आरूढ होकर बैठा था। उसकी दस अक्षौहिणी कोल सेनामे-से थोडे-से मारे गये। शेष भाग खडे हुए। जिस सेनापर उसे गर्व था, वह श्रीबलरामके इस अतर्क्य रूपको देखते ही भाग गयी थी। कोलके गजपर श्रीसङ्कर्षणका मुशल पडा। एक ही आघातमें हाथी ढह गया।

कूदा न होता कोल, अपने हाथीके नीचे ही दब मरता। वह कूदा, खडा भी नही होसका था कि श्री वलरामकी गदा पडी उसपर। असुर इस आघातको सह गया; किन्तु तत्काल अन्तर्धान हो गया। उसने समझ लिया कि सम्मुख युद्धमें वह थोडे क्षण भी जीवित नही रह सकता।

असुर अन्तर्धान होकर कर क्या सकता था—आसुरी माया प्रकट करने लगा—किन्तु श्रीसङ्कर्षण अकेले हो तो युद्धमे क्रीडा करना उनका स्वभाव नही है। यह तो वे तब करते हैं जब उनके अनुज साथ हो और वे क्रीडा करना चाहे। भगवान सङ्कर्षणका वह अष्टधातुमय दिव्य मुशल प्रदीप्त हो उठा। आसुरी माया टिकती उसके प्रलयङ्कर प्रकाशके सम्मुख ? किन्तु एक आघातकी उसकी कामना भी पूरी नही हुई। वलरामजीने उसके दोनो हाथ पकड़ लिये और घुमाकर पृथ्वीपर पटक दिया। कोलका अङ्ग-अङ्ग चिथड़े होगया।

यादव-शूर एक नागरिकको लेकर वनमे गये। राजा कौशारविको सन्देश मिला अपने आराध्यका। वे अश्वपर बैठकर वनसे आये। श्रीबलरामजीने स्वय उन्हे कौशाम्बीके सिंहासनपर बैठाया। उनका तिलक किया।

कौशारविकके लिए इससे धन्य दिवस और क्या होता। वे कृतार्थ हो गये अपने आराध्य एवं उनके अनुगतोंका अर्चन-सत्कार करके। कुछ समय कौशाम्वीमे रुकनेकी नरेशकी प्रार्थना स्वीकार नही हो सकती थी। जरासन्ध कभी भी मथुरापर चढायी करदे सकता था।

अचानक यात्रामे निकले महर्षि गर्गाचार्य आगये। उनके साथ वलरामजी गङ्गास्नान करके मथुरा लौटनेके उद्देश्यसे चल पडे। आचार्यको साथ लेकर ही लौटना उचित था। गङ्गा-स्नान, दान, तीर्थ-तर्पण सव होना था—हुआ। कहते है कि कौशाम्वीसे ईशान कोणमे चार योजन दूर वह वाराह क्षेत्र है, जहाँ श्रीमङ्कर्षणने स्नान किया।

उद्धवके साथ भगवान वलराम जह्नुतीर्थ, पण्डवोंके प्रिय आहार-स्थान होते वहाँसे एक योजन दूर तपोनिरत मण्डूकदेव नामक तपस्वीको दर्शन देकर कृतार्थ करने पहुँचे। ऊर्ध्वमुख, सूर्यदत्त दृष्टि, एक पैरपर खड़ा वह महातापस अनन्तप्रभुकी कृपाप्राप्तिके लिए तपोनिरत था। उसकी तपस्या सफल हो गयी उस दिन। उसे अभीष्ट वरदान देकर भगवान सङ्कर्षण गर्गाचार्य तथा उद्धवादिके साथ मथुरा लौटे।

—×—

युद्ध ! युद्ध ! युद्ध

वृहद्रथ-पुत्र जरासन्ध—वह राजराजेश्वर था। समस्त प्रतापी नरेश उसे अपना अग्रणी मानते थे। उसकी सहायता लेते थे संकटके समय। अपनेमें अजेय माना जाता था वह। जीवनमें अव तक अपराजित था; किन्तु मथुरा आकर उसे मुँहकी खानी पड़ गयी। उसकी सम्पूर्ण सेना मारी गयी थी। उसके साथी उसे छोड़ गये थे। श्रीकृष्णके अनुरोधपर वलरामने उसे छोड दिया था। अन्यथा वह इस समय मथुराके कारागारमें होता।

मथुराका कारागार—जरासन्ध काँप गया। उसने स्वयं अनेक नरेशो को अपने यहाँ वन्दी वना रखा है। वह कारागारमें होता।

किसीपर उसे रोप नही था। जब वह अमित पराक्रम—अजेयप्राय हार गया, दूसरे उसके साथी नरेश तो उसकी अपेक्षा बहुत दुर्बल थे। वे यदि प्राणसङ्कटमें पडकर भाग गये तो क्या अनुचित किया उन्होने। वह उन सबको लेआया था। सङ्कटमे उन लोगोकी सहायता करना उसका कर्तव्य था। उसके वल-विक्रमपर भरोसा करके वे लोग आये थे, किन्तु किसीकी सहायता करनेमें वह कहाँ समर्थ था।

उसके केश पकडकर धक्का देकर बलरामने अत्यन्त उपेक्षा-अपमान-पूर्वक छोड दिया। छोड़ दिया—अन्यथा वे मार भी दे ही सकते थे।

अव मगध जाकर वह क्या करेगा ? कैसे मुख दिखावेगा नरेशोको। कैसे अपनी विधवा पुत्रियोंके सम्मुख जायगा। लोग क्या कहेगे उसे। इस पराजयकी लज्जा लेकर वह लौटे ? नही लौटेगा। वह वनमे जाकर तप करेगा। सुखा देगा अपनी अस्थियोको भी। तप सफल हुआ तो सचमुच त्रिभुवनमें अजेय हो जायगा। यदुवशियोको तब मिटा ही देगा पृथ्वीसे। तप न भी सफल हो, मृत्यु ही तो होगी। मृतके समान तो वह हो ही गया है। इस पराजयसे क्या मृत्यु अधिक दु.खद है ?

एकाकी, अत्यन्त उदास, पैदल जरासन्ध लौटा था उस दिन रणभूमिसे। मुकुटहीन, श्रीहीन, खुले केश, सिर झुकाये चला जारहा था वह। उसने वनमें जाकर तप करनेका निश्चय किया तो उसका सन्ताप घटा ही।

जरासन्धके साथ आये राजा मार्गमे उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उनको यह आशा सर्वथा नही थी कि जरासन्ध विजयी हो जायगा। जब इतनी भारी सेना, इतने सहायक होनेपर भी विजय नही हुई तो एकाकी मगधराजकी विजयकी आशा कहाँ। यह सम्भव है कि वह मार दिया जाय—इसका भी पता लगना चाहिये। अत राजा लोग बहुत दूर नही गये थे। वे जितने निकट निरापद रह सकते थे, वहाँ तक लौट आये थे और साथ ही थे। उनके समान प्राण-सङ्कटसे मगधराज भी भागेगा, यही सम्भावना अधिक थी; किन्तु इस प्रकार रथहीन, पैदल, श्रीहीन लौटेगा—किसीके मनमे यह कल्पना नही थी।

'महाराजाधिराज रथारूढ हो।' राजाओमे जरासन्धके प्रति सहानुभूति जागी। वे आगे बढ़ आये। उन्होंने अपने रथोमेसे सर्वोत्तम रथ उसके लिए प्रस्तुत किया।

'जरासन्ध अब महाराज नही है।' मगधराज बिना रोषके खिन्न स्वरमे बोला—'आप सब मुझे क्षमा करें। मैंने आप सबको भी यह दिन देखनेको विवश किया। सङ्कटमे आपमे-से किसीकी सहायता नही कर सका। अब आप सब अपनी राजधानी पधारे। यादव आपपर आक्रमण करे, अभी इतने समर्थ नही हैं। मुझे अनुमति दे आप सब। वनमे तप करने जारहा हूँ। वहाँसे लौटा तो आप सबका सरक्षक होकर लौटूँगा, नही तो मृत जरासन्धका शरीर पशु-पक्षी वनमे खालेंगे।'

'आप जैसा महामनस्वी ऐसी बात कहे, यह उचित नही है।' राजाओंने नम्रतासे कहा—'जय-पराजय तो सबके साथ लगी है। ऐसा कौन है जो कभी पराजित न हुआ हो। पराजित हो जाना तो कोई पाप नही है और पराजयसे साहस ही खोदेनेवाले कापुरुष आप हैं नही। अब भी, इस समय भी आप हमारे सरक्षक हैं। महाराजाधिराज हैं हमारे। यह तो अपने किसी पूर्वकर्मका फल आया कि अल्पप्राण यादवोसे आपकी पराजय हुई; किन्तु वीरके लिए पराजय अधिक उद्योगकी प्रेरणा देनेवाली होती है।'

'आप मुझे त्यागरहे हैं?' शिशुपाल समीप आगया। उसने हाथ पकडा जरासन्धका—'ये सब नरेश आपकी प्रतीक्षामें थे। सबने आजसे ही पुन सैन्यसग्रहका सङ्कल्प किया है। हम सब तब तक चुप नही बैठेगे जब तक यादवोको मिटाकर इस पराजयका प्रतिशोध न ले ले। आप मेरा तो विश्वास करे।'

'शिशुपाल आपके पुत्र है। आपने इन्हे पुत्र माना है। आप इनका अनुरोध अस्वीकार नही कर सकते। हम ब्राह्मण नही हैं, बलहीन नही हो गये है, साधनहीन नही है, फिर हम वनमे तप करने क्यो जाये? शत्रु तो प्रसन्न होगा इस समाचारसे।' राजाओने समझाया—'आप शत्रुको सन्तप्त करनेवाले है। हम सब वर्ष भरके भीतर ही आपके छत्रके नीचे फिर मथुरा आवेंगे और शत्रुका समूलोच्छेद करके लौटेंगे।'

सब नरेश—सब साथी, सहायक नरेश आग्रह कर रहे थे। आज ये विपत्तिके साथी है। इन सबकी बात न मानना उचित नही है। जरासन्धका बहुत वात्सल्य था शिशुपालपर। शिशुपालका आग्रह टाल देना और कठिन था। नरेशगण जो नीति, इतिहास आदि सुना रहे थे, मगधराज उन उदाहरणोंसे अनभिज्ञ नहीं था। वह नीतिज्ञ था, विद्वान था। उसे सबकी बात उचित लगी। यादवोंके द्वारा उसकी पराजय—इस समय भी यह उसे

अकल्पनीय बात लगती है। केवल दो बालक, थोड़ेसे पृष्ठपार्श्व-रक्षक सैनिक लेकर आवे और इतने प्रतापी राजाओंकी अपार वाहिनीको विनष्ट कर दे—कर्म प्रवल होता है। प्रारब्ध ही प्रतिकूल न होता, यह घटना—यह पराजय क्या सम्भव थी ?

प्रारब्ध—कितना प्रवल होगा प्रारब्ध ? प्रबलतम पौरुष सदा प्रारब्ध पर विजयी हुआ है। जरासन्ध पौरुष करेगा—इतना अथक पौरुष कि प्रारब्धको हारना पडे। वह तव तक पौरुषमे थकेगा नही, जब तक इस पराजयको विजयमें बदल नही देता। दृढ निश्चय करके जरासन्ध रथमें बैठ गया।

'पिताजी ! हम अभागिनोके कारण आपको यह दिन भी देखना पडा।' जरासन्ध मगध लौटा तो उसकी दोनो विधवा पुत्रियाँ रोती—विलाप करती सम्मुख आयी—'हम कुलक्षणा हैं। हमारे पोछे ही दुर्दैव पडा है।'

'छि ! मगधराजकी कन्या होकर तुम दोनो इस प्रकार रोती हो।' जरासन्धने उन्हे उठाया। उनके अश्रु पोछे—'अब केवल तुम्हारा ही प्रश्न कहाँ रहा। अव तो मुझे अपनी पराजयका प्रतिशोध लेना है और तुम दोनो मुझे मेरे वज्र-निश्चयको जानती हो।'

सचमुच जरासन्ध वज्रनिश्चय था। वह हारना नही जानता था। विफल होकर भी साहस खोदेना—उद्योगसे विरत होना उसके स्वभावमे नहीं था और उसके साथी नरेशोके लिए भी दूसरा मार्ग नही था। वे बलराम-कृष्णका—यादवोंका उत्कर्ष सह नही सकते थे। किसी भी प्रकार हो, मथूराको पराजित ही करना था। वे असुर प्रकृतिके लोग—चतुर्भुज पद्मलोचन वासुदेवके सहज शत्रु। वे कैसे सह ले कि श्रीकृष्ण धर्मका राज्य स्थापित करते चले सब कही।

अकेला जरासन्ध ही नही, उसके सब साथी अपने राज्योमें लौटते ही सैन्य एव सामग्री सग्रह करनेमें लग गये। सब चाहते थे—पूरे प्रयत्नमे थे कि पहिले से पर्याप्त अधिक सेना एकत्र की जाय, किन्तु सबकी—सङ्घकी भी एक शक्ति-सीमा होती है। एक वारमे उससे अधिक जनशक्ति या धन-सग्रह सम्भव नही होपाता। जरासन्ध तथा उसके सहायकोके उद्योगकी सम्मिलित शक्तिकी सीमा तेईस अक्षौहिणी सेना थी। अथक उद्योग करते थे ये लोग प्रत्येक पराजयके पश्चात् इसलिए इस सीमाको प्राप्तकर लेते

थे। उद्योग किञ्चित भी शिथिल होता तो यह सख्या घट जाती है। लेकिन यह उनकी सीमा थी और सब अपनी सीमा तक रहनेको विवश हैं।

मथुराके लिए जरासन्धका आक्रमण निश्चित समयके अन्तरसे आनेवाले किसी महारोगके समान बन गया। प्रतिवर्ष यह आक्रमण होने लगा। मगधराज पावस समाप्त होते ही प्रस्थान कर देता था गिरिव्रजसे। उसके साथी नरेश ससैन्य मार्गमे मिलने लगे थे। मथुरा आकर एक ही परिणाम—पूरी सेना वसुदेवके दोनो पुत्र मार देते थे। नरेश प्राण बचाकर भागते थे और जरासन्धने भी अब पलायन सीख लिया था। उसने समझ लिया था कि सब साथी भागने लगे तो एकाकी रुकनेका अर्थ घोर अपमान होना है। यह भी क्या ठिकाना कि श्रीबलराम उसे प्रत्येक बार छोड़ ही देंगे। वे मार दे सकते है—बन्दी बना सकते हैं। ऐसी सम्भावनाको जरासन्धने फिर अवसर नही दिया।

प्रत्येक पराजयने मगधराजको उत्तेजना ही दी। उसके साथियोका क्रोध भी भड़कता ही गया। वे शीतकालमें लौटते थे पराजित होकर। ग्रीष्म तकमे सैन्य-सग्रह कर पाते थे। पावसमें युद्ध-यात्रा सम्भव नही। शरदागमके समय प्रस्थान करते और हेमन्तके अन्तमे मथुराको घेर लेते।

पूरे सोलह वर्ष—सोलह वर्षो तक यह प्रतिवर्ष होनेवाला जरासन्धका आक्रमण चलता रहा। चलता तो रहा अठारह वर्ष ; किन्तु सोलह आक्रमण मथुरा भगवान वासुदेवकी कृपासे झेल लेगयी। श्रीसङ्कर्षण एव श्रीकृष्णचन्द्रने सोलह आक्रमणोमे एक भी यादव सैनिकको आहत नही होने दिया। विजयश्री दोनो भाइयोका वरण करती रही लगातार।

—x—

चक्र-मौशल युद्ध

युद्ध पराजितकी ही हानि नही करता—विजयीकी भी बहुत हानि करता है। यदि विजयी आक्रान्त हो—तब तो बहुत ही हानि करता है। मथुरा प्रतिवर्ष जरासन्धका आक्रमण कव तक सहन करती ?

यह ठीक था कि मथुराका एक भी सैनिक आहत नही हुआ। यह भी ठीक है कि जरासन्ध इतनी बडी सेना लेकर आता था और मगधराजके पराजित होकर चले जानेपर वह सब सामग्री मथुरा-नरेशको ही मिलती थी, किन्तु क्या यह लाभ, होनेवाली हानिको पूरा कर सकता था ?

आसपास दूर तकके वन-उपवन जरासन्धकी सेनाने नष्ट कर दिये थे। वहाँ वृक्षोको उगने-पनपनेका अवकाश ही नही मिलता था। प्रतिवर्षके युद्धने समीपवर्ती खेतोको बञ्जर बना दिया। कृषक ऊबकर भागने लगे थे।

स्वयं मथुराकी अपनी समस्याये थी। जरासन्धकी तेइस अक्षौहिणी सेना, उसके गज, रथ, अश्व, ऊँट, खच्चर आदि पशु मारे जाते थे। उनके शव बिछ जाते थे। नगरके वाहरकी समरभूमिमें दूर-दूर तक चारो ओर। रक्तकी कीच, टूटे रथ-अस्त्रादि। वह पूरी भूमि दुर्गन्धिसे भर उठती थी। भूत-प्रेत-पिशाच, कुत्ते, शृगाल, गीध, कौए आदि मासभक्षी प्राणियोके झुण्डके-झुण्ड आजाते थे और आस-पास महीनों तक मडराते रहते थे।

इतनेपर भी उस क्षेत्रकी स्वच्छता तो करनी ही पडती थी। वहाँ पड़े कङ्काल, रथ-शस्त्रादिके खण्ड—इनको हटाये बिना तो मार्ग ही नही था। दुर्गन्धि—सडान कई सप्ताह तक नगरवासियोका नगरसे निकलना कठिन किये रहती थी। सम्पूर्ण युद्धभूमि धोकर तो स्वच्छ करना सम्भव नही है।

नागरिकोके लिए ईधन, पुष्प, दूर्वादलादि बहुत दूरसे लाने पडते थे। इनका अभाव बढता चला जारहा था। जरासन्ध था कि थकना जानता नही था। वह तो सत्रहवी बार भी सैन्य-सज्ज होकर चलपडा था मगधसे। उसके आनेका समाचार मिल गया था।

मथुराके लोग इस युद्धके—वार्षिक युद्धके अभ्यस्त होगये थे। बहुतसी सावधानी और प्रस्तुति अब स्वत होने लगी थी; किन्तु इससे नगरका—राज्यका विकास अवरुद्ध होकर रहगया था। दूसरे कार्य रोककर केवल आक्रमणसे रक्षामें कोई राज्य कब तक लगा रह सकता है?

जरासन्धके आक्रमणका समाचार मिला तो इस बार श्रीकृष्णने महाराज उग्रसेनको सम्मति दी। यादव-राजसभाका महाधिवेशन आमन्त्रित हुआ। मथुराके सब अग्रणी, वयोवृद्ध बुलाये गये। एक ही प्रश्न था—'क्या करना चाहिये? इस विपत्तिसे कैसे छुटकारा हो?'

विद्वान्, अनुभवी युद्धवृद्ध विकद्रु उठ खड़ेहुए उस सभामे। उन्होंने सम्बोधित करके कहा—'मुझसे एक बार भगवान व्यासने यदुवंशकी उत्पत्ति-कथा सुनायी है। वह प्रचलित लोक-ज्ञानसे किञ्चित् भिन्न है। उसे आप सब ध्यानसे सुने। सम्भव है, कोई मार्ग इस परम्पराके इतिहाससे किसीको सूझ जाय।'

मनुपुत्र—वैवस्तमनुके पुत्र इक्ष्वाकुके कुलमें हर्यश्व नामक नरेश हुए। मथुरा जिनके नामसे प्रख्यात है, उन दैत्येन्द्र मधुने अपनी पुत्री मधुमतीको हर्यश्वको दिया था।

बड़े भाईसे अनबन हुई और उन्होंने हर्यश्वको अपने राज्यसे निकाल दिया। वे अयोध्या त्यागकर पत्नीके साथ वनमे जानेको विवश हुए। पत्नी मधुमतीने कहा—'आप अयोध्याकी आशा छोड़े और मेरे पिताके यहाँ चले। वहाँ आपका अवश्य स्वागत होगा।'

हर्यश्व पत्नीके साथ मथुरा आगये। दैत्येन्द्र मधु प्रसन्न हुए। उनके एकमात्र सन्तान पुत्री यही थी। मधुके पुत्र लवणकी रुचि राज्य करनेमे नही थी। वह आखेट करनेमे लगा रहता था।

मधुने जामाताका स्वागत किया। उसने कहा—'मधुवनको छोडकर पूरा राज्य मैं तुम्हें देता हूँ। तुम्हारा राज्य आनर्त कहा जायगा। अब तुम्हारी सन्तान मेरे गोत्रमें मानी जायगी। मूलत. मैं यादव हूँ, अत. तुम्हारा वंश अब यदुवंश होगा।'

हर्यश्वको राज्य देकर मधु तप करने वनमे चला गया। ययाति-पुत्र महाराज यदु गोलवनसे पुन. मधुमतीके गर्भमें आये। इनके वंशमे ही मथुराके सभी यादव है। ये महाराज यदु एक बार अपनी पत्नियो सहित

समुद्र स्नान करने गये। वहाँ सर्पराज धूम्रवर्ण उन्हे खीचकर नागलोक ले गये और अपनी पाँच कन्यायें उन्होने विवाह दी। ये पाँचो प्रसिद्ध महाराज यौवनाश्वकी बहिनकी सन्तति थी। नागराजने साथ ही वरदान दिया—तुमसे सात कुल चलेंगे।' ये वंश त्रैम, कुक्कुर, भोज, अन्धक, यादव, दाशार्ह और वृष्णि हुए।

नागलोकमें विवाह करके महाराज यदु अपनी नवीन पत्नियोके साथ पृथ्वीपर आये। उन नाग-कन्याओसे पाँच पुत्र हुए—मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस और हरित। ये बड़े हुए तो इन्हे पिताने आज्ञा दी—'मुचुकुन्दको विन्ध्य एवं ऋक्षवान पर्वतोके निकट दो नगर बसाना चाहिये। पद्मवर्ण दक्षिण भारतमे सह्य पर्वतपर अपनी राजधानी बनाये। पश्चिम भारतमे सारस अपना राज्य स्थापित करे। हरितको समुद्र के भीतर जाकर अपने नाना नागराज धूम्रवर्णके नगरका पालन करना चाहिये। माधव ज्येष्ठ है, अत युवराज होकर इस राज्यका पालन करेगा।'

पिताकी आज्ञासे मुचुकुन्दने नर्मदा-तटपर महिष्मती पुरी और ऋक्षवान पर्वतके समीप पुरिका नामक पुरी बसायी। पद्मवर्णने दक्षिणमे वेणाके तटपर पूरे राज्यको ही परकोटेसे घेर दिया। इस पद्मावत राज्यकी राजधानी करवीरपुर हुई। सारसने वेणाके दक्षिण तटपर क्रौञ्चपुर बसाया।

युवराज माधवके पुत्र हुए सत्त्वत। इनके पुत्र भीम। इसके आगे यह वश भैम या सात्वत कहा जाने लगा। त्रेतामे जब अयोध्यामे मर्यादा पुरुषोत्तम राजसिंहासनपर थे, तव आनर्तनरेश भीम थे। उसी समय श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्नकुमारने लवणासुरको मारकर मधुपुरी बसायी। मधुवनका उच्छेद करके यह पुरी बसी। श्रीरामके परमधाम जाने पर शत्रुघ्नके पुत्रने विरक्त होकर राज्य त्याग दिया। तब मधुपुरी—मथुरापर भीमने अधिकार कर लिया। अयोध्यामे जब कुश राजा थे—मथुराके सिंहासनपर भीमके पुत्र अन्धकका अभिषेक हुआ।

अन्धकके पुत्र रैवत थे। इनकी पत्नीने पुत्र ऋक्षको पर्वत-शिखरपर जन्म दिया था। इन ऋक्ष का दूसरा नाम रैवत था। इन महाराज रैवतके पुत्र विश्वगर्भको देवमीढ कहाजाता है। उनकी तीन रानियोसे चार पुत्र हुए—वसु, वभ्रु, सुषेण और सभाक्ष। ज्येष्ठ पुत्र वसुका ही दूसरा नाम शूरसेन है। इनकी सन्तान हमारे वसुदेवजी हैं।

इतना वंश-विवरण सुनाकर विकद्रु ने कहा—'जरासन्धके समीप असंख्य सेना है। उसके साधन अमित हैं। वह राजाओंका इस समय सिरमौर है। हमारे पास थोड़ी सेना है। थोड़ी सामग्री है। मथुरामे सूखे काष्ठका अभाव है इस समय। नगरकी खाइयाँ भर गयी हैं। बहुत दिनोंसे उनको स्वच्छ नही किया गया। नगर-द्वारपर शतघ्नियाँ नही हैं। यह तो भगवान वासुदेवका प्रताप है कि अब तक नगर सुरक्षित है। अतः ये सर्वसमर्थ जो उचित समझे, हम सब उसका पालन करे।

'तात ! आपने स्पष्ट सत्य कहा है।' श्रीकृष्णचन्द्र खड़े हुए बोले—'यह प्राचीनतम नगर बहुत कालसे सैनिक दृष्टिसे सम्हाला नही गया। नगर परिखा जीर्ण हो चुकी है। हमारे कुलके ही लोग दक्षिण-भारतमे हैं। उनसे सहायता पानेका प्रयत्न किया जाना चाहिये, यह आपका संकेत उचित है। मैं अग्रजके साथ यहाँ नही हूँ, यह समाचार पाकर मगधराज हम दोनोका पीछा करेंगे। उनकी शत्रुता हमसे है। इस प्रकार मथुरा आक्रमणसे कमसे-कम इस बार बच जायगी। हम दोनो दक्षिण जायँगे यह देखने कि कहीसे सहायता मिल सकती है या नही।'

मथुराके लोगोंको यह रुचा नही, किन्तु दूसरा उपाय भी नही था। भगवान वासुदेवको रोकनेका प्रयत्न कोई किस बलपर करता? मगधराजकी अपार सेनाके सम्मुख प्रत्येक बार यही दोनो भाई गये। अत दोनो भाइयोंको विदा करना पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्रने सह्यपर्वतमालाके समीप करवीरपुर पहुँचकर बाह्योपवनसे ही रथ मथुरा लौटा दिया।

'करवीरपुरमें प्रवेश उचित है या नही?' अभी निर्णय नही हुआ था। भगवान संकर्षण इस समय केवल छोटे भाईकी सम्मति मानते चल रहे थे। दोनों भाई वेणा नदीके तटपर एक उच्च वटवृक्ष देखकर वहाँ विश्राम करनेके विचारसे चले। दूरसे ही उन्होंने देखा कि उच्च गौर शरीर कन्धेपर परशु रखे, कटिमें वल्कल एवं उत्तरीयके स्थानपर कृष्ण मृगचर्म वक्षपर रखे, त्रिपुण्ड शोभित भाल, रुद्राक्ष माला भूषित प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी भगवान परशुराम अपनी चन्द्रोज्वल होमधेनुके गलेमें बँधी रस्सी पकड़कर उसे कहीं ले जा रहे हैं।

'हम वृष्णिगोत्रीय यादव वसुदेव-पुत्र राम एवं कृष्ण श्रीचरणोंमें प्रणत हैं।' दोनों भाइयोंने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। परशुरामजीने गौकी रस्सी छोड़ दी। दोनोंको उठाकर हृदयसे लगाया। दोनोंको साथ आनेका संकेत करके वट-वृक्षके नीचे आ बैठे।

'आप अमित पराक्रम भृगुनन्दन परशुराम हैं, यह मै पहिचान गया। आपके प्रतापसे जहाँ तक आपका वाण गिरा—समुद्र वह पाँच सौ धनुष (सौ गज) भूमि छोडकर सदाको पीछे हट गया। वहाँ आपने शूपरिक नगर वसाया।' घुटनोके बल बैठकर अञ्जलि बाँधे श्रीकृष्ण कहते गये—'आपका यह क्षेत्र पश्चिम समुद्र-तटपर है, किन्तु आपका आश्रम महेन्द्र गिरिपर है, यह हम जानते थे। यहाँ आपके अकस्मात् दर्शन होगये, यह हमारा सौभाग्य। मगधराज जरासन्ध हमारे पीछे पड गया है। वह बार-बार हमारे नगरपर आक्रमण करता है। हमको शक्ति एवं साधन-सञ्चय करना है। हम शस्त्रहीन हैं। बिना रथके हैं। आप विश्वके सर्वश्रेष्ठ योधा हैं। हमपर अनुग्रह करके हमको उचित सम्मति दें।'

'श्रीकृष्ण! मैं तुम दोनो भाइयोको त्रेतामे ही पहिचान गया था। तुम सर्वेश्वरेश्वर मुझे ठगो मत!' भगवान परशुराम उच्चस्वरसे हँसे—'मैं जान गया था कि आज यहाँ तुम दोनो भाई पधारोगे। तुम्हे मेरी सम्मति चाहिये! यह सम्मति देने ही मैं शिष्योको छोडकर यहाँ एकाकी आया हूँ।'

'देखो वासुदेव! तुम्हारे कर्म मुझे विदित हैं। मैं तुम्हारे स्वरूपको जानता हूँ। त्रिभुवनमे तुमसे कुछ अविदित नही है; किन्तु तुम मुझे गौरव देने आये हो तो परशुराम यह सेवा करेगा।' उन भृगुश्रेष्ठने कहा—'गोविन्द! यह करवीरपुर तुम्हारे पूर्वजोने बसाया है; किन्तु इस समय यहाँका अधिपति शृगाल वासुदेव है। वह अत्यन्त क्रोधमे भरा रहता है। उसने तुम्हारे कुलमें उत्पन्न समस्त उत्तराधिकारी क्षत्रियोंको मार डाला है। वह तो अपने पुत्रोसे भी निर्दय व्यवहार करता है। अत. तुम्हारा यहाँ रुकना मुझे ठीक नही लगता।'

करवीरपुरमे प्रवेशका प्रश्न ही समाप्त होगया। परशुरामजीने कहा—'हम तीनो इस नदीको भुजाओंसे तैरकर पार करे और इस देशकी सीमापर स्थित दुर्गम पर्वतपर चलें। आज वही रहेंगे। वह सह्य पर्वतकी उपशाखा है। उस यज्ञगिरिपर आजकल चोर-डाकुओंने अपना अड्डा बना लिया है। वहाँ रात्रि व्यतीत करके हम प्रात. खट्वाङ्ग नदी पार करेंगे। वह कसौटीके पत्थरोंसे शोभित है। उसपर तापसारण्यमे प्रपात है। वहाँ तपस्वियोको दर्शन देकर उनका तप सफल करदो। मैंने उन्हे वचन दिया है कि तुमको उनके समीप ले आऊँगा।'

'वहाँसे हम क्रौञ्चपुर चलेंगे। वहाँ तुम्हारे कुलमें ही उत्पन्न धर्मात्मा नरेश महाकवि रहते हैं; किन्तु इस समय उनसे मिलना उचित नही है। वे मगधराजकी शत्रुता सम्हाल पाने योग्य नहीं है।' परशुरामजी स्वत. कहते गये—'हम सन्ध्या होते-होते वहाँसे चलकर आनदुह तीर्थ पहुँच जायँगे। वही रात्रिमे रहेंगे। वहाँसे सह्य पर्वतकी एक गुफाका मार्ग गोमन्तक पर्वत तक जाता है। उस मार्गसे जाकर गोमन्तक पर्वतके अत्युच्च अगम्य पर्वत पर तुम दोनों भाई चढ जाना। वही रहो। समुद्रका वहाँसे दर्शन करते विचरण करो। वहाँ उस पर्वत-दुर्ग के आश्रयसे जरासन्धको जीत लोगे। जरासन्ध तुमको वहाँ जानकर विवश होगा पर्वत-युद्ध के लिए। तुम्हे वहाँ दिव्यायुध मिलेंगे।'

'प्रभो! आपकी यह होमधेनु?' अब तक चुपचाप समीप खड़ी उस उज्वल गौकी ओर कृष्णचन्द्रने देखा।

'यह कामधेनु है। सब परपक्षियोके लिए दुर्धर्ष। इसको तो मैं तुम दोनो भाइयो के किञ्चित् सत्कार के लिए यहाँ लेआया हूँ।' परशुरामजी उठ खड़े हुए—'इसका अमृतपय पीलो। इससे तुम दोनों भाइयोको दीर्घकाल तक क्षुधा, तृषा, श्रान्ति कुछ नही सतायेगी।'

पर्णपुटकोंमें दुहकर अपनी होमधेनुका दूध दिया परशुरामजीने। दोनो भाइयोंने उसे आदरपूर्वक पान किया। परशुरामजीने गौसे कहा—देवि! अब आप आश्रम पधारो।'

गाय चली गयी। तीनो चल पड़े। मार्गमे दो रात्रि व्यतीत करके गोमन्तक पर्वतके पाद-प्रान्त तक पहुँचाकर परशुरामजी ने विदा ली। दोनो भाई पर्वतके उच्च शिखरपर चढ गये।

अद्भुत पर्वत—अद्भुत मार्ग-दर्शक और उस शिखरपर तो अद्भुत सयोग जुटते ही चले गये। मधु, कान्ति, शोभाकी अधिष्ठातृ देवियाँ प्रकट हुईं। उन्होंने तनिक अकेले घूमते बलरामजीका वरण किया। शोभाकी देवीने उन्हे आदिपद्म या पद्माक्ष नामक कुण्डल भेंट किया। श्रीमद्धर्पण उसे अपने दक्षिण कर्णमें धारण करते हैं।

भगवान विष्णु क्षीरसागरमें योगनिद्रामें थे तब उनका किरीट एक दैत्य चुरा ले गया। गरुड़ने पीछा किया उसका। समुद्रमें दैत्योंसे युद्ध करके विनतानन्दन गरुड़ उस ज्योतिर्मय किरीटको दैत्योंसे छीनकर चोंचमें लिये आ रहे थे। गोमन्तक पर्वतपर पहुँचे तो नीचे अरविन्दाक्ष, चतुर्भुज

मेघश्याम अपने स्वामीको पर्वत-शिखरपर घूमते पहिचान लिया गरुडने। नीचे आये और उडते हुए ही वह किरीट धीरेसे श्रीकृष्णचन्द्रके मस्तकपर धर दिया । वहाँ से आज्ञा लेकर चले गये ।

जरासन्धने सेना लेकर प्रस्थान किया ही था कि उसके चरने सम्वाद दिया—'वसुदेवके दोनो पुत्र रथमे बैठकर दक्षिण जाते देखे गये हैं।'

'उनका पता लगाओ।' मगधराजने कई चर भेज दिये तीव्रगति अश्वोपर। पूरी सेना लेकर वह उसी ओर बढ चला । उसके चर निपुण थे। उन्होने पता लगा लिया। जरासन्धको ससैन्य लाकर गोमन्तक पर्वतके नीचे खडा किया उन्होने।

श्रीकृष्णने दूरसे देखकर अग्रजसे कहा—'आर्य ! जरासन्धकी सेनाके रथोकी ध्वजाएँ दीखने लगी है। वह आगया यहाँ।'

जरासन्धने पर्वतको घेरकर विभिन्न दिशाओसे विभिन्न नरेशोको ऊपर चढनेका आदेश देना प्रारम्भ किया तो शिशुपाल बोला—'यह पर्वत दुर्गम है। इसपर चढनेका प्रयत्न व्यर्थ है । दोनो भाई ऊपर हैं। वहाँसे वे भारी चट्टाने ठेल देंगे और चढनेवाले उनसे पिस जायँगे ।

'तब ?' जरासन्धने अत्यन्त प्रशसाके भावसे शिशुपालकी ओर देखा। उसका यह दत्तक पुत्र योग्य महासेनापति है। भारी भूलको समय पर सुधारा इसने।

'चारो ओर घास-फूस, काष्ठसे पर्वतको घेरकर आग लगा दी जाय' शिशुपालने कहा—'अग्निसे बचनेको दोनो नीचे आवेंगे तो हम उन्हे घेरकर मार डालेंगे।'

समस्त सेना इस उद्योगमे लग गयी। तेईस अक्षोहिणी सेना—पर्वतका पर्याप्त ऊँचाई तकका भाग घास और सूखी लकडियोसे ढक गया। उसमे एकसाथ चारो ओर आग लगी दीगयी।

सब लोग पर्वतको घेरकर सावधान खड़े रहे। दोनो भाई किसी ओरसे उतरे, उन्हे घेर लो।' मगधराजने आज्ञा दी।

अग्नि फैली और प्रचण्ड होती चली गयी। पर्वतकी शिलाएँ चटख-चटखकर, टूट-टूटकर गिरने लगी। सैनिक घायल होने लगे तो पीछे हटना पड़ा। धातुएँ पिघलकर बहने लगी। वृक्ष जलते हुए टूट-टूटकर गिरने लगे, उनसे सेना का वडा विनाश हुआ। पर्वतको घेरने वाले मरने लगे। सबको और पीछे हटना पडा।

पर्वत पर सिंह, व्याघ्र, रीछ, सर्प आदि थे। वे सब पहिले तो शिखरकी ओर भागे, किन्तु जब लपटे ऊपर तक पहुँचने लगी, वे झुलसते,

चिल्लाते नीचे दौडते आने लगे। सेनापर टूट पड़े वे क्रोधोन्मत्त । सैनिक उनको मार देनेमे लग गये, किन्तु सेनाके एक बड़े भागका उन्होंने विनाश कर दिया। पूरी सेना आधे कोस तक पीछे हट गयी।

'आर्य! अब नीचे कूदें। यहाँ रहना अब शक्य नही और जरासन्ध जो यह भूभार भूत सेना समेट लाया है, उसे लौटने तो नही देना है।' अग्रजसे कहकर श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतको चरणोसे दबाया। इससे पर्वतका तृतीय भाग धरामें धँस गया। भूमिसे तीव्र जलधारायें फूट निकली। पूरा पर्वत उन धाराओंसे भीगने लगा। अग्नि शान्त हो गयी। श्रीकृष्ण-बलराम कूदकर नीचे आगये।

अब घोर-संग्राम प्रारम्भ होगया, किन्तु यहाँ श्रीबलरामके करोमें उनका हल और प्रज्वलित मुशल था। श्रीकृष्णने अपना शत-सहस्र प्रलय सूर्योंके समान ज्वालमाला-युक्त चक्र छोड़ दिया था। उस चक्रकी ज्वाला और मुशलके प्रहारमें जरासन्धकी सेना कुछ घडी भी नही टिकी। पूरी सेना छिन्न-भिन्न अङ्ग—ढेरियाँ लग गयी गज, अश्व और मनुष्योंके शवोकी।

इस बार कश्मीरराज दरद श्रीबलरामके मुशलकी बलि हो गया। शेप राजा भाग गये। जरासन्धको मारनेके लिए उन अनन्तने मुशल उठाया। वे क्रोधोन्मत्त हो उठे थे—'इस पापिष्टको इस बार समाप्त ही कर देना है—हुँकार की उन्होंने।

'देव! आपका तेज असह्य है। आपका पराक्रम अकल्पनीय है। आपका शस्त्र अमोघ है।' सहसा आकाशवाणीने स्तुतिके स्वरमे कहा—'किन्तु मर्यादाकी रक्षा आप नही करेंगे तो कौन करेगा? यह बृहद्रथका पुत्र आपके लिए अवध्य है।'

श्रीमत्सङ्कर्षणने हाथ रोकलिया। उनका मुख कुछ शान्त हुआ। जरासन्ध यह तनिक-सा सुयोग मिलते ही भागा। भागकर प्राण बचाये उसने। अब उसने—दूसरे राजाओने भी समझ लिया कि वसुदेवके ये दोनो पुत्र उनके लिए दुर्जय हैं।

जरासन्ध लौटा। उसके साथ नरेश भी लौटे, किन्तु इस बार वे अपना उत्साह, नवीन आक्रमणकी चर्चा सब भूल गये थे। यह चक्र-मौशल युद्ध—यह दोनो भाइयोंका प्रलयङ्कर रूप। सब मौन थे। सबके हृदयमें आतङ्क बैठ गया था। अभी वे इस स्थितिमे नही थे कि क्या करना है आगे, इसकी चर्चा भी कर सकें।

—×—

शृगाल वासुदेव

चेदिराज दमघोष वहुत कालसे सन्दिग्ध थे—'वासुदेव कौन ?'

इस ऊहापोहका कारण था। उनका पुत्र शिशुपाल चतुर्भुज उत्पन्न हुआ था। यदि साथ ही वह त्रिनयन न होता, उसीको वासुदेव मान लेते वे; किन्तु जव शिशुपालकी माताने अपने भाईके पुत्र श्रीकृष्णकी गोदमे अपना पुत्र दिया—शिशुपालका तीसरा नेत्र लुप्त होगया और दो भुजाये गिर गयी।

ऋषि-मुनियोका कहना था कि भगवान वासुदेव—श्रीनारायणका अवतार होने वाला है—होचुका है। यह अवतार यदुवशमे होगा—यह भविष्यवाणी भी वहुत पहिले होचुकी है। लेकिन वसुदेवजीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र तो चतुर्भुज वासुदेव हैं ही, करवीरपुरका अधिपति शृगाल भी वासुदेव है। वह भी श्याम वर्ण है। उसके नेत्र भी वडे-बड़े हैं। भले उसके नेत्रोकी अरुणिमा क्रोधकी झलक देती हो, लाल नेत्र हैं उसके। उसके रथपर भी गरुडध्वज रहता है। वह भी चतुर्भुज ही दीखता है। कुछ लोग कहते हैं—'उसकी दो भुजाये कृत्रिम है।' किन्तु लोगोका कहना सत्य ही होगा, यही क्यो मान लिया जाय। वह भी यदुवशी ही तो है।

मथुराके युद्धोंने दमघोषके सन्देहको वहुत कुछ दूर कर दिया था। गोमन्तक पर्वतके चक्र-मौशल युद्धमे अपनी सेनाके साथ वे केवल तटस्थ दर्शक वने रहे। श्रीकृष्णके करोमे घूमता उनका प्रचण्ड महाचक्र—दमघोष का सन्देह दूर होगया, किन्तु एक विचार जागा उनके मनमें—इन भगवान वासुदेवको शृगाल वासुदेवसे मिला दिया जाय तो ?

शृगाल क्रोधी है। अभिमानी है। सदा युद्ध-पिपासु रहता है। किसीसे भी उसने मित्रता नही की। वह चेदिपर कभी भी आक्रमण कर सकता है। श्रीकृष्णका चक्र-मौशल युद्धमे देखा रूप—'ये अजेय हैं। तव शृगालको इनके द्वारा समाप्त क्यो न करा दिया जाय ? एक कण्टक मिटेगा।'

जरासन्ध अपने समर्थक नरेशोंके साथ भाग गया रणभूमिसे। चेदिराज दमघोष अपनी सेनाके साथ शान्ति-सूचक श्वेत ध्वज अपने रथपर उडाते आगे आये। समीप रथ ला खडा किया उन्होने दोनो भाइयोके, और रथसे नीचे उतरकर श्रीकृष्णसे बोले—'तात! तुम मुझे पहिचानते हो। मैं तुम्हारी बुआका पति हूँ। तुम मेरे प्रिय हो, स्नेहभाजन हो। मैंने जरासन्धको रोका था कि वह तुमसे युद्ध न करे, किन्तु उसने मुझे कायर कहा—मेरी निन्दा की। मैंने उसका साथ त्याग दिया है। देखते ही हो कि मेरी सेना संग्राम से अलिप्त रही है, यह स्पष्ट है।'

दोनो भाइयोंने अञ्जलि बाँधकर दमघोषको प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर वे बोले—'यह मगधराज अभी तो लौट गया है, पर फिर आवेगा। यह चुप बैठने वाला नही है। मेरा पुत्र शिशुपाल मुझसे अधिक उसे पिता मानता है। उसीका अनुगत है। जरासन्धने भी उसे पुत्रके समान स्नेह दिया है। अपना महासेनापति बना रखा है। पुत्रपर मेरा वश नही है।'

श्रीकृष्णचन्द्र देखते रहे। उनकी दृष्टि ही कहती थी—'आप अब हम दोनो भाइयोंसे क्या चाहते है?'

'यहाँ शवोंकी ढेरियाँ लग गयी हैं। पर्वतपर रहनेवाले मांसभक्षी प्राणी या तो अग्निमे जल गये अथवा सैनिकोंने उन्हे मार दिया। यहाँ कोई जनपद समीप नहीं है। अत. इस स्थान की स्वच्छता नही की जा सकती। यहाँ अब दुर्गन्धि फैलेगी--असह्य दुर्गन्धि!' दमघोषने कहा—'अत यह स्थान तत्काल त्याग देना चाहिये। मैंने दो श्रेष्ठ रथ तुम दोनो भाइयोंके लिए सज्जित कराये हैं। इन रथोंपर बैठो। हम करवीरपुर चलेंगे। वहाँके अधीश्वर शृगाल वासुदेव तुम्हारे ही कुलमे उत्पन्न हुए हैं। हम उनसे मिलेंगे। उनमे दूसरे चाहे जो भी दोष हो, भीरु नही हैं वे। मगधराजके विरुद्ध वे चाहे तो तुम्हारी सहायता कर सकते हैं। जरासन्धसे उनकी कोई गिनना नही है।'

श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजकी ओर देखा। भगवान परशुरामने शृगालका परिचय पहिले ही दे दिया था, किन्तु जब भू-भार दूर करनेके लिए चक्र उठा ही लिया है तो इस वासुदेवको भी क्यो न देख लिया जाय?' श्रीबलरामजीने दृष्टिसे सम्मति दे दी—'यदुकुलका यह कलङ्क हमारे यहाँ जानेपर भी न मिटे तो कब मिटेगा?'

दोनों भाई दमघोषजी द्वारा उपस्थित किये रथोपर बैठे। सेनाके साथ दमघोष साथ होगये। करवीरपुरके समीप पहुँचकर शिविर स्थापित किया इन लोगोंने अपना।

करवीरपुरके नरेश--शृगालके पिताकी उत्कण्ठा थी--उनके यहाँ अवतार हो। जव ऋषि-मुनि कहते है कि यदुवशमें भगवान वासुदेव अवतीर्ण होगे तो वे भी तो यदुवशी हैं। प्रतापी नरेश मानते हैं अपनेको। मनुष्यका स्वभाव ही है कि वह अपनेको, अपने कुलको, अपने गोत्रको, अपने स्थान, प्रान्त, भाषा, भूषा, आहार-व्यवहार को सर्वश्रेष्ठ मानता है। यह अहकारका रूप--यह दुर्बलता है मानवकी। इस दुर्बलताके कारण करवीरपुर-नरेश अपनेको यादवोमे सर्वश्रेष्ठ, अपने कुलको सर्वश्रेष्ठ यादव-कुल मानते थे, स्वाभाविक था और जब भगवान वासुदेवको अवतीर्ण होना है यदुकुलमें तो वे किसी कनिष्ठ शाखामे, कनिष्ठ व्यक्तिके घर कैसे आवेंगे?

सर्वश्रेष्ठ कुल, सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति तो करवीरपुर-नरेश अपनेको मानते थे। उनकी पत्नीकी गोद भरी। पुत्र श्यामवर्ण था, सुन्दर था, वड़े-बड़े नेत्र थे उसके--और क्या चाहिये? नरेशने अपने पुत्रका नाम वासुदेव रख दिया। उन्हे लगा कि उनके यहाँ ये भगवान वासुदेव अवतीर्ण होगये।

इतना कर्कश-स्वर निकला वह बालक कि उसकी वाणी शृगालकी भाँति थी--मानो फेत्कार करता बोलता हो। लोगोने उसको शृगाल कहना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु उसके सम्मुख लोग उसे वासुदेव ही कहते थे।

भगवान वासुदेव--माता-पितासे शृगालने शैशवसे ही अपने सम्बन्धमें यही सुना। उसकी धारणा बन गयी कि वह अवतार है, वासुदेव। उसका सदा क्रोधमे भरा रहनेवाला स्वभाव--लाल-लाल नेत्र, किन्तु वासुदेवके शील-स्वभावकी चिन्ता उसने कभी नही की। दो कृत्रिम भुजाये लगा ली। रथपर गरुड-चिह्नाङ्कित ध्वजा लगवा दी--सन्तुष्ट होगया कि वह सब लक्षण-सम्पन्न वासुदेव है।

भगवान वासुदेव--भला वे किसीसे मित्रता क्यो करें? लोगोको उनकी सेवा करके कृतार्थ होना चाहिये। उनका अनुगामी होना चाहिये। इतना अवश्य था कि उसने किसी सवलपर आक्रमण नही किया। ऐसा करके पराजयका भय क्यो उठाया जाय। अहकारपूर्वक कह देता था--'त्रिभुवनमे सव तो उसकी प्रजा ही है। वह किससे युद्ध करने जाय?' दुर्गम प्रदेश करवीरपुर--दूसरोने भी आक्रमण नही किया था।

गायत्रीका अनुष्ठान किया था उसने अनेक वर्षों तक। विना शक्ति-सामर्थ्यके वासुदेव कैसे रहता। शक्ति तो देवकृपासे मिलती है। उसके अनुष्ठानसे प्रसन्न सूर्यने उसे दिव्य रथ दिया था। यह रथ पाकर वह अजेय मानने लगा था अपनेको।

दमघोषजीने श्रीसङ्कर्षण तथा श्रीकृष्णसे सम्मति लेकर शृगालके पास सन्देश भेजा—'मथुरासे भगवान वासुदेव अपने अग्रजके साथ आपके अतिथि होकर पधारे हैं। करवीरपुरके बाह्योपवनमे हमारा शिविर है।'

'भगवान वासुदेव!' जल उठा शृगाल सुनते ही—'यह गोपकुमार वसुदेवका पुत्र, क्या वना, भगवान ही वन वैठा। अव यह मेरी स्पर्धा करने लगा है। करवीरपुर आगया है और चाहता है कि मैं इसका आतिथ्य करूँ। मैं भगवान वासुदेव इसकी पूजा करूँ?'

अपने दिव्य रथ पर वैठकर शृगाल उसी समय शिविरके समीप आ गया। उसने श्रीकृष्णको वुलवाया और जव वे आगये, वोला—'कृष्ण! तुम्हारा इस चतुर्भुज होनेका रहस्य भलीप्रकार समझता हूँ। लेकिन तुम अकेले हो और मेरे नगरमे—मेरे राज्यमे आये हो। मैं तुम्हे सेनाके द्वारा घेर लूँ, यह उचित नही है। तुम अकेले मुझसे युद्ध करो। पृथ्वीपर एक साथ दो वासुदेव नही रह सकते। हम दोनोमे एक आज मारा जायगा। संसार समझ लेगा कि वास्तविक वासुदेव कौन है।'

हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र वोले—'तुम्हारी इच्छा पूरी हो। तुम सेना भी प्रयोग करना चाहो तो कर लो, पर पहिले प्रहार कर लो। मैं तुमपर पहिले प्रहार नही करूँगा, क्योंकि इससे प्रहार करनेकी तुम्हारी इच्छा मनमे ही रह जायगी।'

शृगालने धनुष उठाया और वाणोंकी झड़ी लगा दी उसने। शर-वर्षामें अपनी तुलना वह स्वयं था। उसकी कुशलता प्रशंसा योग्य थी; किन्तु श्रीकृष्ण जव सुदर्शन चक्र उठा लेते हैं, भगवान प्रलयङ्करीके भी दिव्यास्त्र व्यर्थ बन जाते हैं, यह तो सामान्य शर थे। चक्रने उनके टुकड़े-टुकड़े उड़ा दिये मार्गमें ही। शृगालका भारी मस्तक चक्रसे कटकर भूमिपर गिर गया। उसका जीव—श्रीकृष्णका दर्शन करते, उनके चक्रसे मरकर संसारसे छूट जाना था। उसे सायुज्य प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णमें लीन हो गया वह।

शृगालके सैनिकोमे भगदड मच गयी। श्रीकृष्णचन्द्रने उच्चस्वरसे पुकारकर उन्हे अभय दिया—'डरो मत! भागो मत! इस पापात्माके अपराधके कारण मैं निरपराधो को नही मारूँगा। यह वीरव्रती नही था। घर आये अतिथिपर अकारण आक्रमण करके अपने पुण्य और आयु इसने स्वय समाप्त कर ली।'

विधवा महरानी पद्मावती अपने बालक पुत्र शक्रदेवको लेकर रोती हुई राजसदनसे निकली। पैदल ही चलकर श्रीकृष्णके समीप आयी। भूमिमे मस्तक रखकर उन्होंने रोते-रोते प्रार्थना की--'आप दयामय हैं! सर्वसमर्थ हैं। परलोकवासी नरेशका यह पुत्र आपकी शरण आया है।'

'देवि! मैं आपका कुलबन्धु हूँ, शत्रु नही।' मेघ गम्भीर वाणीसे कृष्णचन्द्रने अभयदान दिया—'यह तो मेरे लिए भी पुत्रतुल्य है। शृगालने स्वयं मुझपर आक्रमण किया था। वह मृत्युको स्वय वरण करने आया। मै यहाँ रोष करके--शत्रु बनकर आया नही। तव भी मैं मित्र बनकर आया था। अब भी मैं मित्र हूँ इस राज्यका। आप नगरमे पधारे। अपने मन्त्रियो तथा कुलपुरोहितको अभी राजसभामे बुलावे। मैं आरहा हूँ। इस बालकका राज्याभिषेक मैं स्वय अभी करूँगा। अभिषेकके पश्चात् यह अपने पिताकी उत्तरक्रिया करेगा। आप इसकी सरक्षिका बनकर रहे, इतना आपसे मेरा अनुरोध है।'

'आप सर्वेश्वरकी जैसी आज्ञा।' महारानीने पतिके शवके साथ सती होनेका विचार त्याग दिया। उसी दिन मध्याह्नमे शक्रदेवको सिंहासनपर बैठाकर श्रीकृष्णने अभिषेक किया।

चेदिराज दमघोषने आज्ञा ली और यहीसे अपने नगरको सेना सहित चले गये। श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र चेदिराजसे प्राप्त रथोपर बैठकर, शक्रदेव तथा रानी पद्मावतीसे विदा लेकर मथुरा आये। शक्रदेवने पिताके शरीरका अग्निसस्कार श्रीकृष्णकी उपस्थितिमे ही कर दिया था। अब उन्हे उत्तरक्रिया करनी थी।

—+—

श्रीबलराम-विवाह

चाक्षुष मनु यज्ञ कररहे थे। उनके यज्ञकुण्डसे एक कन्या प्रकट हुई। मनुने उसे पुत्री बना लिया। उसका नाम रखा ज्योतिष्मती। उसके विवाहका प्रश्न आया तो कन्याने कह दिया—'जो सबसे बलवान हो, वही मेरे स्वामी होगे।'

सबसे बलवान कौन? पृथ्वीपर तो बलमे तारतम्य रहता ही है। देवलोकमे इन्द्र, वायु आदि देवता भी अपनेको सबसे अधिक बलवान कैसे कह देते। अन्तमे निर्णय हुआ—सबसे बलवान भगवान अनन्त, जिनके सहस्र फणोमें-से एक फणपर सम्पूर्ण धरामण्डल नन्ही सर्षपके समान प्रलय-पर्यन्त धरा रहता है।

भगवान अनन्त तक तो मनु पहुँच नही सकते थे। देवताओंकी भी पहुँच नही वहाँ तक। उनकी कृपा हो तो वे किसीको दर्शन दे। उनके साथ मनु-पुत्रीका कैसे विवाह कर देते? किन्तु ज्योतिष्मती निराश नही हुई। उसने तप करना प्रारम्भ किया—'मेरे वही स्वामी हैं। मैं तपस्या करके उन्हे प्राप्त करूँगी।'

इन्द्र, यम, कुबेर, अग्नि, वरुण, सूर्य, शशि, मङ्गल, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनि अर्थात् सब ग्रह और पाँच लोकपाल उस तपस्विनीके पास पहुँचे। कोई छल नही, सब अपने स्वरूपमे ही उसके तपोवनमे गये। प्रत्येकने अपने पराक्रमका स्वय वर्णन किया और प्रार्थना की—'देवि! आप पतिरूपसे हमे स्वीकार कर लो।'

'तुम्हारा इतना साहस कि मेरे पाणिकी प्रार्थना करने आगये।' ज्योतिष्मती त्रिलोकसुन्दरी थी तो अकल्प्य तेजस्विनी भी थी। उसने प्रार्थना करने आये देवताको अस्वीकार ही नही किया, प्रत्येक देवताको कोई न कोई शाप दे दिया।

देवराज इन्द्र कुपित हुए। उन्होंने भी शाप दिया—'उग्रतेजा! तुमने देवताओंको अकारण शाप दिया है। कुमारी कन्यासे विवाहकी प्रार्थना करना कोई अपराध नही है। तुम अस्वीकार कर देती—कोई छल या बलका प्रयोग तो कर नही रहा था। तुमने निरपराधोंको शाप दिया है,

अत. अनन्त पराक्रम भगवान अनन्तको पतिरूपमें प्राप्त करके भी तुम्हे पुत्रोत्सवका आनन्द नही प्राप्त होगा।'

लेकिन भगवान अनन्तकी अर्धाङ्गिनीको शाप देकर उसपर स्थिर रहना बहुत कठिन था। देवराजको स्वय कहना पडा —'यदि आपके स्वामी देवताओंका सङ्कट-हरण करेगे तो यह शाप निष्प्रभाव हो जायगा।' शाप अन्तत. प्रभावहीन होगया। रेवतीजीके दो पुत्र हुए द्वारिकामे—निशठ और उल्मुक।

'धन्यवाद! मै उन श्रीचरणोमें अनन्य प्रेम चाहती हूँ।' तेजस्विनी ज्योतिष्मतीने इन्द्रके शापकी उपेक्षा करदी—'मेरे प्रेममे दूसरा कोई—कोई सन्तान भी भाग लेने आवे, यह मुझे नही चाहिये।'

ज्योतिष्मतीका तप कठिन था। उसका तप तेज बढ़ता चला गया। भगवान ब्रह्मा विवश हुए—उनकी सृष्टि ही समाप्त होजाय यदि कोई सत्त्वगुणको सीमातीत बढाता चला जाय। मनुकी कन्या—वह पार्थिव वपु तो नही थी कि उसका शरीर कष्ट-सहनकी कोई सीमा पाकर नष्ट होजाय। हसवाहन लोकस्रष्टा प्रकट हुए। उन्होने अनुरोधके स्वरमे कहा—'पुत्री! अब तुम इस कठिन तपका त्याग करो। अगले वैवस्वत मन्वन्तरके आने तक मेरे लोकमे निवास करो। वैवस्वत मन्वन्तरकी अट्ठाइसवी चतुर्युगीके द्वापरान्तमे भगवान अनन्त धरापर अवतीर्ण होगे। मैं वचन देता हूँ कि वे तुम्हे अपनी अर्धाङ्गिनीके रूपमे स्वीकार करलेगे।'

ज्योतिष्मतीके लिए कालका प्रश्न नही था। दूसरा जन्म लेनेमे भी आपत्ति नही थी। वह अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करेगी—आवश्यक हो तो घोर तप करती रहेगी। उसके आराध्य यदि लक्ष-लक्ष जन्म लेनेपर प्रसन्न हो तो वह बार-बार मरेगी और जन्म लेगी, किन्तु वे प्रसन्न हो। वे इस किङ्करीको स्वीकार करे।

भगवान ब्रह्मा उसे इसी देहसे ब्रह्मलोक चलनेको कह रहे थे। वह प्रसन्न होगयी। ब्रह्मलोक चली गयी। इस वैवस्वत मन्वन्तरकी प्रथम चतुर्युगीके सतयुगमे वैवस्वत मनुके वशमे महाराज शर्याति हुए। उनके तीन पुत्र थे—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। इनमे-से आनर्तके पुत्र हुए रेवत। इन महाराज रेवतने ही समुद्रके मध्यमें पहिले कुशस्थली नगर बसाया। इनके सौ पुत्रोमे ज्येष्ठ पुत्र थे ककुद्मी। नि सन्तान ककुद्मीने जब सन्तान-प्राप्तिके लिए यज्ञ प्रारम्भ किया तो उनके यज्ञकुण्डसे ब्रह्माजीके

आदेशसे ज्योतिष्मती प्रकट होगयी। अपनी इस अयोनिजा कन्याका नाम ककुद्मीने रेवती रखा।

दिव्य देहा अयोनिजा कन्या। किसीसे विवाह करें महाराज ककुद्मी अपनी इस पुत्रीका ? कोई उपयुक्त पात्र ध्यानमें ही नही आता था। रेवतीने ही कहा—'पिताजी! आप ब्रह्मलोक जानेमे समर्थ हैं। सृष्टि तो उन लोक-स्रष्टाने बनायी है। वे ही अपनी सृष्टिके समस्त प्राणियोके सम्बन्धोका भी विधान करते हैं। आप उनसे क्यो नही पूछ लेते।'

बात ठीक थी अन्तत. ब्रह्माजीने रेवतीके लिए कोई पति भी तो बनाया होगा। महाराज ककुद्मी अपनी पुत्रीको लेकर ब्रह्मलोक चले गये। संयोगकी बात थी, जब ये ब्रह्मलोक पहुँचे, ब्रह्माजीकी सभामे सङ्गीत-गोष्ठी चल रही थी गन्धर्वोंकी। भगवान ब्रह्मा गायन सुनरहे थे। थोडे क्षण महाराजको प्रतीक्षा करनी पड़ी।

चलता हुआ सङ्गीत समाप्त होते ही ब्रह्माजीने पुत्रीके साथ आये हाथ जोड़े खड़े महाराज ककुद्मीकी ओर देखा। महाराज बोले—'इस यज्ञकुण्ड समुद्भवा पुत्रीके योग्य वर ही मुझे पृथ्वीमे नही दीखता। आप कृपा करके इसके उपयुक्त वरका निर्देश करदें।'

ब्रह्माजी खुलकर हँसे। बोले—'राजन्! काल एक सापेक्ष तत्व है। आपकी धराका काल बहुत अधिक शीघ्रगामी है ब्रह्मलोकके कालकी अपेक्षा। ब्रह्मलोकमे आप कुछ क्षण खड़े रहे हैं, किन्तु पृथ्वीपर इतनी देरमे चतुर्युगी बीत चुकी। आपने जिन-जिनसे अपनी कन्याके विवाहकी बात सोची थी, पृथ्वीपर तो अब उनके वंशजोके गोत्रका भी पता नही है।'

महाराज ककुद्मी आश्चर्यसे देखते रह गये, किन्तु भगवान ब्रह्मा ज्योतिष्मतीको न पहचानते हों या उसे दिया अपना वरदान भूल गये हों, यह बात तो थी नहीं। उन्होने कहा—'राजन्! आप अब शीघ्रता करें। आप पृथ्वीपर पहुँचेंगे—तब तक वहाँ अट्ठाइसवीं चतुर्युगीका द्वापरान्त प्रारम्भ होचुका होगा। आप सीधे मधुपुरी चले जायें। वहाँ एक कुण्डलधारी, हल-मुसलायुध, तप्तकाञ्चनवर्ण, नीलवसन भगवान अनन्त मनुष्य रूपमे अवतीर्ण मिलेंगे। आप उन्हें अपनी यह कन्या दे दें। उन सर्वसमर्थके स्वेच्छागृहीत आकारपर आप ध्यान मत देना।'

महाराज ककुद्मीको अब शीघ्रता करनेकी आवश्यकता समझमें आ गयी थी। ब्रह्मलोकमें और रुके तो यह अवसर भी चला जायगा। वे प्रजापतिको प्रणाम करके कन्याके साथ पृथ्वीकी ओर चल पड़े।

भगवान सङ्कर्षणकी नित्य सहचरी हैं देवी नागलक्ष्मी। उनके आराध्य भगवान कामपाल धरापर पहुँच गये तो उन्हे भी आना ही था। ब्रह्मलोकमे ब्रह्माजी महाराज ककुद्मीको पृथ्वीपर जाकर अपनी पुत्री भगवान अनन्तको देनेके लिए कह रहे थे, तभी अपने नित्यलोकसे देवी नागलक्ष्मी धरापर आते हुए ब्रह्मलोक पहुँची। उन्होंने ब्रह्माजीकी बात सुन ली थी। एक बार रेवतीको देखा। मनमे ही कहा—'अच्छा! इस बार यह मेरे व्यक्त देहका माध्यम बनेगी।' वे रेवतीमें प्रविष्ट होकर एक हो गयी। रेवतीजीने केवल एक अतर्क्य आनन्दकी लहर अपने भीतर उठकर शान्त होती अनुभव की।

'जय जयाच्युत देव परात्पर स्वयमनन्त दिगन्तगत श्रुत।
सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रवराय ते मुसलिने बलिने हलिने नम ॥

(गर्गसंहिता, गो० १० ४३)

अपने पीतवसन, मेघश्याम छोटे भाईके साथ भगवान सङ्कर्ष यमुना-तटपर आये थे। प्रात. स्नानादिसे निवृत्त होकर यमुना पुलिनपर टहलने चले ही थे कि गगनसे स्तवनका मेघगम्भीर स्वर गूँजा। दोनों भाइयोने दृष्टि उठायी। सहसा एक कल्पनातीत ऊँचाईके पुरुष एक वैसी ही प्रलम्ब काय, किन्तु अत्यन्त कृशाङ्गी ज्योतिर्मयी कन्याके साथ आकर सम्मुख खड़े होगये। दोनो भाई ऊपर मुख उठाये देखते रह गये उन दोनोकी ओर। कठिनाईसे ये उन आगतोंके टखने तक ऊँचाईमे पहुँचते थे।

'आप महानुभाव ?' भगवान सङ्कर्षणने ही पूछा। आकृतिकी यह अद्भुत बृहत्तता कहाँ इन दोनो भाइयोको चकित करती हैं।

'मैं इस मन्वन्तरकी प्रथम चतुर्युगीके सतयुगमे उत्पन्न कुशस्थली-नरेश महाराज रेवतका पुत्र ककुद्मी हूँ और यह मेरी यज्ञकुण्ड समुद्भवा अयोनिजा पुत्री रेवती है।' उन आगत पुरुषने कहा—'प्रजापति भगवान ब्रह्माजीने मुझे आपका परिचय दिया है। उन्होने ही आदेश दिया है कि मैं आपको अपनी पुत्री प्रदान करूँ। इसका पाणि स्वीकार करके आप मुझे अनुगृहीत करे।'

'महाराज ! आप सूर्यवंशमें उत्पन्न परम प्रसिद्ध पुण्यपुरुष हैं।' श्रीकृष्णचन्द्र बोल उठे—'आपके साथ सम्बन्ध होना गौरवकी बात है। मैं अग्रजकी ओरसे इस सम्बन्धको स्वीकार करता हूँ।'

बड़े भाईको बोलनेका अवसर नहीं रह गया। अनुजने तो इतनी शीघ्रतासे स्वीकृति दे दी जैसे उत्सुकतापूर्वक इस सम्बन्धकी प्रतीक्षा ही करते रहे हो।'

'आप इसका हाथ ग्रहण करें।' महाराजने अपनी कन्याका दाहिना हाथ पकड़कर श्रीबलरामकी ओर बढाया—'आप देखते ही हैं कि धरा अब मेरे रहने योग्य नहीं रही। मैं आप दोनोंसे अनुमति लेकर इसी समय हिमालयमें तप करने जाना चाहता हूँ। इसके सविधि विवाहमें मेरी उपस्थिति अनावश्यक है। इससे आतङ्क, असुविधा, उत्पीडन ही बढेगा और यह मुझे प्रिय नहीं है।'

बात ठीक थी। उच्चतम वृक्ष भी जिनके घुटनों तक पहुँचते हैं, प्रथम चतुर्युगीके उन महाकाय पुरुषको नगरमें कहाँ—कैसे ले जाया जा सकता है। उनके स्वागत-सत्कारकी चर्चा व्यर्थ। वैसे भी वे कन्याके नगरमें तो जल-ग्रहण भी नहीं करेंगे।

श्रीबलरामजीने हाथ उठाकर रेवतीके कराग्रको किसी प्रकार स्पर्श कर लिया। इतना ही पाणि-ग्रहण पर्याप्त था। महाराज ककुद्मी जैसे गगनसे आये थे—आकाशमार्गसे ही उत्तर चले गये। अब पृथ्वी उनके सञ्चरणके अयोग्य हो चुकी थी।

'आर्य ! भाभीका यह प्रलम्ब आकार ?' श्रीकृष्णचन्द्र अब खुलकर हँसे।

'अच्छा !' हँसे श्रीबलरामजी भी। उन्होंने अपना दिव्य हल उठाया। रेवतीजीके कन्धेपर लगा उन्हें खींचा नीचेको। उन सत्य सङ्कल्पका सङ्कल्प ही सार्थक होना था, अन्यथा आप जानते हैं कि किसी देहधारीका शरीर न खींचनेसे बढ़ सकता और न दबानेसे घट सकता। किसीके कर-पाद, कर्ण, नासिकादिको पृथक्-पृथक् दबाकर कोई कैसे छोटा कर सकता है ?

श्रीसङ्कर्षण सत्यसङ्कल्प हैं। हलसे खींचना केवल उनके सङ्कल्पका व्यक्त स्वरूप मात्र बनना था। रेवतीजीका शरीर भी पार्थिव देह तो था

नही। यज्ञाग्नि समुद्भव वह दिव्य देह—हलका कन्धेसे स्पर्श हुआ और वह ज्योतिर्मय दिव्य शरीर जैसे सिकुडकर छोटा होगया।

रेवतीजीका शरीर इतना छोटा होगया कि वे ऊँचाईमें श्रीबलरामके कर्णपर्यन्त ऊँची रह गयी। उनके आभूषण-वस्त्र, माल्यादि भी उनके अङ्गके अनुरूप होगये। केवल एक परिवर्तन हुआ। श्रीरेवतीजी अत्यन्त कृशाङ्गी थी। जैसे ज्योतिकी रेखा हो। अब इस रूपमे उनका शरीर कुछ दुहरा-तनिक स्थूलताकी ओर झुका होगया। इस परिवर्तनके साथ उनका श्रीमुख लज्जासे सिन्दूरारुण होगया '

श्रीकृष्णचन्द्र तो लगभग दौडते नगरमे गये और उन्होने स्वय पिताको, माताओको, महाराज उग्रसेनको, पितामह शूरसेनजी तकको यह समाचार अत्यन्त उल्लासपूर्वक दिया। नगरसे कुछ क्षणोमे ही महाराज उग्रसेन और श्रीवसुदेवजी मङ्गलवाद्योके साथ अपनी दिव्य पुत्रवधूका स्वागत करके उसे लेने निकल पडे।

गर्गाचार्यजीने विवाह-मूहूर्त निर्णय किया। मथुरामे तो रेवतीजीके पदार्पणके साथ ही महोत्सव प्रारम्भ होगया था। श्रीवसुदेवजीको अपने बडे पुत्रका विवाह पूरे उत्साहसे करना था। देवकीजीकी उमङ्ग भी सीमामे नही थी। केवल माता रोहिणीकी स्थिर शान्त मुद्रा परिवर्तित नही हुई। मथुरामें श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दपर पहिली बार निर्बाध आनन्द क्रीड़ा करता देखा गया। वे स्वयं अग्रजके विवाहकी समस्त प्रस्तुतिका निरीक्षण करनेमे लग गये थे।



अपूर्ण स्वयम्वर

मगधराज जरासन्ध स्थायी शत्रु बन गया था मथुराका। महाराज उग्रसेनके लिए उसकी गतिविधियोपर सतर्क दृष्टि रखना आवश्यक होगया था। श्रीकृष्णचन्द्रने कुछ चर नियुक्त कर रखे थे जो उसका समाचार देते रहे।

इस बार मगधराज तथा उसके अन्य प्रबल समर्थकोका समाचार देनेवाले चर लगभग एकसाथ मथुरा आये। मथुराकी राजसभामे ही उन्होंने समाचार दिया—'अनेक देशोके नरेश विदर्भाधिप महाराज भीष्मकके पुत्र रुक्मीका निमन्त्रण पाकर उनकी राजधानी कुण्डिनपुर जारहे है। महाराज भीष्मककी प्रख्यात सुन्दरी कन्या रुक्मिणीका स्वयवर होनेवाला है।'

'रुक्मीने मथुरा निमन्त्रण नहीं भेजा, क्योकि वह मगधराजका समर्थक है।' एक चरने बतलाया।

'कन्याके स्वयम्वरमे बिना बुलाये भी जानेका क्षत्रिय-नरेशो, राजकुमारोका अधिकार है।' यादव-तरुणोंने कहा—'हम कोलभील आदि तो नही हैं कि उद्योगहीन होकर बैठे रहेगे। हम वहाँ अवश्य चलेगे। भगवान वासुदेवको इस स्वयम्वर सभामे भाग लेना चाहिये।'

'महाराज, आप मेरे अग्रजके साथ मथुरामे ही विराजे।' श्रीकृष्णचन्द्रने विनयपूर्वक कहा—'यदुकुलके तरुणोको लेकर मैं कुण्डिनपुर जाता हूँ।'

'तुम वहाँसे रिक्तहस्त लौटने तो नही जारहे हो?' भगवान बलराम उठ खडे हुए—'आवश्यक हुआ तो बलपूर्वक कन्या ले आना है। रुक्मिणी मेरी अनुजवधू होगी। वहाँ जरासन्ध अपने सब समर्थकोंके साथ आरहा है और युद्धकी सम्भावना है, ऐसी अवस्थामें तुम्हें एकाकी कैसे जाने दिया जासकता है। मथुराके जब सब विरोधी वहाँ एकत्र होरहे हैं, यहाँ मेरी उपस्थिति किसलिए? यहाँ तो इस समय कोई भय नही है। श्रीकृष्ण, मैं साथ चलरहा हूँ। समस्त विरोधियोंको मै यादव-महारथियोंके साथ रहकर रोक लूँगा। तुम्हे केवल कन्या ले आना है।'

यादवोंका समुदाय कुण्डिनपुर पहुँचे, इससे पूर्व ही समस्त दूसरे राजा वहाँ आचुके थे। नगरसे बाहर दूर-दूर तक जलकी सुविधा देखकर उन्होंने अपने शिविर डाल थे। सब ससैन्य आये थे, क्योकि प्राय. स्वयवरोके अवसरोंपर युद्धकी सम्भावना रहती थी। गज, अश्व, रथ आदिके असंख्य यूथ जहाँ-तहाँ ऐसे छाये थे कि नगरसे बाहर दूर तकका प्रदेश जनपद बन गया था।

अकस्मात आकाशमें भयानक अन्धड़के आनेका शब्द हुआ—विचित्र शब्द। सन्-सन् सामगानकी उच्चतम ध्वनि उस अन्धड़से आरही थी। दिशाये मलिन प्रकाशसे पीली होउठीं। इतना प्रबल वायुका वेग कि

अश्व, गज तथा जो भी मनुष्य खडे थे, सब भूमिपर गिर पड़े। शिविर उखड गये और वृक्ष टूट गिरे।

विनतानन्दन गरुड आये। यादव-समाजके समीप पहुँचकर उन्होंने अपना वेग कम किया और भूमिपर उतर गये। तत्काल मानव रूप धारण किया इच्छानुसार रूप धारण करनेमे समर्थ गरुडने; किन्तु उनके पङ्ख बने रहे। श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आकर उन्होने प्रणिपात किया। श्रीकृष्णने उन्हे उठाया। आदरपूर्वक साथ ले लिया।

गरुडके पङ्खोंके वेगसे जो प्रवल अन्धड उठा था, उसने वन-उपवनमें बहुत विनाश किया था। राजाओके शिखर थे उन स्थानोपर। वृक्षोके गिरनेसे पशु तथा मनुष्य भी कुछ मरे और कुछ घायल हुए थे। प्राय सब वस्त्र-शिविर फट गये, गिर गये थे। सामग्री अस्त-व्यस्त होगयी थी। गरुड़का आगमन राजाओके लिए विफलताका सूचक अशुभ बन गया था।

राजकुमार रुक्मी सेवकोके साथ तत्काल जुट गया आगत नरेशोकी व्यवस्था करनेमें। घायलोकी चिकित्सा हुई। मृत मनुष्यो एव पशुओका संस्कार ही किया जा सकता था। कोई भी किसीको कुछ कहनेकी स्थितिमें नही था। किसीका दोष तो था नही। पक्षिराज गरुडका वेग ही ऐसा है और देवराज इन्द्रका वज्र भी जिनका कुछ विगाड नही सका, उन भगवान विष्णुके अमित पराक्रम वाहनके स्वच्छन्द सञ्चारणको कोई रोक कैसे सकता है।

'अपने अग्रज तथा यादव-महारथियोके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आ रहे हैं। गरुड उनके साथ होगये है।' शीघ्र ही यह सम्वाद सबको मिल गया। इस समाचारको पाकर महाराज भीष्मक अपने कुलपुरोहित तथा नगरके वृद्धो-विद्वानोको लेकर स्वागत करने निकल पडे। आगे जाकर स्वागत किया उन्होने। अर्घ्य देकर सबका सम्मान किया। नगरके पार्श्वमें निर्मल जलाशयके समीप श्रीकृष्णचन्द्र अपने पूरे समाजके साथ उतरे।

'श्रीकृष्ण आगये।' इस समाचारने राजाओंके समूहमें दूसरी प्रतिक्रिया उत्पन्न की। सब मगधराज जरासन्धके शिविरमे एकत्र हुए। उन्हे अब परस्पर मन्त्रणा करके किसी एक निर्णयपर आना था, क्योकि अव स्वयम्वर-सभामें स्वतन्त्र बैठकर कन्या पानेकी आशा क्षीण होचुकी थी। इस आशाके नष्ट होनेसे आन्तरिक स्पर्धा समाप्त होगयी थी।

'ये दोनो वसुदेव-पुत्र अत्यन्त पराक्रमी हैं और यहाँ कन्या-हरण करने ही आये हैं।' जरासन्धने ही प्रारम्भ किया—'गोमन्तक पर्वत वाले युद्धको आप सवने देखा ही है, अत. अव व्यर्थ अपने वलका गर्व करना कोई वुद्धिमानी नही है। उस युद्धमे ये दोनो भाई मात्र थे और पैदल थे। अब इनके साथ अमित पराक्रम गरुड़ हैं। यदुवंशकी सब शाखाओके महारथी भी साथ है। यदि यहाँ युद्ध होता है तो ये कैसा दारुण युद्ध करेंगे, इसे आप सब समझ ले। इन्हे कन्या न भी वरण करे तो ये उसे वलपूर्वक ले जायेंगे। मैं इनका प्रवल विरोधी हूँ; किन्तु स्पष्ट सत्यको मैं अस्वीकार नही करता। मैं मानता हूँ कि ये असुर-विनाशक विष्णु ही हैं। गरुड त्रिभुवनमे दूसरे किसीके सम्मुख विनम्र नही बनते।'

'मगधराज महामनस्वी है। अपने शत्रुकी शक्ति और गुणको स्वीकार करना इनकी महत्ता है। इस समय इन्होने श्रीकृष्णके सम्बन्धमे जो कुछ कहा है, सर्वथा सत्य है।' सुनीथने जरासन्धका समर्थन किया।

'वे मेरे मामाके पुत्र हैं। यह सत्य है कि मेरी उनसे पटती नही, पट भी नही सकती; किन्तु मुझे अव तक उनमे दोप नहीं दीखता।' दन्तवक्रने उठकर अपनी वात कही—'आप दोनो उनकी शक्तिका जो वर्णन करते हैं—सत्य है। श्रीकृष्णका यहाँ आना भी उचित है। वे भी हम सबके समान राजकन्याके लिए ही आये हैं। अव तक हम सबने श्रीकृष्णसे शत्रुता की तो उन्होंने उचित प्रतिकार किया। हम सबकी सम्मिलित शक्तिके लिए भी वे भारी—बहुत भारी पडे हैं; किन्तु उन्हे दोष नही दिया जा सकता। उनसे शत्रुता रखनेपर हम जहाँ जायेंगे, वही सङ्घर्षकी सम्भावना रहेगी और उनसे सङ्घर्ष भारी पडेगा। हम उनसे प्रीति क्यो न बढायें! वे पुरुषोत्तम हैं। वे न कठोर हैं, न दुर्वल हैं। वे देवताओके भी देवता विष्णु हैं, यह आप दोनो ही मानते हैं, अतः हम अर्घ्यादि देकर उनका आतिथ्य करेंगे और परस्परके सङ्घर्षको समाप्त कर देंगे।'

'लगता है कि सब नरेश श्रीकृष्णके भयसे कांपने लगे हैं। दूसरोंकी स्तुति करनेका प्रयोजन क्या है? मैं मानता हूँ कि श्रीकृष्ण सनातन पुरुष हैं, नारायणके स्वरूप हैं। उनके समीप गरुडकी उपस्थितिका दूसरा कोई अर्थ सम्भव नही। उनसे संग्राम हुआ तो इनके चक्रकी अग्निमे जलकर हम मरेंगे ही, यह भी सुनिश्चित है।' शाल्व निर्भय हो कर उच्च स्वरमें बोल

रहा था—'लेकिन भय व्यर्थ है। राजकन्या जिसका वरण करेगी, उसकी पत्नी बनेगी। इसमे झगडेकी क्या बात है ?

'महाभाग दन्तवक्र ठीक कहते हैं।' इस बार कुण्डिनपुरके अधिपति महाराज भीष्मक बोले—'मेरा पुत्र रुक्मी अपने बलके घमण्डमे ही भरा रहता है। वह श्रीकृष्णके प्रभावको सह नही पाता। अत कन्याका हरण और सग्राम मुझे निश्चित लगता है। अपने ज्येष्ठपुत्रको केशवके साथ युद्धका अवसर मैं केसे दे सकता हूँ ? पहिले अर्घ्यादि देकर श्रीकृष्णको शान्त करना ही उचित है।'

'आप अकारण अधीर होरहे हैं। स्वयम्वरका आयोजन करें। स्वयम्वर-सभामे श्रीकृष्ण आवेंगे ही नही।' मगधराजने हँसकर कहा—'स्वयम्वर-सभामें मुर्धाभिषिक्त नरेश और उनके युवराज अपने-अपने सिंहासनोपर छत्र धारण करके बैठेंगे। श्रीकृष्ण तो कहीके नरेश नही है। वे क्या सामान्य नागरिकके मञ्चपर बैठेगे ? नरेशोसे नीचे आसनपर बैठने उस सभामे आवेंगे ? वे स्वयम्वर-सभामे कदापि नही आवेंगे।'

मगधराजकी बात सुनकर सभी नरेश प्रसन्न हुए। सबको यह बात तर्क-सङ्गत लगी, किन्तु महाराज भीष्मकके भाई क्रथ और कैशिक, गजाओ की उस सभासे उसी समय उठ गये। वे प्रसिद्ध भगवद्भक्त—उन्हे तो श्रीकृष्णागमनका समाचार मिला तभीसे लगता था कि उनपर अनुग्रह करनेके लिए ही भगवान यहाँ पधारे है। वे दूसरे राजाओको भी समझाने ही आये थे इस सभामें। अव जरासन्धकी वात सुनकर उन्होने अपने कर्तव्यका निश्चय करलिया था।

'भैया ! हम दोनोने भगवत्कृपासे श्रीकृष्ण-तत्त्वको समझा है।' मार्गमें ही क्रथने भाईसे कहा—'हम दोनो भाई श्रीकृष्णके अभिषेकका यह सुअवसर क्यो छोड दे ? उनके अभिषेकके करनेसे हम सर्वथा निष्पाप हो जायँगे। मेरा राज्य उन परमपुरुषके पदार्चनका साधन वने, इससे वडा सौभाग्य हमारा क्या होगा ?'

कैशिकने तो वड़े भाईको ही पिता, पूज्य, मार्गदर्शक—सर्वस्व जाना था अपना। उन्होंने समर्थन कर दिया। दोनो सीधे श्रीकृष्णचन्द्रके समीप गये। वहाँ प्रणिपात करके, हाथ जोड़कर खड़े होगये। अनुमति पाकर मगधकी वात सुना दी और बोले—'आपके यहाँ पधारनेसे हमारा जन्म सफल हुआ। हमारे पितर तृप्त होगये। अपना राज्य, सिंहासन, कोप—

सर्वस्व हम आपको समर्पित करते हैं। इसे स्वीकार करके आप हमें अपना चरण-सेवक कहलानेका सौभाग्य-दान करे। आप निखिल लोकेश्वर हैं। अत्यन्त क्षुद्र है मेरा राज्य; किन्तु आप आज शास्त्रविधिसे अधिवास कर लें। कल मैं प्रयत्न करूँगा कि सब नरेश आपके अभिषेकमें पधारें। जरासन्धकी दुरभिसन्धि विफल हो जायगी। हम कृतार्थ हो जायेंगे।'

श्रीकृष्ण सदाके अपने जनोंके ही हैं। उनके भक्त कोई अनुरोध करें तो उसे पूर्व स्वीकृत ही मानना पडता है। यादव महारथियोंको—श्रीबलरामको भी इस प्रस्तावने प्रसन्न किया। राज्य तो क्रथ-कैशिकका ही रहना है। उनका यह सम्मान-दान—महाराज उग्रसेनकी राजसभामें सभासदोंमे प्रमुख स्थान उन्हे इस अर्पणसे स्वत. प्राप्त हो जायगा।

मगधराजके शिविरमें राजाओंकी गोष्ठी समाप्त ही होनेवाली थी कि कैशिक पहुँच गये वहाँ। मार्गमे ही उन्हे देवराज इन्द्र द्वारा भेजा दूत मिल गया था। उसने उनका कार्य सुगम कर दिया था।

'समस्त नरपतिगण सावधानीसे यह नवीन समाचार सुन लें।' कैशिकने पहुँचते ही घोषणा करके सबको चौंका दिया। नरेशवर्ग सन्तुष्ट विदा होनेवाला था यह समझकर कि स्वयंवर-सभामे श्रीकृष्ण नही आवेंगे। 'अब नवीन समाचार क्या ? कही वे कन्याको ले तो नही गये ?'

'आप सब जानते है कि श्रीहरि अपने अग्रज और गरुडके साथ विदर्भमे अतिथि हुए हैं।' कैशिकने सुनाया—'उन्हे उत्तम पात्र जानकर मेरे भाई क्रथने अपना सम्पूर्ण राज्य उन्हे अर्पित कर दिया है।' सभी नरेशोकी मुखश्री मलिन पड गयी। श्रीकृष्ण स्वयंवर-सभामे न आवें, इसका जो एकमात्र कारण था—वह भी नही रहा। कुण्डिनपुरमे आकर, वहीके नरेशके सगे भाईका विरोध इस समय किया नही जासकता था और वे अपना राज्य किसीको भी अर्पित करें—विरोध इसमे किस प्रकार कोई करेगा ?

'मेरे भाईने श्रीकृष्णचन्द्रके लिए अपना सिंहासन रिक्त कर दिया, किन्तु तभी एक दिव्य प्राणी अदृश्य रहते बोला—'जिस सिंहासनपर कोई भी बैठ चुका, वह उच्छिष्ट होगया। उसपर देवदेवेश्वर, निखिल लोकाधार श्रीकृष्ण कैसे बैठेंगे ?'

कैशिककी इस बातने क्षण भरके लिए राजाओंको प्रसन्न ही किया; किन्तु वे तो कहते जारहे थे—'वह दिव्य प्राणी एक ज्योतिर्मय रत्नसिंहा-

सन अदृश्य रहते ही धीरेसे धर गया।' जाते-जाते उसने कहा—'यह देवराज इन्द्रने भेजा है और समस्त राजाओके लिए एक आदेश किया है।'

लोकपाल—देवाधिपति इन्द्र राजाओको आदेश नही दे सकते, यह कहनेका साहस कौन करता ? सब उत्सुक थे वह आदेश सुननेको। कौशिकने सुनाया—'देवराज कहते हैं कि श्रीकृष्ण उनके छोटे भाई उपेन्द्र है। जब वे कल सिंहासनासीन हो, सभी राजाओको उनको राजेन्द्र पदपर अभिपिक्त करना चाहिये। यह कार्य देवता कर सकते तो देवराज स्वयं समस्त सुरोके साथ आकर इसे सम्पन्न करते, किन्तु मनुष्योंके राजेन्द्र पद-पर अभिषेक राजा ही कर सकते है। कुण्डिनपुरमे उपस्थित नरेशोमें जो भी श्रीकृष्णके अभिषेकमे सम्मिलित नही होंगे, वे इनके वध्य हो जायँगे। सुर उनकी कोई सहायता नही करेंगे।'

कौशिकने यह भी बतलाया—'वह दिव्य पुरुष आठ अक्षय कलश दे गया है कलके श्रीकृष्णके अभिषेकके लिए। यह कलश स्वत आकाशमे स्थिर होकर श्रीकृष्णपर दिव्यरस एव सुरगङ्गाके जलकी धारा गिरायेंगे। ऐसे दृश्य पृथ्वीपर दुर्लभ हैं।'

सचमुच पृथ्वीपर ऐसा दृश्य दुर्लभ है। राजा लोग उत्सुक होगये थे यह दृश्य देखनेको। उन्हें श्रीकृष्णका वध्य भी नही बनना था। केवल मगधराजका सङ्कोच—सब जरासन्धका मुख देखने लगे थे।

'मैं एक बार भी श्रीकृष्णके विरुद्ध आप सबकी रक्षामे समर्थ नही होसका। अत आप उनकी शत्रुता लें, ऐसी सम्मति आपको मैं नही दे सकता।' जरासन्धने शान्त स्वरमे कहा—'आप सबको श्रीकृष्णके अभिषेकमें कल जाना चाहिये।'

अद्भुत दृश्य—गगनसे निरन्तर होती सुमन-वर्षा, सुरोंके सस्वर वाद्य—केवल सुना था इनके सम्बन्धमे लोगोने। आज प्रत्यक्ष होगया यह दृश्य। आठो कलशोपर वस्त्र लिपटे थे—रत्नोज्वल दिव्य वस्त्र। उनके मुख आम्रपल्लवोसे युक्त थे। निराधार गगनमे स्थित उन कलशोसे श्रीकृष्णपर दूध, दधि, घृत, मधु और सुगन्धित जलकी अजस्र धारायें झररही थी। गगनमे अदृश्य मुनिवर्ग सस्वर मन्त्र-पाठ कररहे थे।

कौशिकने सब नरेशोका स्वागत किया। उन्हे आसन दिया। सब आश्चर्यसे देखते रहे कि जलधारा-स्नानके पश्चात् उन कलशोसे ही दिव्य

वस्त्र, आभूपण, माल्य, अनुलेपन भी निकले और स्वयं श्रीकृष्णके श्रीअङ्गपर उचित स्थानपर सज्जित होगये।

भगवान वलराम और गरुड श्रीकृष्णकी दाहिनी ओर बैठे। क्रथ-कैशिकको साग्रह उन जगदीश्वरने वाम-पार्श्वमे वैठाया। अव नरपतिगण श्रेष्ठत्वके क्रमसे उठने लगे। उन्होने यथायोग्य पूजन किया भगवान वासुदेवका। केवल जरासन्ध और शिशुपाल नही आये इस महोत्सवमे।

श्रीकृष्णचन्द्रने प्रत्येक नरेशको एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रायें पुरस्कारमे दीं। वे अक्षय कलश अव पर्याप्त नीचे आगये थे। श्रीकृष्ण केवल पुरस्कार-राशिका उच्चारण करते थे। किसी भी कलशसे उतनी स्वर्ण-मुद्रा खनखनाती गिर पडती थी पुरस्कृतके सम्मुख। राजाओने सादर ग्रहण किया वह पुरस्कार।

सव पूजन करके पुरस्कृत होचुके तो कैशिक उठे। अञ्जलि बाँधकर वोले—'ये नरपतिगण चाहते हैं कि इनसे जो अपराध हुआ है, उसे आप राजराजेश्वर भूल जायें और इन्हे क्षमा करे।'

भगवान वासुदेव सुप्रसन्न वोले—'मेरे मनमे किसीके प्रति द्वेप दो घड़ी भी नहीं टिकता। जो मर गये या युद्धमे मारे गये, उनके लिए शोक न करें। उनको उत्तमगति प्राप्त हुई—यह मेरा निश्चित आश्वासन है। मुझे क्षमा प्रिय है। कृपा ही मेरा स्वरूप है। सभी नरपति परम्पराकी शत्रुता त्याग दें और निर्भय होजायें।'

'अव स्वयम्वरका प्रश्न उठेगा और फिर सङ्घर्ष होगा।' महाराज भीष्मक पूरी रात्रि इसी चिन्तामें व्याकुल थे। वहुत सोचकर उन्होंने एक उपाय पाया था। अत. वे वही हाथ जोडकर अपने आसनसे उठ खड़े हुए। श्रीकृष्णचन्द्रने उनकी ओर देखा।

'भगवान वासुदेव पूर्ण पुरुपोत्तम हैं। वे मुझपर कृपा करे और मेरी प्रार्थना सुनें। सव नरेश भी मेरा निवेदन ध्यान देकर सुनें।' महाराज भीष्मक विनय भरे स्वरमे वोले—'मेरे पुत्र रुक्मीने वालचापल्यवश अपनी वहिनके स्वयम्वरका आयोजन किया। उसके निमन्त्रणपर आप सव पधारे। आप सवको वहुत कष्ट हुआ, इस कारण मैं लज्जित हूँ। आप सभी मेरी विवशता देखकर मुझे क्षमा करें। मेरी कन्या रुक्मिणी स्वयं सभामें आना नहीं चाहती। अव किसी एक वरका निर्णय करके यथावसर उसका विवाह मुझे करना होगा।'

इतने नरेश बुलाकर एकत्र किये और अब उन्हें चले जानेको कह दिया गया, यह सबका अपमान—कोई कुछ भी कह सकता है या कर सकता है। अभी-अभी जिसे राजाओंने नरेन्द्र-नायक पदपर अभिषिक्त किया, उसका कर्तव्य भी तो सबके हितकी रक्षा है। वह चुप सहले इसे ?

'महाराज ! जब आपका पुत्र रङ्गस्थल बनवा रहा था, अब उसने नरेशोको आमन्त्रण भेजा, आप अनजान कैसे रह गये ? आपकी पुत्रीको ही कैसे पता नही लगा, जब इतने राजा यहाँ आये और इनका सत्कार किया गया ? प्रारम्भसे ही आपने अपने पुत्रको क्यो नही रोका ?' श्रीकृष्ण मेघगम्भीर स्वरमें बोले—' केवल हम अनिमन्त्रित आये हैं। यदि मेरा आगमन आपको अच्छा नही लगा है तो मुझे छोडकर राजाओमे किसीको राजकन्या वरण करे। मै बाधा नहीं दूँगा। मैं आपकी कन्याके विवाहमें विघ्न नही बनूँगा। मैंने यहाँ अपनी सेना को ठहराया, इसका मुझे खेद है। मैं आपकी कन्याका स्वयम्वर रोकने नही आया हूँ। आप मेरी ओरसे शङ्कित हो तो भय त्याग दे।'

सभी नरेशोंके नेत्र श्रीकृष्णके मुखपर लग गये। सबके नेत्रोमे प्रशंसाके भाव स्पष्ट थे—इतना स्पष्ट आश्वासन ! इतना निरपेक्ष पुरुष ! इससे अधिक कोई और क्या कर सकता है ?'

महाराज भीष्मक हाथ जोडे खड़े रहे। उन्होंने कहा—' आप मुझपर प्रसन्न हैं। आप लोक-महेश्वर हैं। मुझसे अपराध हुआ है, किन्तु मैं आपकी शरण हूँ। स्वयम्वरमे आये राजाओमे किसीको भी मैं इस समय अपनी कन्या देना नही चाहता। आप मेरी रक्षा करें।'

'ठीक है, मैं यहाँ शत्रु बनकर नही, मित्र-भावसे ही आया था। स्वयम्वर-सभामे राजकन्याको देखनेकी इच्छासे—वे स्वीकार करें तभी उनका वरण करने आया था। अन्यमनोलग्ना कन्याको बलपूर्वक पानेमें मेरा कोई उत्साह नही है।' श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—' आपकी कन्या साक्षात् लक्ष्मी है।' वे स्वयम्वरा बनकर सबके सम्मुख नही आना चाहती हैं, यह उनका निश्चय श्लाध्य है। वे मनोनीत पतिका ही वरण करें। अब मैं मथुरा जाता हूँ।'

श्रीकृष्ण इतना कहकर सिंहासनसे उठे। वे सभाभवनसे बाहर आये। सबके सम्मुख तत्काल वह सिंहासन, वे कलश आकाशमे ऊपर उठे और अदृश्य होगये।

'आप दोनो भाई मेरे परम प्रिय हैं।' श्रीकृष्णने क्रथ और कैशिकका आलिङ्गन किया—'अब आप मेरे प्रतिनिधि रहकर इस राज्यका पालन करें। आप दोनोंकी अविचल भक्ति रहेगी मुझमें। कोई विघ्न आपके समीप जीवनमे नही आवेगा। आपको कोई भी क्लेश नही दे सकेगा।'

महाराज भीष्मकने तथा उनके इन दोनो भाइयोने भगवान वासुदेवको दूर तक साथ जाकर विदा किया। अग्रज तथा यादव-वीरोके साथ श्रीकृष्ण वहाँसे चलकर मथुरा आये। केवल गरुड़ मथुरा साथ नही आये। उन्होने मार्गमे ही अनुमति माँगी—'आपके निवासके अधिक उपयुक्त किसी स्थलकी शोध करने मै जाता हूँ।' गरुड़को आज्ञा मिल गयी।

'श्रीकृष्ण चले गये। अब आप नि:शङ्क स्वयम्वर-सभाका आयोजन करें।' सब नरेश प्रसन्न होकर, आभूषित होकर महाराज भीष्मकके समीप पहुँचे।

'श्रीकृष्ण-विरोधरूपी जो अनर्थ स्वयम्वर द्वारा होने जारहा था, उसे मैंने जान-बूझकर स्थगित कर दिया। आप सब मुझे क्षमा करें।' भीष्मकने कहा—'जो दिव्य पुरुष सिंहासन ले आया था, जिन सुरेन्द्रने सिंहासन भेजा था, वे तत्काल श्रीकृष्णको समाचार नही देंगे? उनसे छिपाकर हम कुछ कर सकते हैं? मेरे दोनो भाई श्रीकृष्णके ही अब प्रतिनिधि हैं। मैं इनका विरोध भी ले लूँ तो मनोवेग गरुडकी पीठपर बैठे जनार्दनको यहाँ पहुँचनेमे विलम्ब होगा? वे चक्र उठाकर गगनमे ही आक्रमण करें, आपमे किसीके समीप उनका प्रतिकार करनेका कोई उपाय है?'

सब नरेशोंने मस्तक झुका लिया। सचमुच यदि वे इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके साथ छल करते है तो गरुडारूढ हो वे गगनसे ही आक्रमण करें, इसे कोई अनुचित कैसे कह सकता है और तब उनका प्रतिकार करनेका किसीके समीप भी क्या साधन है? वे पुरुषोत्तम भूमिपर खड़े थे चक्रांगल-गुहमें तब भी उनका प्रतिकार नही किया जासका और अब गरुड साथ हैं उनके—मनोवेग गरुड—उन्हे यहाँ लानेमे दोचार क्षण ही लगेंगे।

'अब आप सब भी पधारें। मेरे पुत्रने आपको आमन्त्रित करके जो अपराध किया है, मैं उसके लिए आप सबसे क्षमा चाहता हूँ।' महाराज भीष्मकने सबसे प्रार्थना की। सबको सादर विदा किया। केवल मगधराज

जरासन्ध और उसके दो-चार अन्तरङ्ग मित्र रह गये। शेष सब नरेश स्वदेश लौट गये।

सब सुनकर देवी रुक्मिणी रोपडी थी। उन्होने सखियोंसे कहा—'मैं कमललोचन उन नीलसुन्दरको छोड कर दूसरेको स्वप्नमे भी स्वीकार नही करूँगी।'

महाराज भीष्मक भी चिन्तित थे। उनके मनमें भी श्रीकृष्ण-प्रेम था; किन्तु ज्येष्ठ पुत्र रुक्मी—वह हठी। महाराजको कोई मार्ग नही मिल रहा था। उनकी कन्याका स्वयम्वर भङ्ग होगया।



द्वारिकापुरी

श्रीकृष्णचन्द्र अग्रज एव यादव-महारथियोके साथ मथुरा लौटे। महाराज उग्रसेनने नगर सुसज्जित कराया था। वे स्वय रथसे उतरकर पैदल स्वागत करने वढे थे। महाराज तो स्तवन करने लगे थे, किन्तु श्रीवलरामजीने उन्हे ऐसा करनेसे रोका—'आप यह क्या करते हैं। आप हमारे पूज्य हैं, सम्राट हैं। आपको तो हमे अपना स्नेह देना चाहिये।'

श्रीकृष्णचन्द्रने आग्रह करके महाराजको रथपर बैठाया। मथुरामे महोत्सव तो होना ही था। महाराज उग्रसेनको श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्र, आभूषण, वहुत-सा धन भेंट किया। ब्राह्मणोको, यदुवृद्धोको, अन्य पूज्य वर्गको, कला-जीवियोको सभी सेवको-परिकरोको यथायोग्य पुरस्कार प्राप्त हुआ।

महोत्सव मथुरामे तो नित्य ही था। जहाँ राम-घनश्याम विराजे, श्री एव ऐश्वर्य वही तो रहेगा, किन्तु मगधराजकी ओरसे श्रीकृष्णचन्द्र उदासीन नही रह सकते थे। मथुराके गुप्तचर जरासन्धकी प्रत्येक गति-विधिका समाचार भेजते रहते थे। शत्रुसे जो सावधान न रहता हो, वह शासक तो अयोग्य होगा।

एक दिन गरुड आगये। वे सीधे श्रीकृष्णचन्द्रजीके समीप आये। श्रीवलरामजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र गरुडकी वात सुनने अन्तःकक्षमें चले गये।

'महाराज रेवत पुरी कुशलस्थली समुद्रके मध्य थी। रुक्मीने उसे उजाड दिया आक्रमण करके। अव वहाँ घोर वन है। उसमे हाथी, रीछ, अजगर आदि वन-पशुओने अपना निवास वना लिया है।' गरुड़ने वतलाया — 'मैं वह स्थान देख आया। उसपर आपका स्वत्व है; क्योकि देवी रेवतीके पितृकुलका स्थान है वह। वहाँ उत्तम पुरीका निर्माण हो सकता है, यदि समुद्र कुछ स्थान और छोड दे। वहाँ वना नगर देवताओके लिए भी अजेय होगा। समीप ही रैवतक गिरि है। वह स्थान सर्वथा आपकी राजधानीके उपयुक्त है।'

'आपने एक वडी समस्या सुलझा दी।' यह कहकर गरुडका सत्कार करके श्रीकृष्णने उन्हे विदा कर दिया।

'आर्य! समाचार आरहे है कि इस वार मगधराजने कालयवनसे सहायता माँगी है। हम लोगोके लिए जरासन्ध और कालयवन दोनो ही अवध्य हैं।' श्रीकृष्णचन्द्रने गरुडके चले जानेपर वड़े भाईसे कहा — 'कालयवनने प्रस्थान कर दिया है। उसके दो-तीन दिन पीछे ही जरासन्ध भी आ पहुँचेगा। हम दोनो कालयवनसे युद्धमें उलझ जायँगे, क्योकि कालयवन और म्लेच्छोकी वहुत वडी सेनाको हम दोनों भाइयोंके अतिरिक्त कोई रोक नही सकता। ऐसी अवस्थामे जरासन्ध आगया तो हमारे स्वजन अकेले-असहाय पड जायँगे। यादव-महारथियोंमे कोई मगधराजको दो-तीन दिन भी रोक नही सकता। वह या तो सवको मार देगा अथवा वन्दी वनाकर गिरिव्रज ले जायगा।'

भगवान सङ्कर्षण वोले नही। वे अपने छोटे भाईकी ओर देखते रहे। भला श्रीकृष्णके लिए और स्वयं उनके लिए भी कोई अवध्य-अजेय होता है? लेकिन उनके ये लीलामय अनुज सवको मिले वरदानोंकी मर्यादा सुरक्षित रखकर चलना चाहते हैं तो ऐसा ही सही। श्रीवलरामके देखनेका तात्पर्य था — 'तुम करना क्या चाहते हो?'

'मथुरामें रहना अच्छा नहीं है।' श्रीकृष्णने अभिप्राय स्पष्ट किया — 'गरुडने जिस स्थानका सकेत किया है, वह भी मथुराके समान ही नित्य-धाम है। मोक्षदापुरी है। वहाँ ऐसा दुर्ग वन सकता है जिसकी खाई समुद्र होगा। मनुष्य मात्रके लिए वहाँ पहुँचना कठिन होगा। वहाँ रहकर थोडे-से सामान्य सैनिक भी भारी सेना एवं वलवान शत्रुका सरलतासे सामना कर सकेंगे। आप अनुमति दें तो विश्वकर्मा वहाँ आज ही नगरका निर्माण कर

देंगे। हम दोनो समस्त स्वजनोको वहाँ भेजकर यहाँ रहेंगे और आक्रमण-कारियोकी शक्ति देखकर उनके साथ वैसा व्यवहार करेंगे।'

बडे भाईसे पूछना केवल मर्यादा थी। इसलिए कि वे अग्रज है। इसलिए भी कि जहाँ दुर्ग बनना हे, वह भूमि देवी रेवतीके पितृकुलकी है; किन्तु मर्यादा ही थी यह। भगवान बलरामने कब छोटे भाईकी योजनामें बाधा दी है? उन्होने स्वीकृति दे दी।

'आप कुशस्थलीको भली प्रकार जानते हैं।' स्मरण करते ही देव शिल्पी विश्वकर्मा सम्मुख उपस्थित होगये। हाथ जोडकर उन्होने आज्ञा माँगी। श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—'और जितनी भूमि आवश्यक लगे, समुद्रसे कहिये कि उतनी भूमि छोड़कर हट जाय तब तकके लिए जब तक मैं धरापर हूँ। यदुवंशियोके बढते परिवारको ध्यानमे रखकर वहाँके वनोको स्वच्छ करके आप नगर-निर्माण कर दे। सुरक्षा और सुविधा दोनोका पूरा-पूरा ध्यान आप नगर-निर्माणमें रखेंगे।'

विश्वकर्माने आज्ञा स्वीकार की—'मुझे सेवाका अवसर देकर आपने कृतार्थ किया। मैं अपनी सम्पूर्ण बुद्धि एव कलाके अनुसार प्रयत्न करूँगा। सफलता तो सदा आपके अनुग्रहसे ही जीवको मिलती है।'

विश्वकर्मा गये। उनका समस्त अनुगतवर्ग उनके समान देववर्ग ही तो है। विश्वकर्माने स्मरण किया और वे असख्य देवशिल्पी कुशस्थली-काननको स्वच्छ करने लग गये।

मानवके लिए देवता अदृश्य हैं। उनसे सम्पर्क करनेके लिए मनुष्यको विशेष प्रयत्न करना पडता है, किन्तु देवताके लिए दूसरे देवतासे सम्पर्क बनानेमे क्या कठिनाई? समुद्रके अधिदेवताने विश्वकर्मासे श्रीकृष्णका सन्देश सुना। सागरके अधिदेवता बोले—'वे क्षीरोदधिशायी प्रभु मेरे मध्यमे रहेंगे, यह सौभाग्य मिलेगा मुझे और मैं थोडी-सी भूमि मात्र रिक्त करके बडभागी बन जाऊँगा? आपका अनुग्रह। आप कोई सोङ्कच न करे स्थानके सम्बन्धमें और मेरे भीतर कुछ ऐसी भी सामग्री तो हैं जिसे आप नगर-निर्माणमे उपयोग कर सकते है?'

'क्यो नहीं है?' विश्वकर्माने कहा—'मूँगेकी सुविस्तृत शिलाये, सुरङ्ग शुक्तियाँ, मुक्ता, शङ्ख और नाना आकारके मृदुल-कठोर दोनो प्रकारके जलजीवोके देहावशेष। आपके भीतर तो पृथ्वीके वनोसे भी बड़े एवं सुरम्य वन हैं।'

'मैं भूमि रिक्त करता हूँ। जब जैसी वस्तुकी आप कामना करेंगे, वह आपको लहरे तटपर लाकर देती रहेगी।' सागरने प्रार्थनाके स्वरमे कहा—'कृपा करके नगर एव नगरोपवनका वहिर्भाग ऐसा बनाये कि उनको मेरे जलीय लवणको लेकर जानेवाले वायुका स्पर्श विकृति न उत्पन्न करे। साथ ही मेरी तटभूमि बहुत सुदृढ बना दे।'

'आप अभीसे अपनी तटीय भूमि उत्ताल तरङ्गोसे अन्तस्थ करते रहनेकी सोचने लगे?' विश्वकर्माने सस्मित व्यग्य किया—'मैं तटोंको इतना दृढ कर दूँगा कि आपका यह प्रयास सफल नही होगा।'

'आप जानते ही हैं कि शान्त और उग्र दोनो मेरी सहज मुद्रा होनेसे ही मेरा नाम समुद्र है।' सागरने कहा—'मेरे स्वामी मेरे मध्य इस पुरीमे निवास करेंगे। उनकी सेवामे मेरी दोनो मुद्राये भी तो सार्थक होनी चाहिये। जब वे और उनके जन स्नान करना चाहेगे, मुझपर विहार करनेकी इच्छा करेगे, यह सेवक अपनी शान्त मुद्रा सफल कर लेगा; किन्तु उन्हे यहाँ सुरक्षा भी तो चाहिये। मेरी उग्रमुद्रा—उत्ताल प्रचण्ड तरङ्ग प्रहरी बनेंगी आवश्यक होनेपर पुरीको। तट उनका वेग सहन करे—ऐसा तो होना ही चाहिये।

विश्वकर्माने मनमें ही एक मानचित्र बनाया। उनका वह मानस-चित्र पूर्ण हुआ और सङ्कल्पित स्थलसे समुद्रका जल पीछे हट गया। समस्त जलजीव सागर समेट लेगया। स्वच्छ, समतल भूमि बनाकर छोड़ी उदधिने।

'आप मुझपर भी कुछ अनुग्रह करे।' विश्वकर्मा इस समय लोकपालोंके लिए भी आदरणीय होगये थे। इन्द्र, वरुण, कुबेरादि सब भूल गये कि देवशिल्पी उनके सेवक हैं। वे प्रार्थना करने लगे—'विश्वेश्वरेश्वरकी सेवामें हमारे भी कुछ उपकरण आप प्रयोग कर लेंगे तो हम अपनेको धन्य मानेंगे। हमारे अपने सेवक आपके समीप पहुँचा देंगे, जो कुछ आप आज्ञा देंगे।'

पृथ्वीपर, समुद्रमें, स्वर्गमें भी जो श्रेष्ठतम सामग्री नगर-भवन निर्माणकी है, देवशिल्पीके ध्यानसे बाहर नही रह सकती। उनके सेवक उसे उपस्थित कर ही देंगे। किन्तु यहाँ तो वरुणदेव कह रहे थे—'सागर-जलमें भी हों तुम्हारे मेरे बलवान सेवक तिमि, तिमिङ्गल, मकरादिके रूपमें रहें। आवश्यकता पड़े जब—कोई अपराधी जलके मार्गसे दुस्साहस करे

आने का, कुशस्थलीमे किसीको क्यो चिन्ता करनी पडे। आप इतना करदे कि ये सेवक तटके समीप तक आसके और सुरक्षा-सेनाका सौभाग्य प्राप्त कर सकें।'

धनाध्यक्ष कुबेरने अपना कोष उन्मुक्त कर दिया था—'विश्वकर्माजी आप इसके उपयोग में कार्पण्य करेंगे तो मुझे बहुत कष्ट होगा।'

देवराज स्वय ऐरावतपर बैठे आगये और अनुनय करगये—'देव-शिल्पी इन्द्रको सेवाका सौभाग्य भूले नही। यहाँ सभागृह आपको नही बनाना है। सुधर्मा सभा अवतीर्ण होसके, ऐसा स्थल प्रशस्त कर देना और उच्चैश्रवा तथा ऐरावतके कुलोमें उत्पन्न अश्व तथा गज रह सके, ऐसी अश्वशाला तथा गजशाला बनावे।'

बारह योजन विस्तीर्ण, सम-चतुष्कोण नगरका विश्वकर्माने मानचित्र बनाया। चार प्रमुख राजपथ, मध्यमे राजकीय सदन तथा भगवान वासुदेव एव उनके अग्रज, परिवारके भवनोकी श्रेणियाँ। विस्तृत चौराहे। राजपथ जैसी वीथियाँ।

नगरके चारो ओर उद्यान, उपवन तथा नित्योपयोगी काष्ठ, पल्लवादि के वृक्षोंसे युक्त वन। सरोवर, वापियाँ, प्रशस्त विहार-शाद्वल स्थल।

भवन-प्राङ्गण, भवन-शिखर, स्तम्भ, गवाक्ष आदि तो देवशिल्पीको बनाने ही थे। अपनी सम्पूर्ण कला प्रदर्शित की उन्होने इनके निर्माणमे। कहाँ किस रङ्गका, किस प्रकृतिका कौन-सा पाषाण, धातु, रत्न या मणि शोभित होगा—देवशिल्पीसे अधिक कौन जानेगा। सभी ऋतुओमें, सब अवस्थाके, सब प्रकारके स्वभावके सब प्रकारके व्यवसाय करने वालोके उपयुक्त भवन बनाये उन्होने और भरपूर सुसज्ज, सुन्दर बनाये।

केवल भवन ही नही, देवालय, चत्वर, सभागृह। पशुओ, पक्षियोके भी आवास-निवास, सुविधाकी व्यवस्था करनी थी। वह भी की गयी। नगरकी, भवनोकी स्वच्छता सरलतासे होती रहे, पर्याप्त प्रकाश वायु सर्वत्र मिलता रहे, वर्षा एव आँधीसे कष्ट न हो--यह सब सुविधा, रखी। जल सर्वत्र सुलभ रखा।

कृत्रिम निर्झर, शैल, सहस्रधारा (फुहारे), झील, और इनके किनारे, विचरणके लिए नैसर्गिक प्रतीत हो, ऐसी वीथियाँ बनायी।

उपवन, उद्यान, वन एवं जलाशयोमे पुष्प, लता, तरु—जहाँ जो भी श्रेष्ठ थी त्रिभुवनमे, उसे लाकर लगा दिया। प्रत्येक घरमे पुष्पोद्यान, तुलसी, विल्वपत्र सुलभ। पक्षी, भ्रमर, पशु आदि भी विश्वकर्माने लाकर वसा दिये। किसी भी विशाल सम्पन्नतम नगर मे जो कुछ आवश्यक होता है, उत्कृष्टतम रूपमे द्वारिकामे उपलब्ध किया उन्होने।

नगरके वाहर वन एवं उपवनोमे जलाशयोके समीप तपस्वियो, ब्राह्मणोके उपयुक्त उटज वनाये। यहाँ भवन नही वनाये जासके। इनके समीप फलोके वृक्ष, कुश, पुष्प-तरु-लता रखने थे। मृगोके यूथ इनके समीप लाकर रखे।

विश्वकर्मा और उनके सेवकोका निर्माण कोई मानव कलाकारके समान हाथोका श्रम तो है नही। उन्हे तो मनसे सङ्कल्प करना था। मनमे जो रूप स्पष्ट हुआ, वाहर व्यक्त होता चला गया। विश्वकर्माने एक दिन-रात्रिमें ही द्वारिकाका निर्माण पूरा कर दिया।

'यद्यपि हम यही उत्पन्न हुए, यही पले और वढे, इस भूमिसे हमारा आन्तरिक ममत्व है, किन्तु यह समय सङ्कटकाल है और सङ्कटकालमे ही हमारे पूर्वज अपनी पितृभूमि माहिष्मती त्यागकर मथुरा आवसे थे। आज हमारे लिए भी वैसा ही अवसर उपस्थित है।' श्रीकृष्णचन्द्रने यादव राज-सभामे उठकर कहा। उनके अनुरोधपर महाराज उग्रसेनने राज-महापरिषद की वैठक वुलायी थी। सभी वर्णो-जातियोके पञ्चप्रमुख इसमे उपस्थित थे।

'इस समय शत्रु हमसे पराजित होचुके है; किन्तु वे हारकर वैठ जाने वाले नही हैं। शत्रु सुगमतासे यहाँ पहुँच सकते हैं। मथुरा उत्तम दुर्ग नही है। वार-वार आक्रमण करनेवाले शत्रुसे सुरक्षा दे सके, ऐसा दुर्गम दुर्ग चाहिये हमे।' श्रीकृष्ण वोल रहे थे, किन्तु सवको लगरहा था कि उनके हृदयकी वात ही ये भगवान वासुदेव कहरहे हैं।

'मथुरा छोटा नगर है। यहाँ नगर-परिखाके भीतर रहने को हम विवश हैं और अव यहाँ नवीन भवन वनाने को स्थान नही है। हमारे सैनिक युवक है, अविवाहित हैं। स्वयं मेरे भाइयोंकी संख्या अव पर्याप्त है। इन युवकोका विवाह करना है और तव उन्हे, उनके परिवारको भवन देना होगा।' समस्या यह गम्भीर वन चुकी है। सवके पुत्रोको नवीन भवन चाहिये। सङ्कोचवश ही लोगोंने अव तक नही कहा, क्योंकि स्वयं भगवान

वासुदेव पिताके सदनमे रहते हैं तो अपने पुत्रोके लिए भवन माँगे कैसे जायँ, लेकिन ऐसे कब तक काम चल सकता है ? सबके नेत्रोमे प्रशसाका भाव आया--ऐसा स्वामी चाहिये जो बिना कहे अपनोकी, प्रजाकी आवश्यकता देख ले--देख लिया तो पूर्ण करनेकी कोई योजना हुए बिना ये बोलने थोड़े ही उठे हैं।

'हमारा कोष भरा है। हमारे पास वाहन पर्याप्त हैं। हम स्थानान्तरण करे, इसमे कोई कठिनाई नही है इस समय।' श्रीकृष्णने अपना निर्णय सुना दिया—'आप सब मुझे क्षमा करे। मथुराके सभी निवासी मेरे अङ्ग हैं। मै इनमें-से एकको भी अपनेसे पृथक् नही करना चाहता, अत कुछ लोगोको अन्यत्र बसानेकी बात मैं सोच भी नही सकता। मै दूसरी पुरी ही बसाना चाहता हूँ। आप सब चलेंगे वहाँ ?'

'हम आज इसी समय चल देनेको प्रस्तुत है।' एक स्वर सबका—'आपसे पृथक् हम नही रहना चाहते।'

रथ, अश्व, छकड़े जुडने लगे। सबने दिनभर प्रस्थानकी सज्जा की। रात्रिमें योगमायाने सबको द्वारिका पहुँचा दिया समस्त उपकरणो, पशुओ आदिके साथ।

×

कालयवन

कुण्डिनपुरसे श्रीकृष्ण चले गये यादवों के साथ। बहुतसे नरेश चले गये। वहाँ रह गये मगधराज जरासन्ध, सुनीथ, दन्तवक्र, शाल्व, महाकूर्म आदि थोड़ेसे नरेश। उनका समूह मन्त्रणा करने बैठा तो भीष्मकने स्पष्ट कह दिया—'मेरा पुत्र अविवेकी बालक है। श्रीकृष्ण परमपुरुष है, उनसे द्वेष उचित नही है।'

शाल्व—'आपका पुत्र दुर्जय है। उसने देवताओके लिए भी दुर्लभ भार्गवास्त्र अपने तपोबलसे प्राप्त किया है, किन्तु श्रीकृष्णका चक्र तो समस्त अस्त्रो-ब्रह्मास्त्र तकको शान्त कर देनेमे समर्थ है। कोई नही जानता कि उनके चक्र और पाशुपतास्त्रमे कौन अधिक प्रभावशाली है। पाशुपतास्त्र भी

हैं उन दोनो भाइयोके पास। ससारमें एकही वीर है जो बलराम-श्रीकृष्णके लिए अजेय है।'

'कौन है वह ?' एकसाथ कईने पूछा।

'आप सब उत्सुक हैं तो मैं उसका पूरा परिचय देता हूँ।' शाल्वने परिचय प्रारम्भ किया—

'वसुदेवकी एक पत्नी वृक देवी है। उनके पिता त्रिगर्तराजके राजपुरोहित शैशिरायण थे। गर्ग गोत्रीय होनेसे उन्हे गार्ग्य भी कहा जाता है। उन्होने विवाह करनेसे पूर्व ही सङ्कल्प कर लिया था कि वे बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करेंगे। विवाह कर लिया उन्होने, क्योकि आजीवन ब्रह्मचर्य रखना नही था। कन्याके पिता श्रद्धा सहित कन्यादान करने पहुँचे तो अस्वीकार कैसे करदेते।

'यह नपुसक है। इसने मेरी बहिनका जीवन नष्ट कर दिया।' पत्नीके छोटे भाईको जब पता लगा कि शैशिरायण तो विवाह करके भी पत्नीसे दूर रहते हैं, उन्हे देखते तक नही तो बहिनकी व्यथा का अनुभव करके छोटा भाई क्रोधमे भर गया। उसने सार्वजनिक रूपसे बहनोईपर आरोप किया। इस आरोपका क्या उत्तर था—जो कुछ कहा जाता, उसे अपनी दुर्बलता छिपानेका लोग बहाना मानते और व्रत-भङ्ग करना नही था। बड़ा क्रोध आया शैशिरायण का—इतना क्रोध कि उससे उनका शरीर काला पड गया; किन्तु वे उस समय मौन बने रहे।

कठोर ब्रह्मचर्यका पालन वे गार्ग्य मुनि कर ही रहे थे। केवल लौहचूर्ण खाकर तपस्या प्रारम्भ करदी उन्होने। भगवान रुद्र प्रसन्न हुए—'वरदान मांगो।'

गार्ग्य शैशिरायण—'मुझे ऐसा पराक्रमी पुत्र चाहिये जो यदुवशकी सब शाखा के लोगो के लिए अवध्य हो।'

'एवमस्तु !' वरदान देकर शङ्करजी अपने धाम चले गये। शैशिरायण लौटे तपोवनमें। उन्हे अब त्रिगर्त जाना नही था। पुत्रहीन यवनराजको उनके वरदान का समाचार मिल गया था। वे स्वय जाकर आदरपूर्वक गार्ग्य को अपने यहाँ ले आये। यवनराजके यहाँ एक अप्सरा गोपनारीके वेशमें रहती थी। उसका नाम गोपाली पड़ गया था वहाँ। उसे मुनिकी सेवामें यवनराजने नियुक्त कर दिया। इस अप्सराके गर्भसे मुनिको जो पुत्र हुआ, उसका नाम कालयवन पड़ा। यवनराजने उसे पाला और अपना

उत्तराधिकारी बनाया। अब यवनराजके परलोकवासी हो जानेपर यही कालयवन म्लेच्छाधिप है। बारह वर्षके ब्रह्मचर्य, कठोर तप तथा शिवके वरदानकी शक्ति उसे पैतृक रूपमे मिली है। अत वह पृथ्वीपर अजेय हो गया है। मेरी सम्मति है कि कालयवनको दूत भेजकर बुलाया जाना चाहिये सहायताके लिए।'

सभी राजाओको शाल्वका यह मत अच्छा लगा। मगधराज जरासन्धने उदास मनसे स्वीकृति देदी। दूसरा उपाय उनके सामने नही था।

वहाँ कुण्डिनपुरसे शाल्वको ही राजाओने दूत बनाकर भेजा। जरासन्धने तथा दूसरोने भी विदा ली। जाते-जाते जरासन्ध कहगया— 'अब तक सब नरेश सङ्कटमे मेरी शरण लेते थे। अपना खोया राज्य मेरी सहायतासे प्राप्त करते थे। अब ये नरेश मुझे ही दूसरेका आश्रय लेनेको प्रेरित कररहे हैं। मैं निरुपाय होगया हूँ। मुझे विवश होकर ऐसा करना पड़ा है, किन्तु ऐसे जीवनसे तो मर जाना सहस्रगुना श्रेष्ठ है।'

'आप कह क्या रहे है?' राजागणोंने आतुर होकर पूछा—'आप राजेन्द्र हैं। केवल आपकी ही रक्षाका प्रश्न नही है। हम सबकी रक्षाका प्रश्न है।'

'आप सब ठीक कहते है। आप सबकी रक्षाके लिए मैं इन सौभ-विमानके स्वामीको भेज रहा हूँ। ये अपने विमानसे कालयवनके पास जायँ। कालयवनसे हम सबके दूत होकर यह कहे कि युद्ध उपस्थित होनेपर वे सम्पूर्ण सेनाके साथ मथुरा आ जायँ।' जरासन्धने कहा—'मैं दूसरेकी शरण नही लूँगा। कृष्ण हो या बलराम, मैं युद्धमे उनका सामना करूँगा। मुझे केवल कालयवनकी सहायता चाहिये।'

यह कहकर जरासन्ध मगध चला गया—शाल्व अपने विमानमे बैठा। विमान गगनमे तीव्र वेगसे उत्तर-पश्चिम यवनदेशकी ओर उड़ चला।

कालयवन धार्मिक, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, समस्त व्यसनोंसे रहित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय नरेश था। एक ही त्रुटि थी उसमे—अहंकारी था और भगवद्भक्त नही था। धर्मके प्रभु अच्युत हैं। उन अच्युत मे भक्ति न हो—वन्ध्या है धर्म। वह क्या देगा? धर्मकी अन्तिम गति—अन्तिम फल स्वर्ग ही तो होगा भगवद्विमुख होनेपर। कालयवन सङ्गदोपके कारण अहंकारी

होगया था, किन्तु उसे श्रीकृष्णका दर्शन मिला—किसी भी रूपमें मिला—उसके धर्मका परम फल यह।

कालयवनकी सभामे ही सौभ-विमान उतरा। वह दक्षिण दिशासे आया था। विमानसे शाल्व नीचे आया। यवनराजके मन्त्रीने प्रसन्न होकर अपने नरेको शाल्व का परिचय दिया। स्वय कालयवन अर्घ्य लेकर आगे बढा।

शाल्व नम्रतापूर्वक बोला—'मैं अर्घ्य-ग्रहण करने योग्य नही हूँ। नरेन्द्र-मण्डलका दूत बनकर मैं आपके समीप आया हूँ।'

'जानता हूँ। मगधराज जरासन्धने भेजा है आपको।' खुलकर हँसा कालयवन—'देवर्षि अभी कुछ समय पूर्व ही यहाँसे गये हैं। उन्होंने आपके आगमनकी सूचना दे दी है। आप मेरा अर्घ्य और अर्चन स्वीकार करें। प्रतिनिधिकी पूजासे सब नरेशोंकी पूजा हो जायगी।'

शाल्वने अर्घ्य ग्रहण किया। यवनराजने उन्हे उत्तम आसन देकर अर्चाकी। पूजन करके तब बोला—'अब आप अपना प्रयोजन कहे।'

शाल्वने जरासन्धका सन्देश सुनाया—'परम दुर्जय वासुदेव राजाओंको बडा कष्ट दे रहे हैं। मैंने उनपर सत्रह बार चढ़ायी की। अन्तिम युद्ध गोमन्तक पर्वतपर हुआ। इसमें कृष्ण-बलराम दोनों भाई पैदल ही थे, किन्तु बिना किसी सहायकके उन्होंने मेरी तेईस अक्षौहिणी सेना मार दी। ब्रह्माकी आकाशवाणीने रोका, नही तो बलरामके हाथमें उठा मुशल मेरी कपाल-क्रिया करने ही जारहा था। तुम यादवोंके लिए अवध्य हो, यह वरदान तुम्हारे पिताको भगवान रुद्रने दिया है। तुमसे टक्कर लेकर श्रीकृष्ण नष्ट होजायेंगे। हम कायर नहीं हैं। हम सब जितनी भी सेना सम्भव है, लेकर आरहे हैं। तुमसे हम सहायता चाहते हैं। समय पर शीघ्र आकर सहायता करके हमारी मित्रता स्वीकार करो।'

शाल्वने कहा—'यह मगधराजका सन्देश मैंने सुना दिया। आप विचार करके जो उचित जान पडे, मुझे बतला दें।'

'मगधराज और बहुत-से राजाओंने मुझसे अनुरोध करके मुझे सम्मानित किया है। सङ्कटमें पड़े लोगोंकी सहायताकी पुकार अनसुनी कर दे—ऐसे पुरुषके सामर्थ्यको धिक्कार! मैं स्वयं भी त्रिलोकमे जो अजेय हो, उससे युद्ध करनेको उत्सुक हूँ। देवर्षि नारदने पूछनेपर कहा है कि वासुदेव

ही ऐसे पुरुष हैं। वरदानसे मैं रक्षित भी हूँ। मेरी पराजय भी हुई तो वह विजयके समान ही होगी। मै आज ही मथुराकी ओर प्रस्थान करूँगा।'

कालयवन इतनी शीघ्रता करेगा, यह आशा शाल्वको नही थी। उस यवनराजने तो हवन किया, ब्राह्मणोको दान दिया और प्रयाणकी घोषणा कर दी। शाल्व उससे विदा लेकर विमानमें बैठा। मगधराज और दूसरे सहायकोंको भी शीघ्र सूचना देनी थी उसे।

यवन-वाहिनीमे शक, तुषार, दरद, पारद, शृङ्गाल, खस, पह्लव प्रभृति सव यवन-जातियाँ थी। हिमालयके पर्वतीय म्लेच्छ, डाकू, लुटेरे भी साथ होगये। स्वर्णदेश भारतको लूटनेका ऐसा सुयोग वे कैसे छोड देते। इस म्लेच्छ-वाहिनीमें गज-सेना नही थी। पैदल भी नही थे। रथ भी गिने-चुने थे। केवल तीव्रगामी अश्व और ऊँट, खच्चरोकी पक्तियाँ थी, जिनपर अन्न, जल तथा अपार धन लदा था। इतनी लम्बी यात्रामें सैनिकोंकी दीर्घकाल तक सुव्यवस्था बनाये रखनेको कालयवन प्रस्तुत होकर चला था।

दुर्गम पर्वत, नदियाँ, मरुस्थल मार्गमें थे। किन्तु अश्वारोही म्लेच्छ-सेना इन सब वाधाओमे विचरणकी अभ्यस्त थी। कालयवन साक्षात् कालके रूपमे प्रख्यात था। उसके पथमें कोई वाधक वनकर मरनेको प्रस्तुत नही था। कालयवनने भी कही सङ्घर्ष करनेसे अपने सैनिकोको रोक दिया था। उसका कठोर आदेश था—'किसीसे कोई वस्तु मूल्य दिये बिना न ली जाय। जिन लोगोंसे मार्गमें सेवा ली जाय, उन्हे पर्याप्त पारिश्रमिक दिया जाय। सेनाके सञ्चरणसे जिनकी भी क्षति हो, उन्हे विना माँगे क्षति-पूर्ति दे दी जाय।'

उनकी सेनाको अन्न, रस, फल, मेवे तथा पशुओके लिए घास प्रसन्नतापूर्वक पथके लोग देते रहे। जो उचित मूल्य देता हो, उसके समीप आवश्यक सामग्री लोग स्वयं पहुँचा देते है। अनेक भूपतियोमे सत्कार किया उसका।

नदी-नालोपर तात्कालिक पुल वनाते, दुर्गम वनोको काटते, पर्वतोंको पार करते कालयवनकी सेना आँधीके समान बढती चली आयी। तीन करोड़की उस अजेय म्लेच्छ-वाहिनीने मथुराको चारों ओरसे घेर लिया। दीर्घकाय, अत्यन्त बलिष्ठ यवन थे उस सेनामे भयङ्कराकृति। खर्व देह, अत्यन्त स्फूर्ति वाले पर्वतीय भी थे। अश्वोकी हिन-हिनाहट, अद्भुत

कर्कश भाषामें गूँजता कोलाहल, किन्तु म्लेच्छ-वाहिनीको आश्चर्य हुआ। स्वयं कालयवन चौंका। मथुराके वहिर्द्वार दृढतासे बन्द थे और नगरमें जीवनका कोई चिह्न नहीं जान पड़ता था। एक भी शब्द—पशु या पक्षीका शब्द भी तो नगरसे सुनायी नहीं पड़ता था।

'यह मथुरा ही है? कहाँ गये इस नगरके लोग? इतनी निस्तब्धता क्यों है यहाँ?' म्लेच्छ सैनिक एक-दूसरेसे पूछने लगे। उन्हें लगता था कि उनके आगमनके आतङ्कसे नगर छोडकर सब भाग गये हैं; किन्तु तब नगर-द्वार भीतरसे क्यों बन्द हैं? भीतर कौन है? एकाकी रहनेका साहस करने वाले वे लोग कैसे हैं?

कालयवन नगर-द्वार तोड देनेका आदेश ही देनेवाला था। उसे मगधराज अथवा उनके सहायकोंकी आनेकी अपेक्षा नहीं थी। उसने मार्गमें किसीको समाचार नहीं दिया था। वह किसीकी प्रतीक्षा तो तब करे जब दुर्बल हो।

सहसा एक द्वार खुला और उससे एक पुरुष निकले। कालयवन उन्हें देखते ही चौंक गया। उसने देवर्षि नारदसे पूछा था—'वासुदेवको वह कैसे पहिचानेगा, यदि वे एकाकी कहीं मिल जायँ?'

'उन्हें पहिचानना क्या कठिन है। वैसा दूसरा पुरुष त्रिभुवनमें नहीं है।' देवर्षिने कहा था—'तुम ठीक जिज्ञासा कररहे हो। वे तुम्हें एकाकी मिलें, सम्भावना ऐसी ही है।'

'अतसी कुसुम नीलवपु, दीर्घ चार भुजाएँ, पद्मदलायत लोचन, नित्य प्रफुल्ल मुखश्री, भुवन-सुन्दर रूप, पीतवसन, कौस्तुभ कण्ठ, वनमाली, अतिशय कोमल अरुण-चरण,'—कालयवन खुले द्वारसे निकलते पुरुषको ऊपरसे नीचे तक देख गया। उसे निश्चय होगया—'यही वासुदेव हैं। दूसरा व्यक्ति ऐसा त्रिभुवनमें नहीं होसकता। देवर्षिके बतलाये सब लक्षण हैं। उनसे शत्रुकी इतनी विशाल वाहिनी नगर घेरे खड़ी है और निश्चिन्त, मन्द-मन्द मुस्कराते यह पुरुष एकाकी द्वारसे निकल आया है जैसे भय तो स्पर्श ही नहीं करता।'

द्वार तो खुला और फिर बन्द होगया। इसका अर्थ था कि भीतर और भी कोई—और भी लोग हैं; किन्तु ये जो पुरुष निकले हैं, ये तो निहत्थे हैं, एकाकी, पैदल हैं। कालयवनके सामनेसे ही सेनाके मध्यसे निर्भीक

चले जारहे हैं। सैनिक तो इन्हे देखकर मन्त्रमुग्ध खडे रह गये है। इन्हें रोकना भी है, जैसे किसीको स्मरण नही।

'ये निरायुध हैं, पैदल हैं और इनसे ही मुझे युद्ध करना है।' कालयवनने निर्णय कर लिया—'मैं निरायुध पैदल ही इनसे युद्ध करूँगा।'

'मेरे लौटने तक सेना केवल नगरको घेरे रहेगी। कोई बाहर निकले तो पकड लो। युद्ध करे तो मार डालो। अन्यथा मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करो।' अपने सेनापतिको आदेश दिया उसने। शस्त्र रथमे उतारकर रख दिये और रथसे कूदा।

लो, अव तक सामान्य गतिसे चलते वासुदेव तो भाग खड़े हुए। उनके पीछे दौडता कालयवन चिल्लाया—'यदुवशमे उत्पन्न होकर भाग रहे हो? यह उचित नही है। ठहरो! कायरोकी भाँति भागो मत! मैं तुम्हे छोड़नेवाला नही हूँ।'

श्रीकृष्ण भागे जारहे हैं। वे पीछे मुड़कर भी नही देखते। बड़े तीव्र वेगसे दौड रहे हैं वे। कालयवन भी दौड रहा है। चिल्लाता जाता है, पुकारता जाता है और दौडता जाता है। उसके सैनिक, सेनापति सब देखते रहगये। उनमे किसीको साथ आनेकी आज्ञा नही है। कालयवन अनुशासन भङ्ग क्षमा करना जानता ही नही। कोई आवश्यकता भी नही है। महाबली-यवनेश एक सुकुमार पुरुषके पीछे दौड़ा है। वह पुरुष तीव्र गति है, किन्तु कहाँ तक दौडेगा वह?

सैनिकोकी दृष्टिसे दोनो शीघ्र दूर निकल गये। श्रीकृष्ण दौड़े जारहे हैं। कालयवन स्वेदसे लथपथ हाँफता दौड रहा है। उसे लगता है—'अब पकड़ा! अब अगले दो पदोंमें पकडा।'

श्रीकृष्ण उसके हाथकी पहुँचसे किञ्चित दूर ही हैं। कालयवन दौडता है, पूरे बलसे पीछे दौडा जारहा है। अब, अव, अब—लेकिन यह तनिक सी दूरी पूरी नही होती। इसी आशाके पीछे तो जीव अनन्तकालसे उस सुखस्वरूपको पकडने दौडरहा है। वह कही ऐसे पकडसे आता है?

कितनी दूर—किसे देखनेका अवकाश था। दूर—बहुत दूर, योजनो दूर तक दोनो दौडते चले गये। सामने एक पर्वत दृष्टि पडा। कालयवनको लगा, अब यहाँ इसपर ये चढ़े तो वह पकड़ लेगा। श्रीकृष्णकी गति बढ़

गयी। मध्यकी दूरी कुछ बढ गयी। एक मोड़ आया पर्वतका और श्रीकृष्ण जैसे अदृश्य होगये।

पर्वतमे मोड़पर श्रीकृष्ण घूमे थे। कालयवन वहाँ आया तो सामने एक गुफा है। आगे मार्ग है ही नही। श्रीकृष्ण सामने नही हैं। पर्वतपर चढते तो दीखते। कुछ हाथ दूर ही आगे थे। अवश्य वे इस गुफामे चले गये। कालयवन भी वैसे ही दौडता गुफामें प्रविष्ट हुआ।[1]

श्रीकृष्ण दौडते आये थे गुफामें, एक कोई बहुत लम्बे पुरुष गुफामें पडे सोरहे थे। श्रीकृष्णने अपना पटुका झटपट उनके उपर फेंका और उन पुरुषके समीपसे गुफाके भीतर दौडते चले गये।

कालयवन दौडता आया था। उसके विशाल देहसे गुफाद्वारसे भीतर आता प्रकाश बहुत कुछ अवरुद्ध होगया था। उसे अन्धकारपूर्ण गुफामे पीताम्बर ओढे कोई सोता दिखलायी पडा। वह पुरुष कितना दीर्घाकार है, यह अन्धकारमें तत्काल दीख नही सकता था। दीखता था केवल चमकता पीताम्बर।

'यह मुझे इतनी दूर दौडता आया और यहाँ आकर क्षणभरमे ऐसे सो गया है जैसे इसे सचमुच निद्रा आ गयी है।' कालयवनको लगा कि वासुदेव ही अपना पीतपट ओढकर यहाँ पड़ गये हैं। उसे छलनेकी यह चेष्टा। क्रोधावेगमे पूरे बलसे उसने पाद-प्रहार किया।

चौंक गया कालयवन। इतना दीर्घाकार यह पुरुष कौन? किसपर आघात कर दिया उसने अनजानेमें!

उसे अधिक सोचने—कुछ कहनेका अवकाश नही मिला। वह सोया पुरुष पाद-प्रहारसे हडबडाकर उठा और क्रोधपूर्वक उसने कालयवनको देखा—ऐसा लगा कि कालयवनकी पूरी काया कर्पूरसे बनी हो और उसमे एकधा चारो ओर अग्नि लगा दी गयी हो।

सिरसे पैर तक एकसाथ कालयवनके शरीरसे लपटें उठी। एक चीत्कार तक नही निकल सकी। कुल चार-छ क्षणोंमें तो वहाँ उस यवनाधिपकी थोड़ी-सी उज्वल भस्ममात्र रहगयी।



१ यह मुचुकुन्द गुफा धौलपुरके समीप है। पाँच सहस्र वर्षमे उसमें बहुत परिवर्तन हुआ होगा। यहाँ मथुरासे श्रीकृष्ण पैदल दौड़ते गये थे।

मुचुकुन्द

गुहामें सोया वह विशालकाय पुरुष उठ बैठा था। कालयवन भस्म होगया तब उसकी दृष्टि गुफामें भीतरकी ओर गयी। उसे आश्चर्य हुआ— 'गुफाके भीतर इतना तीव्र प्रकाश ?'

श्रीकृष्णचन्द्र गुफामें अब भीतरसे कुछ आगे बढ आये। वह पुरुष बैठे रहनेको विवश था। इस गुफामे उसके उठ खडे होने जितना स्थान नही था। उसने हाथ जोडकर मस्तक झुकाया।

'आप कौन है ? इस वनमें स्थित पर्वतकी गुफामें आप कैसे पधारे ? आपके श्रीचरण कमलदलके समान कोमल हैं। इस कण्टक-कङ्कडियोसे भरी भूमिमे नगे पैर आप घूम रहे हैं ?' उस पुरुषने मस्तक झुका रखा था। उसकी दृष्टि अरुण मृदुल चरणोंपर लगी थी। वह चरणोको बडे स्नेहसे देख रहा था।

'आप तेजस्वियोके परमतेज भगवान अग्नि है ? सूर्यनारायण है ? चन्द्रदेव है ? देवराज इन्द्र हैं अथवा और कोई लोकपाल है ? किन्तु इनमें-से मैं सबसे परिचित हूँ। सबको पहचानता हूँ।' वह पुरुष कह रहा था— 'अत. मुझे लगता है कि सृष्टि-स्थित-पालनकर्ता त्रिदेवोमेसे सर्वश्रेष्ठ श्रीहरि ही आप मुझपर कृपा करने पधारे हैं।'

मेघश्याम श्रीअङ्ग, पीताम्बर परिधान, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न काण्ठमे कौस्तुभ, चतुर्भुज, वनमाली, तेजोमय मकराकृत कुण्डल, यह श्रीमूर्ति भी क्यो पहिचाननेकी अपेक्षा रखती है, किन्तु इस समय श्रीकृष्ण-चन्द्रने जो तेज प्रकट किया था, उससे उस पुरुषके नेत्र इन परमपुरुषको देखनेमे असमर्थ होरहे थे। केवल एक झलक मिली और नेत्र झुका लेने पड़े।

उसने अपनी असमर्थता प्रकट की—'महाबाहो ! आप इतने तेजस्वी हैं कि मैं आपकी ओर अधिक देख नहीं सकता हूँ। मैं हतौजस होगया हूँ आपके तेजके सम्मुख। आप समस्त देहधारियोके लिए सम्मान्य हैं। अत. यदि आपको रुचे तो अपना परिचय दे। अपना कुल-गोत्र, यहाँ पधारनेका प्रयोजन बतला दें।'

'मुझे क्षमा करे। पहिले मुझे अपना परिचय देना चाहिये।' उस पुरुषने फिर कहा—'वैवस्वत-नन्दन महाराज इक्ष्वाकुके कुलमें चक्रवर्ती सम्राट् मान्धात (यौवनाश्व) का पुत्र हूँ मैं। मेरा नाम मुचुकुन्द है। ब्राह्मणोके चरणोका मैं सदासे सेवक रहा हूँ। देवता असुरोसे पराजित हो गये तो उन्होने मुझसे सहायताकी याचना की। मैं स्वर्ग गया और सुरोंकी ओरसे असुरोमे युद्धमे लग गया। कितना समय व्यतीत होगया इसका मुझे पता नही लगा।'

'महाराज। हम सुरोंके सरक्षण एव पालनके इस कठोर श्रमसे अव विश्राम ले।' देवताओने कहा, क्योकि उन्हे भगवान् पशुपतिके पुत्र कुमार कार्तिकेयका सरक्षण प्राप्त होगया था। स्कन्दने उनका सेनापतित्व स्वीकार लिया था।

मनुष्यलोकमें आपका निष्कण्टक राज्य था, किन्तु उसे आपने हमारी रक्षाके लिए छोड़ दिया।' सुरोने कहा—'आपकी सभी कामनायें अपूर्ण रह गयी। अब इतने समयमें आपके पुत्र, महारानियाँ, प्रजा आदि सबमे कोई पृथ्वीपर नहीं रहा—भगवान् कालने सबको अपना ग्रास बना लिया। इसमें हम देवता भी कुछ नही कर सकते थे। क्योंकि बलवानोसे भी महान् बलवान काल भगवान सर्वसमर्थ तथा अविनाशी हैं। जैसे पशुपाल पशुओंको चराते है, वैसे ही सबको—समस्त प्रजाके साथ क्रीड़ा करते हुए भगवान काल उन्हे उनके प्रारब्धानुसार समाप्त करते रहते हैं।'

'महाराज! जो नही रहे, उनकी चिन्ता छोड दें।' देवताओंने क्षमा मांग कहा—'आपको जो भी भोग-ऐश्वर्य अभीष्ट हो, माँग लें। केवल मोक्ष तो हम नही दे सकते। मोक्ष देनेमें अविनाशी श्रीहरि ही समर्थ है, किन्तु अर्थ, धर्म, काम जो भी अभीष्ट हो वह वरदान आप हमसे माँग लें।'

'पृथ्वीपर अपना कोई रहा नही था। आपके अनुग्रहसे भोगेच्छा पहिले भी मनमे नही थी। मोक्ष देवता दे नही सकते थे। दीर्घकाल तक अविराम युद्ध करते-करते मैं बहुत थक गया था। मुझे विश्रामकी अत्यन्त आवश्यकता थी।' मुचुकुन्दने बतलाया—'इसलिए मैंने देवताओसे कहा—मैं सो जाना चाहता हूँ। जी भरकर सोना चाहता हूँ। मेरी निद्रामें कोई बाधा न दे, केवल इतनी व्यवस्था कर दें।'

'आप धरापर जाकर गिरिगुहामे शयन करे।' सुरोंने वरदान दिया — 'जो भी अज्ञानी व्यक्ति आपको निद्रासे जगायेगा, वह आपकी दृष्टि पडने मात्रसे तत्काल भस्म हो जायेगा।'

'मै सोच-विचारकर घोर वनमे स्थित इस दुर्गम पर्वतकी गुफामें आकर सोया था कि यहाँ कोई नही आयेगा।' मुचुकुन्दने कुछ भयभीत क्षमा माँगते स्वरमे कहा—'लेकिन यहाँ भी आकर किसीने बलपूर्वक मुझे जगाया। इस अपने दोषसे ही वह भस्म होगया, इसमे मेरा कोई अपराध नही है। उसके भस्म होनेके अनन्तर मुझे आपके दर्शन हुए। आप शत्रुसन्तापन हैं, किन्तु मैं आपका शत्रु नही, आपके चरणोमे नम्र हूँ। मुझपर कृपा करें।'

'राजन्! आप कोई चिन्ता या भय न करें।'कुछ हँसते मेघ-गम्भीर वाणीसे श्रीकृष्णचन्द्र बोले—'आपने मेरा नाम, जन्म, कर्म पूछा है, किन्तु इनको तो मैं भी नही बतला सकता। कोई भूमिके अणु भले गिन ले, किन्तु मेरे नामोकी गणना असम्भव है। गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले मेरे नाम अनन्त हैं। तीनो कालोमे जो मेरे जन्म-कर्म हैं, परमर्षिगण उनका स्मरण चिन्तन करते हैं किन्तु, उनका अन्त नही कर पाते।'

'ओह! परमपुरुष प्रभु पधारे हैं।' मुचुकुन्दके नेत्र झरने लगे। शरीर रोमाञ्चित होगया। भूमिमे मस्तक रखा उन्होने।

'इस समय ब्रह्माकी प्रार्थनापर धर्मकी रक्षा और भूभारभूत असुरोंके विनाशके लिए यदुकुलमे मैंने अवतार लिया है। वसुदेवपुत्र होनेके कारण लोग मुझे वासुदेव कहते है।' श्रीकृष्णचन्द्रने अपना परिचय देकर प्रयोजन बतलाया —'कालनेमि दैत्य कंस होगया था, उसे और प्रलम्बादि दूसरे भी सत्पुरुषोको पीडा देनेवाले असुरोको मैंने मार दिया है। रुद्रके वरदानसे यह यवन मेरे लिए अवध्य था। तुम्हारे नेत्रोद्भव तीक्ष्णतेजसे इसे भस्म करवा दिया मैंने। पहिले तुमने मेरी बहुत उपासना की है, बहुत प्रार्थना की है मुझसे, अत इस गुफामे मैं तुमपर अनुग्रह करने ही आया हूँ। तुम वरदान माँग लो। जो भी इच्छा हो माँगो। मेरी शरण आये जनको फिर किसी अभाव, क्लेशसे शोक नही होना चाहिये।'

'तब वैवस्वत मन्वन्तरकी अट्ठाइसवी चतुर्युगीका द्वापरान्त आ गया?' मुचुकुन्दको स्मरण आया कि उन्हे पहिले बतलाया गया था कि

परात्पर परमपुरुष अट्ठाइसवी चतुर्युगीके द्वापरान्तमे धरापर अवतीर्ण होगे। मुचुकुन्दने तो उनकी ही उपासना की है। आज वे भक्तवत्सल पधारे—यहाँ दुर्गम वनकी गुहामे उनपर अनुग्रह करके पधारे हैं।

'स्वामी ! आपकी मायासे मोहित होकर प्राणी आपका भजन नही करता। सुखके लिए वह अनर्थ रूप दुःख ही उत्पन्न करनेवाले गृहमे—स्त्री-पुरुषोमे आसक्त होजाता है। माया ठग लेती है उसे। यह मानवशरीर अत्यन्त दुर्लभ है और यह सर्वेन्द्रियशक्ति-सम्पन्न मिलना और भी दुर्लभ है। विना प्रयत्न इसे पाकर भी दुर्बुद्धि मनुष्य आपके चरणारविन्दका भजन तो करता नही, अन्धे पशुके समान घररूपी कुएँमे गिर पडता है।' मुचुकुन्द स्तुति करने लगे थे।

'मेरे नाथ ! राज्य, लक्ष्मीके मदमे मत्त होनेके कारण मेरा भी यह समय व्यर्थ ही व्यतीत हुआ है। इस मरणधर्मा देहको ही मैंने आत्मा माना, पुत्र-स्त्री, कोश-पृथ्वी आदिमे आसक्त होकर इनकी दुरन्त चिन्तामे लगा रहा। अतः प्रभो ! आपकी चरणसेवाके अतिरिक्त और कुछ मैं नही माँगना चाहता। आप मोक्षदाता परमोदार स्वामीको पाकर कौन अपने लिए बन्धनरूप वरदान माँगेगा।'

'मैंने समस्त कामना छोड़ दी। ये सात्विक, राजस, तामस गुणोमे बाँधती ही है। निरञ्जन, निर्गुण, अद्वय, ज्ञानस्वरूप आप परमपुरुषकी मैं शरण हूँ।'

'भक्त वत्सल ! इस ससारके क्लेशमे भव महादावाग्निमे दीर्घकालसे मैं सन्तप्त होरहा हूँ। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर निरन्तर अतृप्त रहते हैं और कही शान्तिसे मुझे नही रहने देते। किसी प्रकार आपके पाद-पद्मोमें पहुँच सका हूँ। शरणागत वत्सल ! आप परमात्मा, अभय-अमृत-अशोक हैं, मेरी रक्षा करे मेरे स्वामी !'

मुचुकुन्द दण्डवत पड गये श्रीकृष्णके सम्मुख। वे भक्तवत्सल तो सदा प्रसन्न रहते हैं। उन्होने कहा—'महाराज ! आपने निर्मल बुद्धि प्राप्तकी है, क्योंकि वरदानका प्रलोभन देनेपर भी कामनासे वह चञ्चल नहीं हुई। वरदानका प्रलोभन तो मैंने इसलिए दिया कि प्रमादका लेश भी न रह जाय; क्योंकि मेरे अनन्य भक्तकी बुद्धि किसी वर-प्रलोभनसे विचलित नहीं होती। अब आप मुझमे मन लगाकर पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करें। आपमे मेरी अनन्य भक्ति नित्य निवास करे। आगामी जन्ममें ब्राह्मणोत्तम होकर आप मेरे कैवल्य स्वरूपको प्राप्त करेंगे।'

मुचुकुन्दने भक्ति और मोक्ष दोनों माँगा। दोनों प्राप्त हुए उन्हे। अब श्रीकृष्ण गुफासे वाहर आये। मुचुकुन्दने वाहर आकर उन पुरुषोत्तमकी परिक्रमा की। उनको प्रणिपात किया। उनसे अनुमति ली।

श्रीकृष्णचन्द्र मथुराकी ओर लौटे। वे जबतक दृष्टिपथमे रहे, एकटक मुचुकुन्द देखते रहे उसी ओर। जब श्रीकृष्ण दृष्टिपथसे दूर चले गये, मुचुकुन्दने पुन भूमिमे लेटकर प्रणिपात किया।

'प्रभुने कहा है इच्छानुसार पृथ्वीमे विचरण करो।' मुचुकुन्दने उठकर इधर-उधर देखा—'ये उनके टखनो तक पहुँचते मनुष्य और पशु, ये घुटनोंसे कुछ ऊपर तक आते वृक्ष—शशक, मूषक जैसे होगये हैं धरापर अब अश्व, गज भी। वट, अश्वत्थ भी क्षुद्र जैसे रह गये हैं।'

इस मन्वन्तरकी प्रथम चतुर्युगीके सतयुगमे उत्पन्न उन महाकाय पुरुषको पृथ्वीकी वर्तमान अवस्था देखकर वहुत निराशा हुई। वे कहाँ जायँ? कहाँ विचरण करें? उनको छाया दे सके बैठनेपर ऐसा भी तो कोई वृक्ष कही नही दीखता। वे यदि नगर जनपदकी ओर गये, ये छुद्रकाय मनुष्य और पशु भयसे ही मर जा सकते हैं। इनमे आतङ्कसे भगदड़ मचेगी। वे कहाँ तक इन्हे अपने पदोसे कुचल जानेसे वचाते चल पायेंगे?

ऐसे ससारमें इतने क्षीणकाय जीवोके मध्य विचरण करनेमे किसीको क्या सुख मिलेगा? उनको कोई सुविधा कहाँ मिल सकती है? कोई मनुष्य चीटियोके समुदायमे उनको बचाते कैसे चले? कैसे रहे वहाँ?

श्रीकृष्णचन्द्र परमपुरुष हैं। मुचुकुन्दसे पहिले भी उनके समकालीन महाराज ककुद्मीको देखा था उन्होने, किन्तु मुचुकुन्दने कहाँ इतने अल्पकाय प्राणियोको देखा था। वे खिन्न होगये। महाराज ककुद्मीके समान वे भी तप करनेका निश्चय करके आकाश-मार्गसे ही गन्धमादन पर्वतपर चले गये। उनमे श्रद्धा थी, वे धीर थे और श्रीकृष्ण-प्रेम उन्हे मिल ही चुका था। वे तप करे यही उनके लिए स्वाभाविक था।



श्रीरणछोड़राय

मगधराज जरासन्ध कुण्डिनपुरसे लौटा तो बहुत दृढ सङ्कल्प करके लौटा था। उसे कालयवनके पास दूत भेजनेको विवश होना पड़ा—यह अत्यन्त अपमानजनक लगा था। चाहे जो भी हो, वह इसवार मथुरापर पूरी शक्ति लगा देनेको कृतसङ्कल्प था। उसने निश्चित कर लिया था—'अभी या कभी नही।'

मगधराज धार्मिक था। ब्राह्मण-भक्त था। शास्त्रमें उनकी श्रद्धा थी। सयमी था और प्रसिद्ध दानशील था। कालयवनके समान उनका भी यही दोष था कि वह घोर अहकारी था। दुर्जन राजाओंका संरक्षक बन बैठा था और भगवद् विमुख था। भगवान्‌से विमुख व्यक्तिकी रक्षा धर्म कैसे कर सकता है?

कालयवनने एक भूल की थी—बिना मुहूर्तकी चिन्ता किये युद्ध करने चल पडा था। अबतक जरासन्ध भी यही भूल करता आरहा था। इसबार उसने ब्राह्मणोंको बुलाया। उत्तम ज्योतिषियोंसे उसने सुनिश्चित विजय देनेवाले मुहूर्तकी गणना करवायी और अपनी विजयके निमित्त अनुष्ठान करनेके लिए बहुतसे ब्राह्मणोंका वरण करके उनके आवास-आहार तथा अनुष्ठानकी व्यवस्था कर दी।

पूरा प्रयत्न किया जरासन्धने सैन्य-संग्रहका। उसके सभी समर्थकोंने प्रयत्न किया। जरासन्धने नियम ही कर रखा था कि उसके ऐसे प्रयत्नोंमें जो नरेश साथ न दे, उन्हें बलपूर्वक बन्दी बनाकर अपने कारागारमे बन्द कर देता था। इस बार उसने यह नहीं किया। उसने सर्वत्र कहला दिया—'यह उनका अन्तिम प्रयत्न है। जो भी उसका साथ देंगे, इसबार उनका आभार वह जीवन भर मानेगा; किन्तु इसबार उसे पूरे उत्साहसे युद्ध करनेवाले श्रेष्ठतम योद्धा चाहिये।'

तेइस अक्षौहिणी सेना मगधराज तथा उसके समर्थकोंकी सैन्य-संग्रह सीमा बन गयी थी। इसबार भी उस सीमाको पार नही किया जासका। यह संख्या बनी रह गयी, यही बहुत बड़ी सफलता समझना उचित था।

कालयवन तत्काल चल पड़ा था। दूरसे आना था उसे। शाल्वसे समाचार पाकर जरासन्धने प्रयत्न किया कि वह यथाशीघ्र सैन्य-सग्रह कर ले। मुहूर्तपर प्रस्थान करके मगधराज मार्गमे कालयवनकी प्रतीक्षा करना चाहता था, लेकिन यवन अश्वारोही सेना अनुमानसे अधिक शीघ्रगामिनी सिद्ध हुई। मार्गकी बाधाओको अप्रयास ही उसने पार कर लिया। कही भी कालयवनने चार-छ दिनका पडाव नही डाला था।

जराजन्धको समाचार मिलता रहा था। वह प्रस्थान करचुका था और विना कही रुके केवल सेनाको रात्रि-विश्राम देते पूरे वेगसे बढा आ रहा था; किन्तु यह अनुमान कौन कर सकता था कि काल-यवन जैसा उद्भट महारथी मथुराके युद्धमे आकर पहिले ही दिन समाप्त हो जायेगा ? मगधराज तो समझता था कि कालयवनकी सेना युद्ध प्रारम्भ करेगी, दो या तीन दिन पीछे ही वह पहुँच जायेगा सहायता करने और मुख्य युद्ध स्वय सम्हाल लेगा। कालयवनको केवल सहायक बना रहने देगा यवनसेनाके साथ।

कालयवन तो मुचुकुन्द गुफामे भस्म होचुका था। श्रीकृष्णचन्द्र मुचुकुन्दको विदा करके लौटे। उनका चक्र, उनकी कौमोदकी गदा तो स्मरण करते ही उनके समीप उपस्थित होनेवाले दिव्यायुध हैं। पाञ्चजन्य आगया करोमें स्मरणमात्रसे और जब पाञ्चजन्यका भुवनभेदी घोष गूँजा, नगरद्वार खोलकर हल-मुशल लिये श्रीसङ्कर्षण निकल आये।

म्लेच्छ-सेना नायकहीन होचुकी थी। ये यवन-सैनिक दीर्घाकार थे, बहुत स्फूर्तिवान एव अनुशासित थे, किन्तु साधारण अस्त्र-शस्त्रोको लेकर कोई सेना दिव्यायुधोका प्रतिकार कैसे कर सकती है ? सो भी श्रीकृष्णका सहस्रार सुदर्शन चक्र और हलधरका मुशल—इनका प्रतिकार करने योग्य दिव्यायुध भी त्रिभुवनमे कहाँ किसीके पास है। म्लेच्छसेना मर मिटी। कोई सैनिक भाग नही सका। चक्र जब चल पडता है, कोई भाग कैसे सकता है ? उसने सैनिको और अश्वोके खण्ड-खण्ड कर डाले। कौमोदकी और मुशल एक ओरसे पीटते चले गये।

तीन करोड़ सैनिक और उनकेअश्व, एक भी नही बचा। शवोसे पृथ्वी पट गयी। रक्तकी सचमुच सरिता बह चली। अस्त्र-शस्त्र, शिरस्त्राण कवच, ढाले—युद्धभूमिकी वीभत्सता कल्पनासे परे है।

ऊँट, खच्चर, छकड़े और भारवाही सेवकोकी एक बड़ी दूसरी सेना भी थी कालयवनके साथ। सुदूर उत्तरसे भारततक आनेके लिए, दीर्घ-

कालीन युद्धके लिए यवनराज भरपूर अन्न, वस्त्र, शस्त्रादि, औषधियाँ तो लाया ही था, बहुत अधिक स्वर्णराशि भी लाया था। सैनिकोको समयपर वेतन देता रहता था। जो भी सामग्री आवश्यक हो क्रय करता था। मजदूरोको स्थान-स्थानपर मजदूरी देता था। इस सबके लिए प्रचुर स्वर्ण-राशि साथ थी। इस सब सामग्रीको ढोनेके लिए व्यवस्था तो रखनी ही थी।

श्रीकृष्ण-बलरामने इस भारवाही दलको विवश किया कि वह उनके निर्देशके अनुसार सब सामग्री लेकर चले। पराजित सेनाके धन, पशु, अन्नादि और सेवकोपर भी विजयीका स्वत्व सदासे स्वीकृत है। यवन-सेना मार दी गयी। अब जो विजयी हुए उनकी कृपापर जीवन है उस सेनाके साथ आये सेवकोका। वे सब चुपचाप निर्दिष्ट दिशामे वाहनो तथा सामग्रीको लेकर चल पडे।

मथुरामे तो कोई था ही नही—पराजित पशु या पक्षी तक नही। अपने आश्रितोमे एकको भी श्रीकृष्ण शत्रुकी दयापर कैसे छोड़ सकते थे? दोनो भाइयोने सूनी मथुरा छोडी। ऐसी मथुरा जिसके चारो ओर दूर-दूर तक शवोकी ढेरी लगी थी। जहाँ यमुना-जल रक्त मिलनेके कारण स्पर्शके भी अयोग्य बना रहा पर्याप्त समय तक। जहाँ गिद्ध, शृगाल आदिके झुण्डके झुण्ड मँडराने लगे थे और नगरके सूने भवनोमे उन्होंने आवास बना लिया। जहाँ बहुत दूर तक सडते शवोकी दुर्गन्धिके कारण पहुँचना शीघ्र ही अशक्य हो जानेवाला था।

बहुत बडा समूह, बहुत लम्बी पंक्ति थी ऊँटो, छकडो, खच्चरो तथा भारवाहियोंकी जो कालयवनकी सेनाके साथ आये थे और कृष्ण-बलरामके निर्देशमें उनके संरक्षणमे द्वारिकाकी ओर जा रहे थे।

'कालयवनका पता नही क्या हुआ। वह श्रीकृष्णके पीछे पैदल शस्त्र-हीन भागता गया था। वासुदेव लौट आये, पर वह नही लौटा। कही मार दिया होगा उसे कृष्णने।' जरासन्धके चरोंने उसे मार्गमे ही सन्देश दिया—'दोनो भाइयोंने पूरी यवन-सेना कुछ घड़ियोंमें ही मार दी। मथुराके भवन सूने पडे हैं। नगरके चारो ओर शवोंकी ढेरियाँ लग गयी हैं। पहिले ही नगरवासियोंको कही भेज दिया है इन लोगोंने। अब यवन-सेनाका धन, सामग्री उन्होंने वाहनों तथा सेवकोंके द्वारा कही पश्चिम दिशाकी ओर ले जा रहे हैं।'

'रथोको आगे चलने दो। गजसेना रथोके पीछे पूरे वेगसे और उसके पीछे अश्वारोही।' जरासन्धने तत्काल आदेश दिया—'पदाति सैनिक पीछे आवेगे। पूरे वेगसे दौडो। दोनों भाइयोको मार्गमें ही पकड़ लो।'

तेइस अक्षौहिणी सेनाका केवल पैदल सैनिकोका भाग पीछे रह गया था और वे भी दौडते वेगसे चलते ही बढ रहे थे। रथो, गजो, अश्वोकी वह अपार वाहिनी खेतो, उपवनोको रौंदती दौड रही थी। आकाश धूलिसे ढक गया।

'आर्य! ये सब भारवाही शत्रु-पक्षीय हैं और इनका धन म्लेच्छ-धन है।' श्रीकृष्णचन्द्रने बडे भाईसे कहा—'जरासन्धकी सेना पूरे वेगसे दौडती आरही है। इसबार मगधराज उत्तम मुहुर्त देखकर चला है और उसकी विजयके लिए ब्राह्मणोका समूह सविधि अनुष्ठानमे लगा है। ग्रहबल और देवबल उसके साथ है। यदि इनकी उपेक्षा कर दी जायेगी—ज्योतिषपर, अनुष्ठानपर, शास्त्रपर, ब्राह्मणोपर श्रद्धा कोई कैसे करेगा ?'

'तुम कहना क्या चाहते हो!' श्रीबलरामजीने छोटे भाईकी ओर देखा—'धराका यह भार दूर करना ……।'

'नही आर्य! आजका दिन दूसरे प्रकारका मुहूर्त लेकर आया है।' अग्रजका हाथ पकडा श्रीकृष्णचन्द्रने और पैदल ही एक ओर दौड़नेका सकेत किया—'आपके उपयुक्त तो नही है, किन्तु मेरे लिए।'

श्री बलराम हँस पड़े। उनके ये छोटे भाई लीलामय हैं। कालयवनके सामने सवेरे ही अकेले भागे थे। आज इन्हे जरासन्धके सामनेसे भी भागना है। आज पलायनप्रिय होउठे हैं और इनकी इच्छा, इनका अनुरोध टाला तो नही जासकता। श्रीबलराम भी दौड चले।

कालयवनकी सेनाके भारवाही सेवकोमे पहिले ही जरासन्धकी पीछे दौड़ती आती सेनाका कोलाहल, उडती धूलि देखकर बेचैनी फैलने लगी थी; किन्तु वे चुपचाप चले जारहे थे। इन दोनो भाइयोने उनके सामने ही अजेय यवन-वाहिनीको मिटाकर धर दिया। अब ये पीछा करनेवाले पता नही कौन हैं, कैसे हैं और इनका क्या होनेवाला है। दोनो भाइयोके आदेशको अनसुना करनेका साहस उनमे नही था, किन्तु जब दोनों भाई बिना कुछ कहे एक ओर भयभीत भागने लगे तो वे सब खड़े होगये। वाहन रोक लिये। हँसने लगे। परस्पर जो मनमे आवे कहने लगे। वे आनेवाली सेनाकी प्रतीक्षा करने लगे। इस समय धन या सामग्री लेकर भाग निकलना सम्भव नही था। इस अपरिचित देशमे भागकर भी कहाँ जायँ ?

'वे भागे। भागे जारहे हैं दोनों।' जरासन्ध अट्टहास करके हँसा। चिल्लाकर उसने अपने साथी नरेशोंको हाथ उठाकर दिखलाया और आदेश किया सेनाको—'केवल रथ-सेना मेरे साथ इनके पीछे जायेगी। शेष सेना रुककर प्रतीक्षा करेगी नवीन आदेशकी। इन समस्त भारवाही वाहनो एवं सेवकोंको रोक लो। सब सामग्री अधिकृत करलो किन्तु; पशुओ एव सेवककी पूरी सुविधाका ध्यान रखो। वे अपने मित्रके हैं, विदेशी हैं। उन्हे कष्ट नही होना चाहिये।'

जरासन्ध और उसके नरेश साथी रथ-सेना साथ लेकर पूरे वेगसे पीछे रथोको दौडाये आरहे थे। सम्पूर्ण तेइस अक्षौहिणी सेनाके साथ यही लोग एक नही सत्रह बार आचुके थे और बलराम-श्रीकृष्णने इनकी पूरी सेना मार दी थी। इनको भागना पडा था पराजित होकर। इनसे ही—केवल इनकी रथसेनासे भयभीत होकर भागना—लेकिन आज तो लीलामयको भागनेकी लीला करनी थी। वे आज रणछोडराय बन चुके थे और बडे भाई अनुजका साथ देनेको विवश थे।

जरासन्ध और उसके साथी उत्साहमे थे। उन्हे अपनी पिछली पराजयें भूल गयी थी। उन्हे अपनी शक्तिका ठीक स्मरण भी नही था। उनमे यह सोचनेकी बुद्धि भी नही रह गयी कि उनके पूरे वेगसे दौडते रथ इन पैदल भागते दोनो भाइयोके समीप क्यो नही पहुँच पाते हैं। बलराम-श्रीकृष्ण भाग रहे हैं, भागते जारहे हैं। सामने भागते दीखते है; किन्तु उतनी दूर भी है कि उनपर दौडते रथोसे भल्ल फेंकना तो दूर शर-सन्धान भी नही किया जा सकता।

'दोनों भागनेमे बहुत वीर हैं।' मगधराज और उसके मित्र हँस रहे हैं। रथोको और वेगसे दौडानेके लिए अपने-अपने सारथीसे कह रहे है। 'दोनों इस समय निरायुध हैं।' विजय का उल्लास मनमे भरा है इनके।

राम-घनश्याम, गौर-श्याम, नील पीतवसन, वनमाली भाग रहे हैं। पूरे वेगसे दौड़ते जारहे हैं। लाल-लाल अतिशय कोमल चरणोसे भाग रहे हैं। भूमिकी ओर देखनेका अवकाश नही। गड्ढे, टीले, कङ्कड-पत्थर, वृक्ष-झाड़ियाँ—यह सब आज देवी योगमाया सम्हालें। ये दोनों भाई इन सबको नहीं देख सकते। इन्हें दौडना है, दौडते जाना है। शत्रुओंकी पूरी रथसेना पीछे दौडी आरही है।

दूर—बहुत दूर तक दौडते चले गये दोनो भाई। अनेक योजन दूर तक दौडते ही गये। अन्तमें थक गये। पता नही ये अप्रमेय पराक्रम थके या नहीं, किन्तु मगधराजकी सेनाके रथोंके अश्व श्रान्त होगये। उनका

शरीर स्वेदधारा चलाने लगा। मुखोंसे झाग गिरने लगा। कशाके अनवरत ताड़नेसे वे दौड़ रहे थे, किन्तु वेग उनका घटने लगा था। अब वे ठोकरें खाने लगे थे।

सम्मुख ही अत्युच्च पर्वत था। महागिरि प्रवर्षण। पूरे ग्यारह योजन ऊँचा पर्वत। यह प्रवर्षण गिरि कहाँ था, आजतक पता नही है। ग्यारह योजन ऊँचा पर्वत मथुरासे द्वारिकाकी ओर कोई है नही। लेकिन पर्वतपर सदा वर्षा होती थी, अत यह समुद्रतटीय होना चाहिये। गिरिनारका कोई शिखर सम्भव है। पर्वत भूमिमे धँसते है और उनकी ऊँचाई घट जाती है। ऐसा ही कुछ इस पर्वतके साथ पीछे हुआ होगा। पर्वतके पास तक–जहाँतक रथोंका आना सम्भव था, जहाँसे वृक्ष और झाडियाँ सघन होगयी थी, मगधराजके रथोको रुक जाना पडा। सारथियोको छोडकर सब रथारोही सैनिक शस्त्र लेकर उतर पड़े।

'दोनो भाई इस सघन वनसे घिरे पर्वत मे कही छिप गये।' जरासन्धने कहा—'इसमे उनका ढूँढना तो बडे भारी पुआलके ढेरमे सुई ढूँढने जैसा है। हमलोग गोमन्तक पर्वतके समान इसे भी चारो ओर सूखे काष्ठ, तृणादिसे घेरकर जला दे। आजकल पर्वतके वनमे पतझड चल रहा है। अग्नि शिखर तक फैल जायेगी। दोनो वसुदेव पुत्र इतने ऊँचे पर्वतसे कूद नही सकते।'

पर्वतके पाद-प्रदेशमे खडे इनलोगोको पर्वतका अत्यन्त ऊँचा शिखरीय भाग दीख नही रहा था। अन्यथा यह देख लेते कि वहाँ हरा कानन है। इस समय भी शिखर पर मेघ छाये हैं। पर्वतके शिखरपर तो प्राय वर्षा होती रहती है।

जरासन्धके साथ आये सैनिक सारथी सब जुट गये काष्ठ तथा तृण एकत्र करनेमें। इसबार इन्होंने रथोमे अश्व जोड लिये अग्नि लगाने से पूर्व। चारो ओर अग्नि लगाकर रथोमे बैठ गये और पीछे पर्याप्त दूरी तक रथोको हटा लाये, जिससे पर्वतसे गिरती शिलायें, जलकर टूटते वृक्ष, अधजले झुलसते क्रोधमे भरे दौड़ते वनपशु इनलोगोंके लिए प्राणघातक न बन सकें।

पर्वतके वनोमें पतझडसे सर्वत्र सूखे पत्ते फैले थे। चारो ओर एकसाथ अग्नि लगायी थी। अग्नि सूखे पत्तोका सहारा पाकर बहुत वेगसे फैलती चली गयी। पर्वत ऊँची लपटो और धुएँसे ढक गया। रथोपर चढ़कर पीछे जाकर जरासन्ध तथा उसके साथियो-सैनिकोको पर्वतमें-से जलते, झुलसते पशुओकी चिल्लाहट मात्र सुनायी पड़ती रही। धुएँ और लपटोसे घिरे पर्वतमे वे कोसभर दूरसे देख भी क्या सकते थे।

श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम पर्वतके वनमें दौडते हुए प्रविष्ठ हुए थे। वे पर्वतपर चढते ही चले गये थे। उन्होने बीच में रुककर नीचेकी गति-विधिकी ओर देखना भी अनावश्यक समझा। शिखरपर पहुँचकर ही दोनों भाई रुके। वहाँ अत्यन्त सघन हरा-भरा वन था। शीतल पवन चल रहा था। गगनमें शिखरसे सटे मेघ छाये थे और वे सीकरो की वर्षा करके दोनो भाइयों का स्वागत कर रहे थे। वहाँ थोडेसे विश्रामने सम्पूर्ण श्रान्ति दूर कर दी।

पर्वतोंमे चारो ओर मगधराज अग्नि लगायेगा, यह बात गोमन्तक पर्वतके युद्धसे समझी हुई थी। अग्निकी लपटें शिखर तक नही पहुँच सकती थी। शिखरपर तो वर्षा प्रारम्भ होगयी थी। धुएँने अवश्य ढक दिया सम्पूर्ण शिखर, और अग्नि लगी तो पशुओंका अपार समूह शिखरकी ओर ही दौडा। वे ऊपर आने लगे। उनकी संख्या बढती चली गयी।

दोनो भाइयोंने देखा, शिखरका एक भाग नीचे सागरकी ओर है। वे समुद्र एवं पर्वतके मध्यकी सकरी भूमि मे अग्नि ज्वालाके कारण रुके रह नही सकते थे। दोनो भाई शिखरके उस भागमे सागरके अगाध जलमें कूद पडे। तैरते हुए दूर जाकर भूमि पर आये।

जरासन्ध पूरे तीन दिन पर्वतको घेरे पडा रहा। पर्वतपर वृक्ष जलरहे थे। धुएँके अम्बारमें तबभी पर्वत ढका था। उसके शिखरपर कोई भाग हरा-भरा भी है, यह देखपाना किसीके लिए भी पर्वतके नीचे से सम्भव नही था। पर्वतका एक अत्यन्त छोटा-सा भाग समुद्रसे सटा है—इस ओर किसी का ध्यान नही गया। इतने ऊँचे पर्वतमे कोई कूद भी सकता है, यह बात ही कल्पनासे बाहर थी।

'वे दोनों भाई जल मरे।' चौथे दिन प्रात जरासन्धने लौटनेका निश्चय किया। उसके सैनिकोंने रात-दिन सावधान रहकर पर्वतको चारो ओरसे घेरा बनाये रखा था। पर्वतसे तो एक क्षुद्र प्राणी भी उतर नही सका। पलाशके पत्तोंकी राशि थी पर्वतपर। उन पत्तोंने इतनी शीघ्रतासे अग्नि पकडी कि पर्वतके सभी प्राणी जल मरे। कोई भी प्राणी भाग नहीं सका। ऐसी अवस्थामें वे दोनो भाई कैसे बच सकते थे।

जरासन्ध और उसके मित्र बहुत प्रसन्न हुए। कालयवनकी सेनाके साथ आया प्रचुर धन भी उनके हाथ लग ही गया था। एक महोत्सव उन्होंने वहीं मना लिया। मगध लौटकर जरासन्धने विजयोत्सव मनाया।

ब्राह्मणोको भरपूर दक्षिणा दी। साथी नरेशोको तथा सभी सैनिकोको, सेवकोको उसने खुलकर सम्मानित—पुरस्कृत किया।

द्वारिकामें महाराज उग्रसेन, श्री वसुदेवजी तथा सभी नागरिक रात्रिमें सोते समय ही पहुँचादिये गये थे; किन्तु किसीको नही लगा कि वे रथमें बैठकर नही आये हैं। उन्हे लगता था कि वे रथो में बैठकर सपरिवार, सब सामग्री, वाहन, सेवक लेकर स्वय ही चलकर आये हैं और यह नगर उनका बहुत परिचित है। यहाँ तो वे सदासे रहते रहे हैं। उन्हें गृह, गली, पथ अपरिचित नही लगते थे।

'भगवान वासुदेव कहाँ हैं? कहाँ हैं श्रीबलराम?' सबके मनमे यही प्रश्न था। सब परस्पर यही पूछते थे व्याकुल थे।

'भगवान वासुदेवकी जय!' सहसा एकदिन नगरसे बाहर दोनो भाई आते दीख पड़े। जिसने देखा पुकार उठा। लोग दौड पडे उत्साह से।

'श्रीरणछोडरायकी जय!' बलरामजीने हँसते हुए जयध्वनि की छोटे भाईकी ओर देखकर। उनकी यह जयध्वनि—श्रीकृष्ण रणछोडराय होगये तबसे।

—×—

उपसंहार

श्रीकृष्णचन्द्रके प्रपौत्र वज्रनाभ बचे थे यदुकुलके महा-सहारसे। अर्जुन जब द्वारिकाकी अपनी अन्तिम यात्रासे हस्तिनापुर लौटे, उनके साथ भगवान वासुदेवकी थोडी-सी रानियाँ और वज्रनाभ आये हस्तिनापुर।

पट्ट महिषियाँ तो अपने आराध्यके वियोगमें देह त्याग कर चुकी थी। जो देवाङ्गनायें थी, उन्हे गोपरूपधारी देवता पार्थसे छीन लेगये थे। केवल नित्य सहचरियाँ बची थी जिन्हे व्रज-लीलाके प्रवेशका नित्याधिकार मिलना था। इसका वर्णन 'नदनन्दन' मे मिलेगा।

'भगवान वासुदेव धराका त्याग करके स्वधाम पधारे।' अर्जुनके मुखसे यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर तथा उनके भाइयोको भी पृथ्वी रहनेके

अयोग्य ही लगी। महाप्रस्थानसे पूर्व अर्जुनके पौत्र परीक्षितका हस्तिनापुरके सिंहासनपर अभिषेक कर दिया और वही धर्मराजने मथुरा-मण्डलके अधिपति-पदपर वज्रनाभका तिलक किया।

पाण्डव हिमालयकी ओर चले गये। महाराज परीक्षित सम्राट् हुए। वज्रनाभ उनके सम्बन्धमे भ्रातृपुत्र होते थे। बड़ा स्नेह था परीक्षितका वज्रनाभपर। वज्रनाभको तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोको मथुरा विदा करके बहुत शीघ्र ही वे उनसे मिलने चल पड़े थे।

मथुरा नगर लगभग सौ वर्षसे जनहीन रहा था। आपने कोई प्राचीन खण्डहर देखा है? मथुराकी अवस्थाका अनुमान इससे नही किया जा सकता। मथुरा अद्भुत प्राणिहीन प्रदेश होगया था।

मथुराके भवन टूटे नही थे। नगर परिखा तक सुरक्षित थी। सब पथ ज्योंके-त्यो थे। सभी चत्वर, सभा-भवन ज्योंके-त्यो, किन्तु सर्वत्र बहुत मोटी धूलि जमी थी। लगता था कि पूरा नगर मरुभूमिमें कुछ नीचे धँस गया है। धूलि--शिखरोंने भवनोके भीतर तक सर्वत्र धूलिकी मोटी तह।

मथुराके बाहर और नगरमें भी न कही कोई वृक्ष रहा था, न लताएँ थी, न तृण। कही काई जमी भी हो तो सूखकर काली होगयी थी। नगरमे तो कही भी एक तृणकी हरियाली देखने को नेत्र तरसते थे

सम्पूर्ण व्रजकी अवस्था इससे कुछ अधिक अच्छी नही थी। वृक्ष थे, लताएँ थी, क्षुप थे, तृण भी थे, किन्तु कैसे थे? राजकदम्ब, पाटल कदम्ब, मौलिश्री आदिका नाम नही था वही। वृक्षोंमें वटकदम्ब, शमी, पापड़ी, बबूल रहगये थे। लताओंमें केवल कंटीली झाड़ियाँ, क्षुपोंमे करील, तृणोंमे गोखरू और कण्टक-तृण।

ये सब वृक्ष, लताये, क्षुप, तृण भी दूर-दूर, एकाकी, श्रीहीन—ऐसे कि यहीं बाहरसे आगये हो। मानो बाहरसे व्रजभूमिके लोभसे तपस्या करने से आये हो और कहते हों—'हमारे समीप मत आओ। हमारा स्पर्श मत करो। हमको अपनी साधना करने दो।'

कोई दो वृक्ष, लता, तृण भी समीप नहीं। न सघनता, न शोभा—स्वच्छता यहाँ नाम नहीं। धरा रेणु का प्रधान, यमुना सूखी-प्राय, जैसे उनमें जल नहीं अश्रु बहता हो। गिरिराज गोवर्द्धन पर काई लगी चटखती शिलाएँ।

कहीं निर्झर नही। कहीं वापी, सरोवर नही। सब सूखे, मिट्टीसे भरे। मानसीगङ्गाका जल काईसे भरा जैसे किसी शोकमे वह मलिना-क्षीणा बन गयी हैं।

रस-धरा व्रज, हरित-शाद्वल भूमि, निर्झर, सरोवर, वापी—पुष्पभारसे लदी लताएँ, तरु, तृण—सब जैसे स्वप्नकी बातें होगयी। करीलकी झाड़ियाँ भी दूर-दूर सूखीप्राय। पुष्पका कही नाम नहीं।

सबसे बडी विडम्बना यह कि सम्पूर्ण व्रज प्राणि-शून्य मिला वज्र-नाभको। वनमे भी पृथ्वीपर चींटियाँ होती हैं, शून्य भवनोमें भी कपोत, शुक बस जाते हैं, मरुस्थलमे भी शशक, मूषक, सर्प होते हैं; किन्तु व्रजमें तो जैसे प्राणी कभी रहे ही नही हो। मथुराके सूने भवनोमें कोई अकेली चमगादड भी उडती तो वज्रनाभको प्रसन्नता होती। वहाँ तो भूमिसे पिपीलिका, सर्प—कुछ नही—कोई प्राणधारी सञ्चार कही नही। कोई भटकता पक्षी भी इस धराके ऊपरसे उडता नही दीखता।

वज्रनाभके साथ परीक्षितने पर्याप्त सेवक, दासियाँ, अश्व, रथ, गज, गायें और अन्न, धन आदि भेजा था। मथुराके महानगरमे यह साथ आया समाज कितना लघु लगा। प्रत्येक मनुष्यको ही नही, प्रत्येक साथ आये पशुको भी एक पूरा सदन दे दिया जाय तो नगरका एक कोना कठिनाईसे भरे और ऐसे सूने नगरमे कोई पूरा भवन लेकर क्या वहाँ प्रेताराधन करेगा?

किसी प्रकार राजभवन स्वच्छ कर लिया गया। उसीके सब कक्ष नही भरे। साथ आया समाज सब उसके एक भागमें ही बस गया। अश्वशाला, गजशाला, गोशाला—किन्तु उन विशाल भवनोको स्वच्छ करनेके श्रमका उपयोग? साथ आये पशु राजसदनमें समीप रहेगे तो प्राणियोंके सामीप्यका तो कुछ आभास रहेगा।

वज्रनाभ मथुरा-मण्डलके मूर्धाभिषिक्त राजा होकर आये, कैसी विडम्बना थी। एक प्राणिहीन प्रदेशका राजा। केवल वही सामग्री जो साथ आयी थी। भवन थे—असख्य भवन थे और वे टूटे-फूटे नही थे। वे इतने अधिक, इतने विशाल न होते—शून्यता इतनी भयावनी नही होती। किसी जनहीन सूने नगरमें रहनेकी अपेक्षा मरुस्थलकी छोटी झोपड़ीमें रहना अधिक सुखद होता है।

महाराज परीक्षित आगये मिलने। उन्होंने वज्रनाभसे कहा—'तात! तुम माताओंकी सेवामें मन लगाओ। वे बहुत दुःखी हैं। कोश, सैन्य और शत्रु-दमनका भार मुझपर रहने दो।'

'पितृव्य! आपके सम्मान्य पिता श्रीअभिमन्युजीने मुझे धनुर्वेदकी शिक्षा दी है। कोश मैं कल उपार्जित कर लूँ; किन्तु इस निर्जनमें उसका उपयोग?' वज्रनाभने कहा—'शत्रुके शमनमें मेरा धनुष समर्थ है, किन्तु यहाँ कोई शत्रु क्या लेने आयेगा? कोई आवे तो मैं उसकी प्रजा बनकर रहनेमें प्रसन्न हूँ। सेनाका क्या होगा? यहाँ किसे सैनिक बनाऊँगा?'

वज्रनाभ कह रहे थे—'चक्रवर्ती सम्राट् धर्मराजने मेरा इस क्षेत्रके अधिपति पदपर अभिषेक किया। यह मेरे पूर्वजोंकी भूमि है। उस अभिषेककी मर्यादा, इस भूमिका मोह मुझे बाँधे है। अन्यथा यहाँसे तत्काल चला गया होता। वनमें भील-पल्लीके पार्श्वमें भी रहता तो मनुष्य, वनपशु तो दीखते। इस प्राणिहीन प्रदेशमें राजा होनेका क्या अर्थ? इन साथ आये सेवकों, पशुओंकी सन्ततिसे राज्यमें प्रजा, पशु भी स्थापित करने हैं तो वे मेरे जीवनकालमें हो पायेंगे? मैं इस निर्जनमें कितने दिन रहूँगा और जब निर्जनमें ही रहना है, तप क्यों न किया जाय?'

सम्राट् परीक्षित गम्भीर होगये। व्रजधरा और मथुराकी दशा उनको भी देखनेको मिली थी; किन्तु महाराज युधिष्ठिरने वज्रनाभको इस मण्डलका राजा बनाया है। इनको हस्तिनापुर ले जाना या अन्यत्र कोई समृद्ध प्रदेश देदेना तो सरल है; किन्तु धर्मराजके अभिषेक, उनके सङ्कल्पकी मर्यादा?

'सम्पूर्ण व्रजभूमिमें कहीं कोई हो तो पता लगाओ। मैं उसके दर्शन करना चाहता हूँ।' परीक्षितने कई सेवक चारों ओर भेजे। अन्ततः इस प्रदेशके इस प्रकार प्राणिहीन होनेका कारण भी तो ज्ञात होना चाहिये। कोई वनभूमि, मरुस्थल भी ऐसा प्राणिहीन सुना नहीं गया।

सेवकोंको व्रजमें एकमात्र व्रजराज नन्दके पुरोहित महर्षि शाण्डिल्यकी कुटिया मिली। वे तपोधन परीक्षितका आगमन सुनकर स्वयं चले आये। परीक्षित और वज्रनाभने जब उनका सविधि पूजन कर लिया और उनके चरणोंके समीप बैठ गये, महर्षि बोले—'वत्स! तुम लोगोंके यहाँ आगमनकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। इस दिव्यधामका उद्धार होना

चाहिये। यह पुण्य पुरी लुप्त न होजाय, इसलिए मैं यहाँ रुका था। यह कार्य पूरा कराके मुझे हिमालयमें चले जाना है।'

'व्रजधरा दिव्य नित्य-धाम है। श्रीकृष्णचन्द्रके अवतरणके पूर्व ही उनका धाम पृथ्वीपर प्रकट हुआ। जब तक वे पुरुषोत्तम इस पृथ्वीपर रहे, धाम व्यक्त रहा। सामान्य लोगोके लिए दृश्य रहा। जब वे भगवान जनार्दन स्वधाम पधारे, उनका धाम भी अव्यक्त होगया।' महर्षिने कहा— 'जो प्राणी उस नित्यधाममे थे, वे तो धामके प्रभावसे, धामके साथ नित्य-लोकमे उन सच्चिदानन्दघनकी नित्यलीलामें योग देने चले गये। अत अब यह पूरा व्रजमण्डल प्राणिहीन होगया है।'

'धन्य यह धरा! धन्य वे प्राणी जो यहाँ किसी भी रूपमे रहे।' परीक्षितके नेत्र भर आये।

'किन्तु अब इसका निर्जनत्व?' वज्रनाभने अपनी समस्याका समाधान चाहा।

'वत्स! तुम्हे दो कार्य करने हैं।' महर्षिने स्नेहपूर्वक आदेश दिया— 'श्रीकृष्णचन्द्रके लीलास्थल कहाँ क्या है, कहाँ कौन-सा तीर्थ, सरोवर, कुण्ड या देवालय था, यह मैं तुमको बतला दूँगा। तुम वहाँ उनका निर्माण करवाओ। इससे मोक्षदायिनी पुरीका पुनरुद्धार हो जायेगा।'

मस्तक झुकाकर वज्रनाभने स्वीकार किया। इसमे उन्हे कई लाभ मिलते थे। सबसे पहले तो एक उत्तम कार्य मिल गया था। बिना किसी कार्यके इस निर्जन प्रदेशमे रहना कठिन होरहा था। इस कार्यके बहाने महर्षिका सान्निध्य मिल रहा था कुछ कालको। इन निर्माणोके लिए कलाकार, श्रमिक आदि आयेगे। जनहीनता भङ्ग होगी, भले थोड़े कालको हो। तीर्थका पुनरुद्धार होगा तो तीर्थयात्री आने लगेंगे। उनमे कुछको सम्पूर्ण सुविधा देकर यही रह जानेको कहा जा सकता है।

'दूसरा कार्य है कि यहाँके लोगोके सम्बन्धी, उनके सम्पर्कमें आये लोगोका पता लगाओ और उनको आग्रहपूर्वक लाकर बसाओ। व्रजमे जो भी थे उनके स्वजन, सम्बन्धी यहाँ बसाओ।' महर्षिने दिशा प्रदान की— 'केवल मनुष्योकी ही बात नही है। पशु, पक्षी आदि प्राणी भी समीपके प्रदेशोसे ले आओ। ऐसे ले आओ जिनका व्रजसे सम्बन्ध रहा हो। यहाँसे सम्बन्धित कपि, शशक, मृगादि लाकर यहाँ रखो, क्योकि इस पुण्यधराका निवास सबके लिए सुलभ नही है। पुण्यात्मा भगवदनुग्रहप्राप्त प्राणी ही

यहाँ निवास प्राप्त कर सकते हैं। परीक्षित इन कार्योंमे तुम्हारी सहायता करेंगे।'

महाराज परीक्षितने उसी दिनसे सेवक नियुक्त कर दिये पता लगानेको। जो भी लोग व्रजवासियोके सम्बन्धी थे—चारो वर्णोंके उन लोगोको विशेष आग्रह करके, विशेष सुविधाएँ देकर बुला-बुलाकर बसाया जाने लगा। उन्हे भवन, पशु, क्षेत्रादि प्रदान किये गये।

कपि, मृग, गौ, अश्व, मयूर, काक, शुक, कपोतादि समीपस्थ स्थानोसे ला-लाकर व्रजमे, मथुरामे छोड़े गये और उनके आहार, सञ्चारकी व्यवस्था की गयी। जब थोड़े पशु-पक्षी बस गये, दूसरे स्वत. आने लगे।

मथुरा एव व्रजमण्डलके लोग मनुष्य ही नही, दूसरे प्राणी भी जो अब हैं, परीक्षित एव वज्रनाभ द्वारा लाये गये मनुष्यो एव प्राणियोकी इसी परम्पराके हैं। व्रजवराका वही रूप है। वनस्पतियोकी परम्परा भी वही है।

कुण्ड, कूप, सरोवर, देवालयादिका निर्माण वज्रनाभ कररहे थे। उनका स्थान-निर्देश महर्षि शाण्डिल्य करते थे। श्रीकृष्णचन्द्रकी कौन-सी लीला कहाँ हुई, यह महर्षिने सूचित किया। उसके अनुरूप निर्माण वज्रनाभने किया।

अनेक मन्दिर अब भी व्रजमण्डलमें, मथुरा नगरमें वज्रनाभके द्वारा स्थापित हैं। व्रजके तीर्थोंका रूप स्थानादि उसी समयका निश्चित हुआ है। भगवान कालका प्रभाव सर्वत्र पडता ही है। माथुर-मण्डल तो अनेक बार नृशंस आक्रमणकारियोका आखेट हुआ है; किन्तु वज्रनाभकी स्थापनाकी छाप यहाँ सर्वत्र अब भी है।

●

—'श्री द्वारिकाधीश' में द्वारिका-चरित का विस्तार है।

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा उपलब्ध किये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।